सन्यासी मित्र के आग्रह ने मेरी शिथिलता के दोष की पूर्ति कर दी, और बार बार तकाजा करके उन्होंने आखिर मुझ से वायदा पूरा करा ही लिया।

पुस्तक लेखन का काम अपने हाथ में लेने तक मुझे पता नहीं था कि ये बुराइयां, जिनकी ओर हम उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं, समाज में किस हद तक फैली हुई है। पर ज्यों ज्यों मैं इस विषय का अध्ययन करता गया त्यों त्यों उनकी भयंकरता और उनके भीषण प्रचार का असली रूप मेरी समझ में आता गया। जो बात समाज के जीवन पर ही कुठाराघात कर रही है क्या जन-समाज को उसका ज्ञान होना परम आवश्यक नहीं है? वह गन्दी सी बात भी हुई तो क्या? शरीर के आरोग्य की दृष्टि से उसके गन्दे से गन्दे भागों का भी वही महत्त्व है जो कि आंख, दांत या मुख का है। किसी शहर के आरोग्य के लिए यह परम आवश्यक है कि उसके निवासी स्वच्छता का महत्व समझ लें। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के लिए भी यह परम आवश्यक है कि वह अपने खान पान की वस्तुओं के गुण-दोष जानले। कम से कम ऐसी चीजों के गुण-धर्म तो अवश्य ही जान ले जिससे उसके शरीर को हानि पहुंचने की आशंका है।

शराब और अफीम के विषय में भारत सरकार के शासन विवरणात्मक India in-, 26-27 नामक पुस्तक में श्री कोटमन लिखते हैं—पश्चिमी देशों में जिसे शराब खोरी की बुराई कहते हैं वह भारत के कुछ हिस्सों को छोड़कर-जहां कल-कारखानों की अधिकता है-कहीं नहीं दिखाई देती।

शराब खोरी जिस परिमाण में भारत में फैली हुई है, उसका

कुछ वर्णन हमने शराब वाले अध्याय में किया है। उसमें भी हमारा आधार तो सरकारी अंक ही हैं। पश्चिमी देशों की तुलना में वह चाहे कितना ही कम हो परन्तु भारत की दरिद्रता, जल-वायु और नीतिशीलता को देखते हुए तो वह बहुत अधिक है। श्री भारतभक्त ऐण्ड्रयूज लिखते हैं– जब से मैं सन् १९०१ के मार्च में पहले-पहल बम्बई आया, मैं बराबर देख रहा हूँ कि लगभग सारे देश में मादकता बढ़ती जा रही है। जब मैं पहली बार बाहर निकला तो मैंने अपनी एक किताब में लिखा था कि "मैंने भारत में कभी किसी हिन्दुस्तानी शराबी को सड़क पर पड़ा हुआ नहीं पाया।" मुझे खेद है कि यही बात मैं आज नहीं लिख सकता। मैंने देखा है कि पेरम्बर में और मद्रास के मजदूरों में मादकता खूब पैर फैला चुकी है। बम्बई में भी शराबियों के दर्शन होना कोई असाधारण बात नहीं रही है। कलकत्ते में भी मैंने शराबियों को देखा है। यही नहीं, इस दर्दनाक और शर्मनाक दृश्य को मैंने दूर देहात में भी देखा है। इससे भी अधिक दुःख मुझे भारतीय स्त्रियों को पी हुई हालत में देख कर हुआ है।"

अफीम के विषय में श्रीयुत कोटमन लिखते हैं "भारत के अधिकांश भागों में अफीम के रोग का (Opium evil) पता भी नहीं है। केवल बर्मा और आसाम में अफीम पीने की बुराई कुछ अधिक हद तक बढ़ी हुई है"। क्या हम श्रीयुत कोटमन से पूछें कि वे इस प्रश्न की तुलना पश्चिमी देशों के साथ क्यों नहीं करते! अफीम के प्रचार के विषय में भी हम अफीम के अध्याय में लिख चुके हैं।

श्रीयुत कोटमन लिखते हैं कि पिछले दस वर्षों में (अर्थात

१९१६-१७ से लेकर १९२६-२७ तक) अफीम की खेती ७३ फी सैकड़ा घटा दी गई है। देशी राज्यों से १९२४-२५ में ११४०० मन अफीम खरीदी गई थी। पर १९२५-२६ में ६५०० मन ही ली गई। और भी अफीम की खेती कम करने की कोशिशें हो रही हैं। सन् १९२६ की जनवरी से अजमेर मेरवाड़ा में अफीम की खेती रोक दी गई है। श्रीयुत कोटमन पिछले पंद्रह, सोलह वर्ष का हिसाब यों देते हैं—

	१९१०-११	१९२५-२६
बम्बई	१०३९ मन	८९० मन
मद्रास	१४३५	७५४
बंगाल	१६२६	९९५
ब्रह्मा	१४४४	७१२
बिहार उड़ीसा	८८२	६२६
युक्तप्रान्त	१५४५	५२०
पंजाब	१५८४	९४१
मध्यप्रान्त	१३०७	७९४
आसाम	१५०९	८३८
उप सीमाप्रान्त	६९	४८

अजमेर मेरवाड़ा अपेक्षा कृत अधिक है। (बस इतना कहकर छोड़ दिया। ये अंक श्री० कोटमन ने नहीं दिये हैं।)

समस्त भारत	१२५२७ मन;	७५८२ मन
कुल आय	१.६२ करोड़ रुपये	३.४१ करोड़ रुपये

सरकार इसमें Minimum Con sumption, maximum Revenue के सिद्धान्त से काम ले रही है। सरकार के लिए यह जरूर फ़ायदे मन्द है। परन्तु जनता को तो तभी फ़ायदा होगा जब अफ़ीम की बिलकुल बन्दी कर दी जायगी।

भांग-गांजा वगैरा के विषय में सरकार की यही नीति है।

एक विदेशी सरकार अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल रखते हुए जितनी लापरवाह रह सकती है हमारे शासक इन मामलों में उतनी लापरवाही बराबर दिखा रहे हैं।

शराब अफीम और भांग गांजा ऐसी चीजें है जिन्हें सरकार भी बुरा समझती है। परन्तु चाय तम्बाकू विषय में तो बिलकुल जुदी बात है। इन्हें यद्यपि हम चाहे कितना ही बुरा समझें, चूंकि सरकार उनकी खेती वगैरा में कोई बुराई नहीं देखती उनकी बन्दी अभी कल्पनाके बाहर की बात है। व्यभिचार की बुराई की तरफ तो शायद सरकार का ध्यान भी नहीं गया है।

इस तरह जब हम इन बुराइयों के प्रचार की ओर सरकार की नीति को देखते हैं तो हमें मजबूरन सरकार से निराश होना पड़ता है।

पर हमारा आधार हमारे प्रयत्न हैं। शीघ्र ही शासन की बागडोर इस सरकार के हाथों से हमारे हाथों में निश्चय रूप से आने वाली है। इस लिए हमें समाज-सुधार के काम को स्वावलम्बन के सिद्धान्त के अनुसार अभी से शुरू कर देना चाहिए।

आज शराब अफीम आदि नशीली चीजों पर देश का एक अरब से अधिक रुपया बरबाद हो रहा है। व्यसनों का शिकार

बन जाने पर अन्य तरह से द्रव्य और स्वास्थ्य का जो नाश होता है सो तो अलग। इस सारे विनाश का हिसाब लगाना असम्भव है इस बरबादी और लोगों की लापरवाही को देख कर यह मालूम होता है शैतान ने हम लोगों पर अपनी लकड़ी घुमा दी है। अपने देश से इन बुराइयों को हम दूर कर सकें तो कम से कम १०००००००००रुपये के घर बैठे लाभ के अतिरिक्त हमारे देश का असीम उत्साह, शक्ति और बुद्धि का बचाव हो कर दूसरे क्षेत्रों में उनका उपयोग हो सकेगा। लाखों एकड़ जमीन जो इन चीजों की पैदावार में लगी हुई है वह अनाज वगैरः उत्पन्न करने के काम में आ सकेगी। और देश समृद्ध हो सकेगा।

पर यह सब युवकों के किये हो सकता है। क्या हमारे भाई युवक देश की इस आशा की पूर्ति करेंगे?

बैजनाथ महोदय

कुछ आधार-भूत ग्रन्थ

(1) Alcohol And The Human Race. (2) Alcohol A Menace to India. (3) Drink and Drug Evil in India—Badrul Hussain. (4) Opium in India. (5) आरोग्यता के शत्रु (6) मनुस्मृति. (7) Ten years of Prohibition in Oklahama—Pussey Foot Johnson. (8) Some facts about Alcohol. (9) Indian Opium trade—Rush Brook Williams. (10) Ethics of Opium (11) Financial developments in Modern India—C. N. Vakil. (१२) जीवन रहस्य. (१३) शब्द कल्पद्रुम (14) Sixty Years of Indian Finance K. Shah. (15) Drink and Opium evil in India—Andrews. (१६) महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष. (१७) हिन्दी विश्वकोष. (17) Encyclopaedia Brittanica. (19) Married Love—M. Stopes. (20) Wise Parent-hood. M. Stopes. (21) Radient Mother hood—M Stopes. (22) Control of Parent-hood. (23) The Pivot of Civilization. (24) Self Restraint Vs. Self Control by Mahatmaji. (25) Relation of the Sexes—Tolstoy. (26) What a Youngman ought to Know Dr. Sylvanus. (27) What a Young Woman ought to Know—Wood Allen. (28) The Science of New Life—Dr. Cowen. (29) The Home book of Modern Medicine Dr. Kellogg. (30) Home Cyclopedia Dr. Foote. (३१) व्यभिचार श्री चतुरसेन शास्त्री. (32) Times Indian Year book. (33) India in 1926, 27, by J. Coatman. (34) Dictionary of the Economic products of India—Watt.

विषयसूची

पहला भाग

शराब अथवा मद्य

चौथा भाग

व्यभिचार

शराब अथवा मद्य

"Luxury, my Lords, is to be taxed, but vice must be prohibited. Let the difficulties in executing the Law be what they will. Will you lay a tax on the breach of commandments? Would not such a tax be wicked and scandalous, because it would imply an indulgence to all those who pay the tax? This Bill [to license liquorshops for the sake of Revenue] contains the Conditions on which the people are to be allowed henceforth to riot in debauchery—licensed by Law and countenanced by magistrates. For, there is no doubt, but those in authority will be directed by their masters to assist in their design to encourage the consumption of that liquor from which such large revenues are expected.

"When I consider my Lords, the tendency of the Bill, I find it only for the propagation of disease, the suppression of industry and the distruction of mankind. I find it the most fatal engine by which all those who are not killed will be disabled, and those who preserve their wits, will be deprived of their senses".

—Lord Chesterfield.

शैतान की लकड़ी—१

भारतवर्ष में शराबखोरी बढ़ने का मुख्य कारण जातिभोज या सहभोज है। ऐसे अवसरों पर कितने ही निर्दोष बालकों और स्त्रियों को शराब का चस्का लगा दिया जाता है।

शैतान की लकड़ी

शराब अथवा मद्य

विषय-प्रवेश

शराब आजकल की वस्तु नहीं है, युगों से प्रत्येक देश के लोग किसी न किसी प्रकार का मद्य पान करते हो आये है। उसकी मादकता आरम्भ में गुण समझी जाती थी। पर ज्यों-ज्यों मानव-जाति का विकास होने लगा, उसके बुरे-विषैले परिणाम से मनुष्य-जाति परिचित हो गई। प्रत्येक धर्म के आदि ग्रन्थों में हमें इसके विषय में निषेधात्मक वाक्य मिलते हैं। वेद, कुरान, मनुस्मृति धर्मपथ आदि सब इसका तीव्र स्वर से निषेध करते आये हैं। परन्तु फिर भी मानव-जाति इससे अभी तक अपना पिंड नहीं छुड़ा पाई। समाज-शास्त्र के विशेषज्ञ कहते हैं कि कई जातियां शराब के व्यसन की शिकार हो कर इस पृथ्वी-तल से सदा के लिए मिट गईं। न जाने कितने साम्राज्य इस विष के शिकार हुए हैं? शराब पीते ही कर्तव्या-कर्तव्य का ज्ञान चला जाता है। भारतीय इतिहास में यादव-साम्राज्य के विनाश का इतिहास, जो खून के अक्षरों में अंकित है, वह इसी के कुपरिणाम का फल है। रावण जैसे महान् शक्ति-शाली और बुद्धिमान् राजा की बुद्धि को नष्ट करने तथा उसे पतन की ओर ले जाने का दोष शूर्पनखा को नहीं यदि शराब

ही को दिया जाय तो शायद अनुचित न होगा। कम से कम हमें तो यही उस प्रबल राक्षस-जाति के पराजय का मूल कारण प्रतीत होता है। हम राम-रावण युद्ध का हाल पढ़ते हैं। राक्षस हमें मदान्ध शराबियों के से लड़खड़ाते हुए, बुद्धिशून्य हो कर लड़ते हुए दिखाई देते हैं। रामायण में आद्य कवि उस राक्षसी सभ्यता का चित्र हूबहू हमारे सामने खड़ा कर देते हैं। आर्य हनूमान के साथ साथ जब वे हमें लंका और रावण के अन्तःपुर की सैर कराते हैं, तभी भीतर से अंतरात्मा कह देती है कि इस मदान्ध जाति की अमानुष शक्ति भी मनुष्य किन्तु सतत जागृत रहने वाले श्रीराम के सामने नहीं टिक पाएगी। हम हिन्दू साम्राज्य के वैभव-काल का अथवा मुसलमान साम्राज्य का विहगावलोकन करते हैं तो दोनों की सुरा-वृत्ति में हमें इनके पतन के बीज दिखाई देते हैं। राजपूतों के समान शौर्यशाली जाति पृथ्वी तल पर और कहां होगी ? पर वह भी मदिरा की गुलाम ही थी। मध्य-कालीन काव्य ग्रन्थों में हमें मदिरा के असीम प्रचार के सबूत दिखाई देते हैं। राज-पुरुषों के लिए मदिरा एक अनिवार्य वस्तु सी थी। बिना मदिरा के जीवन अधूरा समझा जाता और विषय-विलास का मजा किरकिरा हो जाता था। भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों ने देवी मदिरा के प्याले पर भारतीय स्वाधीनता को मानों यों न्योछावर करके विदेशियों के हाथों में सौंप दिया, जैसे युवतियां नव-वधूवरों पर से तीन पाई न्योछावर करके नाई या ढोल बजाने वाले को दे देती हैं और कहती हैं "भला हुआ, मेरे भैया के सिर की बला टली। हमारा दुर्भाग्य !

परन्तु लक्षणों से तो अब ऐसा जान पड़ता है कि विज्ञान

के प्रखर प्रकाश में यहां शराब की अधिक दिनों तक दाल न गलेगी। वैज्ञानिक खोजों से पाया गया है कि शराब में 'अल-कोहल' नामक एक महाभयंकर विष होता है।

शराब का विष*

शुद्ध अलकोहल एक जलने योग्य रासायनिक द्रव है, जो शक्करदार पदार्थों के सड़ने पर उनमें उत्पन्न हो जाता है। ज्ञात होता है कि सामाजिक कार्यों के अवसर पर अभ्यागतों का किसी खाद्य-पेय द्वारा स्वागत करने की प्रथा मानव-जाति में अनादि काल से चली आई है। ये पेय भिन्न-भिन्न फल, नाज और फूलों से बनाये जाते—मसलन् अंगूर, जौ, गेहूँ, मक्का, महुए के फूल इत्यादि से। मनुष्य स्वभावतः सुख-प्रिय है। उसने सोचा हरबार इन पेयों को कौन तैयार करे? त्यौहार पर अभ्यागतों के लिए तरह-तरह के पेय एकदम बना कर ही क्यों न रख लें? और यही होने भी लगा। पर इस प्रथा के कारण पेय की ताजगी मारी गई। वह सड़ने लगा और उसमें वही अलकोहल नामक विष उत्पन्न होने लगा। परन्तु अलकोहल तो मादक होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य इस पेय को पीता, कुछ दुर्गन्धी भी आती, पर साथ ही एक अजीब प्रकार का आनन्द भी उसे मिलने

*संसार में जितने भी मादक द्रव्य हैं शरीर पर उनकी क्रिया प्रायः एक सी है। अतः हम पाठकों से अनुरोध करते हैं कि वे इस अध्याय को ध्यान-पूर्वक समझ लें। पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए हम इस बात को यहां जरा विस्तार पूर्वक लिख देते हैं कि शरीर पर शराब के विष का परिणाम कैसे होता है? वही क्रिया न्यूनाधिक परिणाम में अन्य विषों की भी होती है।

लगा। फिर क्या था ? धड़ाधड़ इसका प्रचार होने लगा। सभी यों पेय बना-बना कर रखने लग गये। यही शराब का प्राथमिक स्वरूप था। इसके बाद तो इसी प्रथा के अनुसार लोग कई प्रकार के सुगंधित और स्वादिष्ट द्रव्य उसमें डालकर बाकायदा शराब बनाने लग गये। शराब की मादकता ने इसके भक्तों की संख्या को एकदम बढ़ा दिया, और शराब के बनाने तथा उसका व्यापार करने वालों का समाज में एक भिन्न वर्ग ही खड़ा हो गया, जो शराब को बड़े पैमाने पर तैयार करने लग गया। मनुष्य की सुख-लालसा ने एक महान् राक्षस को जन्म दे दिया जिसने शीघ्र ही त्रैलोक्य पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। इस पेय को और भी आनन्द-दायक बनाने लिए मनुष्य ने उसका अर्क निकाल कर उसके अन्दर अलकोहल का प्रमाण बढ़ाने की तरकीब को ढूंढ निकाला। आज भिन्न-भिन्न प्रकार की शरावें स्पिरिट इसी तरकीब से बनाई जाती हैं।

वैज्ञानिक जांच और उसका परिणाम

इधर कई वर्षों से पश्चिमी संसार में शराब सम्बन्धी खोजों ने बड़ी खलबली मचा दी है। सैकड़ों डाक्टरों ने इस बात को स्वीकार किया है कि अलकोहल मनुष्य के लिए ही नहीं बल्कि जीव-मात्र के लिए घातक विष है। फिलेडेल्फिया के डॉ० बेंजामिन रश ने अपने एक पत्रक द्वारा इस विषय पर पहले-पहल वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला। (१७८३) डॉ० रश रसायन शास्त्र के प्रोफेसर, अमेरिका की कमिटी ऑफ इन्डिपे-न्स के चेयरमन, तथा रेवोल्यूशनरी वॉर के मिलिटरी डिपार्ट

मेन्ट में सर्जन जनरल थे। वे अपने 'मानव-शरीर पर शराब के दुष्परिणाम' नामक ग्रन्थ में लिखते हैं "खींच कर निकाली हुई शराबें मनुष्य के लिए बड़ी घातक हैं।" दुर्भाग्य वश उन्होंने मामूली (फरमेन्टेड) शराबों के विषय में कुछ नहीं लिखा, जिनमें भी अलकोहल काफी परिमाण में होता है। बल्कि उन्होंने तो शराब का "संयम पूर्वक" सेवन करने तक की सलाह दे डाली है। इनके बाद स्वीडन के डॉ० मगनस हस ने इस विषय पर और भी प्रकाश डाला। उन्होंने अपने ग्रंथ में 'आधुनिक शराब-खोरी' को बहुत हानिकर बताया है और प्रमाणों द्वारा अपने कथन की पुष्टि की है। पचीस वर्ष बाद लंदन के डॉ० बेंजामिन वार्ड रिचर्डसन ने अपने अनेक वर्षों के प्रयोग के बाद यह सिद्ध कर दिया कि अलकोहल उत्तेजक पेय नहीं, बल्कि जीवाणुओं को मार कर शरीर को सुन्न बना देने वाला विष है। उसे जिस किसी रूप और मात्रा में लिया जायगा, शरीर पर उसका असर विष की तरह घातक ही होगा। इन प्रयोगों के पूर्ण होते ही डॉ० रिचर्डसन ने हमेशा के लिए शराब को छोड़ दिया। पश्चिम में शराब-बन्दी की हलचल के वे प्रवर्तक समझे जाते हैं।

डॉ० रिचर्डसन के आविष्कारों ने शराब के इतिहास में सचमुच युगान्तर उपस्थित कर दिया। अमेरिका में डॉक्टर नेविस ने इस आविष्कार का खूब प्रचार किया। फल यह हुआ कि सन् १९१५ में दि मेट कमिटी ऑन दि अमेरिकन फार्माकोपिया ने दवाओं की फेहरिस्त से शराब का नाम ही उड़ा दिया। इसके तीन ही साल बाद, सन् १९१८ के जून मास में नेशनल

कन्वेन्शन ऑफ दि अमेरिकन मेडिकल ऍसोसिएशन के अध्यक्ष ने समस्त डॉक्टरों से जोरों से अपील की कि वे शराब-बन्दी के आन्दोलन में शरीक हो जायँ, क्योंकि जन साधारण के स्वास्थ्य-सुधार का यही एक महत्त्वपूर्ण उपाय है।

इसके साथ ही संसार के डॉक्टरों में एक महान् हलचल हो गई। संसार के तमाम बड़े-बड़े डॉक्टरों ने पृथक्-पृथक् प्रयोग कर के शराब की बुराइयों की जांच शुरू कर दी। और सब के सब इसी नतीजे पर पहुँचे कि शराब का विष (अलकोहल) क्षय, न्यूमोनिया, विषम ज्वर, विषूचिका, फ्लू तथा पेट, जिगर, गुर्दा, हृदय, रक्तवाहिनियां, स्नायु, तथा मस्तिष्क के कई प्रकार के रोगों का जनक और पोषक है। इन प्रयोगों के कर्ता तथा संशोधक डॉक्टरों की नामावली यहां देना व्यर्थ है। क्योंकि अब यह बात संसार के सभी लोग मानने लग गये हैं। परन्तु उनमें से मुख्य-मुख्य डॉक्टरों के नाम इस प्रकार हैं:—अमेरिका के डॉक्टर क्रॉदर्स, डॉक्टर वेल्क, और डॉ० चिटेण्डन; ग्रेट ब्रिटेन के डॉ० मूरहेड, डॉ० हॉर्सली डॉ० वूडहेड; फ्रान्स के डॉ० वर्टिलेन, डॉ० थोडेरान, डॉ० ग्रॉरडेल, और डॉ० मॅगनन् के अतिरिक्त वियना के डॉ० विचसेलडम स्टॉकहोम के डॉ० हेन्सचेन, प्रशिया के डॉ० गॅटसरटेट और स्विट्जरलैंड के डॉ० फॉरेल थे।

परन्तु अलकोहल की पूरी-पूरी बुराइयाँ तो पश्चिम में तब जाहिर हुईं जब श्रमजीवियों की योग्यता अर्थात् काम करने की शक्ति को जाँचने की जरूरत पैदा हुई। और इस क्षेत्र में वैज्ञानिक खोजों ने जो महत्वपूर्ण काम किया है, वह शायद ही और कहीं किया हो। हर जगह श्रमजीवी की अयोग्यता का

मुख्य कारण शराबखोरी ही पाया गया। यह जांच इतनी संपूर्ण और चौंका देने वाली है कि अब तो पश्चिमी संसार की फौजें, नौ-सेनाएँ रेलवे तथा अन्य समस्त-संस्थाएँ इसी नतीजे पर जा पहुँची है कि अपने-अपने विभाग में शराब की पूरी बन्दी ही कर दी जाय। युरोप के तमाम राष्ट्र अब इसी कोशिश में हैं कि जितनी जल्दी हो सके देश को इस शराबरूपी मोहक विष के पंजे से छुड़ा दिया जाय। विज्ञान डंके की चोट कह रहा है कि शराबखोर राष्ट्रों के सामने केवल दो मार्ग खुले हैं। यदि उन्हें भावी कल्याण की आशा और इच्छा है तो वे शराब को एक बारगी छोड़ दें, और अपने आपको तथा राष्ट्र को इस अवश्यम्भावी विनाश से बचा लें। अन्यथा सर्वनाश उन्हें तथा उनके राष्ट्र को ग्रसने के लिए मुँह बाये खड़ा ही है। यदि वे शराब को नहीं छोड़ेंगे तो भूतकालीन साम्राज्यों तथा महान् जातियों के समान वे भी इस पृथ्वीतल से मिट जावेंगे।

शरीर एक सुन्दर राष्ट्र है

प्रकृति मनुष्य की माता और गुरु भी है। आज तक मनुष्य ने जितने आविष्कार किये हैं, सब उसके रहस्यों का उद्घाटन मात्र हैं। और अभी उसके गर्भ में ऐसे अनंत रहस्य हैं जो मनुष्य से छिपे हुए हैं। दूर जाने की जरूरत नहीं। हमारा शरीर ही एक ऐसी अजीब वस्तु है कि अभी तक इतने आविष्कारों और खोज-भाल के बाद भी मनुष्य अपने शारीरिक रहस्यों का एक हिस्सा मात्र ही समझ पाया है। शरीर शास्त्र के किसी अंगरेज लेखक ने इसे 'The Living Temple of God'

कहा है। यदि मनुष्य इसकी रचना, इसका कार्य और रहस्य समझ ले तो उसे परमात्मा को अलग खोजने की जरूरत ही न रहे। उसकी कृति का, अस्तित्व का यह एक सादा और सुन्दर नमूना है।

हमारा यह छोटा सा शरीर एक सुसंगठित सुन्दर राष्ट्र है। ऐसा सभ्य, सुव्यवस्थित और सुशासित कि यहां की सी व्यवस्था मनुष्य के बनाये किसी भी राष्ट्र में मिलना असंभव है। यों देखने से हमें शरीर एक संपूर्ण वस्तु सा मालूम होता है किन्तु यह असंख्य सूक्ष्म जीवाणुओं से बना हुआ है। वे उसके नागरिक हैं। और जिस प्रकार एक राष्ट्र में कई प्रकार के नागरिक होते हैं, और वे भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करते हैं, उसी प्रकार इस शरीर के अन्दर भी कई प्रकार के जीवाणु अपने राष्ट्र के शासन-संचालन में लगे हुए हैं। अपने काम को छोड़ कर उन्हें न तो बाहरी बातों की ओर ध्यान देने का अवकाश ही है और न वे कभी इसकी इच्छा ही करते हैं। उनके लिए तो "स्व-कर्तव्य ही जीवन है। जीवन कर्तव्य है, और कर्तव्य जीवन। जब राष्ट्र में भी ये दोनों इसी तरह ओतप्रोत हो जाते हैं, तब वह एक व्यक्ति की तरह काम करने लग जाता है, तब वह स्वतंत्र होता है।

अंगरेजी में इन जीवाणुओं को 'सेल' कहते हैं। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इन जीवाणु-संघों ने हमारे शरीर के अंदर उत्कृष्ट श्रम-विभाग के सिद्धान्त के अनुसार, अत्यन्त पूर्णता के के साथ अपने-अपने काम बांट लिये हैं। कुछ जीविकार्जन में जुट पड़े हैं, जैसे—मुंह, पेट, अन्नाशय, फेंफड़े इत्यादि। ये खाना पानी और शुद्धवायु को हमारे शरीर के अन्दर पहुँचाते रहते हैं।

कुछ इन द्रव्यों को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में बांटते रहते हैं। और बचे-खुचे अवशेष को बाहर फेंक देते हैं। यह काम हृदय, खून, फेंफड़े, जिगर, तथा त्वचादि जीवाणु-संघ करते हैं। इनके अतिरिक्त जो जीवाणु-संघ हैं, वे व्यवस्थापन, राज्य-संचालन राष्ट्र रक्षा, आरोग्य-पालन आदि काम करते रहते हैं जैसे मस्तिष्क, रीढ़, स्नायु इत्यादि।

जीवाणु की रचना और जीवन-क्रिया

मानव-शरीर के जीवाणुओं की कई जातियां और जीवन-धर्म भी हैं। सब के सब-प्रोटो प्लाजम नामक एक सजीव द्रव्य के बने होते हैं। प्रत्येक जीवाणु की रचना यों होती है। एक केन्द्र के आस-पास एक अ-पारदर्शक द्रव लगा रहता। सेल का (जीवाणु का) जीवन इसी केन्द्र की शुद्धि और नीरोगता पर निर्भर रहता है। केन्द्र शुद्ध और नीरोग होगा तो सेल भी नीरोग होंगे और शरीर भी नीरोग एवं बलिष्ठ।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, जीवाणु कई प्रकार के होते हैं। कई केवल एक केन्द्र के होते हैं, जैसे अमीबा? कई में दो, तीन, चार इस तरह अनेक केन्द्र होते हैं। यही प्रारम्भिक जीवाणु समस्त प्राणियों के जीवन में अत्यन्त महत्वशाली वस्तु हैं। इनकी शुद्धि, इनके नीरोग और इनके रुग्ण होने पर ही प्राणियों के शरीर की शुद्धि, नीरोगता और रुग्णावस्था निर्भर रहती है।

हमारे शरीर में इन जीवाणुओं के निर्माण और पुनर्निर्माण की क्रियाएँ आजीवन अनवरत रूप से जारी रहती हैं। हम अणु वीक्षण यंत्र की सहायता से छोटे से छोटे जीवाणुओं के

जीवन-क्रम को भी अपनी आंखों देख सकते हैं। हम ऊपर कह चुके हैं कि कितने ही जीवाणुओं में केवल एक ही केन्द्र का सेल होता है। अमीबा एक इसी प्रकार का जीवाणु है, जो स्थिर जलाशयों में पाया जाता है। यदि हम इस जलाशय से एक बून्द पानी ले कर उसकी जाँच करें, तो हमें वह साफ तौर से इधर-उधर दौड़ता, खाना और हवा को भीतर लेता और मल का त्याग करता हुआ दिखाई देता है। कुछ देर बाद हम देखते हैं कि उसका केन्द्र बीच में से दो हिस्सों में बंट जाता है और आस-पास का द्रव इन दोनों केन्द्रों के बीच हो जाता है और शीघ्र ही वह सारा सेल दो भागों में पृथक् हो जाता है। यह नवीन सेल पहले सेल की तरह अपनी पृथक् जीवन-यात्रा शुरू कर देता है। कई जीवाणुओं की नव-निर्माण किया कुछ भिन्न होती है, जैसा कि यीस्ट (Yeast) नामक सेल के जीवन में होता है। इसमें माता सेल स्वयं द्विधा होने के बजाय एक ही बार में कई नये जीवाणुओं को पैदा कर देती है। प्राणि-जीवन में इस क्रिया को Budding अथवा उन्मीलन क्रिया कहा जाता है।

जिस प्रकार व्यक्ति राष्ट्र के घटक हैं और उसके जीवन के लिए महत्वपूर्ण तथा आवश्यक वस्तु हैं उसी प्रकार ये जीवाणु प्राणियों के शरीर के आद्य सजीव घटक हैं, और प्रत्येक प्राणी का जीवन, मरण, आरोग्य तथा रुग्णावस्था इन्हीं आद्य जीवाणु-संघों की शुद्ध अवस्था पर निर्भर है। अतः यहाँ पर उन सेल अथवा जीवाणुओं के घटक द्रव्य के विषय में भी कुछ कह देना जरूरी है।

जीवाणु प्रोटोप्लाज्म नामक एक सजीव द्रव के बने होते हैं। यह द्रव स्वयं प्रोटीन से बनता है। और प्रोटीन में नीचे लिखे पदार्थ उनके सामने लिखी मात्रा में होते हैं।

पदार्थ	मात्रा प्रतिशत
कार्बन	.५३
ऑक्सिजन (प्राणवायु)	.२२½
नायट्रोजन	.१६½
हाइड्रोजन	.७

शराब की जीवाणुओं पर क्रिया

अब हम यह देखें कि अलकोहल अर्थात् शराब के विष का हमारे शरीर पर क्या असर होता है।

हमारा सारा शरीर इन जीवाणुओं से भरा है। अन्तर केवल इतना ही है कि बाहरी त्वचा के जीवाणु एक रक्षक पदार्थ द्वारा अधिक सुरक्षित हैं। पर शरीर के भीतर तो वे खुले हैं। यदि हम थोड़ी-सी शराब मुँह में लें और उसे थोड़ी देर तक मुँह में रक्खे रहें तो हमें उसका प्रभाव फौरन मालूम हो जायगा। इसे मुँह में लेते ही ज़बान तथा मुँह चुरमुराने लगता है और मुँह का सारा भीतरी हिस्सा सफेद हो जाता है। इसके बाद यदि आप किसी चीज को खावेंगे तो आप देखेंगे कि मुँह का स्वाद जाता रहा है।

इसके मानी क्या हैं? यही कि मुंह के कोमल जीवाणुओं को शराब ने मूर्च्छित कर दिया है। उनकी चेतना-शक्ति नष्ट हो जाने के कारण वे स्वाद-ज्ञान को अनुभव नहीं कर सकते।

जीवाणुओं के लिए कितना घातक होगा ! प्राणी-शरीर जितना ही अधिक उत्क्रान्त * होता है, अलकोहल उसके लिए उसी मात्रा में अधिक भयंकर और नाशक पाया गया है। मनुष्य ऊंची से ऊंची श्रेणी का प्राणी होने के कारण अलकोहल का प्रभाव उस पर सबसे अधिक भयंकर होता है। उसके मस्तिष्क, स्नायुकेन्द्र तथा ज्ञानेन्द्रियों पर, जो उत्क्रान्ति की सब से ताजी और श्रेष्ठ उपज हैं, वह और भी तेजी से आक्रमण करता है। वह इन इन्द्रियों को मूर्च्छित कर देता है। इनके मूर्च्छित होते ही नीति-अनीति की भावनाओं पर मनुष्य का अधिकार या नियन्त्रण उठ जाता है। ढालू जमीन पर दौड़ने वाली गाड़ी के समान

---

* आज कल बहुत से विद्वान् यह मानते हैं कि मनुष्य शरीर शुरू से ही ऐसा उन्नत नहीं था जैसा कि आज हम उसे देख रहे हैं। अन्य प्राणियों के लिए भी यही बात कही जाती है। उनका कहना है कि इस सृष्टि में पहले पहल ऐसे जीव पैदा हुए जिनकी शरीर-रचना बहुत मामूली थी और धीरे धीरे उनका विकास होता गया। उदाहरण के लिए डार-विन साहिब का ख्याल है कि मनुष्य का आद्य रूप बन्दर था। धीरे धीरे विकसित होता हुआ वह मनुष्य के इस रूप को प्राप्त हुआ। इस कथन की पुष्टि में ऐसा ख्याल रखने वाले विद्वान बीच की कई लड़ियां भी बताते हैं। हम भी देखते हैं कि मनुष्य विकास तो अवश्य करता है अगर उसकी शारीरिक और मानसिक उन्नति के लिए पूर्ण अवकाश और अनुकूलता हो तो वह खूब उन्नत हो सकता है। गुलामी के मानी हैं इस अवकाश और अनुकूलता का अभाव अथवा प्रत्यक्ष रुकावट। इसीलिए हम देखते हैं कि स्वाधीन राष्ट्र के नागरिक गुलाम राष्ट्रों की अपेक्षा हर बात में बढ़े-चढ़े होते हैं। उत्क्रान्ति इसी सर्वांगीण विकास और उन्नति का नाम है, फिर वह चाहे मनुष्य या किसी अन्य प्राणी की हो।

उसका शरीर बेरोक काम करने लगता है। शराबी को कम से कम परिश्रम का अनुभव होता है। और वह सोचता है कि मुझ में खूब शक्ति का संचार हो गया है। पर वास्तव में जब उसकी ज्ञानेन्द्रियां अपनी मूर्च्छा से जागती हैं तब उन्हें पता लगता है कि कोई राक्षस आ कर उनके मन्दिर को अपवित्र कर गया और उसकी शक्ति को चुरा ले गया। मूर्च्छा के कारण स्वयं ज्ञानेन्द्रियां अथवा विवेक-भावनाएँ भी अपनी पुरानी शक्ति से हाथ धो बैठती हैं। उनकी शासक वा नियन्त्रण करने की शक्ति हरबार घटती ही रहती है, और दिन-ब-दिन मनुष्य अधिक अनियंत्रित, निरंकुश वा दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो अनीति-शाली, पतित और पशुवत बनता जाता है।

शराब पीने पर ?

ऊपर बताया जा चुका है कि मुँह में शराब लेते ही वह भीतर की मुलायम लाल-लाल चमड़ी को सुन्न और सफेद बना देती है। इसके साथ ही स्नायुओं पर भी एकाएक आघात पहुँच कर रस-निर्माण क्रिया एकदम अव्यवस्थित हो जाती है। इस आघात के कारण शरीर की और भी कितनी ही मामूली क्रियाओं में बड़ी गड़बड़ी मच जाती है। ठीक तो है। जब कोई बाहरी शत्रु किसी नगर पर आक्रमण करता है तब क्या सब नागरिक अपना मामूली काम छोड़-छोड़ कर उसके प्रतिकार के लिए नहीं दौड़ पड़ते ?

इसके बाद शराब का असर उन रक्त-वाहिनियों पर गिरता है जो शरीर की इस कोमल त्वचा के नीचे या भीतर होती हैं।

वे फूलती हैं और शरीर की चमड़ी फैल जाती है। पेट तथा अन्य अवयवों के आस-पास की रक्त-वाहिनियों पर भी यही असर पड़ता है। उनके भीतर का खून जमने लगता है। रक्त-वाहिनी की सजीव त्वचा सुन्न और मूर्छित हो जाती है। उनका लचीला पन नष्ट हो कर वे कड़ी और Brittle (जल्दी टूट जानेवाली) हो जाती है।

जो लोग भोजन के बाद या साथ ही में शराब पीते हैं उनके पेट के नाजुक और महत्वपूर्ण स्नायुओं की जीवन-शक्ति को निःसन्देह वह कमजोर बना देती है और जठराशय के काम में भारी रुकावट पैदा कर देती है। जठराशय का काम है अन्न का मंथन कर के उससे नाना प्रकार के रस तैयार करना। पर जब अन्न के साथ-साथ पेट में शराब भी पहुँचती है तब वह सुन्न हो जाता है और पाचन-क्रिया रुक जाती है।

यदि शराब भोजन के बाद न ली जाय और कहीं जठराशय में अन्न का मथन हो कर वह द्रव रूप में कहीं परिणत हो गया तो भी बार-बार शराब पीने के कारण रक्त-वाहिनियों की दीवारों की त्वचा तो फिर भी सुन्न और कड़ी हो जाती है। तब वे न तो उस द्रव से अपने पोषण के योग्य रसों को सोख सकती हैं और न अपने भीतर की अशुद्ध अवशिष्ट चीजों को बाहर फेंक सकती हैं। इन अवयवों के जीवाणु-संघ कमजोर और दुर्बल हो जाते हैं और वे अपने नव-निर्माण के अयोग्य हो जाते हैं। शनैः शनैः अन्नाशय तथा आस-पास की रक्त-वाहिनियों के कोमल त्वचात्मक आवरण निर्जीव हो कर गिर जाते हैं। और भीतर से नये आवरण उनका स्थान लेते रहते हैं। पुनः

इस नयी त्वचा पर शराब वही क्रिया आरंभ करती है। फिर और निर्जीव जीवाणु पेट में इकट्ठे हो कर पाचन-क्रिया में असीम रुकावट डालते हैं। इन मृत जीवाणुओं से एक विष पैदा हो कर वह भी शनैः शनैः शरीर में फैलता रहता है। इसकी क्रिया भी प्रायः वैसी ही होती है जैसी गर्भिणी के पेट में बच्चा मर जाने से होती है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि वह मृतपिंड बड़ा होने के कारण माता के शरीर पर उसका विष बहुत जल्दी और दृश्य रूप से असर करता हुआ दिखाई देता है, और शराब के कारण होनेवाली जीवाणु-हत्या सूक्ष्म होने के कारण उसके दृश्य स्वरूप और फल को हम तत्काल नहीं देख सकते। लेकिन इसी विष के कारण हम प्रति वर्ष हजारों शराबियों की, भरी जवानी में ही मृत्यु होती देखते हैं।

रक्त-संचालन पर शराब का प्रभाव

पर अन्नाशय का बिगड़ना या सड़ना और पाचन-क्रिया में गड़बड़ी होना तो शराब से होने वाले शरीर का केवल श्रीगणेश है। जठराशय के पाचक रसों में एक भी ऐसा शक्तिशाली रस या क्षार नहीं होता जो शराब के विष को-अलकोहल को हजम कर सके। अतः पेट में जाते ही वह प्रतिशत बीस के प्रमाण में सीधा हमारे खून में प्रवेश कर जाता है और शेष अर्थात् प्रतिशत ८० हमारी Intestines अंतड़ियाँ अर्थात् पाचक तथा शोषक नलिकाओं के जरिये बाद में खून में जा मिलता है। शराब पीने के बाद कोई तीस से लेकर ९० मिनिट के अन्दर ही शराब खून में जा पहुँचती है।

खून में मिलते ही अलकोहल एकदम अपना जहरीला प्रभाव

शुरू कर देता है। खून में से वह ऑक्सिजन (प्राणवायु) तथा पानी को सोख कर प्रोटीन्स तथा अल्ब्यूयेन को गाढ़ा बना देता है। इससे खून के मुख्य काम में—अर्थात् पोषक द्रव्यों को शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में पहुँचाने में बड़ी रुकावट हो जाती है। शरीर की पोषण-क्रिया रुक जाती है। शरीर मोटा-ताजा तो दिखाई देता है, (क्योंकि नसें तथा रक्त-वाहिनियाँ सूज जाती हैं और निर्जीव कूड़ा-कचरा शरीर के प्रत्येक भाग में इकट्ठा हो जाता है,) पर वास्तव में मनुष्य बहुत कमजोर हो जाता है। दूसरे, अलकोहल उन शरीर-रक्षक फौजी जीवाणुओं पर भी धावा कर देता है, जो हमारे शरीर पर आक्रमण करने वाले रोग-जन्तुओं से लड़ने के लिए हमेशा तैयार रहते हैं। नतीजा यह होता है कि शरीर रोग-जन्तुओं का प्रतिकार करने में असमर्थ हो जाता है, और बात-बात में वह रोगों का शिकार होने लगता है।

'अलकोहल' से बेहोशी जल्दी इसलिए नहीं आती कि उसका सम्बन्ध द्रव पदार्थों से होने के कारण क्लोरोफार्म या ईथर के समान वह चेतना-केन्द्रों तक तेजी से नहीं जा सकता। परन्तु एक बात है ? जब आदमी शराब से बेहोश हो जाता है तो वह जल्दी होश में भी नहीं आता। बल्कि पाया तो यह गया है यदि बेहोशी दस-बारह घंटे तक नहीं हटी तो उस आदमी की मृत्यु निश्चित ही समझनी चाहिए।

पहले किसी समय लोगों का ख्याल था कि शराब से हृदय की गति और शक्ति बढ़ जाती है। यदि ऐसा होता तो क्या ही अच्छा होता। पर इधर विज्ञान के प्रकाश में जो आविष्कार और संशोधन हुए हैं वे इस बात को बिलकुल निराधार साबित कर

रहे हैं। उन तमाम संशोधनों और आविष्कारों का ब्यौरा देने की हम यहां कोई आवश्यकता नहीं देखते। यहाँ तो केवल इतना ही कह देना काफ़ी होगा कि मनुष्य के खून में १/८ प्रतिशत अलकोहल पहुँचने पर भी यह देखने में आया है कि एक मिनिट के अन्दर उसने हृदय की कार्य-शक्ति को घटा दिया। खून में प्रतिशत १/२ अलकोहल के पहुँचने पर वही हृदय की कार्यशक्ति को इतना घटा देती है कि उसमें इतनी शक्ति भी नहीं रहती कि वह अपनी रक्त-वाहिनियों को काफ़ी पोषक खून दे सके। इसके कारण हृदय में सूजन आ जाती है, जिससे वह और भी कम खून शुद्ध कर सकता है। फलतः शुद्ध खून के अभाव में शरीर के भिन्न-भिन्न अंग कमजोर होने लगते हैं।

कभी-कभी कहा जाता है कि नियमित रूप से शराब पीने वाले तो मजबूत और हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हैं! हां, सत्य ही वे बलवान् और हृष्ट-पुष्ट जरूर दिखाई देते हैं। पर केवल देखने भर को ही, उनमें वास्तविक शक्ति नहीं होती। एक निर्व्यसनी आदमी के साथ एक शराबी की तुलना करने पर यह भ्रम दूर हो सकता है। यदि दोनों को कोई कसरत या शक्ति का काम दिया जाय तो शराबी बहुत जल्दी थक जायगा।

मांसलता बढ़ने का कारण यह है। शरीर में जितने भी पोषक द्रव्य आते हैं, उनका उपयोग करने की शक्ति उसके जीवाणुओं में नहीं होती। इसलिए उन द्रव्यों की चरबी बन जाती है और शरीर में स्थान-स्थान पर जीवाणुओं के बीच में वह इकट्ठी होती रहती है। इससे हमें दिखाई तो देता है कि आदमी की शक्ति बढ़ती जा रही है। परन्तु यथार्थतः वह बढ़ने के बजाय घटती ही रहती

है। इधर तब तक जिगर की भी यही दशा होती है। शरीर में सारा खेल उन जीवाणुओं की आरोग्यता और जीवन-रस की शुद्धि पर अवलम्बित होता है। इनके बिगड़ते ही सारे शरीर में तहलका सा मच जाता है। फिर जिगर इन दुष्परिणामों से कैसे बच सकता है।" मृत्यु का रास्ता साफ हो जाता है और प्राणी अपनी शक्ति के अनुसार मृत्यु-पुरी का प्रवास धीमी या तेज गति से शुरू कर देता है।

शराब और ज्ञानेन्द्रियां

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्टतया ध्यान में आ गया होगा कि शराब केवल मानव-जीवन के लिए ही नहीं बल्कि जीव-मात्र के लिए कितनी घातक वस्तु है। कई बार तो आदमी नशे में इतनी शराब पी लेता है कि उसीसे उसकी मृत्यु हो जाती है। जब ऐसे मनुष्य की मृत्यु के बाद उसके शरीर को जांच की जाती है, तब अक्सर पाया जाता है कि उसके मस्तिष्क में शेष शरीर की अपेक्षा परिमाण में कहीं अधिक अलकोहल है। बल्कि विशेषज्ञों का तो यह कथन है कि कई बार तो यहां तक देखा गया है कि शरीर और मस्तिष्क में अलकोहल की मात्रा बराबर आधी-आधी रहती है। इसका कारण क्या है? यही कि उत्क्रान्ति की सर्वोच्च सीमा को पहुँचे हुए कोमल स्नायु-केन्द्रों के प्रति अलकोहल का आकर्षण सब से ज्यादह होता है और मानव शरीर में मस्तिष्क एक ऐसा ही सर्वश्रेष्ठ अंग है। यही उसकी बुद्धि आदि उच्च मानवोचित गुणों का निवास-स्थल है। स्नायु प्रणाली (Nervous System) का विकास अथवा उत्क्रान्ति प्राणियों के विकास-क्रम को जाहिर करती है। जिस प्राणी के स्नायु जितने ही अधिक उत्क्रान्त

अथवा विकसित होंगे, उत्क्रान्ति-श्रेणी में उसका स्थान उतना ही ऊँचा होगा और उसी परिमाण में उसमें बुद्धि, विवेक, नीति इत्यादि आत्मा सम्बन्धी गुणों का विकास भी पाया जायगा।

अलकोहल का उत्क्रान्त स्नायु-प्रणाली के प्रति विशेष आकर्षण होने के कारण उन प्राणियों पर उसका विनाशक प्रभाव क्रमशः बढ़ता जाता है, जो क्रमशः अधिकाधिक उच्च-श्रेणी के होते हैं। इसीलिए उसका विषैला प्रभाव प्राणियों में मनुष्य पर, मनुष्य शरीर में भी उसके उत्तमांग अर्थात् मस्तिष्क पर, और मानव-जाति में उस मनुष्य के मस्तिष्क पर सब से अधिक घातक होता है, जो अत्यन्त प्रतिभा-संपन्न होता है। अस्तु!

मनुष्य का मस्तिष्क दो विभागों में विभक्त है एक निम्नस्थ और दूसरा उच्च। मामूली शरीर-संचालन-सम्बन्धी क्रियाओं की व्यवस्था नीचे के विभाग में होती है। और विचार, चिन्तन आदि उक्त मानसिक क्रियाओं का निवास अथवा कर्मक्षेत्र उच्च विभाग है। मामूली बोलचाल की भाषा में कहना चाहें तो ये उच्च और निम्नस्थ मस्तिष्क-केन्द्र क्रमशः हमारी ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के हैड ऑफिस हैं। बाहर की खबरों की यहाँ सुनवाई होती है और जैसा आवश्यक होता है यहाँ से उनके उत्तर में शरीर को निश्चित काम करने के लिए हुक्म छूटते रहते हैं। शरीर के प्रत्येक अंग के लिए यहाँ भिन्न-भिन्न ऑफिस भी हैं। यह भी पाया गया है कि मस्तिष्क में जिस अवयव (विभाग) का दफ्तर अव्यवस्थित होता है उसके कर्मचारी भी अपना काम ठीक तौर से नहीं कर सकते।

अलकोहल ऐसा शक्तिशाली और भयानक विष है कि वह

सब से पहले हमारी शारीरिक शासन-व्यवस्था के सर्वोच्च-केन्द्र को ही जा कर धर दबाता है। ज्ञान, नीति, विवेक आदि विभागों के केन्द्रों को वह मूर्च्छित कर देता है। अपनी मूर्च्छितावस्था में मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों को न अपनी अवस्था का ख्याल होता है न शरीर की 'हानि' का। और ये उच्च केन्द्र तो विचार, भावना, निर्णय-शक्ति, आत्मसंयम, इच्छाशक्ति, भक्ति, सदसद्विवेक, न्यायान्याय की भावना, कर्तव्य, प्रेम, करुणा, स्वार्थत्याग, इत्यादि मनुष्य के उच्चतम गुणों के उद्भव और विकास के स्थान हैं। अतः इनके मूर्च्छित होते ही सारे शरीर की अवस्था दयनीय हो जाती है। तरंगों पर बहने वाली नैया के समान फिर मनुष्य का ठिकाना नहीं कि वह किस चट्टान से जा कर टकरायगा। इस तरह शराबखोरी के कारण न केवल मनुष्य का जीवन संकटापन्न हो जाता है, बल्कि उसके सम्बन्धी एवं आश्रित जन भी भारी मुसीबत में फँस जाते हैं। और सब से भारी दुर्दैव तो यह है कि प्रतिभा सम्पन्न पुरुषों पर इस विष का परिणाम महा भयंकर होता है। वह बलिष्टों को कमजोर, बुद्धिमानों को मूर्ख, देशभक्तों को नीच, और स्वार्थत्यागी पुरुषों से उनकी बुद्धि और विवेक छीन कर उन्हें महापतित बना देता है। प्रेम और भक्ति मिट्टी में मिल जाते हैं। क्या कोई हिसाब लगा कर बता सकता है कि इस भयंकर राक्षस ने इस तरह उत्तमोत्तम पुरुषों की बुद्धि को भ्रष्ट कर के इस भूतल पर मानवजाति की कितनी हानि की होगी?

ऊपर कहा जा चुका है कि जीवाणुओं के कमजोर होने के कारण वे अन्न से अपने लिए पोषक द्रव्य आकर्षण करने योग्य

भी नहीं रह जाते। तब उसकी चरबी बन कर वह जीवाणुओं के बीच में एकत्र होती रहती है। इस चरबी के कारण मनुष्य की भावना और बुद्धि में एक प्रकार की कुंठितता सी उत्पन्न हो जाती है। एक तो शराब से मस्तिष्क के केन्द्र मूर्च्छित वा सुप्त हो जाते हैं दूसरे, स्नायु भी इस चरबी के कारण और पोषक द्रव्यों के अभाव तथा शराब के विष के कारण कुछ बेकाम से हो जाते हैं। चरबी जीवाणुओं के बीच में उसी तरह बैठ कर उनकी शक्ति को रोक देती है, जैसे धातु के टुकड़ों के बीच लकड़ी या मिट्टी का सा अविद्युत्-वाही पदार्थ (Non conductor) बिजली को वहीं रोक देता है। बाहरी इन्द्रियगत विषयों की खबरें इस चरबी के कारण, जो जीवित संदेश-वाहक अणुओं के बीच पड़ी रहती है, मस्तिष्क के ज्ञान-केन्द्रों तक शीघ्र नहीं पहुँच पातीं; और न वहाँ से छूटे हुए हुक्मों पर तत्परता के साथ अमल ही हो पाता है। एक शराबी आदमी के ज्ञान और काम में जो बेहूदापन होता है, उसका कारण यही है। न यह अपने और न अपने मालिक के कामों को ठीक समय पर ठीक तरह कर सकता है। बल्कि अपनी शारीरिक ढिलाई के कारण वह अनेकों बार दुर्घटनाओं का भी शिकार हो जाता है।

स्मरण-शक्ति

उत्तम स्मरण-शक्ति के लिए मस्तिष्क के तमाम स्नायु-केन्द्रों का पारस्परिक सहयोग आवश्यक है। पर शराब से खून के बिगड़ते ही मस्तिष्क की अवधान और एकाग्रता की शक्ति बिगड़ जाती है। फलतः ज्ञान ग्रहण करने की शक्ति कमजोर हो जाती

है। अतः ज्ञान-संग्रह और संग्रहीत ज्ञान को स्मरण रखना तथा पुनः निर्माण करना (Reproduction) आदि क्रियाएँ लूली हो जाती हैं। इसीलिए किसी शराबी आदमी द्वारा किये गये काम या उसकी कही किसी बात का कोई महत्त्व नहीं होता। अत्यधिक और बार-बार शराब पीने के कारण मस्तिष्क के ज्ञानकेन्द्र सड़ जाते हैं। और मस्तिष्क के जीवाणु संघों (Brain cells) के मरते ही उनमें संग्रहीत ज्ञान भी नष्ट हो जाता है। इस तरह शराबी को कभी किसी बात का पूरा ज्ञान नहीं होता। वह स्वप्न की घटनाओं को सत्य और सच्ची घटनाओं को स्वप्नवत् समझ कर ऐसी ऊटपटांग बातें बकने लगता है कि तमाम सुनने वालों को उनपर आश्चर्य और उसकी बुरी दशा पर तरस आता है।

जब एक शराबी की स्मरण-शक्ति बिगड़ती है, तब वह ताजी बातों को सब से पहले भूलता है और पुरानी बातों को क्रमशः बाद में। उसकी विस्मृति में भी एक निश्चित क्रम होता है। पहले वह घटनाओं को, बाद में विचारों को, फिर मनोवेगों को और अन्त में अपने कामों को भी भूल जाता है। अपनी अंतिम अवस्था में वह भाषा को भी भूल जाता है। बुद्धि, विवेक और नीति का नियन्त्रण उठते ही वह मनोवेगों के साम्राज्य में विहार करने लगता है। शनैः शनैः मनोवेगों में भी अधम विकार उस पर अधिकाधिक सिक्का जमाते जाते हैं। इस प्रकार वह क्रमशः प्रौढ़ावस्था, युवावस्था, किशोरावस्था, तथा बाल्यावस्था के विकारों से गुजरता हुआ पाशविक विकारों का गुलाम बनता जाता है। और अन्त में उसकी केवल दो ही पाशविक इच्छाएँ-क्षुधाएँ बच रहती हैं। खाना, खाना और दूसरी शराब।

जाओ, तुम शराबी हो, हम तुम्हें नौकर नहीं रख सकते। (शराब से कार्य-शक्ति घट जाती है।)

शराब और कल्पना

स्मरण-शक्ति तमाम उच्च मानसिक क्रियाओं का आधार है। उसके बिगड़ते ही कल्पना, मनन, विवेचन, ध्यान, निर्णय, आदि सूक्ष्म मानसिक शक्तियां भी नष्ट होने लगती । पर यह बात शराबियों के ख्याल में नहीं आती। मस्तिष्क के मूर्च्छित होते ही कल्पना शक्ति पर से उसका नियन्त्रण उठ जाता है, और वह अनेकों प्रकार की वेहूदी तथा अश्लील कल्पनायें करने लग जाता है। शीघ्र ही शराब उतरती है। विष से होनेवाले दुष्परिणाम के कारण उसे बेचैनी होती है। इस बेचैनी को दबाने के लिए वह फिर शराब पीता है। पर इस बार उतनी ही शराब से उसे वह विस्मृति का आनन्द नहीं मिलता। उसे अपनी मात्रा को बढ़ाना पड़ता है।

शराब और विचार शक्ति

शराब के सेवन से शरीर में जो खलबली और कष्ट-प्रद खलबली मच जाती है, उससे विचार-शक्ति को भी बड़ा आघात पहुँचता है। स्नायुओं की शक्ति घटते ही एकाग्रता, चिंतन, और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है। विचार-शक्ति का आधार है स्मरण-शक्ति और स्मरण-शक्ति निर्भर रहती है नीरोग मस्तिष्क तथा शरीर पर। अतः जब अलकोहल मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्रों को मूर्च्छित और शारीरिक अवयवों को निष्क्रिय बना देता है तब मनुष्य की विचार-शक्ति अवश्य ही नष्टप्राय हो जाती है। तब वह ऐसे काम करने के अयोग्य हो जाता है जिनमें हर समय, हर वक्त, सोच-सोच कर आगे बढ़ना पड़ता है। हां, वह

कुछ दिन तक ऐसे काम जरूर कर सकता है, जिनमें सोचने की जरूरत नहीं पड़ती, बल्कि यंत्र की तरह वही बात रोज या हर समय करना होती है। पर नवीन जिम्मेदारी सिर पर आते ही वह दीन हो जाता है, दिमाग़ काम नहीं देता। सर्वशक्ति की वह कला, जो परिस्थिति पर शासन करने के लिए पैदा होती है, इस शराब के कारण मिट्टी के ढेले की तरह जड़वत् हो जाती है।

एक बार मनुष्य की अयोग्यता इस प्रकार जाहिर होते ही उस पर न कोई विश्वास ही करता है और न उससे कोई कुछ काम ही लेता है। यदि कोई भूल कर या दया-पूर्वक कुछ काम उसे देता भी है तो वही खुद अपनी अयोग्यता के कारण, फिर विश्वास को गंवा देता है। शराब अनियमितता, मूर्खता, अयोग्यता, आकस्मिक दुर्घटनाओं का एक महान कारण है।

शराबखोर को धर्म और नीति का सूक्ष्म ज्ञान कहां? वह अपनी मूर्खता के कारण शनैः शनैः भले आदमियों की संगति के अयोग्य हो जाता है। परन्तु फिर भी इस अभागे को अपने पतन का पता नहीं होता! वह अपने आपको पहले जैसा ही नीतिमान और बुद्धिमान समझता रहता है। बल्कि नशे से बुद्धि भ्रष्ट हो जाने के कारण वह तो अपने आपको सर्वज्ञ तथा राजा के समान शक्ति-शाली समझने लग जाता है। वह चाहता है कि उसकी बात को सब लोग मानें और उसकी आज्ञाओं का सभी पालन करें। वह हर एक बात में टांग अड़ाता है और उसकी बातों की अवगणना करने वालों से झगड़ता है। उसे न तो समाज का भय होता है न परमात्मा का। ऐसे अभागे के आश्रय में रहने वाले स्त्री-पुत्रादिकों की करुण-कहानी क्या कही जाय! वह तो अपने

और अपनों के जीवन को भी संसार में असह्य बना देता है। उसकी विवेक और इच्छा-शक्ति नष्ट हो जाती है। वह अपने मनोवेगों का गुलाम बन जाता है और उसके अंतिम दिन एक पागल कुत्ते के समान बीतते हैं।

वह अविचार प्यास

आरम्भ में संयम के नष्ट होते ही वह एक प्रकार की स्वाधीनता का अनुभव करने लगता है। मानव-जीवन के प्रारम्भिक विकार और क्रियायें निरंकुश हो जाती हैं। शराब पीते ही मनुष्य उस प्रसन्नता का अनुभव करता है जो बच्चों में होती है। वह उछलता है, हंसता है और निःसंकोच हो नाचता है। और इन सब चेष्टाओं को वह अच्छी समझता है। युवकोचित उत्साह और अहंकार को वह अनुभव करता है। वह बढ़-बढ़ कर बातें करता है और दूसरों पर रौब गाठने का यत्न करता है। शनैः शनैः यह अहंकार विस्मृति में विलीन हो जाता है। सारी चिन्ताओं, दुःखों, जिम्मेदारियों आदि को वह भूल जाता है। और वह आराम तलब हो जाता है। युवक उस स्वच्छन्द, निरंकुश, पतित, आनन्द के लोभ से शराब पीते हैं और बूढ़े चिंता भुला देने वाली विस्मृति की आशा से। पर अपने शरीर पर शनैः शनैः अधिकार करने वाली कमजोरी और मुर्दनी का ख्याल दोनों को नहीं होता। प्रकृति की चेतावनी की ओर वे ध्यान नहीं देते; विनाश की ओर बढ़ते ही चले जाते हैं।

शराबी अक्सर व्यभिचारी भी होता है। जब वह यह पाप करके निकलता है तो वीर्य-नाश के कारण वह इस विष की

तीव्रता को और भी अधिक अनुभव करने लगता है। कमजोरी, उदासी और जलन से वह जलने लगता है! फिर वह आग को आग से बुझाने की चेष्टा करता है। अब की बार आनन्द प्राप्त करने के लिए—जैसा कि हर एक विष का स्वभाव है—उसे अधिक मात्रा में शराब पीना पड़ती है। इस बार जब नशा उतरता है तो कमजोरी और भी भयंकर जान पड़ती है। फिर शराब-फिर कमजोरी-फिर शराब-फिर कमजोरी—फिर शराब-फिर दुख-यातनायें,-कष्ट! फिर शराब-विस्मृति,-मूर्च्छा,-अनन्त वेदनायें-अंधकार!! फिर शराब और ----!!!

शराब खोरी या विनाश !

अभी तक यह बताया गया है कि शराब से प्रत्यक्ष शरीर को क्या हानि पहुँचती है। अब शराब से होने वाले भिन्न-भिन्न, प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दुष्परिणामों का हम संक्षेप में अवलोकन करेंगे, तथा यह देखेंगे कि उसका परिवार, समाज तथा राष्ट्र पर क्या प्रभाव पड़ता है।

यों तो अभी तक उसकी बुराई का जो वर्णन दिया गया है उसके देख लेने पर मानव-शरीर, परिवार, अथवा समाज पर होने वाले दुष्परिणामों को अलग-अलग दिखाने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं रह जाती। परन्तु संशोधकों की खोज-भाल का कुछ नतीजा भी यहां पर संक्षेप में दे दिया जाय तो पाठकों के चित्त पर वह और अच्छी तरह अंकित हो सकेगी। अतः अब हम इस विषय में किये गये कुछ संशोधनों का वर्णन संक्षेप में नीचे देते हैं।

सबसे पहले हम यह देखें कि यह बुरी आदत मनुष्य को कब और क्यों लगती है।

डॉ० ऍबट ने अमेरिका के वेलेव्यू अस्पताल में २७५ शराबियों की जांच की, उसका परिणाम नीचे लिखे अनुसार है:—

जिस उम्र में आदत लगी	प्रतिशत संख्या
१२ वर्ष के पहले	६.५
१६ " "	३२
२१ " "	६८

आदत लगने के कारण:—	*प्रतिशत*
बेकारी	५
पारिवारिक या धंधे सम्बन्धी आपत्ति	१३
पेशे में (जैसे शराब की दूकान, होटल जहाँ शराब बिकती है)	७
सहभोजों में	५२.५

यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वाद के कारण बहुत थोड़े लोग शराब पीते हैं। शराब तो केवल नशे के लिए ही पी जाती है। और इसका मुख्य कारण सहभोज है। अमेरिका की भांति भारत में भी शराबखोरी बढ़ने का मुख्य कारण जाति-भोज या सह-भोज ही है। और यहीं प्रचार करने से सुधारक अधिक सफल हो सकेंगे। भारत में ऐसी कितनी ही जातियाँ हैं, जिनमें मंगलकार्यों के समय अथवा मृत्यु-भोजों में शरीक होने वाले जाति-बिरादरी के लोगों को शराब पिलाना अनिवार्य है। ऐसे ही अवसरों पर कितने ही निर्दोष बालक, युवक या स्त्रियाँ भी इस आदत की शिकार बन जाती हैं।

नव-शिक्षितों में इङ्गलैंड में शिक्षा पाये हुए तथा अंगरेजी तर्ज के सह-भोजों में शामिल होने वाले भारतीयों को अक्सर यह आदत लग जाती है। कितने ही बुद्धि-जीवी प्राणी जैसे प्रोफेसर, वकील, बैरिस्टर्स, जज, संपादक वगैरा मानसिक परिश्रम के बोझ को हलका करने या भुलाने की अभिलाषा से इस राक्षस के पंजे में आ फँसते हैं।

संपत्ति अनेकों अनर्थों का मूल है। शराबखोरी बढ़ाने में भी वह अपना हाथ बँटाती ही रहती है।

. . शराब से स्नायुओं की और फलतः शरीर की कार्यशक्ति बहुत घट जाती है। अतः लोग निर्व्यसनी लोगों को कार्यकर्ताओं या मजूरों को ज्यादह पसन्द करते हैं।

एक ही मनुष्य पर शराब पीने के तथा न पीने के दिनों में प्रयोग किये गये। फल यह पाया गया:—

शराब पीने से (१) उसे १५ प्रतिशत अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ी, (२) १६.४ प्रतिशत कम काम हुआ (३) २१.७ प्रतिशत अधिक समय उतने ही काम में लगा (४) और कम काम करने पर भी उसे यह ख्याल बना रहा कि वह बड़ी तेजी से और खूब काम कर रहा है।

दूसरे प्रकार के प्रयोगों में देखा गया कि एक ही शख्स

शराब पीने के दिनों में— ३० में से औसतन ३ निशाने बंदूक से लगा सका	न पीने के दिनों में औसतन ३० में से २४ निशाने लगा सका

और फायर करने का हुक्म मिलने पर थकने के पहले तक:—

शराब पीने के बाद	न पीने पर
२७८ बार फायर कर सका	३६० बार फायर कर सका

नियम से थोड़ी शराब प्रतिदिन पीने पर भी मनुष्य की कार्य-शक्ति बराबर घटती रहती है।

कार्यशक्ति के घटने से मनुष्य की धनोपार्जन शक्ति पर भी अवश्य ही इसका असर पड़ता है। और गृह-सौख्य नष्ट होता है। वह कौशल वाले कार्यों को छोड़कर ऐसे मजदूरी के काम करने लग जाता है जिनमें दिमाग़ से काम नहीं लेना पड़ता। बोल्टने में ऊपर

हट्ट-कट्टे बेकार आदमियों की जांच की गई जो अपने परिवा का पोषण नहीं कर सकते थे। उनमें से २४३ अर्थात् प्रतिश ६६ शराबी पाये गये। शराब आदमी की उपार्जन शक्ति क घटा देती है।

इसका नतीजा यह होता है। घर में बीवी-बच्चे भूखों मरने लगते हैं। स्त्री को बच्चों की माता तथा धनोपार्जन का काम भ करना पड़ता है। यह भारतीय स्त्रियों की विशेषता है। परन्तु पश्चिम में तो स्त्रियां ऐसे पुरुष के पास रहना कभी पसन्द नहीं करती जो अपने आप को किसी प्रकार अपनी स्त्री औ बच्चों का पालन-पोषण करने में अयोग्य साबित कर देते हैं। अमेरिका में सन् १८८७ से लेकर १९०६ तक केवल शराब के कारण १८४५६८ गृहस्थियाँ टूटीं अथवा प्रतिवर्ष ९२२८ गृह स्थियाँ टूटती थीं।

सचमुच शराब गृह-सौख्य की दुश्मन है। शिकागो में गृह- सौख्य के नाश के कारणों की जाँच करने पर १९१२ में पाया गया कि:—

शराब के कारण प्रतिशत	४६	गृहों का	गृह-सौख्य	नष्ट हुआ
अनीति (इसकी जड़ में भी शराब होती है)	१४	,,	,,	,,
रोग	१२	,,	,,	,,
माता-पिता की बुरी आदतें	१७	,,	,,	,,
खराब स्वभाव	११	,,	,,	,,
अन्य कारण	१०	,,	,,	,,

वह अपनी मजदूरी को बरबाद करके आता है नशे में धुत्त होकर और देता है अपने बीवी बच्चों को लात-घूँसे और गालियों का पुरस्कार (पृ० १८ शराब) शैतान की लकड़ी—२

गृह-सौख्य के नाश के कारणों में मदिरा मुख्य है और व्य-भिचार का नंबर दूसरा है। पर व्यभिचार के लिए शराब बहुत हद तक जिम्मेदार है। हम आगे चल कर देखेंगे कि अनीति शराब से कैसे पैदा होती है। गृह-सौख्य के नाश की परंपरा यों है।

शराब
|
कार्यशक्ति का घटना
|
रोजी से अलग कर दिया जाना
|
बच्चों और स्त्री का पालन-पोषण न कर सकना
|
गृह सौख्य का नाश
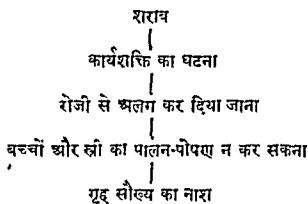
परन्तु इतना होने पर भी धन्य है हमारे पूर्वजों की उच्च संस्कृति को और उज्वल रमणी-रत्नों के उदाहरणों को कि भारतीय स्त्रियां सहसा कुमार्ग पर पैर नहीं रखतीं। मैंने देखा है कि कई बार पति के शराबी होने पर भी उसकी पत्नी तन तोड़ मिहनत करके अपने बच्चों का, अपना तथा पति का भी पोषण करती है। किन्तु शराब बीच में कभी नहीं रुकती। मानव-जाति के सर्वनाश के लिए ही उसकी उत्पत्ति हुई है और इसपर वह तुली हुई है। मनुष्य को इससे अपनी तथा अपनी सन्तति की रक्षा के लिए हमेशा आंखों में तेल डाल कर जागृत रहना चाहिए।

शराब के चक्कर में आ कर आदमी अपना आर्थिक नाश कर के ही नहीं रुकता। शराब और व्यभिचार में गाढ़ी मित्रता है। जहां—

जहाँ शराब है, वहाँ-वहाँ व्यभिचार भी जरूर होता है। शराब पीते ही नीति-अनीति की भावना तथा आत्मसंयम धूल में मिल जाता है और स्त्री-पुरुष ऐसी-ऐसी चेष्टाएं करने लग जाते हैं जो अच्छी हालत में उनसे स्वप्न में भी नहीं होतीं। ब्रिटिश रिफॉर्मेटरीज के निरीक्षक श्रीयुत आर डब्ल्यू ग्रन्थवेट अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं कि ८६५ पतित स्त्रियों में से प्रतिशत ४० स्त्रियों की अनीति का एक मात्र कारण शराब और शराब ही थी! क्योंकि यों तो मामूली हालत में वे बड़ी सभ्य और नीतिशील पाई गई हैं और उन्हें सदा इस बात का भय बना रहता है कि 'कहीं शराब पी कर फिर हमसे कोई पाप न हो जाय!' शराब के अभाव में अधिक स्त्रियों का नीति-भ्रष्ट होना असम्भव है।

न्यूयार्क के भूतपूर्व पुलिस कमिश्नर श्रीयुत बेंगहॅम कहते हैं—"इस सामाजिक बुराई को (व्यभिचार या वेश्यावृत्ति को) उसकी वर्तमान 'उन्नत' दशा में बनाये रखने के लिए स्त्रियों की अनीति-वृत्ति और पुरुषों की पशुता को संवर्धित और उत्तेजित करते रहना पड़ता है।"

कितने ही स्त्री-पुरुष पहले ही पहल, अनीति के मार्ग पर, शराब के कारण ही पैर रखते हैं। कई लड़कियाँ शराब के नशे में वेश्यालयों में लाई जाती हैं और वहाँ से छुटकारा पाने की इच्छा होने पर भी अपने पतन के कारण लज्जित हो कर वे बाहर नहीं निकल सकतीं। पर शराब एक दूसरी तरह भी स्त्रियों को व्यभिचार में प्रवृत्त करती है। इसकी परम्परा यों है।

शराब

कार्य शक्ति का नाश

रोजी छूट जाना | दूसरी नौकरी न मिलना | मित्रों का पालन करने से इन्कार करना

फाकेकशी का डर

मजबूर हो अनीति अथान् व्यभिचार को जीविका का साधन बना देना

अथवा पतन यों भी हो सकता है—

शराब
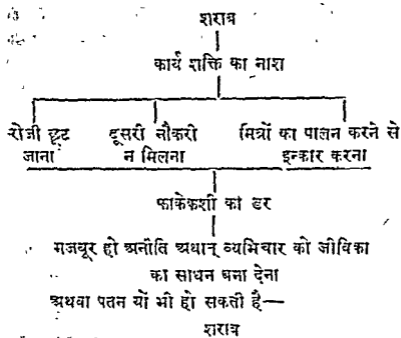
१ प्रतिष्ठा तथा कीर्ति का नाश २ स्वाभिमान का लोप ३ बुरी सोहबत

इनसे उत्पन्न होने वाली निर्लज्जता और 'अब क्या डर है' वाली मनोवृत्ति स्त्रियों को व्यभिचार की ओर ले जाती है जहाँ उन्हें शराब, जीविका और आनंद (?) भी मिलता है।

यह कोष्ठक अथवा पतन की परम्परा पश्चिमी देशों की दशा को दिखाती है। हमारा ख्याल है कि हमारे देश में स्त्रियों के पतन में शराब का इतना हाथ प्रत्यक्ष रूप से नहीं है। यहाँ उसके लिए अन्य कारण अधिक महत्वपूर्ण हैं जिनका विचार हम

क्रीज़ तथा स्नायु-प्रणाली भी रुग्ण पाई गई। प्रत्येक मरीज में इन रोगों की मात्रा न्यूनाधिक परिमाण में पाई गई।

शराब खोर की बीमारी अधिक लम्बी होती है। लिपझिग (जर्मनी) की सिक बेनिफिट संस्था की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब २५-३४ वर्ष का मामूली आदमी ७.५३ दिन तक बीमार रहता है, तब उसी उम्र का शराबी आदमी १९.२९ दिन तक बीमार रहता है। और ३४-४५ वर्ष की उम्र का मामूली आदमी जब १० दिन तक बीमार रहता है तो शराबी २७ दिन तक बीमार रहता है।

'शराबी बीमार भी ज्यादह होते हैं। उसी संस्था की १९१० में छपी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २५-३४ वर्ष की उम्रवाले१००० बीमा किये गये लोगों में से, ३६८ मामूली मनुष्य बीमार होते थे। तहां शराबियों में ९७३ व्यक्ति बीमार होते थे।

शराबियों की शराब न पीनेवालों के साथ तुलना करने पर पाया गया कि वे ज्यादह संख्या में बीमार पड़ते हैं अर्थात रोग का प्रतिकार करने की शक्ति घटजाने के कारण रोगजन्तु फौरन उनके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। नीचे लिखे अंकों से ज्ञात होगा कि वे कितने कमज़ोर हो जाते।

लिपझिग की सिक बेनेफिट सोसायटी की रिपोर्ट से ये अंक लिये गये हैं।

जहां शराब न पीनेवाले १०० मामूली आदमी किसी रोग से पीड़ित होते हैं तहां उसी उम्र के शराब पीने वाले आदमियों की संख्या नीचे लिखे अनुसार है।

रोग का नाम	उम्र २५-३४	उम्र ३५-४४
सभी रोग	२६४	२८३
संसर्ग जन्य रोग	१४९	१४०
स्नायु प्रणाली के रोग	३७५	४२६
श्वास रोग (Not Tuberculous disease)	२१९	२६७
क्षय रोग (Tuberculosus)	६०	८०
खून के रोग	२३३	२३०
बदहजमी से होनेवाले रोग	३००	३२१
जखम वगैरा	३२४	३२३

शराबियों के लिए क्षय और न्यूमोनिया अधिक भयावह है। डॉ० ऑसलर का कथन है कि जांच करने पर पाया गया कि न्यूमोनिया से पीड़ित होने पर।

नियमित शराबी	२५ प्रतिशत	मरते हैं
अंधाधुन्ध शराब पीने वाले	५२ ,,	,,
निर्व्यसनी पुरुष	१८ ,,	,,

फिलेडेल्फिया की हेन्सी फिप्स इन्स्टिट्यूट में कई वर्षों के एकत्र किये गये अंकों से पता चलता है कि शराब क्षय का रास्ता साफ कर देती है। १९०७ और १९०८ की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि २७७ शराबी और ९३४ न पीने वाले क्षय रोगियों का ब्यौरा नीचे लिखे अनुसार है।

	शराब पीने वाले	शराब न पीने वाले
अच्छे हो गये प्रतिशत	२९-५	४९-२
मर गये ,,	२१-८	९-९
असाध्य ,,	४८-५	४०-७

पागलपन

प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क पर शराब का एकसा परिणाम नहीं होता। तथापि संसार के सभी देशों के विशेषज्ञ इस बात में एकमत हैं कि शराब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मनुष्य के मस्तिष्क में ऐसे परिवर्तन कर देती है, जिनका अन्त पागलपन में होता है। नीचे भिन्न-भिन्न देशों के विशेषज्ञों की राय दी है।

अमेरिका—पागलखानों में लिये गये २० से ले कर ३० प्रतिशत पागलों के पागलपन का कारण शराब पाई गई है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में यह प्रमाण ज्यादह है। शायद इसीलिए कि प्रायः पुरुष ही ज्यादह शराब पीते हैं।

न्यूयार्क के सरकारी शफाखाने में फी सदी ६० पागलों की (पुरुषों में) बीमारी का कारण शराब पाई गई और स्त्रियों में फी सदी २० पागलों का कारण शराब थी।

नॉरिसटाऊन—(अमेरिका) के सरकारी अस्पताल की रिपोर्ट से पता चलता है कि ५२० नये पागलों में से प्रतिशत ४४ पागलों के पागलपन का एक कारण शराब भी था।

इस तरह सभी देशों के अंक ले कर यदि हिसाब लगाया जाय तो बड़ी उदारता के साथ अनुमान करने पर भी हम इस नतीजे

यहाँ तो बात-बात पर लड़ाई होने लगती है।

पर पहुँचते हैं कि प्रतिशत २५ पागलों के पागलपन का कारण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शराब है।

मामूली आदमी किन्हीं झगड़ों उपद्रवों में सहसा नहीं पड़ता। और यदि कहीं ऐसा मौक़ा आही जाता है तो मारपीट करने के पहले परिणाम को सोचता है। परन्तु शराबी कि बुद्धि तो पहले ही मारी जा चुकी है। अतः वह तो पहले मारपीट कर बैठता है। तब कहीं शराब का नशा उतरने पर उसे अपनी बेवकूफी पर पश्चात्ताप होता है।

शराब से आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है, उसकी निर्णय-शक्ति कमजोर हो जाती है और आत्म-संयम भी घट जाता है, जिससे वह अपने गुस्से को रोक नहीं सकता। नीचे लिखे अंकों से पाठकों को ज्ञात होगा कि शराब का इन मारपीटों में कहां तक हाथ है।

हाईडेलबर्ग (जर्मनी) की कमिटी ऑफ किपटी ने वहां रजिस्टर की गई १९१९ वारदातों की जांच की और वह नीचे लिखे नतीजे पर पहुँची।

स्थान	प्रतिशत
शराब की दूकानों पर	६६.५
सड़कों पर	८.८
कारखानों में	७.८
घर पर	७.७
अज्ञात स्थानों में	९.२

शराब की दूकानों को छोड़ कर बाहर जो मार-पीट या ऐसी ही वारदातें हुईं उनमें अधिकांश का कारण शराब ही थी।

संसार के अपराधियों की जांच करने पर पाया गया है कि ५० से ले कर ९० तक बल्कि इससे भी अधिक अपराधियों के कुमार्गगामी होने का कारण प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही थी। या उनकी बाल्यावस्था शराबियों के वायुमण्डल में गुजरी थी। पिछले वर्ष हमने इण्डियन नॅशनल हेरल्ड में पढ़ा था कि मद्रास इलाके की संयम परिषद में भाषण देते हुए वहां के एक भूतपूर्व चीफ जस्टिस ने कहा था कि १७ साल के अनुभव से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि अदालतों में दर्ज होनेवाले अपराधों में से प्रतिशत ९५ की जड़ में शराब ही थी।

शराब पीने से स्नायुओं पर से मनुष्य का प्रभुत्व उठ जाता है और निर्णय-शक्ति पंगु हो जाती है। कारखानों के मालिक और बीमा कंपनियाँ इस बात को बड़े गौर के साथ देखती हैं कि शराब का दुर्घटनाओं से कितना गहरा सम्बन्ध है।

आकस्मिक दुर्घटनाएँ

ज़्यूरिच बिल्डिंग ट्रेडस् सिक क्लब की १९०० से लेकर १९०६ तक की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि सप्ताह भर की दुर्घटनाओं में प्रतिशत २२·१ दुर्घटनाएँ सोमवार के दिन और शेष दिनों में तिदिन औसतन प्रतिशत १५·७ दुर्घटनाएँ होती थीं। इसका कारण यह था कि शनिवार और रविवार को लोग अधिक शराब पीते हैं जिनका असर सोमवार तक बना रहता है।

लिपझिग (जर्मनी) के सिक बेनिफिट क्लब की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि मामूली आदमियों की बनिस्बत दो-तीन गुने अधिक शराबी दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं।

बोलकिनजेन (जर्मनी) के रॉकलिंगशे आयर्न एंड स्टील वर्क्स में पाया गया कि एक सहस्र मजदूरों में ८ शराब न पीने वाले मजूर दुर्घटनाओं के शिकार होते थे। और कारखाने के सर्वसाधारण मजूरों में से प्रति सहस्र १२। इसके मानी यह हुए कि शराब न पीने वाले मजदूरों में ३३⅓ प्रतिशत दुर्घटनाएँ कम होती हैं।

शराब से दुर्घटनाएँ बढ़ जाती हैं, क्योंकि शराब–(१) ज्ञानेन्द्रियों को मंद कर देती है जिससे आदमी खतरे को देख नहीं पाता। (२) फासले सम्बन्धी ज्ञान को वह उलट-पुलट कर देती है। (३) खतरे को किस तरह टालना चाहिए इस बात का आदमी जल्दी और ठीक-ठीक निश्चय नहीं कर पाता। (४) और अपने हाथ पैरों पर उसका पूरा-पूरा अधिकार नहीं होगा।

इसलिए दुर्घटनाओं का बीमा लेने वाली कंपनी कहती है:–

"शराब की आदत तथा ताजे व्यभिचार के कारण कमजोर बने हुए आदमी को, जो अपने शरीर पर काबू नहीं रख सकता, कभी ऐसी मशीनरी पर न काम करने दिया जाय जो खतरनाक हो। वह केवल अपनी जान से ही हाथ नहीं धो बैठेगा बल्कि औरों की जान का भी ग्राहक होगा।"

आत्महत्या

युनाइटेड स्टेटस ऑफ अमेरिका में सन् १९०१ से १९१० तक ६२,६६० आदमियों ने आत्महत्या कर के प्राण दे दिये। बीमों के मेडिकल डायरेक्टर्स की राय को यदि हम मान लें तो इनमें से १४४११ आत्महत्याओं के लिए प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से शराब ही जिम्मेदार थी।

मृत्यु

लिपजिग के सिक बेनिफिट क्लब की बीमारी और मृत्यु की १९१० की रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि जब मामूली आदमी किसी रोग से १०० मरते हैं तब—

शराबी:—

सभी रोगों से	२५३ मरते हैं	जिन मरीजों के ये अंक दिये गये हैं उनकी उम्र ३४ वर्ष से ले कर ४५ वर्ष तक थी।
संसर्ग-जन्य रोगों से	१०० ,,	
स्नायु प्रणालि के रोगों से	२६७ ,,	
श्वास रोग से (Not tuberculosis)	६६७ ,,	
क्षय रोग से (Tuberculosis)	३० ,,	
खून सम्बन्धी रोग से	१३७ ,,	
हाजमे सम्बन्धी रोग से	२६७ ,,	
जखम वगैरा	३०० ,,	

लिपजिग की उसी संस्था की रिपोर्ट हमें बताती है कि १०,००० बीमा किये गये आदमियों में अकाल मृत्यु की संख्या क्रमशः यों थी।

वर्ष	मामूली	शराबी	रिमार्क
२५-३४	५३	१२२	दो गुने से भी ज्यादह
३५-४४	९७	२८४	करीब करीब तिगुनी
४५-५४	१६७	३७२	१२२ प्रतिशत ज्यादह
५५-६४	२९४	३६४	२२ ,, ,,
६५-७४	५८०	७४६	३० ,, ,,

इस तरह शराबी ज्यादह संख्या में बीमार पड़ते हैं, अधिक दिनों तक बीमार रहते हैं और अधिक संख्या में मरते भी हैं।

अमेरिका के रजिस्ट्रेशन एरिया में, जिसमें अमेरिका की करीब आधी जन-संख्या रहती है, मृत्यु-संख्या के अंक बड़ी सावधानी साथ रक्खे गये हैं। हिसाब सन् १९०० से ले कर सन् १९०८ तक का २५-६४ वर्ष की आयु के स्त्री-पुरुषों की मृत्यु का है। इन नौ वर्षों में

३३,१८५ मृत्युएं ऐसे रोगों से हुई, जिनमें प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष कारण शराब थी।

३२,१६३ मृत्युएं विषम ज्वर से हुई।

२२१७ मृत्युएं चेचक से हुई।

टिटॅनिक जहाज संसार में उस समय सबसे बड़ा जहाज समझा जाता था। उसकी रचना के पूरे होने के महीनों पहले से बड़े बड़े व्यापारियों और सरदारों ने उसमें प्रवास करने के लिए अपने लिए स्थान सुरक्षित करा लिये थे। उसकी रचना पूरी होते ही जब वह अपनी पहली समुद्र यात्रा पर निकला तब उस पर करीब पौने दो हजार लोग थे। कई स्थानों से उसको अपनी पहली यात्रा पर निकलने के पहले धन्यवाद भेजे गये थे। किन्तु विधि की इच्छा कुछ और ही थी। जहाज निकला और राह में उसे इतना कुहरा मिला कि सामने से आनेवाले बरफ के तैरते हुए पहाड़ से जाकर वह टकरा गया और बात की बात में डूबकर १५०३ आदमी को लेकर रसातल को चला गया। सारे संसार में हा-हा कार मच गया! पर शराब प्रति सप्ताह

चुपचाप १५०० आदमियों को यमलोक को ले जाती है! अमेरिका में हर आठवें मिनिट में एक जवान स्त्री या पुरुष शराब के कारण अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करता है।

बच्चों पर दुष्परिणाम

मनुष्य अपनी सन्तति पर प्राणों से भी अधिक प्यार करता है। वह खुद मर मिटना एक बार पसंद कर लेता है परन्तु उसकी हमेशा यही चेष्टा रहती है कि बच्चों का कहीं बाल भी बांका न हो। पर शराब इस बात में भी आदमी को घोर पतित बना देती है। अपने बच्चों के सुख-दुख की परवा न करके कोई काम करने वाले आदमी को क्या कहा जाय? उसे नर-पशु, नर-राक्षस या नर-पिशाच भी कह दें तो इन भिन्न-भिन्न नामधारी जीवों का अपमान होगा। पशु, राक्षस और पिशाच भी अपनी संतति की कभी ऐसी लापरवाही करते हुए नहीं पाये गये। इस बात में आदमी शैतान से भी घोरतम नीच और पतित हो जाता है। कैसे सो देखिए।

माता या पिता होना एक महान सौभाग्य और जिम्मेदारी की बात है। इस अमृत-कला का भूतल पर अवतार विषय-विलास की गटरों में लोटने और सड़ने के लिए नहीं हुआ है। हमें यहां पर भेजने में परमपिता का हेतु महान, उच्च और उदात्त है। और वह क्या है? वह यही हो सकता है कि हम उसकी दया का दर्शन करें, उसके बच्चों हमारे अन्य भाइयों की सेवा करें। उनके दुःखों को हलका करें। सब मिल कर अपने परम पिता की गोद में जा कर अनन्त अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त करें।

मनुष्य अपने जीवन भर इस ध्येय की आराधना और उपासना करे। जहां तक उससे इस आदर्श की सेवा हो सके वह करे और शेष की पूर्ति के लिए संसार में अपना एक प्रतिनिधि परमात्मा से मांगे। उसके मिलने पर उसे वह अपने अनुभव और ज्ञान की थाती दे कर उसी ध्येय की आराधना, उसी आदर्श की प्राप्ति की दीक्षा दे और स्वयं चिरन्तन शान्ति को प्राप्त करे।

यह है हमारा वह उच्च और पवित्र आदर्श जिसके लिए हमें अपने आपको तथा हमारे प्रतिनिधि को तैयार करने के लिए प्रतिक्षण प्रयत्न करना चाहिए। अतः हमारी जिम्मेदारी महान् है? सारा संसार इस बात को बड़ी उत्सुकता के साथ देखता है कि हम अपने पीछे हमारे ध्येय की पूर्ति के लिए कैसा प्रतिनिधि छोड़ जाते हैं। यदि वह सत्पात्र होता है तो संसार की आत्मा हमें कृतज्ञता पूर्वक आशीर्वाद देती है। किन्तु यदि वह कुपात्र साबित हुआ, उसके हाथ संसार की सेवा के बजाय कुसेवा हुई, संसार के सुख और शान्ति बढ़ाने के बजाय वह दुःख और अशान्ति बढ़ाने का कारण साबित हुआ तो पीड़ित संसार की आहें हमें साक्षात स्वर्ग में भी झुलसा डालेंगी और हमें वहां से खींच कर धड़ाम से पृथ्वी गिरा देंगी। संसार की आत्मा कहेगी, "अपने बेटे को संभाल वह हमारी उन्नति में रुकावटें पेश कर रहा है। हमने इससे सहायता की आशा की थी। पर यह तो उलटा हमें नीचे गिरा रहा है। अब तू इसकी बेहूदी हरकतों को रोक। ऐसे बेटे होनेके बजाय तुम लोगों का न होना ही अच्छा था, इत्यादि"। यह है एक माता या पिता की जिम्मेदारी।

परमात्मा की अनन्त शक्तियां हमारे आस-पास मंडराती

रहती हैं। हमारी ओर से ज़रा भी मौक़ा मिलते ही वे दृश्य स्वरूप धारण करती रहती हैं। अतः हमें इस बात की बड़ी सावधानी रखनी चाहिए कि उनको संसार में कहीं अकारण अवतार लेने में हम कारणीभूत न हों। प्रत्येक शक्ति उस अनन्त प्रकाश की एक उज्वल रश्मि है। वह हमारे अन्दर से हो कर संसार में आविर्भूत होती है। यह प्रकाश वही रंग, वही प्रकृति धारण करेगा जो रंग, जो शुद्धि अथवा अशुद्धि हमारे अन्दर होगी। अतः ख्याल कीजिए कि हमारा उत्तरदायित्व कितना महान् है! इसलिए अपने आपको पवित्र और सतत् जागृत रहने की जरूरत है!

अतः इसके पहले कि ऐसी शक्ति का, ऐसे प्रकाश का जनकत्व हमें प्राप्त हो, हमें अपने आप को उसके शुभजनन और संवर्धन के योग्य बना लेना ज़रूरी है। एक बालक के पांच जन्म सिद्ध अधिकार होते हैं।

(१) उसके माता-पिता शुद्ध-पवित्र, नीरोग और सच्चरित्र हों। उसका जन्म विना किसी तकलीफ के हो।

(२) जन्म के समय माता-पिता की हालत ऐसी हो, जिससे वह उनके संपूर्ण वात्सल्य प्रेम को प्राप्त कर सके।

(३) उसे अपनी कोमलावस्था में ऊँची संस्कार-शालिनी शिक्षा मिल सके।

(४) ज्ञानावस्था में बुरे पदार्थों, बुरे वायुमण्डल और कुसंगति से उसकी रक्षा हो और—

(५) सज्ञान होने पर राष्ट्र तथा मानव-जाति की सेवा द्वारा अपना आत्म-विकास करने के लिए उसे संपूर्ण अनुकूलता हो।

वे माता-पिता, वे राष्ट्र और वे बालक धन्य हैं, जिन्हें ये पांचों अनुकूलताएँ प्राप्त हैं। भावी सन्तति की इन शर्तों को जो स्त्री-पुरुष पूरी कर सकें, उन्हींका माता या पिता होना धन्य और सार्थक है।

भारत में ऐसे माता-पिता कितने हैं! हममें से कितनों ने अपनी सन्तति के प्रति इन पुण्य कर्तव्यों का पालन करने की प्रतिज्ञा, चेष्टा या ख्याल भी कर के इन अमर शक्तियों का इस भूतल पर स्वागत किया है!—और स्वागत कर के उन्हें संसार की सेवा के योग्य बनाया है? हे बाल-भारत, और तरुण-भारत हम तेरे घोर अपराधी हैं। परमात्मन् हम आप के दिये विमल-विवेक और अखंड-शक्ति-भंडार को विषय-विलास में बरबाद करने के घोर अपराधी हैं। इन पुण्य-पावक शक्तियों को धोखा दे कर इस रौरव नरक में घसीटने के लिए हम तुम्हारे उनके और देश के महान् अपराधी हैं!

शराब के विष के शिकार हो कर हमने कितना पाप किया है यह अभी कोई नहीं कह सकता। करुणामय की लीला अगाध है। जब दुःख-वेदना असह्य हो जाती है, तब वह सम्वेदना-शक्ति का हरण कर लेता है। मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है। और वह दयाघन अदृश्य रूप से उस मनुष्य की विनष्ट शक्ति को दुःख का प्रतिकार करने के लिए जागृत करता रहता है। काफी शक्ति आते ही मरीज होश में आ जाता है और पुनः दुख को दूर करने की चेष्टा की जाती है। भारत की संविद् शक्ति पर परमात्मा ने अभी आवरण डाल रक्खा है। उसके दूर होने पर किसी दिन हमें पता चलेगा कि इस महान् देश की गरीब जनता में

शराब ने कैसा सर्वनाश किया है। इस समय तो हमें अन्य देशों की दशा देख कर ही अपने देश की दुर्दशा का केवल अनुमान करके रह जाना पड़ता है।

जहां कहीं भी शराब के दुष्परिणामों की विशद् रूप से जांच की गई है वहां यही पाया गया है, कि शराबी माता-पिता के बच्चे अधिक संख्या में मरते हैं। बारहवीं इंटरनॅशनल कांग्रेस में शराबखोरी के दुष्परिणामों को बताते हुए हेलसिंगफार्स युनिवर्सिटी के प्रोफेसर टी लैटिनेन ने बताया कि शराबी माता-पिता के प्रतिशत ८.२ बच्चे कमजोर और प्रतिशत २४.८ बच्चे मरते थे, वहां शराब न पीने वाले माता-पिता के प्रतिशत १.३ बच्चे कमजोर और १८.५ प्रतिशत बच्चे मरते थे।

	माता-पिता शराबी	शराब न पीनेवालों के
कमजोर बच्चे प्रतिशत	८.२	१.३
मर गये	२४.८	१८.५
अधूरे हुए	६.२१	०.९४

इसके बाद प्रोफेसर लैटिनेन बताते हैं कि एक दूसरे स्थान पर १९, ५१९ बच्चों की जांच करने पर नीचे लिखे अनुसार फल पाया गया:—

माता-पिता के	प्रतिशत बच्चे अधूरे गिरे	मरे	और जीवित बचे
शराब न पीने वाले	१.०७	१३	८७
थोड़ी शराब पीनेवाले	५.२६	२३	७७
खूब शराब पीने वाले	७.११	३२	६८

मतलब यह कि ज्यों-ज्यों शराब की आदत बढ़ती गई, बच्चों की मृत्यु-संख्या भी बढ़ती गई।

डॉ० सॅलिवन शराब पीने वाली माताओं के बच्चों की करुण कथा लिखते हुए बताते हैं कि :—

	प्रतिशत बच्चे मर गये
२१ शराब पीनेवाली माताओं के १२५ बच्चों में से	५५.२
तहां	
२८ शराब न पीनेवाली माताओं के १३८ बच्चों में से केवल	२३.९

जैसे जैसे माता अधिकाधिक शराब पीती जाती हैं, वैसे-वैसे बच्चों की मृत्यु बढ़ती जाती है यह बात डॉ० सलिवन के नीचे लिखी तहकीकात से जाहिर होगी।

बच्चे	प्रतिशत	मृत्यु-संख्या	बच्चे	मृत्यु-संख्या
पहले	,,	३३.७	चौथे पांचवें	६५ ७
दूसरे	,,	५०	छठे से दसवें तक	७२.
तीसरे	,,	५२.६		

मिरगी के रोगी

बचे हुए बच्चों में से ४.१ प्रतिशत Epileptic मिरगी के रोगी थे और शेष कमजोर दिमाग वाले।

शराबी माता-पिता के बच्चों का विकास भी बहुत धीरे-धीरे होता है।

मनोदौर्बल्य

बिरमिंगहम के खास स्कूलों में पढ़नेवाले २५० दोष-युक्त बालकों की जांच करने पर उनमें से करीब आधे (४१.६ प्रति-

शत) के पिता शराबी पाये गये। तुलना के लिए दूसरे स्थान के १०० मामूली बच्चे लिए, उनमें से केवल १७ बच्चे शराबी माता-पिता के पाये गये।

बच्चों में क्षयरोग

शराबी माता-पिता के बच्चे क्षय के शिकार बहुत जल्दी और अधिक तादाद में होते हैं। प्रोफेसर व्हॉन बुंगे की तहकीकात का फल नीचे दिया जाता है।

माता पिता के			प्रतिशत बच्चे क्षयी पाये गये
कभी कभी शराब पीने वाले			८.५
प्रतिदिन किन्तु हिसाब से "		"	१०.७
प्रति दिन बेहिसाब	"	"	१६.४
मशहूर शराबी	"	"	२१.७

आनुवंशिक सर्वांगीण पतन

बर्न (स्विट्जरलैंड) के प्रोफेसर डेम ने इस विषय में बड़ी लगन के साथ संशोधन किया है। उन्होंने दस-दस परिवारों के दो संघ लिये। एक शराब पीने वाला और दूसरा न पीने वाला। और लगातार बारह वर्ष तक उनका अध्ययन करते रहे। इन दोनों संघों के परिवार केवल शराब को छोड़कर पेशा रहन-सहन, खान-पान आदि और सब बातों में एक से थे। उनकी जांच करने पर डॉक्टर डेम ने देखा कि शराबी परिवारों में केवल १० बच्चे (प्रतिशत १७.५) भले चंगे और शराब न पीने वाले परिवारों में ५० बच्चे (प्रतिशत ८२) भले चंगे थे।

इसके बाद उन्होंने पुश्त दर पुश्त शराब पीने वाले परिवारों को लिया। इस जांच का हिसाब यों बताया जा सकता है:—

पूर्वज	परिवार	अच्छे	बच्चे जल्दी मर गये	दोषयुक्त	कुल बच्चे
सिर्फ पिता शराबी	३	७	७	६	२०
पिता और दादा भी शराबी	६	२	१५	१४	३१
माता और पिता दोनों शराबी	१	१	३	२	६

यही प्रयोग अन्यत्र डॉ० हॉज और स्टॉकर्ड ने क्रमशः कुत्तों और सूअरों पर किया। जिसका फल क्रमशः यों है।

शराब पीने वाला कुत्ता और कुतिया (शराब इतनी, नहीं दी जाती थी जिससे नशे के चिन्ह दिखाई दें)	प्रतिशत १७·४ बच्चे जिन्दे रहे। (१५ बच्चे मरे और ८ बदसूरत पैदा हुए, जिनमें से केवल चार जीवित बचे।
शराब न पीने वाले कुत्ते और कुतिया के बच्चे	एक भी मरा बच्चा पैदा नहीं हुआ। चार बच्चे बदसूरत थे और ४५ में से ४१ जीवित और स्वस्थ रहे।

डॉ० स्टॉकर्ड ने बड़ी सावधानी के साथ यही प्रयोग सूअरों पर किया। प्रयोग के लिए दोनों नर और मादा सूअर अच्छे हट्टे-कट्टे चुने। परिणाम यह हुआ:—

सिर्फ नर शराबी मादा मामूली	२४ बार संयोग करने पर	१२ बच्चे पैदा हुए	जन्म के बाद ७ जल्दी मर गये	५ बुरी हालत में बचे रहे।
नर मामूली मादा शराबी	४ संयोग से	५ बच्चे		२ बचे।
नर मादा दोनों शराबी	१४ संयोग से	१ बच्चा	पैदा होते ही मर गया।	
नर मादा दोनों शराब से मुक्त	९ संयोग से	१७ बच्चे	सभी स्वस्थ और नीरोग हैं।	

डॉ० लैटिनेन का कथन है माता-पिता की वेवकूफी के कारण पांच वर्ष की उम्र होने के पहले आधी मानव-जाति इस संसार से चल बसती है।

इसी प्रकार और भी कितने ही अंक और उदाहरण दिये जा सकते हैं। पर अब तो यह बात पूर्णतया सिद्ध हो गई है कि ज्यों-ज्यों स्त्री अथवा पुरुष में शराब की आदत बढ़ती जाती है त्यों-त्यों उसका असर उसकी प्रजनन शक्ति पर भी पड़ता जाता है। पहले-पहल क्रमशः बच्चों की बुद्धि का, फिर शरीर पर इसका असर पड़ते-पड़ते बच्चे अधूरे गिरने लग जाते हैं और अन्त में उन दोनों के रजवीर्य की प्रजनन-शक्ति नष्ट हो जाती है। स्त्री-पुरुषों का पारस्परिक और स्वाभाविक शुद्ध-प्रेम अशुद्ध हो जाता है। यही नहीं, बल्कि संसार में जितने प्रकार की अनीति और विश्वासघात हैं, वे सब बढ़ते जाते हैं। स्त्री-जाति के सतीत्व और शरीर की रक्षा करने के बजाय पुरुष स्त्री की ओर, और स्त्री पुरुष की तरफ अपवित्र विकार-दृष्टि से देखने लग जाते हैं। और व्यभिचार की

दिन-दूनी रात-चौगुनी वृद्धि होती है। इन पापियों को प्रकृति भी सज़ा देती है। गुप्तरोग पारस्परिक संसर्ग से जाति में बढ़ते हैं और जाति नष्ट होती है।

यह तो स्पष्ट ही है कि प्रत्येक राष्ट्र आचार पावित्र्य के नियमों को एक निश्चित हद से गिरा नहीं और वह पराधीन हुआ नहीं। अनीति और स्वाधीनता बहुत दिन तक साथ-साथ नहीं रह सकते। शराब और स्वाधीनता की तो कभी बनी ही नहीं है।

आखिर आचार विषयक पवित्रता और उसके कड़े नियम स्मृतिकारों की केवल सनक की उपज नहीं है। देश और जाति की स्वाधीनता और अस्तित्व उन्हीं पर मुख्यतया निर्भर रहते हैं। राष्ट्र की विशेषता देख कर ही जागृत और दूरदर्शी द्रष्टा इन नियमों को गढ़ते हैं। हां, कालमान से उनके अन्दर थोड़े बहुत फेर फार हो सकते हैं। परन्तु हम उनके अन्तर्गत सिद्धान्तों की तो कभी उपेक्षा नहीं कर सकते। मनुष्य का अधम स्वभाव बार-बार नीति-नियमों के खिलाफ बलवा कर उठ खड़ा होता है। वह सोचता है कि ये नियम उनके बनाये हुए हैं जो वेदाभ्यास से जड़ बने हुए थे और जिनकी इच्छा विषय भोगों से पराङ्मुख हो गई थीं। वे हमारी परिस्थिति, हम गृहस्थों की दशा, इस ज़माने की आवश्यकताओं, लाचारियों आदि को क्या जानें? उन्हें हमारे साथ सहानुभूति होना असम्भव है। उनकी कल्पना कभी इतनी दूर-दर्शी नहीं हो सकती। हम मानते हैं कि इस कथन में बहुत अंशों में सत्य हो सकता है। उनके बताये। आचार-नियमों से सम्बन्ध रखनेवाली तफसील की बातों में कुछ फर्क हो सकता है। परन्तु जिस सिद्धान्त को ले कर, राष्ट्र की जिस आवश्यकता

और स्वभाव को देख कर उन्होंने ये नियम बनाये थे उनकी उपेक्षा तो हम कभी नहीं कर सकते। अपने बुजुर्गों के अनुभव की उपेक्षा करना महान् मूर्खता होगी। उनके बनाये वे नियम मानव-जाति के अस्तित्व की कुंजी हैं। उन्हीं के पालन से मानव-जाति अपना अस्तित्व कायम रखने की आशा कर सकती है। उन्हीं की सहायता से वह अपने आपको धारण कर सकती है और इसीलिए हमारे आचार्यों ने इन नियमों को धर्म की संज्ञा दी है। उनको भूलना, या उनकी उपेक्षा करना मूर्खता अथवा आत्मघात करना है। मनुष्य जाति अपने पूर्वजों के अनुभव को जांच कर उससे फायदा उठावे, पर यदि वह उसकी उपेक्षा ही करेगी, प्रत्येक बात में श्रीगणेश से ही शुरुआत करेगी, तो प्रगति असंभव हो जायगी।

शराब और राष्ट्रीय पतन

अब शराब से जो राष्ट्रीय पतन होता है, उसके पृथक बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है और हम यह विस्तृत रूप से देख चुके कि शराब व्यक्तियों को कैसे हानि पहुँचाती है। अतः अब यहां तो हम पूर्वोक्त कथन का राष्ट्रीय-दृष्टि से सिंहावलोकन ही करना चाहते हैं।

मनुष्य के अनुसार राष्ट्र के भी दो अंग होते हैं। शारीरिक और मानसिक। यदि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हों, नीरोग हों तो शरीर कमजोर होने पर भी वे उस दुर्बल शरीर से ही आवश्यक काम ले सकते हैं। किन्तु यदि

शरीर हृष्ट-पुष्ट हो और मनोदशा ठीक न हो तो कोई ठिकाना नहीं कि वह मनुष्य क्या करेगा और क्या न करेगा।

फिर शराब तो मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को भी रोग-ग्रस्त कर के राष्ट्र को महान् सङ्कट में डाल देती है। जो राष्ट्र शराब के अधीन होता है। वह अपनी स्वाधीनता से हाथ धो चुका है समझिए।

संसार के इतिहासकार ऊंचे स्वर से हाथ उठा-उठा कर कहते हैं कि राष्ट्रों के उत्थान और पतन का कारण संयम और असंयम, नियम-शीलता और विषय-विलास, वीर्य-रक्षा और व्यभिचार आदि ही हैं। और सचमुच जब हम प्रत्येक राष्ट्र या जाति के इतिहास को देखते समय उसके उत्थान तथा पतन काल का मुक़ाबला तत्कालीन सामाजिक दशा से करते हैं तब हमें उस कथन की दुःखद सत्यता का अनुभव होता है।

संयमी राष्ट्र बराबर प्रगति करता रहता है। वह अपने बुज़ुर्गों के अनुभव का लाभ उठा कर उसे नित्य बढ़ाता रहता है। प्रत्येक पुश्त अपनी प्रतिभा से उसे संवर्धित और व्यवहार से दृढ़ करती रहती है। परन्तु जिन राष्ट्रों के अन्दर शराब ने प्रवेश कर लिया है, उनकी गति उलट जाती है। उनकी प्रगति रुक जाती है। बल्कि उसके सड़े दिमाग़ अपने बुज़ुर्गों की शिक्षा तथा अनुभव को खो भी बैठते हैं। वे मनुष्य से पशु-कोटि में गिर जाते हैं, और किसी बुरे दिन अपनी स्वाधीनता को खो बैठते हैं।

शराब नीचे लिखे अनुसार राष्ट्र का सर्वनाश करत   ।

और स्वभाव को देख कर उन्होंने ये नियम बनाये थे, उनकी उपेक्षा तो हम कभी नहीं कर सकते। अपने बुजुर्गों के अनुभव की उपेक्षा करना महान् मूर्खता होगी। उनके बनाये वे नियम मानव-जाति के अस्तित्व की कुंजी हैं। उन्हीं के पालन से मानव-जाति अपना अस्तित्व कायम रखने की आशा कर सकती है। उन्हीं की सहायता से वह अपने आपको धारण कर सकती है और इसीलिए हमारे आचार्यों ने उन नियमों को धर्म की संज्ञा दी है। उनको भूलना, या उनकी उपेक्षा करना मूर्खता अथवा आत्म-घात करना है। मनुष्य जाति अपने पूर्वजों के अनुभव को जांच कर उससे फायदा उठावे, पर यदि वह उसकी उपेक्षा ही करेगी, प्रत्येक बात में श्रीगणेश से ही शुरुआत करेगी, तो प्रगति असंभव हो जायगी।

शराब और राष्ट्रीय पतन

अब शराब से जो राष्ट्रीय पतन होता है, उसके पृथक बताने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। राष्ट्र व्यक्तियों से बनता है और हम यह विस्तृत रूप से देख चुके कि शराब व्यक्तियों को कैसे हानि पहुँचाती है। अतः अब यहां तो हम पूर्वोक्त कथन का राष्ट्रीय-दृष्टि से सिंहावलोकन ही करना चाहते हैं।

मनुष्य के अनुसार राष्ट्र के भी दो अंग होते हैं। शारीरिक और मानसिक। यदि मनुष्य की मानसिक शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित हों, नीरोग हों तो शरीर कमजोर होने पर भी वे उस दुर्बल शरीर से ही आवश्यक काम ले सकते हैं। किन्तु यदि

शरीर हृष्ट-पुष्ट हो और मनोदशा ठीक न हो तो कोई ठिकाना नहीं कि वह मनुष्य क्या करेगा और क्या न करेगा।

फिर शराब तो मनुष्य के शरीर और मस्तिष्क को भी रोग-ग्रस्त कर के राष्ट्र को महान् सङ्कट में डाल देती है। जो राष्ट्र शराब के अधीन होता है। वह अपनी स्वाधीनता से हाथ धो चुका है समझिए।

संसार के इतिहासकार ऊंचे स्वर से हाथ उठा-उठा कर कहते हैं कि राष्ट्रों के उत्थान और पतन का कारण संयम और असंयम, नियम-शीलता और विषय-विलास, वीर्य-रक्षा और व्यभिचार आदि ही हैं। और सचमुच जब हम प्रत्येक राष्ट्र या जाति के इतिहास को देखते समय उसके उत्थान तथा पतन काल का मुक़ाबला तत्कालीन सामाजिक दशा से करते हैं तब हमें उस कथन की दुःखद सत्यता का अनुभव होता है।

संयमी राष्ट्र बराबर प्रगति करता रहता है। वह अपने बुजुर्गों के अनुभव का लाभ उठा कर उसे नित्य बढ़ाता रहता है। प्रत्येक पुश्त अपनी प्रतिभा से उसे संवर्धित और व्यवहार से दृढ़ करती रहती है। परन्तु जिन राष्ट्रों के अन्दर शराब ने प्रवेश कर लिया है, उनकी गति उलट जाती है। उनकी प्रगति रुक जाती है। बल्कि उसके सड़े दिमाग़ अपने बुजुर्गों की शिक्षा तथा अनुभव को खो भी बैठते हैं। वे मनुष्य से पशु-कोटि में गिर जाते हैं, और किसी बुरे दिन अपनी स्वाधीनता को खो बैठते हैं।

शराब नीचे लिखे अनुसार राष्ट्र का सर्वनाश करती है।

(१) शराब उस पैसे का हरण कर लेती है जो परिवार के पोषण में लगना चाहिए।

(२) राब अपने भक्त की कार्य-शक्ति को घटा देती है, जिससे वह परिवार का पोषण करने और राष्ट्र की संपत्ति बढ़ाने के अयोग्य हो जाता है।

(३) फलतः राष्ट्र की उत्पादन-शक्ति भी घट जाती है। और वह कंगाल हो जाता है।

(आ) शारीरिक

(१) शराब आदमी को कमजोर और रोग-ग्रस्त बना देती है।

(२) शराब पीने से आदमी का अपने बदन पर काबू नहीं रहता।

इसलिए सारा राष्ट्र कमजोर और दुर्बल हो जाता है। उसकी सेना किसी विपक्षी सेना का सामना करने योग्य नहीं रह जाती। और न वह व्यापारी प्रतिस्पर्धा में टिक सकता है।

(इ) मानसिक

(१) शराब मनुष्य की उच्चभावनाओं, तथा विचार-शक्ति के निवास-स्थान मस्तिष्क को मूर्च्छित करके उसके अधम-विकारों को उभाड़ देती है।

(२) फलतः मनुष्य अपने अधम स्वार्थ या विषय-विलास का शिकार बन कर, अपने आपको तथा समाज को, पतित बना देता है। समाज भीरू, कायर, मूर्ख या निरंकुश तथा दुःसाहसी हो जाता है।

(३) और फिर किसी भी उच्च आदर्श का वह अनुसरण नहीं कर सकता और न उसके लिए लड़ सकता है। दया, प्रेम और आत्मोत्सर्ग की भावनाएं जाती रहती हैं और निष्ठुरता, पारस्परिक द्वेष, ईर्ष्या और अधम स्वार्थ उनका स्थान ग्रहणकर लेते हैं।

यह परिस्थिति एक सत्तात्मक-शासन वाले तथा प्रजा-सत्तात्मक शासन-पद्धति वाले राष्ट्रों में भी एकसा हो जाती है। कह नहीं सकते कि इन दोनों में से किसकी अवस्था अधिक भयंकर होगी। क्योंकि जहां एक सत्तात्मक-शासन-पद्धति वाले राष्ट्र में देश एक व्यक्ति के वश में होता है तहाँ प्रजा-सत्तात्मक-शासन वाले राष्ट्र में ऐसे लाखों व्यक्तियों में शासन की जिम्मेदारी बँटी रहती है।

एक सत्तात्मक-शासन पद्धति वाले राष्ट्र में रामराज्य का सा सुख भी हो सकता है और कंस-राज्य अथवा रावण-राज्य का सा अंधेर भी। यह शासन-प्रणाली प्रायः वहीं होती है जहां शासन संस्था का अथवा जनता की शक्तियों का पूर्णतया विकास न हुआ हो। वहां की जनता पूर्णतया राजा की अनुगामिनी होती है वहाँ के सुशासन के लिए राजा का सुसाशक तथा सुरुचि-संपन्न होना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इन राज्यों की प्रजा राजा के गुणावगुणों का अनुकरण करने ही में अपने कर्तव्य की मानो इति श्री समझती है। क्योंकि राजा के णावगुणों का उसपर सब से अधिक असर पड़ता है। राजा यदि सद्गुणी होता है तो प्रजा में भी सद्गुणों की बाढ़ आती है। राजा यदि भक्त होता है, तो प्रजा भी भक्त बन जाती है। राजा यदि शूर होता है तो वह भी शूरता की पराकाष्ठा करके दिखा देती है।

वह तो व्यक्ति-पूजक होती है । अतः यदि वह कहीं यु
में ही मर गया तो इसके देव ठण्डे हुए । ऐसी प्रजा के
अपना दिमाग़ नहीं होता । राजा के युद्ध में मरते ही उसर
फौज तितर-बितर हो कर वहाँ से भाग निकलती है । उसं
प्रकार यदि राजा दुर्गुणी होगा तो प्रजा में भी दुर्गुणों की कमी
होगी । वह राजा से भी बढ़ जावेगी । यदि राजा कायर होगा तं
इसे क्या पड़ी है जो देश की रक्षा के झंझट में पड़े । वह ए
असहाय पशु की तरह अपने राजा के विजेता के अधीन हो क
उसीका जय-जयकार करने लग जाती है । राजा यदि शराब
होता है तो प्रजा में भी शराबखोरी की सीमा नहीं रहती । राज
यदि व्यभिचारी हुआ तो यहाँ भी प्रति दिन मोटरों में स्त्रि
पड़ना शुरू हो जाता है । राजा यदि किसी से एक अण्डा जब
दस्ती लेता है तो उसका कारभारी दस अण्डे लेता है और सू
एक हज़ार । तहसीलदार तो सारी तहसील में तहलका मचा देगा
फिर शराब पीने पर जो-जो खेल होते हैं उनका तो कहना ह
क्या ? प्रजा के धन की और अपने स्वास्थ्य तथा वीर्य क
होली करके प्रतिदिन दिवाली मनाई जाती है । जहाँ य
हाल है वहाँ का जीवन पशु-जीवन है । न स्वाधीनता है,
वहाँ सद्गुणों के विकास को ही कोई मौका मिलता है । जा
देखिए पतन का मसाला मौजूद है । वह राष्ट्र कभी उन्नति नह
कर सकता । विदेशी उसे घर दबाते हैं । अधिकारी विदेशियों
हाथ की कठपुतली हो जाते हैं और प्रजा दीन पशु !

परन्तु प्रजा-सत्तात्मक राज्यों की दशा क्या होती है ? शरा
से स्वभावतः मनुष्य के ऊँचे मानवोचित सद्गुण लुप्त हो जाते

और वह पशु के समान हो जाता है। वही विकार, वही अंधा-न, वही विषय-क्षुधा, वही द्वेष, वही क्रोध, सब कुछ वही।

जो अपना ही शासन नहीं कर सकता, वह दूसरे का क्या करेगा ? छोटी छोटी बातों पर वे उभड़ जाते हैं, और ऊटपटांग काम करने लग जाते हैं। विकार उनमें बहुत बढ़ जाता है। जरा जरासी बातों पर एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से झगड़ पड़ता है। अगर उसे कोई कुछ रोकता है तो अपनी हार और नाश का डर अन्यथा काफी शक्ति आने पर वह अपने आपको कभी रोक नहीं सकता। इसी प्रकार का एक महायुद्ध हो चुका और दूसरे की तैय्यारी हो रही है।

पतन की सामग्री अपने अन्दर बनाये रखकर मनुष्य बने रहने की आशा करना व्यर्थ है। यह कैसे हो सकता है कि शराब अविरत रूप से, मनुष्य के उदात्त भावों की हत्या करती रहे, उसकी ऊंची भावनाओं को जला-जला कर खाक करती रहे, उसके हृदय को काम क्रोध, और लोभ का अड्डा बनाती रहे और हम उससे शान्ति और सदाचार की ही आशा करें ? भारत के शूद्र और अति शूद्र वर्गों को भी हम तब तक नहीं उठा सकते जब तक उनके अन्दर शराब की रोक नहीं हो जाती।

शराब के सामने मनुष्य पशु बन जाता है। उसे न बच्चों का ख्याल रहता न स्त्री का और न अपने स्वास्थ्य का ही। नहीं, उसे तो अपनी आजीविका का भी ख्याल नहीं रहता। भूखे बच्चे और स्त्री घर पर सोचते हैं कि वह मजदूरी लेकर आएगा तो उससे सामान खरीद कर रोटी बनेगी। पर वह अपनी मजदूरी को बरबाद करके आता है नशे में धुत्त हो कर और देता है अपने

थी। किन्तु आयुर्वेद तथा स्मृतिकार इसकी बुराइयों से अपरिचित नहीं थे।

भगवान् मनु ने अपने सुरा-प्रकरण में—

यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्

कहा है और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य को सुरापान से परावृत किया है। भगवान् पाराशर अगम्यागमन तथा मद्य गो-मांस भक्षणादि के लिए चान्द्रायण का प्रायश्चित बताते हैं। महाभारत में शुक्राचार्य ने कहा है कि सुरा पीने वाला 'ब्रह्मा' (ब्रह्म-हत्या का पातकी) होगा। बुद्ध-काल में भगवान् बुद्ध ने अपने संघ के पांच नियमों में मद्यपान-निषेध को आवश्यक बताया है। अशोक के समय देश प्रायः सुरापान से मुक्त-सा हो रहा था। परन्तु आगे चल कर मध्यकाल में फिर मदिरा का प्रभाव बढ़ गया। मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ सुरापान की भी भारी बाढ़ आई। राजपूत भी भगवान् मनु की आज्ञा को ताक पर रख कर सुरापान करने लग गये। इस समय लिखे हुए काव्य-ग्रन्थों में तत्कालीन समाज का खासा चित्र दिखाई देता है। इतिहास कहता है कि अलाउद्दीन को जब एकाएक शराब से वैराग्य हुआ तो उसने राजमहल की सारी शराब फेंकवा दी। सड़कों पर शराब से कीचड़ हो गया। जहांगीर की शराबखोरी प्रसिद्ध ही है। औरंगजेब जरूर उससे दूर रहता था, किन्तु उसके उत्तराधिकारियों को अपने भाग्य-रवि के अस्त के दुःख को भुलाने के लिए शराब का ही आसरा लेना पड़ता था। इस समय सारे देश में अनेकों छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये थे और शराब के बनाने-बेचने पर कड़ी नजर [illegible] जिसे [illegible]कारी कहा जाता था।

शराब के मानी हैं घर की बरबादी।

अंगरेजों के आगमन के समय देश में शराबखोरी पर राज्य का उतना कठोर नियन्त्रण नहीं था जितना आज है। हां, समाज की धाक जबरदस्त थी। परन्तु शराब पीनेवाले शासकों के आने पर उनकी सभ्यता का शासितों पर असर पड़ना स्वाभाविक था। महामना केशवचंद्र सेन कहते हैं कि शराब ने समाज को इतना पतित, व्यभिचारी और नास्तिक बना दिया है कि उसका सुधार करना बड़ा कठिन हो रहा है, एक तो अंगरेजी शिक्षा के कारण भारतीयों की अपने धर्म पर से श्रद्धा हट गई और दूसरे शराब की दूकानों की वृद्धि।"

भारत के प्रत्येक महान् धर्म ने शराब की निन्दा ही की है। यहां पर शराब की बुराई इतनी नहीं फैलती यदि एक ओर से जनता को शराब की दुर्गन्ध भरी शिक्षा दे कर उसकी श्रद्धा को चूर-चूर न कर दिया जाता और दूसरी ओर सुसंगठित रूप से उसके सामने प्रलोभन न खड़े किये जाते।

सरकार ने अपनी आबकारी नीति शुरू से ऐसी रक्खी है जिससे गैर कानूनन रूप से शराब बनाने के लिए जनता को उत्तेजित न करते हुए कम से कम शराब से ज्यादह से ज्यादह आय ली जाय। अपने हाथों में ज्यों-ज्यों देश के शासन-सूत्र आते गये, उसने आबकारी विभाग को भी सुसंठित करना शुरू कर दिया।

अंगरेजों के पूर्व शासकों के जमाने में भारत में ठीके की प्रथा थी। निश्चित प्रदेश में शराब बनाने और बेचने के ठीके नीलाम होते और जो सब से अधिक दाम देता उसे उस प्रदेश में शराब बना कर बेचने का अधिकार दे दिया जाता। ब्रिटिश

सरकार अपनी आवश्यकता और समयानुसार इस पद्धति में परिवर्तन करती गई। शराब की आय को अपने उपर्युक्त उद्देश के अनुसार बढ़ाने तथा शराब की उत्पत्ति को और खपत को नियन्त्रित करने के लिए सरकार ने एक नवीन पद्धति शुरू की। उसने देखा कि उपर्युक्त पद्धति में जिसे 'फार्मिङ्ग या आउट स्टिल' पद्धति कहते हैं, शराब पर वह काफी नियन्त्रण नहीं रख सकती। और उत्पन्न भी गिना गिनाया मिलता है। इसलिए सरकार ने शराब को बनाने तथा बेचने के काम को भी अपनी देख-भाल में कराने की व्यवस्था की। इसे कहते हैं डिस्टिलरी पद्धति। इसके अनुसार सरकार एक निश्चित स्थान में अपनी डिस्टिलरी—शराब का कारखाना बना देती है और फी गैलन निश्चित फी ले कर किसी से अपनी देखभाल में शराब बनाने के लिए कहती है। इस पद्धति में शराब के बनाने और बेचने के दोनों अधिकार कभी एक ही व्यक्ति को नहीं दिये जाते। दोनों पद्धतियों में शराब की दूकानों की संख्या और स्थान सरकार स्वयं निश्चित कर देती है। आउट स्टिल पद्धति में सरकार को भी नुकसान होता था और प्रजा को भी। क्योंकि प्रतिस्पर्धा के कारण ठीके की कीमत बहुत बढ़ जाती और उस हालत में ठीकेदार शराब की बिक्री बढ़ा करके अपना नफा बढ़ाने की कोशिश करते। फलतः इधर जनता अधिक पतित होती और सरकार को भी गिने गिनाये रुपये मिलते। दूसरी पद्धति से सरकार का फायदा बढ़ गया। किन्तु जनता की मात्र भारी हानि होती है। क्योंकि शराबखोरी को न बढ़ाने की अपनी नीति उद्घोषित करने पर भी शराब का बनाना और बेचना दोनों काम सरकार के हाथों में आ जाने के कारण

उसे हमेशा अधिक पैसा प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है।

हिन्दू और मुसलमान दोनों में शराबखोरी मना होने के कारण यदि इस बुराई को सरकार मिटाना चाहती तो फौरन मिटा सकती थी। किन्तु उसके सामने तो था धन का सवाल। और क्यों न हो? आबकारी की आय एक तो जल्दी इकट्ठी की जा सकती है। दूसरे उसे इकट्ठा करने में खर्च भी बहुत कम लगता है। लोगों पर जबरदस्ती भी नहीं करनी पड़ती जैसी कि जमीन का लगान इकट्ठा करते समय करनी पड़ती है। इसलिए अधिकारी स्वभावतः इस तरह सरकार की आय बढ़ाने के लिए झुक पड़ते थे।

"बल्कि, आबकारी विभाग के अधिकारियों को समय-समय पर सरकारी आय बढ़ाने के लिए सरकार की ओर से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूचना भी मिल जाया करती थी। जिन अधिकारियों के हल्के से कम आय होती उनकी वार्षिक रिपोर्ट में निन्दा की जाती। उनका इस महकमे में रखना न रखना अक्सर इन रिपोर्टों पर निर्भर रहता था। मि० केन ने सन् १८८९ में हाऊस ऑफ कामन्स में सरकारी रिपोर्टों से ऐसे कई उदाहरण बताये थे जिनसे पता चलता था कि किस तरह अधिकारियों को सरकारी आय बढ़ाने के लिए उत्साहित किया जाता है।" १

फल वही हुआ जो होना था। सरकार सब जगह सेंट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू नहीं कर पाई थी। कहीं यह पद्धति काम करती थी तो कहीं आउट स्टिल पद्धति, सेन्ट्रल डिस्टिलरी

१ फायनेंनशियल डेवेलपमेंटस इन मॉडर्न इण्डिया।

पद्धति सरकार ने शुरू तो कर दी; पर वह महंगी पड़ी। और आय बढ़ाये चारा नहीं था। इसीलिए सरकार की ओर से अधिकारियों को इशारे किये गये। इधर ठेकेदार लोग भी प्रतिस्पर्धा के कारण पूरी तरह निचोड़ लिये जाते थे। उन्हें भी अपने नफ़े की चिन्ता तो रहती ही थी। वे क़ीमत कम कर करके शराब की खपत को घटा कर अपना नफ़ा सीधा करने की कोशिश करने लगे। प्रजा पर दोनों ओर से प्रयोग शुरू हुए। सरकार की ओर से दूकानें तो कम की जाने लगीं किन्तु इस बात की बड़ी सावधानी रक्खी गई कि शराब की बिक्री कम न होने पावे। इसलिए बड़ी चतुराई के साथ नई दूकानें, बाज़ार, देहात का रास्ता या सड़क तथा मिल-कारखानों के पड़ौस में ही खोली जातीं। फलतः प्रजा में घोर शराबखोरी फैलने लगी। यह देख उन्नीसवीं सदी के अन्तिम हिस्से में अनेकों संयम-संस्थायें खुलने लगी। देश में मद्यपान निषेधक साहित्य की बाढ़ आ गई। इस विषय पर नाटक, प्रहसन, उपन्यास आदि लिखे जाने लगे। शराबखोरी को दूर करने को भारत सरकार से कई बार प्रार्थना की गई। परन्तु व्यर्थ। अन्त में मामला इंग्लैंड की साधारण-सभा तक पहुँचा। हाउस ऑफ कामन्स ने तारीख ३० अप्रैल १८८९ को एक प्रस्ताव द्वारा इस बुराई की ओर भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया और तत्काल भारतीय जनता की अशान्ति को मिटाने के लिए आज्ञा दी।

तब जा कर भारत सरकार को अपनी तमाम नीति में नीचे लिखा संशोधन करना पड़ा।

(१) शराब तथा सब प्रकार के मद्यों पर जितना हो सके कर बढ़ा दिया जाय।

(२) इसके व्यापार पर उचित नियन्त्रण रख दिया जाय।

(३) प्रत्येक स्थान की सुविधा के अनुसार मद्य और मादक पदार्थों के बेचने वाली दूकानों की संख्या को नियमित कर दिया जाय।

(४) लोकमत को जानने की कोशिश की जाय। और उसके जान लेने पर उसकी ओर एक उचित सीमा तक ध्यान भी दिया जाय।

लोकमत का उल्लेख करते हुए भी पाठकों की नजर से उसकी अवहेलना की ध्वनि न छूट सकेगी! लोक-कल्याण की तो बात ही दूर है। परन्तु लोकमत की ओर ध्यान देने में भी उचित और अनुचित सीमा का ख्याल किया जा रहा है। शब्दच्छल में भी इससे कोई बढ़ सकता है?

इस नीति पर अमल करने के लिए नीचे लिखे उपाय काम में लाना तय हुआ।

(१) आउट स्टिल या फार्मिंग पद्धति को बन्द करना।

(२) सेन्ट्रल डिस्टिलरी पद्धति को शुरू करना।

(३) देशी शराब पर ज्यादह से ज्यादह कर लगाना। सिर्फ इस बात का ख्याल रहे कि देशी शराब पर लगाये गये कर से यह कर ऊंचा न बढ़ने पावे।

(४) दूकानों को कम करना।

यह सुधार भारत सरकार ने अपने ४ फरवरी १८९० के डिस्पेच में लिख कर साम्राज्य सरकार के पास भेजा था।

अब हम देखें कि इस नीति का सरकार की आय तथा शराब की पैदावार पर क्या प्रभाव पड़ा ?

वर्ष	कुल उत्पन्न करोड़ों में	असल आय करोड़ों में
१८६१	१.६	१.५
१८६५	२.	१.७
१८६९	२.२	१.९
१८७३	२.२	२.१
१८७७	२.४	२.३
१८८१	३.४	३.३
१८८५	४.१	४.०
१८८९	४.८	४.७
१८९३	५.३	५.१
१८९७	५.४	५.२
१९०१	६.०	५.८
१९०५	८.४	८.१

इस आय की वृद्धि का कारण क्या है ? सरकार की ओर से कहा जाता है कि महकमा आबकारी अधिक अच्छी तरह से सुसङ्गठित होने के कारण शराब की गैर क़ानूनन पैदायश रुक कर सरकार की देखभाल में खोली गई दूकानों में वह बढ़ गई। और दूसरे जन-संख्या की वृद्धि के कारण भी तो कुछ आय

इसके बाद सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से ता: ७ सितम्बर १९०५ को नीचे लिखित नीति घोषित की गई :—

"सरकार उन लोगों की आदतों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती जो शराब का परिमित उपयोग। करते हैं। सरकार इसे अपने कर्तव्य से बाहर समझती है! उसकी राय में यह जरूरी है कि उनकी आवश्यकताओं को पूरी करने की व्यवस्था कर दी जाय। पर सरकार यह जरूर चाहती है कि जो लोग शराब नहीं पीते उनके मार्ग में जहां तक हो सके प्रलोभनों को कम किया जाय। अतिपान की वृत्ति को भी रोका जाय और इस नीति पर अमल करने के लिए सरकार आय के विचारों को बिलकुल गौण समझे। इस नीति पर अमल करने का सब से बढ़िया तरीका यही है कि जहां तक हो सके करों को बढ़ा दिया जाय। पर इस बात का ख्याल रहे कि करों के बढ़ाने के कारण शराब की गैर कानूनन् उत्पत्ति को कहीं उत्तेजन न मिलने पावे। या लोग इस सौम्य शराब के बदले अधिक विषैले पदार्थों का सेवन करने न लग जावें। इसी नीति को ध्यान में रखते हुए शराब की दूकानों की संख्या भी जहां तक हो सके घटा दी जाय। साथ ही प्रलोभनों को कम करने के ख्याल से समय-समय पर इस बात की कड़ी जांच होती रहनी चाहिए कि शराब की दूकानें कैसे स्थानों पर हैं। जहां तक हो सके इस विषय में लोकमत के अनुकूल रहा जाय। इस बात की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि दूकानों पर शराब अच्छी रक्खी जाय, न कि खराब जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचावे।"

टीकाकारों को निःशस्त्र करने के लिए जितनी कौशलयुक्त

अब हम देखें कि इस नीति का सरकार की आय तथा शराब की पैदावार पर क्या प्रभाव पड़ा ?

वर्ष	कुल उत्पन्न करोड़ों में	असल आय करोड़ों में
१८६१	१.६	१.५
१८६५	२.	१.७
१८६९	२.२	१.९
१८७३	२.२	२.१
१८७७	२.४	२.३
१८८१	३.४	३.३
१८८५	४.१	४.०
१८८९	४.८	४.७
१८९३	५.३	५.१
१८९७	५.४	५.२
१९०१	६.०	५.८
१९०५	८.४	८.१

इस आय की वृद्धि का कारण क्या है ? सरकार की ओर से कहा जाता है कि महकमा आबकारी अधिक अच्छी तरह से सुसङ्गठित होने के कारण शराब की गैर क़ानूनन पैदायश रुक कर सरकार की देखभाल में खोली गई दूकानों में वह बढ़ गई। और दूसरे जन-संख्या की वृद्धि के कारण भी तो कुछ आय बढ़नी चाहिए ? परन्तु वास्तव में हमें तो इस वृद्धि का कारण सरकार की धन-लोभ की वृत्ति ही दिखाई देती है ! जबतक वह बनी रहेगी—जबतक सरकार भारतीय जनता के व्यसनों से अपने खजाने भरती रहेगी, शराब की खपत कम न होगी।

इसके बाद सरकार के अर्थ-विभाग की ओर से ताः ७ सितम्बर १९०५ को नीचे लिखित नीति घोषित की गई :—

"सरकार उन लोगों की आदतों में हस्तक्षेप करना नहीं चाहती जो शराब का परिमित उपयोग। करते हैं। सरकार इसे अपने कर्तव्य से बाहर समझती है! उसकी राय में यह जरूरी है कि उनकी आवश्यकताओं को पूरी करने की व्यवस्था कर दी जाय। पर सरकार यह जरूर चाहती है कि जो लोग शराब नहीं पीते उनके मार्ग में जहां तक हो सके प्रलोभनों को कम किया जाय। अतिपान की वृत्ति को भी रोका जाय और इस नीति पर अमल करने के लिए सरकार आय के विचारों को बिलकुल गौण समझे। इस नीति पर अमल करने का सब से बढ़िया तरीका यही है कि जहां तक हो सके करों को बढ़ा दिया जाय। पर इस बात का ख्याल रहे कि करों के बढ़ाने के कारण शराब की ग़ैर कानूनन् उत्पत्ति को कहीं उत्तेजन न मिलने पावे। या लोग इस सौम्य शराब के बदले अधिक विषैले पदार्थों का सेवन करने न लग जावें। इसी नीति को ध्यान में रखते हुए शराब की दूकानों की संख्या भी जहां तक हो सके घटा दी जाय। साथ ही प्रलोभनों को कम करने के ख्याल से समय-समय पर इस बात की कड़ी जांच होती रहनी चाहिए कि शराब की दूकानें कैसे स्थानों पर हैं। जहां तक हो सके इस विषय में लोकमत के अनुकूल रहा जाय। इस बात की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि दूकानों पर शराब अच्छी रक्खी जाय, न कि खराब जो स्वास्थ्य को हानि पहुँचावे।"

टीकाकारों को निःशस्त्र करने के लिए जितनी कौशलयुक्त

भाषा का उपयोग किया जा सकता था इस प्रस्ताव में किया गया है। जहां तक शब्दों से सम्बन्ध है. सरकार के सामने लोकहित के मुकाबले में अपनी आय का सवाल गौण है। वह निर्व्यसनी लोगों के मार्ग में व्यर्थ प्रलोभन खड़े करना नहीं चाहती। उसे इस बात की कितनी चिन्ता है कि दूकान पर शराब अच्छी हो, ऐसी न हो जो स्वास्थ्य के लिए हानि कर हो। वह जनता के लाभ के लिए कर बढ़ाना चाहती है। उसमें उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं। उसे इस बात की भी चिन्ता है कि कहीं बहुत ज्यादह कर बढ़ जाने से जनता खानगी तौर से खराब शराब न पीने लग जाय या और किसी भीषण द्रव्य का सेवन न करने लग जाय। वह अतिपान को दबाना चाहती है।

पर अगर कोई सरकार के हेतु में ही शंका करने पर तुला हुआ हो तो वह इतनी सारी शुभ कामनाओं के भीतर से भी इन दुष्ट हेतुओं को ढूंढ़ सकता है।

१. सरकार अपनी आय के लिए एक राष्ट्र को व्यसनाधीन बना कर हीन-दुर्बल और मूर्ख अतएव गुलाम बनाये रखना चाहती है। वह निर्व्यसनी आदमी के शुद्ध और पवित्र जीवन व्यतीत करने के हक़ को नहीं मानती। वह मानती है शराबी के शराब पीने के हक़ को, और उसी के अनुसार उसकी शराब छुड़ाने की नहीं बल्कि उसे नियमित रूप से शराब पिलाने की व्यवस्था करना जरूरी समझती है।

२ शराबबन्दी को अपने "कर्तव्य के बाहर" समझती है।

३ कोई टीका न करने पावे इसलिए वह प्रलोभन "कम करना" चाहती है। दूकानों के स्थानों के विषय में चिंता-शीलता

जाहिर करती है। और जहां तक हो सके इस विषय में लोकमत के अनुकूल रहने की (सिर्फ) बात करती है।

४. अपनी विशाल-हृदयता व्यक्त करने के लिए वह लोक-हित के लिए तमाम आय सम्बन्धी विचारों को गौण स्थान देती है। किन्तु आवश्यकतानुसार लोग शराब अधिक न पीने पावें इस शुभेच्छा से (अपना खजाना भरने के लिए नहीं) करों को बढ़ा सकती है और बिक्री कम होते ही लोग गैर-क़ानूनन रूप से शराब पैदा न करने लग जावें इस दृष्टि से कर कम भी कर सकती है। शराब की बिक्री में वृद्धि हो जाय, या आय ज्यादह हो तो कहा जा सकता है कि सुप्रबन्ध के कारण तमाम खानगी तौर से शराब बनाने वालों का शराब बनाना असम्भव हो गया है, इसलिए उन्हें यहां आकर के शराब पीना पड़ती है।

सचमुच हमारी परमेश्वरी सरकार की वाणी में प्रभुत्व की शान के साथ-साथ वह अर्थ-पूर्ण व्यंजना होती है जिसे दरिद्र कवि अपनी रचनाओं में कभी स्वप्न भी नहीं गढ़ (मॅन्यूफॅक्चर) सकते। पर जो दोषैक दृष्टि देखने पर तुले हुए हैं उनकी हमें परवा नहीं। 'तान्प्रति नैष यत्नः' सरकार स्वयं अपना उज्वल काम दिखा रही है। इस नीति को अंगीकार करने के बाद सन् १९२०. तक की आय का ब्यौरा करोड़ों में यों है—

वर्ष	कुल आय	असल आय
१९०५	८.४	८.१
१९०८	९.४	८.९
१९११	११.४	१०.८
१९१४	१३.२	१२.६

१९१७	१५.१	१४.२
१९२०	२०.४	१९.२

इस बढ़ती हुई आय का कारण हमारी सरकार की ओर से बताया जाता है लोगों की बढ़ती हुई सम्पत्ति ❀।

उपहास की सीमा होती है। यह अंधापन है या अज्ञान? यह इस दरिद्र गुलाम देश के दुखित हृदय पर किया हुआ मर्मोपालम्भ है या विदेशियों को अंधा बनाने के लिए उनकी आँखों में फेंकी हुई धूल! हरसाल करोड़ों रुपये ले जाकर इस देश को निस्सत्व बनाने वाली कठोर हृदय सरकार के मुँह में ही यह घृणित असत्य शोभा दे सकता है। अब हमें यहां पर भारत की दरिद्रता को सिद्ध करके नहीं दिखाना है। यह प्रयास इसी देश के भाइयों के लिए है, जिन्हें भारत की दरिद्रता पुस्तकी ज्ञान की नहीं, अनुभव की वस्तु है। तथापि पाठक यह न समझें कि यह आय केवल करके बढ़ जाने के कारण है। नीचे लिखे कोष्ठक से ज्ञात होगा कि शराब की उत्पत्ति और व्यवहार भी यहां बढ़ गया था। खूबी यह कि शराब की दूकानों की संख्या तो घटती गई है परन्तु शराब की तादाद बढ़ती गई है। शराब की वृद्धि के साथ कर भी बढ़ना चाहिए था न? परन्तु पाठक करों के कोष्ठक में कुछ और ही पायेंगे। पहले यह देखें कि दूकानें किस प्रकार घटीं।

❀ (देखिए Decennial Report Moral and Material Progress of India 1911-12 पृष्ठ २०५-०६ और भारत सचिव का भारत सरकार को भेजा सरकारी पत्र २९ मई १९१४)

शराब और मादक पदार्थों की दूकानों की संख्या

वर्ष	शराब की दू०	मादक द्र० दू०	कुल
१८९९-१९००	८२११७	१९७६६	१०१८८३
१९०५-१९०६	९१४४७	२१८६५	११३३१२
१९१०-११	७१०५२	२००१४	९१०६६
१९१५-१६	५५०४६	१७३१६	७२३६२
१९१८-१९	५२६८३	१७१५२	६९८५३

दूकानें तो घटती गई परन्तु शराब की उत्पत्ति और व्यवहार बढ़ता ही गया।

देशी शराबों की खपत प्रूफ गैलनों में

प्रान्त	१९०१-०२	१९११-१२	१९१८-१९
बम्बई और सिन्ध	१७१७७७५	२९३७०३४	२६७०१५४
मद्रास	८७५७५५	१६२८१७८	१६७२४९२
पंजाब	२४८५२४	४५९७९६	४५६८३७
मध्य प्रदेश, बरार	२६६१८०	१०६६८८०	१२२११३७
युक्त प्रान्त	१२१४७९८	१५३८५०४	१४६८६२०
बंगाल, बिहार और उड़ीसा	६०८२९८	१८७६३१९	२०६९९०९
आसाम		२३८९४७	२२५५७१
ब्रह्मा		२६७८६	१२४४०९
विदेशी शराबें और डि० पद्धति से बनी देशी, श० } लिक्विडगॅलनों में		४९६११४६	५७,१८,१३७

वास्तव में जिस प्रान्त में शराब खोरी बढ़ती हुई नजर आई वहां उसे रोकने के लिए सरकार को उसी या उससे कुछ अधिक परिमाण में कर बढ़ाना चाहिए था। परन्तु कर बढ़ाये गये इस परिमाण में:—

प्रान्त	प्रतिशत शराब की वृद्धि	कर वृद्धि प्रतिशत
बम्बई	५१	३८
सिन्ध	३५	२२
मद्रास	८६	३१
पंजाब	८१	३३
युक्त प्रान्त	२०	३४
मध्यप्रदेश	३००	५४

भारत में जिस श्रेणी के लोग प्रायः शराब पीते हैं, उनकी दशा को देख कर हृदय में करुणा और बड़ा दुःख उत्पन्न होता है। वह अभागा इन दूकानों की ओर उसी तरह आता है जिस तरह पतिंगे दीपक पर आत्मनाश के लिए दौड़ते हैं। जिस समय उनके बच्चे मारे भूख के तड़पते हैं और स्त्री मातृ-प्रेम से व्याकुल हो कर बच्चों के पेट की चिंता में जलती हुई पति की राह देखती रहती है, यह अभागा अपनी दिन भर की कमाई खो कर कहीं मार-खा कर, कभी सिर से पैर तक कीचड़ में लथ-पथ हो कर, तो कभी खून से नहाया हुआ अपने शराबी दोस्तों के साथ रात के दस-बस बजे घर को आ पहुँचता है। कुटुम्ब का पालन-पोषण करने वाले अपने पति की यह दशा देखकर उस बेचारी गृहलक्ष्मी की क्या हालत होती होगी सो तो वही जाने। एक के बाद एक बुरा वर्ष आता जाता है, जीवन-संघर्ष अधिका-

धिक भीषण हो रहा है और उसमें भी यह शराब का शैतान एक ग़रीब आदमी की आय को निगल जाता है। फिर भी हमारे शासकों को यह भद्दी मज़ाक सूझती है कि लोग संपन्न होते जा रहे हैं इसलिए शराब की बिक्री बढ़ रही है। हां, इंग्लैंड में भले ही यह बात सत्य साबित होती होगी। मगर यहां तो बेचारे ग़रीब लोग प्रायः अपने जीवन की भयंकरता को भुलाने के लिए ही शराब पीते हैं और पीते हैं होश में आने पर उस भयंकरता को और भी नग्नरूप में देखने के लिए! कैसा दैव-दुर्विपाक है? प्रजा की इस भीषण परिस्थिति की उपेक्षा तो केवल धनलोलुप विदेशी सरकार ही कर सकती है।

अपने दुःख को शराब में डुबोना शुरू कर देते हैं फिर वे रुक नहीं सकते। क्योंकि वे अपनी चिन्तायें थोड़े में ही भूल नहीं सकते। साधारण पान से वे चिन्तायें दूर नहीं की सकतीं। शराब के मानी हैं गरीबों की तबाही।॥"

अगर संसार के सभी देश शराब पी सकते होते तो भी भारत वैसा नहीं कर सकता। हमारी गरीबी बहुत बड़ी है। लोगों की हालत सुधारने के लिए जितने जरूरी से जरूरी काम किये जा सकते हैं, शराब का लालच उनके आगे से हटाना उन्हीं में से एक है।"

शुष्क और ऊपरी सहानुभूति

परन्तु जब लोकमत का प्रभाव बढ़ जाता है तो सरकार को भी अपने ऊँचे स्थान से जनता के ऐसे कामों से सहानुभूति इसलिए दिखानी पड़ती है कि कहीं उसका शासन निर्विघ्न न हो जाय। भारत-भक्त ऐंड्रूज साहब इसी तरह की एक मिसाल पेश करते हैं। तारीख १२ मार्च सन् १९२५ के यंग इण्डिया में वे लिखते हैं:—

"दूसरा मनोरंजक उदाहरण जो मेरी नजर में आया, कलकत्ता का था। सन् १९२१ में जब कि असहयोग का आन्दोलन आसमान पर था, बंगाल सरकार ने नीचे लिखा हुक्म अपने अधीनस्थ अधिकारियों को भेजा था:—

"मंत्री की इच्छा है कि अब से इस महकमे के सारे अधिकारी आबकारी सम्बन्धी बातों के विषय में लोकमत का बड़ा

॥ यंगइण्डिया १६।।२।२६ और २।२।२७

भूखे बच्चे और स्त्री घर पर राह देख रहे हैं और यह मूर्ख नशे में धुत होकर यहाँ पड़ा है।

ख्याल रक्खें। खास कर दूकानों के स्थान चुनना इत्यादि बातों में विशेष सावधान रहें।"

इसके बाद हुक्म में अधिकारियों से कहा गया है कि वे अपने वाणी, व्यवहार और काम से कभी यह न जाहिर होने दें कि वे असहयोगियों के मुकाबले में संयम की हलचल में कम दिलचस्पी ले रहे हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें प्रजाजनों में से ऐसे लोगों की सहायता लेनेके लिए भी कहा गया है जो उक्त बातों में दिलचस्पी लेते हैं। इत्यादि! ये सब बातें अच्छी हैं। किन्तु व्यवहार में उनका पालन कहां तक होता है? एक शख्स ने जो कि वहां की बातें और परिस्थिति के जानकार हैं एँड्रयूज साहब को लिखा था कि बोर्ड को Wholesale लायसेन्सेस (थोक व्यापार के परवानों) में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। छः महीने से अधिक समय तक के परवाने देने में भी उसे कुछ कहने-सुनने का अधिकार नहीं है। मतलब यह कि बोर्ड न किसी के शिकायत करने पर किसी ठेकेदार की दूकान को उठा सकता है न परवानों को घटाने में वह समर्थ है। आबकारी विभाग नाम-मात्र के लिए मन्त्रियों के हाथों में है। मगर प्रजा को इससे कोई लाभ नहीं।

भारत में शराब की खपत हानिकर परिमाण में नहीं है

जब यह दलील अथवा पोल भी प्रगट हो जाती है तब कहा जाता है कि शराब दी तो जाती है (क्योंकि वह मनुष्य मात्र का हक है!) मगर वह इतनी नहीं होती जो आरोग्य की दृष्टि से मनुष्य के लिए हानिकर हो। मि० जॉन मैथी ने मद्रास काउ-

न्सिल में भाषण देते हुए कहा था, कि यदि आप मद्रास में शराब के व्यवहार के ठीक-ठीक अङ्क जानना चाहते हों तो काम में लाई गई शराब में जो वृद्धि हुई सिर्फ उसपर विचार न करें, बल्कि यह हिसाब लगा कर देखें कि वह सारी जन-संख्या के फी आदमी के हिस्से में कितनी आई ? आपको केवल इस तरह हिसाब नहीं लगाना चाहिए कि शराब पीने वालों में से हर एक आदमी ने कितनी शराब पी है बल्कि उसका तुलनात्मक अध्ययन करना चाहिए। एक कमाऊ अर्थ सचिव या पश्चिमी अर्थशास्त्री की दृष्टि से यह दलील जरूर निर्दोष होगी, किन्तु एक नीति-शास्त्री या जिस के जीवन-मरण का सवाल इस समस्या में छिपा हुआ है, उसकी दृष्टि से अथवा एक उन्नतिशील राष्ट्र की दृष्टि से इस तरह का हिसाब लगा कर अपने दिल को यह सन्तोष दे लेना हानिकर है कि हमारा देश दूसरे देशों की अपेक्षा इस बात में बहुत अच्छा है। भारत शुरू से नीति-शील और संयमी रहा है और उसके लिए तो यह मौजूदा शराब खोरी ही अत्यन्त लज्जास्पद, हानिकर और राष्ट्र-घातक है।

भारत शराब बन्दी नहीं चाहता।

जहां राष्ट्र को सामुदायिक रूप से यह नीति है वहां यदि कल कोई आ कर यह कह दे कि भारत शराब-बन्दी नहीं चाहता तो हमारे आश्चर्य की सीमा न रहेगा। पर पिछले वर्ष पंजाब के अर्थ-विभाग के कमिश्नर श्री किंग ने कहा कि स्थानीय शराब बन्दी का कानून जो वहां एक साल पहले बनाया गया था पंजाब में सम्पूर्णतया असफल रहा। वे कहते हैं कि पंजाब की २०० म्युनिसीपालटियों ने और जिला बोर्डों में से केवल १९ ने इस

कानून के अनुसार अधिकार प्राप्त करने की मांग पेश की १९ में से केवल छः म्युनिसीपालटियों ने आगे कार्रवाई की और इन छहों में जब मत लिए गये तब बहुत थोड़े मत मिले। मसलन रावलपिंडी में ७००० मतदाताओं में से केवल छः मतदाताओं ने ही मत दिये। इस प्रकार सब जगह का फल बहुत ही निराशा जनक रहा। इसपर श्री किंग ने यह मत प्रकट किया है कि पंजाब में शराबखोरी की बन्दी की मांग ही नहीं है। यदि किंग महाशय भारत की परिस्थिति से एकदम अपरिचित होते तो उनका ऐसा कहना क्षम्य हो सकता था। पर वे तो जानते हैं कि भारत में हिन्दू, मुसलमान, जैन, सिक्ख आदि सभी धर्म तथा मत-मतान्तरों द्वारा शराब की निन्दा की गई है। यहां के करोड़ों लोगों में शराब के प्रति नैतिक-घृणा का भाव भी है। इस हालत में उनके विधान को कोई समझदार आदमी अधिक महत्त्व न देगा। किन्तु यही विधान विदेशों में हमारे जीवन के विषय में घोर गलतफहमी फैला सकता है। और कितने ही स्वार्थी लोग इससे अनुचित फायदा भी उठा सकते हैं। पर हमारे लिए इसमें एक महान् पाठ है। आजकल का जमाना केवल मूक नीति-शीलता का नहीं है। हमें अपनी नीति-शीलता और अपने चरित्र की रक्षा के लिए आधुनिक साधनों का भी उपयोग करते रहना चाहिए। व्यभिचार भी एक महान पाप है। कल यदि हमारे शासकों को सूझे कि इसपर लोगों के मत लिये जांय। और वे घोषित करें कि अमुक दिन सब को फलां जगह अपने मत दे देना चाहिए। एक मामूली भारतीय तो इसी ख्याल से वहां न जायगा कि यह कैसा बेवकूफ सवाल है कि "व्यभिचार चाहते हो या

नहीं ? हाथ उठाओ।" यह तो प्रत्यक्ष हमारी नीति और धर्म-शास्त्रों का अपमान है। हम इसमें शरीक नहीं होंगे।"

देहात में रहने वाले करोड़ों भारतीयों को पता भी न होगा कि देश में क्या हो रहा है। लोगों में अभी इतनी जाग्रति नहीं है कि वे सामाजिक दोषों को देख कर अधीर हो उठें। यह बड़े ही दुःख की बात है। हमारे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता जितनी जल्दी समाज को जागृत करके इन बुराइयों को दूर करने के लिए उसे अपनी बुलन्द आवाज उठाने के लिए प्रवृत्त करेंगे, उतना ही अच्छा है। प्रत्येक बुराई की सामुदायिक रूप से निन्दा करने और उसे दूर करने का प्रयत्न होना इस समय अत्यन्त जरूरी है। "संघे शक्तिः कलौ युगे"। महज अपने-अपने घर पर बैठ कर किसी बात को बुरी कहना या उसे न करना काफी नहीं होता बल्कि उन बुराइयों का सामूहिक रूप से प्रत्यक्ष विरोध और उन्मूलन करना जरूरी है।

प्रत्यक्ष और पहली कठिनाई।

पर हम देखते हैं कि सरकार उस बात का प्रत्यक्ष विरोध बर्दाश्त नहीं कर सकती, जिसमें उसका गहरा स्वार्थ होता है। यों साधारणतया देखते हुए शराब की बन्दी करना एक शुद्ध लोकोपकारी काम है। वह मनुष्य को आर्थिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक बरबादी से बचाती है। ऐसे लोकोपकारी काम में भी जो सहानुभूति व्यक्त नहीं करता, उसे समाज नीची नजर से देखता है। अतः सरकार कभी संयम (Temperance) सम्बन्धी हलचलों से सहानुभूति व्यक्त करने में किसी से पीछे नहीं रहती। परन्तु चूंकि इसका सम्बन्ध प्रत्यक्ष उसके स्वार्थ से है, इस

लिए उसे बन्द भी करना नहीं चाहती। प्रजापक्ष से जब इस काम के लिए कोई प्रयत्न किया जाता है, तब सार्वजनिक अशान्ति के बहाने वह ऐसी हलचलों को कुचल देती है। देशी राज्यों का भी एक ताजा नमूना लीजिए त्रावणकोर एक सुधरा हुआ राज्य समझा जाता है। वहां के कुछ मिशनरियों को शराब बन्दी के लिए कुछ प्रयत्न करने की इच्छा हुई। शराब की दुकानों के सामने पहरा देने की योजना उपयुक्त समझी गई। नेता थे डॉ० पैरट जो एक प्रसिद्ध सुशील अहिंसावादी सज्जन हैं। इस सीधी सी बात से अधिकारियों में खलबली मच गई। शीघ्र ही कोट्टयम डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट का नीचे लिखा नोटिस उन्हें मिला:—

"चूंकि कोट्टायम के डिस्ट्रिक्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ पुलिस के द्वारा यह मेरी नजर में लाया गया है कि तुम लोगों को शराब की दुकानों के सामने पहरा देने तथा दूसरे प्रकार के गैर क़ानूनी काम करने के लिए उकसाने वाली स्पीचें देते हो, और यह कि इन स्पीचों से सार्वजनिक शान्ति का भंग होने तथा सरकार के अधिकार के निन्दित होने की आशंका है, मैं इस नोटिस द्वारा १८९५ के चौथे रेगुलेशन की धारा २६ के मुताबिक तुम्हें कड़ा हुक्म देता हूँ और आज्ञा करता हूँ कि तुम आज से कोट्टायम जिले के अन्दर कोई भाषण न देना"। इसी लिए महात्मा गांधी की अहिंसा इस काम में अत्यन्त फ़ायदे मन्द है। सन् १९२१ में शराब की दुकानों पर पहरे दिये गये। कुछ समय तक वे पूर्ण रूपेण अहिंसात्मक भी रहे और सरकार बराबर स्वयं सेवकों को सार्वजनिक अशान्ति के बहाने गिरफ़्तार भी करती गई, परन्तु जब स्वयंसेवक अधिक उकसाये जाने लगे तब उनके लिए अहिंसा

का पालन करना मुश्किल हो गया। हिंसा की वृत्ति सिर ऊँचा करने लगी और पहरा बन्द कर देना पड़ा। आज भी जो कोई कुछ काम करना चाहें उनके लिए यह मार्ग खुला है। परन्तु लोगों को शराब की दूकानों के सामने समझाने की अपेक्षा उन्हें सुशिक्षा द्वारा घर पर शान्तिपूर्वक समझाना अधिक अच्छा है।

परन्तु सरकारी अधिकारी यह काम नहीं कर सकते। हाल ही में इसका सबूत मदरास सरकार ने दिया है।

सुधारों के वरदान ने भारतीय जनता पर कई उपकार किये हैं। देश का खर्चा बढ़ जाना उन्हीं उपकारों में से एक है। अधिकारियों की तनख्वाहें बढ़ाई गई हैं। कई नये विभाग भी खोले गये हैं। मदरास का स्वास्थ्य-रक्षक-विभाग इसी योजना का फल है। इस विभाग के कार्यकर्ताओं से यह आशा की जाती है कि वे जनता को हैजा मलेरिया आदि के विषय में आवश्यक शिक्षा दें। स्वास्थ्य-रक्षक विभाग के काम को देखते हुए शायद उसके कार्यकर्ताओं का ख्याल हो गया कि वे सभी लोकोपकारक काम कर सकते हैं। मालूम होता है वे कहीं सरकार से यह भी पूछ बैठे कि क्या हम शराब खोरी के विरुद्ध भी प्रचार कर सकते हैं? सरकार ने शांति पूर्वक उत्तर दिया, "सरकार का ख्याल है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य-रक्षक कर्मचारियों को शराबखोरी के विरुद्ध कोई प्रचार कार्य नहीं करना चाहिए।"

सुज्ञ पाठक समझ गये होंगे कि इस एक वाक्य के अन्दर कितना अर्थ भरा हुआ है। श्री राजगोपालाचार्य के दृष्टि-पथ में कहीं यह हुक्म आया। उन्होंने उसे ले कर महात्माजी के अवलो-

कनार्थ भेज दिया। तब यंग इंडिया में उसे प्रकाशित करते हुए महात्माजी लिखते हैं—

"यह ध्यान देने योग्य है कि शराबखोरी के विरुद्ध प्रचार कार्य को रोकने के लिए कोई कारण नहीं दिया गया है। परन्तु यदि कोई लोकप्रिय सरकार होती तो उससे यही आशा रक्खी जा सकती थी कि वह इन स्वास्थ्य-रक्षक अधिकारियों को शराब से शरीर पर होने वाले दुष्परिणामों के सम्बन्ध में लोगों को पूरे तौर पर समझाने के लिए स्पष्ट सूचनायें देती। वह उन्हें लोगों को यह समझाने के लिए कहती कि मनुष्य के शरीर पर शराबखोरी से कैसा भयंकर परिणाम होता है। और जहां कहीं शराब ने अपना घर कर लिया है वहां उसने कैसी भयंकर हानि पहुँचाई है। इसके चित्र 'मेजिक लॅटर्न' के द्वारा जनता को दिखाने के लिए भी वह इन अधिकारियों को आदेश देती। परन्तु वर्तमान सरकार से ऐसी आशा करना पागलपन है। इस प्रकार तो शराब के दूकानदार से शराब के लिए आनेवाले ग्राहकों को उस मृत्यु के पंजे में न फंसने की चितावनी देने की भी आशा की जा सकती है। और भारत में जितनी भी शराब की दूकानें हैं क्या सरकार उनकी मालिक नहीं है? टैक्स के इन्हीं पचीस करोड़ रुपयों से जो उससे वसूल होते हैं, हम अपने बालकों को विश्वविद्यालयों की शिक्षा देते हैं। इसीलिए तो सरकार ब्रिटेन की छत्र-छाया को जबरदस्ती हमारे ऊपर लादने में समर्थ होती है। जबतक लोग अपने कर्तव्य को न समझेंगे और सरकार की शराबखोरी की नीति का सक्रिय विरोध करने की शक्ति का

का पालन करना मुश्किल हो गया। हिंसा की वृत्ति सिर ऊँचा करने लगी और पहरा बन्द कर देना पड़ा। आज भी जो कोई कुछ काम करना चाहें उनके लिए यह मार्ग खुला है। परन्तु लोगों को शराब की दूकानों के सामने समझाने की अपेक्षा उन्हें सुशिक्षा द्वारा घर पर शान्तिपूर्वक समझाना अधिक अच्छा है।

परन्तु सरकारी अधिकारी यह काम नहीं कर सकते। हाल ही में इसका सबूत मदरास सरकार ने दिया है।

सुधारों के वरदान ने भारतीय जनता पर कई उपकार किये हैं। देश का खर्चा बढ़ जाना उन्हीं उपकारों में से एक है। अधिकारियों की तनख्वाहें बढ़ाई गई हैं। कई नये विभाग भी खोले गये हैं। मदरास का स्वास्थ्य-रक्षक-विभाग इसी योजना का फल है। इस विभाग के कार्यकर्ताओं से यह आशा की जाती है कि वे जनता को हैजा मलेरिया आदि के विषय में आवश्यक शिक्षा दें। स्वास्थ्य-रक्षक विभाग के काम को देखते हुए शायद उसके कार्यकर्ताओं का ख्याल हो गया कि वे सभी लोकोपकारक काम कर सकते हैं। मालूम होता है वे कहीं सरकार से यह भी पूछ बैठे कि क्या हम शराब खोरी के विरुद्ध भी प्रचार कर सकते हैं? सरकार ने शांति पूर्वक उत्तर दिया "सरकार का ख्याल है कि सार्वजनिक स्वास्थ्य-रक्षक कर्मचारियों को शराबखोरी के विरुद्ध कोई प्रचार कार्य नहीं करना चाहिए।"

सुज्ञ पाठक समझ गये होंगे कि इस एक वाक्य के अन्दर कितना अर्थ भरा हुआ है। श्री राजगोपालाचार्य के दृष्टि-पथ में कहीं यह हुक्म आया। उन्होंने उसे ले कर महात्माजी के अवलो-

कनार्थ भेज दिया। तब यंग इंडिया में उसे प्रकाशित करते हुए महात्माजी लिखते हैं—

"यह ध्यान देने योग्य है कि शराबखोरी के विरुद्ध प्रचार कार्य को रोकने के लिए कोई कारण नहीं दिया गया है। परन्तु यदि कोई लोकप्रिय सरकार होती तो उससे यही आशा रक्खी जा सकती थी कि वह इन स्वास्थ्य-रक्षक अधिकारियों को शराब से शरीर पर होने वाले दुष्परिणामों के सम्बन्ध में लोगों को पूरे तौर पर समझाने के लिए स्पष्ट सूचनायें देती। वह उन्हें लोगों को यह समझाने के लिए कहती कि मनुष्य के शरीर पर शराबखोरी से कैसा भयंकर परिणाम होता है। और जहां कहीं शराब ने अपना घर कर लिया है वहां उसने कैसी भयंकर हानि पहुँचाई है। इसके चित्र 'मेजिक लैंटर्न' के द्वारा जनता को दिखाने के लिए भी वह इन अधिकारियों को आदेश देती। परन्तु वर्तमान सरकार से ऐसी आशा करना पागलपन है। इस प्रकार तो शराब के दूकानदार से शराब के लिए आनेवाले ग्राहकों को उस मृत्यु के पंजे में न फंसने की चितावनी देने की भी आशा की जा सकती है। और भारत में जितनी भी शराब की दूकानें हैं क्या सरकार उनकी मालिक नहीं है? टैक्स के इन्हीं पचीस करोड़ रुपयों से जो उससे वसूल होते हैं, हम अपने बालकों को विश्वविद्यालयों की शिक्षा देते हैं। इसीलिए तो सरकार ब्रिटेन की छत्र-छाया को जबरदस्ती हमारे ऊपर लादने में समर्थ होती है। जबतक लोग अपने कर्तव्य को न समझेंगे और सरकार की शराबखोरी की नीति का सक्रिय विरोध करने की शक्ति का

विकास नहीं कर लेंगे तब तक भारत से शराब खोरी का उठ जाना असम्भव है।"

घाटे का प्रश्न

पर शराब बन्दी के ख़िलाफ़ जो सब से बड़ी दलील उठाई जा सकती है वह है धन की। पार साल जब भड़ौंच की अंजुमने इस्लाम ने बम्बई सरकार से शराब बन्दी के लिए अर्ज़ किया, तो बम्बई के गवर्नर ने उन्हें साफ़ साफ़ कह दिया कि अगर आपको शराब बन्दी इतनी प्रिय और आवश्यक मालूम होती है तो आप सरकार के लिए कोई ऐसा नया तरीका ढूंढकर के दिखा दीजिए जिससे सरकार के खजाने में शराबखोरी से पैदा होने वाली आय के उठ जाने पर घाटा न हो। मतलब यह कि शराब खोरी बन्द करना सरकार का काम नहीं है। अगर समाज-सुधारक उसे चाहते हैं. तो प्रजा को जल्दी संयमशील तथा निर्व्यसनी बनने देने के लिए सरकार को कोई मूल्य दें। महात्मा गांधी ने इसका उपाय यह बताया है "मैं कहता हूँ कि अब शराब बन्दी के लिए करों के भार से दबी जाने वाली प्रजा पर नये कर लादना सरासर अन्याय है। मौजूदा खर्चे को घटाकर ही शराब बन्दी होनी चाहिए। और फौजी महकमे का व्यय एक ऐसी चीज है जिसमें आसानी से कमी की जा सकती है।"

मतलब यह कि शराब खोरी की बन्दी प्रजा के कल्याण का ही प्रश्न है और उसीको इसे हाथ में लेना चाहिए। यह आशा करना वृथा है कि शासक इस बुराई का अन्त कर देंगे। यह 'स्वराज्य' में हो सकता था। पर स्वराज्य में भी प्रजा को अपनी

इच्छा तो जाहिर करनी ही पड़ती है। फिर यहां तो दूसरों की सत्ता है। शराब हमारे देश के लिए उतनी ही हानिकर है जितना विदेशी कपड़ा बल्कि उससे भी ज्यादह। मदरास के रेवेरेण्ड फर्ग्यूसन शराब बन्दी पर लिखे अपने पैम्फ्लेट में लिखते हैं।

"कोई देश फिर वह चाहे कैसा भी धनी और उन्नत क्यों न हो, शराब खोरी का खर्च बरदाश्त नहीं कर सकता। क्योंकि शराबखोरी से राष्ट्र नाश की सीमा तक पहुँच जाता है बल्कि कभी कभी तो उससे भी नीचे गिर जाता है। भारतवर्ष तो अभी बड़ा ही गरीब देश है। मूलधन की कमी के कारण वह दरिद्र है। शिक्षा की कमी के कारण वह दीन है। स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्य में हीन है। रहने के मकान, खेती, हुनर, उद्योग, गांवों में आपस में व्यवहार करने के लिए सुभीते के साधन इत्यादि सभी बातों में वह अकिंचन है। प्रत्येक बात में सुधार और उन्नति की अत्यन्त आवश्यकता है। अगर किसी का ख्याल हो कि ऐसी बात नहीं है तो वह बतावे। नशीली चीजों का व्यवहार करने की शक्ति भी उसमें नहीं है। क्योंकि उससे महान् आर्थिक हानि होती है जिसे बरदाश्त करना उसकी शक्ति के बाहर है। हम यह नहीं कह सकते कि वह इसमें कितने रुपये बरबाद करता है। परन्तु इस शराबखोरी की आय से सरकार जितना रुपया वसूल करती है उससे कुछ अन्दाजा लगाया जा सकता है। सरकार इससे लगभग २०,००,००,००० सालाना की आमदनी होती है। किसी-किसी का ख्याल है कि सरकार इनमें से जितना वसूल करती है उससे शराब और दूसरी नशीली चीजों में सब मिला कर प्रजा का पांच गुना अधिक धन खर्च

होता है। और कोई इसके कुल खर्चे का सिर्फ तीन गुना ही अधिक खर्च बताते हैं। यदि हम लोग इन दो अन्दाजों में से बीच का मार्ग ग्रहण करें और कुल खर्च को ८०,००,००,००० मान लें तो मैं नहीं समझता कि उसमें बड़ी गलती होगी। अब इस अदद में से बहुत बड़ा हिस्सा तो मजदूर लोगों की कमाई में से ही जाता है—उन्हीं लोगों की आमदनी से—जिन्हें अपनी अपने कुटुम्ब की और अपनी जाति की उन्नति के लिए बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि हम यह मान लें कि शराब और नशीली चीजों पर जितना खर्च होता है उसमें से ३/४ हिस्सा गरीब और मजदूर वर्ग की तरफ से आता है तो कोई ६०,००,००,००० का बोझ वे उठाते हैं। यदि इतनी बड़ी रकम को, जो शराबखोरी में बरबाद होती है, बचा कर मकान बनवाने तथा राष्ट्र को तैयार करने में लगाया जाय तो भारतवर्ष के गरीब लोगों को स्वावलंबी बनाने के कार्य में क्या क्या किया जा सकता है? थोड़े ही दिनों में बड़े-बड़े शहरों में गंदेपन के स्थान पर सफाई दाखल हो जायगी और गांवों के विनम्र घरों में उन्नति दिखाई देगी।"

पर महात्मा गांधी लिखते हैं कि "इस आर्थिक हानि के बनिस्बत नैतिक हानि और भी अधिक होती है। शराब से दोनों का अधःपात होता है। उसका इस्तेमाल करनेवाले और साथ ही व्यापार करनेवाले का भी। शराबी अपनी माता, बहन, और पत्नी के भेद को भूल जाता है और ऐसे-ऐसे कुकर्म कर बैठता है जिनके लिए यदि वह होश में हो तो उसे बड़ी शरम मालूम हो। जिन लोगों का मजदूरों के साथ कुछ भी सम्बन्ध है, वे जानते हैं कि शराब के कारण उनकी कैसी दुर्गति होती है। दूसरे वर्ग

भी कुछ अच्छे नहीं हैं। + + बैरिस्टर लोग भी शराब पीकर गटरों में पड़े हुए पाये गये हैं! हां, इन अच्छी स्थिति के लोगों की संसार में सब जगह पुलिस के द्वारा रक्षा की जाती है। पर बेचारे ग़रीब को उसकी ग़रीबी के कारण सजा होती है।"

प्रत्येक राष्ट्र में राजा या प्रजा किसी बुराई का मूलोच्छेदन दो साधनों से कर सकते हैं। एक तो कानून बना कर और दूसरे लोक-शिक्षा द्वारा। हम देख चुके हैं कि अभी हमें अपने शासकों से इस बुराई का अन्त करने में कहां तक सहायता प्राप्त हो सकती है। उस हालत में भारत में शराबबन्दी के प्रश्न को हल करना केवल और पूर्णतया राष्ट्र के प्रयत्न पर ही निर्भर है। और राष्ट्र क्या नहीं कर सकता? वही तो शक्ति है। उसीकी शक्ति से तो शासक शासक है। जब तक उसे अपनी शक्ति का भान नहीं होता, तबतक कोई भले ही उससे मनमानी खिलवाड़ कर ले, उसका मनचाहा दुरुपयोग कर ले। पर ज्यों ही उसे अपनी शक्ति का भान हो जाता है, पराधीनता और स्वार्थी शासक उस तरह विलीयमान हो जाते हैं जैसे सूर्य के सामने अन्धेरा। १९२१ में संसार ने देख लिया था कि भारत जागने पर कितनी तेजी से बढ़ सकता है। वह आज जागृत-चीन की लीला देख रहा है। आज हमारी निद्रा टूट गई है। बस आलस्य को छोड़ कर काम में जुट पड़ने भर की देर है।

यह आवश्यक नहीं कि सब लोग अपने अपने घर बार छोड़कर संयम का उपदेश करने के लिए निकल पड़ें। नहीं, जहां रहें वहीं अपनी वाणी, व्यवहार और उदाहरण से संयम का वातावरण पैदा कर उच्च प्रकार की लोक-शिक्षा शुरू कर दें। समाज

अपने एक हाथ में गीता या रामायण रखना चाहिए और दूसरे हाथ में चरखा। क्योंकि जो लोग उपदेशों से शुद्ध हो जाते हैं उनको अपनी प्रतिज्ञा पर अटल बनाये रखने के लिए चरखा सब से बढ़िया साधन पाया गया है। महात्माजी लिखते हैं:—

रानी परज के लोगों ने भी शराब को छोड़ दिया था पर जिन शराब छोड़नेवालों ने अपना ध्यान बटाने तथा समय का उपयोग करने के लिए चरखे का आश्रय लिया, उन्हें शराब की प्यास ने फिर नहीं सताया। यही नहीं, बल्कि उनकी आय भी दूनी हो गई। मद्यपान निषेध करनेवाले सुधारकों का यह सार्वत्रिक अनुभव है कि शराब छोड़ने की प्रतिज्ञा लेने वाले अगर अपने समय को किसी उपयोगी काम में नहीं लगा देते तो उनकी वह प्यास फिर से लौट आती है। और तब उसे रोकना उनके लिए असम्भव हो जाता है। "स्वयं गुजरात की रानीपरज जाति के इस आत्मशुद्धि के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे। पर जो अपना समय किसी उपयोगी काम में लगा देते हैं उनकी दशा कैसे सुधर जाती है? उसी जाति के एक-दो उदाहरण सुनिए।

कोयला रयला की स्त्री मौजा शठबाब तेहसील:—"मेरा पति जब शराब पीता था तब ताड़ीवाले के यहां नौकरी पर जाता था। जब ताड़ी के खेत में नौकरी करने का मौसम आता तभी इधर हमारी फसल का भी समय आ जाता। वह फसल काटने के लिए वहां हाजर नहीं रहता था। और छोटे छोटे बच्चों के कारण मैं भी फसल नहीं काट सकती थी। न बंदर वगैरा जानवरों से मैं फ़सल का बचाव कर सकती थी। इसलिए बड़ा नुकसान होता

शराब से व्यभिचार बढ़ता है, क्योंकि शराबी पति अपनी पत्नी के प्रेम को खो बैठता है।

था। साहूकार का कर्ज़ा वैसे ही रक्खा जाता। क्यों न रहे? यहां तो पेट भरने को मुश्किल से बच पाता था। हम तो प्रायः आटे को पानी में डाल कर के पतलासा पेय बना कर सो रहते। जेठ-असाढ़ में तो वह भी न मिलता। ज्यों-त्यों करके दिन कटते थे। तिस पर पति-देवता ताड़ी पीकर रात को नौ दस बजे लौटते और खाने को मांगते। घर में जो होता, मैं उनके सामने रख देती। पर न होता तो हर कोई कारण ढूंढ़ कर मुझे मारते। मारते भी इतना कि दूसरे दिन मैं जमीन से खड़ी तक नहीं हो पाती थी। जब से उन्होंने शराब को छोड़ दिया, मुझे बड़ा आराम हो गया है। तब से उन्होंने मुझे कभी नहीं मारा है। खेती-बाड़ी की देख-भाल और काम-काज भी हो जाया करता है। इसलिए अब हमें खाने-पीने की तकलीफ भी नहीं रही। यही नहीं बल्कि लपसी के बदले अब तो सुख से रोटी और कभी कभी तो चावल भी मिल जाते हैं। घर में खाना पकाने के लिए तांबे पीतल के बर्तन भी हो गये हैं। मैं चरखा चलाना सीख गई हूं। इस साल मैंने अपने पहनने के कपडे बाजार से नहीं मंगवाये। अपने हाथ के कते सूत के ही कपडे बनवाने का विचार है। अब तो मेरे ओढ़ने के लिए एक जोट भी हो गया है। अब तक तो दिन में पहनने की धोती को ही रात में ओढ़ कर पड़ी रहती थी। जो लोग चरखा चलाने लग जाते हैं उनसे शराब की आदत छूट जाती है। जिन लोगों ने चरखा लेने के लिए अपने नाम लिखाये है, वे सब पीने वाले हैं। पर अब वे जरूर छोड़ देगें। आपके जैसे लोग कुछ रोज के लिए, यहां आकर रहें तो लोग चरखा चलाने लग जावें और शराब को छोड़ दें।

(२) हरजी भूखिया मांकणजर तहसील मांडवी—मैंने 'देवी के आन्दोलन' के समय से शराब-ताड़ी छोड़ दी है। तब से, घर में बरकत आ गई। अब तो गाय-भैंस भी है। भगवान की दया से दूध-घी भी मिल जाता है। जब मैं शराब पीता था तब घर में पानी पीने को लोटा तक नहीं था। अब तो तांबे-पीतल के बरतन भी हो गये हैं। न मेरे सिर कोई कर्जा है। मैं और कोयला राधेश साथ-साथ चरखा लाये। पिछले वर्ष मैंने १४॥ सेर सूत कांता। उसमें से मैंने अपने, मेरी स्त्री के और चार बच्चों के लिए भी कपड़े बुनवा लिए थे। चरखा चलाने से मुझे इस साल कम से कम ५०) का फ़ायदा हुआ। इसमें वह पैसा भी जोड़ दिया जाय जो शराब छोड़ने के कारण बचा तब तो फ़ायदे की रकम काफ़ी बड़ी दिखाई देगी।

(३) छगदा लाला, शठवाव ता. मांडवी। मैं खूब शराब पीता था पर माताजी आईं तब सब लोगों के साथ-साथ मैंने भी शराब छोड़ दी। अब तो मुझे छोड़ कर मुहल्ले के सब लोग खाने पीने (मांस खाने और शराब पीने) लग गये। हमारा घर अकेला रह गया। न कोई हमारे घर आता न हमसे कोई बोलता था। पर हम तो भगवान के भरोसे अपनी टेक पर डटे रहे, और चरखे लाकर सूत कातने लग गये। उसके कपड़े बना-कर घर भर के कपड़े सिलवाये। घर में ९ स्त्रियाँ और चार पुरुष मिल कर १३ मनुष्य हैं। प्रत्येक स्त्री के लिए कम से कम पांच रुपये की धोतियाँ और चोलियों के लिए आठ आने का एक कपड़ा तो साल में लग ही जाता था, और प्रत्येक पुरुष के लिए भी कम से कम ५। ७ रुपये के कपड़े लग जाते थे।

इस तरह प्रति वर्ष घर में कम से कम ७५) का कपड़ा खरीदना पड़ता था। जब से शराब छोड़ी है और चरखे को सम्भाला है एक कोड़ी का कपड़ा नहीं लाया हूं। अब तो मेरी देखा-देखी मुहल्ले के दूसरे भाइयों को भी चरखा लाने की इच्छा हुई। वे भी 'खाना-पीना' छोड़कर अब चरखा चलाने लग गये। इस तरह इसी मुहल्ले के दस पन्द्रह घर शुद्ध हो गये। और अब सभी सुखी हैं।"

(४) वेलिया गोस्ता गाम तलाब खरोत तहसील मांडवी:—

"शराब और ताड़ी पीने में शठवाव का कोयला रघला मेरा दोस्त था। उसने आ कर मुझे समझाया। उसके कहने से मैंने शराब-ताड़ी छोड़ दी और चरखा लाकर के कातने लगा। गांव के सब लोग 'खाते पीते' थे और अकेला मेरा घर शुद्ध था। इस लिए सब ने मेरे घर पर आना-जाना बन्द कर दिया। मेरे लड़के की बहू भी अपने बाप के घर चली गई, क्योंकि वह खाने पीने वाला था! पार साल जब मैंने मकान बनवाया तो मेरे यहां कोई मजदूरी के लिए तक नहीं आया। मेरे खेत पर भी कोई मजदूरी करने के लिए आने को तैयार न होता। इसलिए मुझे बड़ी तकलीफ हुई। ज्यों-त्यों करके मैंने अपनी फसल को काट लिया। अब जेठ में शराब पीने वालों के यहां नाज खतम हो गया! (पैसा जब नहीं बचता था तब ये लोग घर में से नाज भर-भर के ले जाते और उससे शराब खरीद कर पीते थे) मेरे यहां तो नाज भरा था। सब को जरूरत हुई, तब मेरे यहां आने जाने लगे। जेठ में मैंने आधे गांव को नाज दिया। कई तो मेरे यहां मजूरी करने के लिए आये और कई उधार ले गये।

पर यों तो सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं। मतलब यह कि शुद्धि स्थायी तभी होती है जब उसके साथ कर्म-परायणता भी जोड़ दी जाय। ऊंचे से ऊंचा पुरुष भी अकर्मण्यता से पतित हो जाता है तब भला जो व्यसन को छोड़ कर ताजे होते हैं, उनके चित्त को हमेशा शुद्ध बनाये रखने के लिए काम की कितनी ज़रूरत होनी चाहिए ?

शराब की बन्दी और देशी राज्य।

देशी राज्य तो हमारे ही हैं। और हम उनके हैं। हम उनमें इस विषय में भारत सरकार की अपेक्षा अधिक आशा रक्खें तो शायद अनुचित न होगा। देशी राज्यों को तो भारतीय नीतिशीलता का नमूना होना चाहिए। वे यदि अपने शासन की सफलता के प्रमाण पत्र रेसिडेन्सी दिल्ली और शिमला के शैल-निवासों में ढूंढ़ने के बजाय अपने प्रजाजनों में ढूंढ़ें, तो हमारे ख्याल से वे कहीं अधिक शक्तिशाली और सच्चे अर्थ में शक्तिशाली, सफल तथा लोकप्रिय हो सकेंगे। महात्माजी ने अपने काठियावाड़ राजनैतिक-परिषद में दिये गये अभिभाषण में देशी राज्यों की आबकारी नीति के विषय में कहा था:—

अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए हमारे नरेशों को अंगरेज़ों के आबकारी विभाग की नकल करते हुए देख कर मुझे दुःख होता है। कहा जाता है कि आबकारी की बुराई तो भारत की पुरानी बुराई है। जिस तरह से यह बात कही जा रही, है मैं उसे मानने के लिए तैयार नहीं हूं। शायद प्राचीन राजा शराब के व्यापार से धन कमाते होंगे। पर उन्होंने आज की भांति लोगों

को शराब का गुलाम तो कभी नहीं बनाया था। पर यदि हम यह मान भी लें कि मेरा यह कथन गलत है, और यह फ़र्ज़ कर लें कि आबकारी आज के से रूप में ही अनादि काल से चली आई है। तो भी मैं इस अन्ध सिद्धान्त को नहीं मान सकता कि जो कुछ पुराना है वह सभी अच्छा ही है। बल्कि मैं तो यह भी नहीं मानता कि हर एक भारतीय वस्तु अच्छी ही होती है। जिनकी आंखें हैं वे देख सकते है कि अफीम तथा अन्य मादक द्रव्य मनुष्य की उच्च चेतना-शक्ति को मूर्छित कर देते हैं और उसे निरा पशु बना देते है। उन वस्तुओं का व्यापार तो साफ़ तौर पर पाप है। देशी राज्यों को चाहिए कि वे अपने राज्य की तमाम शराब की दूकानों को उठा दें और अंगरेज शासकों के सामने एक मिसाल पेश कर दें।"

क्या हम आशा करें कि भारत के देशी नरेश और उनके मंत्रीगण महात्माजी के इन शब्दों पर अमल करने की तत्परता दिखा कर अपनी प्रजा की भलाई के इस पुण्य कार्य को करके यश के भागी बनेंगे ?

शरावपरिशिष्ट

(१)

मदिरा

माध्वीकं पानसं द्राक्षं खार्जूरं ताल मैक्षवं।
मैरेयं माक्षिकं टाङ्कं मधूकं नारिकेलजम् ॥
मुख्य मन्न विकारोत्थं मद्यानि द्वादशैव च ॥ इति जटाधरः

धातकीरसगुडादि कृता मदिरा गौडी; पुष्पद्रवादि मधुसारमयी मदिरा माध्वी; विविधधान्यजाता मदिरा पैष्टी; तालादि रसनिर्यासकृता मदिरा सैन्धी हालाच; शालिषाष्टिकपिष्टादि कृतं मद्यं सुरा स्मृता।

पर्युषितमल्पमेलनमम्लंवा पिच्छिलं विगन्धमथवा।
दोषावहमविशेषान्मद्यं ह्यं विवर्जयेत् ॥
मद्य-प्रयोगं कुर्वन्ति शूद्रादिषु महार्तिषु।
द्विजैस्त्रिभिस्तु न ग्राह्यं यद्यप्युज्जीवयेन्मृतम् ॥
अन्ये द्वादशधा मद्य-भेदान्याहुर्मनीषिणः।
वक्तस्यान्तर्भय [illegible] ॥

सुरापानं सकृत्कृत्वा योग्निवर्णां सुरांपिवेत् ।
सपातयेद्थात्मानमिह लोके परत्र च ॥— अङ्गिरा
असकृत् ज्ञानतः पीत्वा वारुर्णीं पतति द्विजः ।
मरणं तस्य निर्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥—भविष्ये ।
अगम्यागमने चैव मद्यगोमांसभक्षणे ।
शुद्धयै चांद्रायणं कुर्यात् नदीं गत्वा समुद्रगाम् ॥
चान्द्रयणे ततश्चीर्णे कुर्याद्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गांच दद्याद्विप्राय दक्षिणाम् ॥—पराशरः
अग्नेयं चाप्यपेयंच तथैवास्पृश्यमेवच ।
द्विजातीनामनालोच्यं नित्यं मद्यमितिस्थितम् ॥
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यं विवर्जयेत् ।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसंभाष्यो द्विजोत्तमः ॥
भक्षयित्वाप्यभक्ष्याणि पीत्वा पेयान्यपि द्विजः ।
नाधिकारी भवेत्तावद् यावत्तन्नजहात्यधः ॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः ।
अपेयानिच विप्रो वै पीत्वा तद्याति रौरवम् ॥
श्री कूर्म पुराण उपविभाग अध्याय १६
यस्तु भागवतो भूत्वा कामरागेण मोहितः ।
दीक्षितो पिबते मद्यं प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
अन्यच्च ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व वसुन्धरे ।
अग्नि वर्णां सुरां पीत्वा तेन मुच्येत किल्विषात् ॥
वराह पुराण ।
अगम्यागमनं कृत्वो मद्यगोमांस भक्षणम् ।
शुध्यै चान्द्रायाणद् विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः ।
वैश्यः सान्तपनाच्छूद्रः पंचाहोभिर्विशुध्यति ॥
गरुड़ पुराण अध्याय २२

सुरापानाद् वंचनां प्राप्य विद्वान्, संज्ञानाशं प्राप्य चैवाति घोरम् ।
दृष्ट्वा कचंचापि तथाभि रूपं, पीतं तथा सुरया मोहितेन ॥
समन्यु रुत्थाय महानुभावः, तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः ।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद, सुरापानं प्रति वै जातशङ्कः ॥
यो ब्राह्मणोऽद्य प्रभृतीह कश्चिन, मोहान् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः ।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव सस्यात्, अस्मिंल्लोके गर्हितस्यात् परे च ॥
मयाचेमां विप्रधर्मोक्तसीमां, मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके ।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणाम्, देवालोकाश्चोपशृण्वन्तु सर्वे ॥
महाभारत आदि पर्व अध्याय ७९

कितवान् कुशीलवान् क्रूरान् पाषण्डस्थांश्च मानवान् । विकर्मस्थाञ्छौण्डिकांश्च क्षिप्रं निर्वासयेत पुरात् ॥२२५॥ एते राष्ट्रे वर्तमाना राज्ञः प्रच्छन्न-तस्कराः । विकर्मक्रियया नित्यं बाधन्ते भद्रिकाः प्रजाः ॥२२६॥ मनुस्मृति ९

ब्रह्महाच सुरापश्च स्तेयोच गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग्ज्ञेयाः महापातकिनो नराः ॥ चतुर्णामपि चैतेषां प्रायश्चित्तमकुर्वताम् । शारीरं धन-संयुक्तं दण्ड-धर्म्यं प्रकल्पयेत् ॥ गुरु-तल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः । स्तेये चश्वपदं कार्यं ब्रह्महण्यशिराः पुमान् ॥

असंभोज्या असंयोज्या असंपाठविवाहिनः । चरेयुः पृथिवीं दीनाः सर्वधर्मबहिष्कृताः ॥ ज्ञाति सम्बन्धिनस्त्वेते त्यक्तव्याः कृतलक्षणाः । निर्दया निर्नमस्कारा स्तन्मनो रनु शासनम् ॥
मनुस्मृति ९-२३५-२३९

सुरां वै मलमन्नानां पाप्माच मलमुच्यते । तस्माद् ब्राह्मण-राजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ गौड़ी पैष्टीच माध्वीच विज्ञेया त्रिविधा सुरा । यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥ यक्ष-

रक्षः पिशाचान्नं मद्यंमासं सुरासवम् । तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नताहविः ॥ यस्य कायगतं ब्रह्म मद्येनाप्लाव्यते सकृत् । तस्य व्यपैति ब्राह्मत्वं शूद्रत्वं च सगच्छति ॥

११ अध्याय मनुस्मृतिः (९१-९७)

सुरापाने विकलता स्खलनं व-ने गतौ । लज्जामानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्ताक्षता भ्रमः ॥

मदात्ययः मद्यपानादिजन्य रोगविशेषः इति राज निर्घण्टः ॥ अथ मदात्ययादीनां निदानान्याह:—

विषस्य ये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपनाः ।

त एव मद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः ॥

निभक्तमेकान्तत एव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् । उत्पादयेत् कष्टतमान् विकारान् उत्पादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ क्रुद्धेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन । व्यायाम भाराध्वपरिक्षतेन ॥ वेगावरोधाभिहतेन चापि । अत्यम्लरुक्षावततोदरेण, साजीर्ण भुक्तेन तथा बलेन । उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं, करोति मद्यं विविधान्विकारान् ।

पान विकार विवृण्वन्नाह–शरीरदुःखं बलवत् प्रमोहो हृदयव्यथा । अरुचिः प्रततं तृष्णाज्वरः शीतोष्ण लक्षणम् । शिरः पार्श्वास्थि-संधीनां वेदना विद्यते यथा ॥ जायतेति बलात् जृम्भास्फुरणं वेपनं श्रमः । उरोविबन्धः कासश्च श्वासो हिक्काप्रजागरः ॥ शरीर-कम्पः कर्णाक्षिमुखरोगस्त्रिकग्रहः । छर्दिविड् भेदाकुत क्लेशो वात-पित्तकफात्मकः ॥ भ्रमः प्रलापो रूपाणाम् असतांचैव दर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरितम् ॥ प्रधर्षणं विहंगैश्च भ्रान्तं चेताः समन्यते । व्याकुलानामशस्तानां स्वप्नानाम् दर्शनानिच ॥ मदात्ययस्य रूपाणि सर्वाण्येतानि लक्षयेत् ।

ततश्च वातपित्तकफप्रधानमदात्ययानां विकारान् वर्णयित्वा सान्निपातिकस्य मदात्ययस्य निदानं लक्षणं चाह:—

"श्लेष्मोच्छ्रयोङ्ग गुरुता विरसास्यताच, विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च: । लिङ्ग परस्यतु मदस्य वदन्ति तज्ञा:, तृष्णां रुजा शिरसि सन्धिषु चापि भेद: ।।"

ततः पानाजीर्णमाह—

"आध्मान मुग्रमथवोद्गिरणं विदाहः ।
पाने त्वजीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ।।"

पुनः पान विभ्रममाह—

"हृद्गात्रतोदक फसंस्रवकण्ठधूम, मूर्च्छावमीज्वर शिरो रुजन प्रदेहाः । द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु, तं पानविभ्रम मुपन्त्यखिलेषु धीराः ।।"

कण्ठधूमः कण्ठाद्धूम—निर्गम इव ।

असाध्यानां मदात्यया दीनांलक्षणान्याह:—

दीनोत्तरोष्ठमतिशीत ममन्ददाहं, तैलप्रभास्यमतिपान हतं त्यजेच्च । जिह्वोष्ठदन्तमसितन्त्वथवापिनीलं, पीतेच यस्य नयने रुधिर-प्रभेच ।। हिका ज्वरो वमथु वेपथु पार्श्व शूला:, कासभ्रमावपि च पानहतं त्यजेत्तम् ।।

ततो गुरु पुराणे १६० अध्याये

हाला हलाहलसमं भजते वियोगान्, सेव्यं नशिष्यमनुजैः कथितं मुनीन्द्रैः । तृष्णावमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा, संजायतेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ।।

ये नित्य सेवनाद्दुष्टा मद्यस्य ननुना भृशम् ।
विषमाहार सदृशी सुरामोहनकारिणी ।।

शराब-परिशिष्ट

(२)

क्या सोम शराब है ?

जेनाइड रागोजिन, ज्यूलियल एगलिन और वॅट आदि कितने ही पश्चिमी विद्वान सोमरस को शराब समझते आये हैं। वॅट का कथन है कि सोम और कुछ नहीं अफग़ानिस्तान के अंगूरों का रस मात्र है। मिस्टर हिलेब्रण्ट का कथन है कि सोम के जो गुण-धर्म बताये गये हैं वे न तो 'हॉप' (एक कड़वी वनस्पति जिसका शराब बनाने में उपयोग होता है) और न अंगूर में पाये जाते हैं। पर मालूम होता है कि इन सभी विद्वानों ने वेदों में वर्णित उसकी बनाने की विधि तथा उसमें डाली जानेवाली चीजों पर ध्यान नहीं दिया है। साथ ही जहाँ सोम को पवित्र और अमृत के समान बताया है तहाँ मद्यपान को सप्त महापातकों में गिनाया है।

"शुचिः पावक उच्यते सोमः" (ऋ० वे० ९.२४.७) सोमरस पवित्र है और मनुष्य को शुद्ध कर देता है। आगे चल कर कहा है "दिवः पीयूषं पूर्व्यम्" (ऋ० वे० ९. ११०-८.) सोम पुरातन स्वर्गीय अमृत है। अन्यत्र एक स्तोत्र में कहा है—

ये ब्राह्मणा त्रिसुपर्णं पठन्ति ते सोमं प्राप्नुवन्ति. आसहस्रात्पंक्तिं पुनन्ति

अर्थात् जो ब्राह्मण त्रिसुपर्ण नामक स्तोत्र का पठन करते हैं वे सोमरस को प्राप्त करते हैं। और अपने साथ-साथ सहस्रों ब्राह्मणों की पंक्ति को शुद्ध कर देते हैं (यह स्तोत्र भोजन के

समय बोला जाता है। इस तरह वेदों में कई स्थानों पर सोम की प्रशंसा, बनाने की विधि आदि का उल्लेख पाया जाता है।

वास्तव में सोम एक वनस्पति का नाम है। "प्रिय स्तोत्रो वनस्पतिः" "नित्य स्तोत्रो वनस्पति" इसका पौदा खास कर आर्यावर्त में ही पैदा होता था। परन्तु आजकल वह कहीं देखने में नहीं आता। सम्भवतः या तो हम लोग उसकी पहचान भूल गये हैं या वह किसी अज्ञात स्थान में होगा। हिमालय की घाटी और सुशोम तथा आर्जिकीय (सिंधु) नदी के तीरों पर इसका उत्पत्ति-स्थान ऋग्वेद में वर्णित है। शर्यनावन् सरोवर पर भी इसके पाये जाने का उल्लेख है।

यह मुंजवान् नामक पर्वत पर भी (गिरे हिमवतः पृष्ठे मुंजवान् नाम पर्वतः) पाया जाता था। इसलिए सोम को कहीं-कहीं मौंजवत भी कहा गया है। अथर्ववेद में कहा है 'एतुदेव-त्रायमाणः कुष्ठो हिमवतस्परि। सकुष्ठो विश्वभेषजः। साकं सोमेन तिष्ठति। अर्थात् सोम-कुष्ठ नामक वनस्पति के साथ उगता है। सोम की पैदायश के स्थान के विषय में तो जरा भी मत-भेद नह है। डॉ० मूर, रागोजिन, प्रोफेसर मॅकडोनेल तथा लोक-मान्य तिलक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि सोमरस इसी वनस्पति का रस है। सोमः पवते। (पात्रेषु क्षरति)

सोम रस यूरोप की भाषाओं में नहीं पाया जाता। उसका तत्सम वा तद्भव शब्द भी नहीं है। हाँ, ईरानी साहित्य में जरूर 'होम' नामक एक शब्द पाया जाता है। वह भी एक पवित्र पेय था। कई विद्वान् इसीको सोम कहते हैं। धार्मि मत-भेद के कारण जब आर्यों के एक दल ने अपना नया उपनिवे

(ईरान) में स्थापित किया तो वहां उन्हें यह सोम नहीं मिलता था। तब उन्होंने उसी देश में पैदा होने वाले एक पौदे का नाम सोम रख दिया और उसी को सोम कह कर पीने लग गये।' (डॉ० मार्टिन हॉग के Sacred Language, Writings and Religion of the Parsees पृ० २२०, १८६२ के संस्करण और डॉ० विंडिश्मिन के Dissertation on the Soma Worship नामक प्रबन्धों को देखिए)

ऋग्वेद में सोम के जो गुण-धर्म बताये हैं उनमें और शराब के गुण-धर्मों में जमीन असमान का अंतर है। उतना ही अंतर है जितना सूर्य तथा अंधकार के बीच में। जहां सोम बल, वीर्य, बुद्धि, प्रतिभा को बढ़ाता है तहां शराब मनुष्य के तमाम अच्छे गुणों और शक्ति को नष्ट करती है।

ऋग्वेद में सोमरस बनाने की विधि का स्थान-स्थान पर जो वर्णन आया है उसका सार यों है :—

सोम के डंठलों को इकट्ठा करके उन्हें दो पत्थरों के बीच पीसा जाता था। डंठलों से अधिक रस प्राप्त करने के लिए उन-पर कुछ पानी भी छिड़क दिया जाता था। (अद्भिः सोम पपृचानस्य) दोनों हाथों से उसे निचोड़-निचोड़ कर भेड़ की ऊन के बने कपड़े से वह रस छान लिया जाता। फिर उस पानी के अतिरिक्त, जो कि उसपर पहले छिड़का गया था, इस रस में दूध, दही, घी, जौ का आटा और शहद मिलाया जाता था। तब कहीं वह यज्ञ के लिए तैयार समझा जाता। यज्ञ-भाग के अवसर पर जब सोम बनता तो दिन में तीन बार वह इस तरह तैयार किया जाता था।

पाठक देख सकते हैं कि कहाँ महीनों और बरसों की सड़ी-गली शराब और कहाँ वह दिन में तीन बार शुद्ध सात्विक चीज़ों से बनने वाला सोमरस।

वेदों में सोम के तीन प्रकार ("त्र्याशिरः") बताये गये हैं जिसमें सिर्फ दूध डाला जाता वह "गवाशिरः" दही डाला जाता वह "दध्याशिरः" और जौ का आटा डाला जाता वह "यवाशिरः" कहा जाता। शुद्ध सोम जिसमें उपर्युक्त सभी चीजें होतीं अत्यंत मधुर, स्वादु, आनन्दप्रद, सुगंधित किन्तु तीव्र तथा कुछ मादक भी होता था। ऋग्वेद में उसके गुण-धर्म यों वर्णित हैं :—

(१) स्वादुष्किलायं मधुमानुतायं
(२) तीव्रः किलायं रसवानुतायं ।—ऋ. वे. ६-४७-१
(३) अयं स्वादुरिह मदिष्ट आस ,, ६.४७.२
(४) सहस्रधारः सुरभिः (सोमः) ,, ९.९७.१९
सुरभिऽतरः (अत्यन्त सुगन्धिः सोमः) ,, ९.१०७.२

श्रीपावगी की Some juice is not Liquor नामक पुस्तिका से संकलित।

अफीम

शैतान की लकड़ी

अफीम
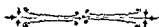
अहिफेनं गरलमिव

विषय प्रवेश

भारत वर्ष अफीम के लिए संसार में बहुत विख्यात है। किन्तु आजकल यहां इसकी पैदायश बहुत कम कर दी गई है। इसलिए कितने ही लोग इसकी उत्पत्ति का हाल भी नहीं जानते। वस्तुतः अफीम एक पौधे के फल के छिलकों से निकाला हुआ रस है। इसका पौधा कोई तीन चार फुट ऊँचा होता है। इसकी पत्तियां कंगूरेदार और फूल बड़े ही सुन्दर होते हैं। फल भी आकार में कम सुंदर नहीं होते। इनके अन्दर वे छोटे-छोटे दाने होते हैं जिन्हें हम खस-खस कहते हैं। खस-खस खाने में मधुर और शक्ति-वर्धक होतो है। अफीम के पौधे कई प्रकार के होते हैं जिनके फूलों के रंग भी चित्र विचित्र पाये जाते हैं। परन्तु भारतवर्ष में केवल दो ही प्रकार के पौधे देखे गये हैं। एक सफेद और दूसरे लाल फूल वाले। सफेद फूलवाले पौधे में अफीम अधिक होती है और लाल फूलवाले पौधे में बीज ज्यादह होते हैं। भारत में अक्सर सफेद फूल वाली। अफीम ही

अधिक होती है। बंगाल, युक्तप्रान्त पंजाब, बिहार, मालवा और गुजरात में अफीम की खेती होती है। इनमें से मालवा और बिहार की अफीम विदेशों में भेजी जाती है। भारतवर्ष से प्रायः ८।९, करोड़ रुपये कीमत की अफीम और ६०-६५ लाख रुपये की खसखस प्रतिवर्ष विदेशों में जाती है। भारतीय अफीम के वैदेशीय व्यापार का इतिहास बड़ा मनोरंजक है।

अफीम की खेती के लिए बड़ी उपजाऊ जमीन की जरूरत होती है। वर्षाकाल में खेत को खूब जोत कर उसमें खाद वगैरा डालने के बाद कार्तिक में जमीन में बीज बोया जाता है। माघ में पौधे फूलने लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर उसमें फल लगते हैं। इन सड़े हुए फूलों को किसान इकट्ठा कर लेते हैं और मिट्टी के ठीकरे में उन्हें कुछ गरम कर लेने पर उनकी रोटी बना लेते हैं। आगे चल कर इसी रोटी में अफीम के गोले लपेटे जाते हैं। फूलों के झड़ जाने पर कोमल फल आते हैं। तब किसान बड़े सवेरे उठ कर चाकू से फल के छिलके को दो तीन जगह लम्बा-लम्बा चीर देते हैं। उसीके द्वारा दूध बह कर बाहर निकलता है। दूसरे दिन किसान उस दूध को निकाल कर मिट्टी या चीनी के बरतन में तेल डाल कर उसमें रखते हैं। बरतन में इतना मीठा तेल डाल दिया जाता है कि वह दूध या रस तेल में डूब जाय। सब पौधों का रस इकट्ठा हो जाने पर उसे मीठे तेल में मल कर उसके गोले बना कर बेचा जाता है या सरकार को दे दिया जाता है।

भारतवासियों [illegible] बताने [illegible] जरूरत नहीं है कि अफीम कितनी विषैली [illegible] तो भारत का बदने से अदना [illegible] [illegible] औरतें अपने दुखी

जीवन से ऊब कर अफीम खा लेते हैं और आत्महत्या कर लेते हैं। सच पूछा जाय तो अफीम भारत में आत्म-हत्या का एक उपाय ही बना लिया गया था। पर लोगों का यह गलत ख्याल बन गया है कि जो जहर इतना भयंकर है वह थोड़ी-थोड़ी मात्रा में देने से मनुष्य की बीमारी को अच्छा कर सकता है। इसी भ्रम में पड़ कर कितने ही लोग अफीम खाना शुरू कर देते हैं और सदा के लिए इस बुरी आदत के शिकार बन जाते हैं। अफीम बीमारी को तो दूर नहीं करती। परन्तु शरीर को सुन्न करके हमारे दर्द को मिटा देती है। अगर मृत्यु के मानी बीमारी का मिट जाना हो तो अफीम बड़ी उपकारी चीज है। पर जान बूझ कर मृत्यु को कौन बुलाने की इच्छा करेगा? बेचारे अपढ़ कुपढ़ लोग अपने अज्ञान के कारण यही करते हैं। डाक्टर भी जब रोगी के दर्द को खूब बढ़ा हुआ देखते हैं, वह छटपटाता है नींद नहीं आने पाती तब उसे अफीम का इन्जेक्शन दे देते हैं। थोड़ी देर के लिए वह बेहोश हो जाता है और बाद नशा उतरने पर फिर वही छटपटाहट शुरू हो जाती है।

अफीम में मैकोनिक ऐसिड, मार्फिया, कोडाइया, थिवाइया या पैरे मार्फिया और नार्कोटिन नामक भयंकर विष होते हैं।

प्राचीन इतिहास

पहले पहल अफीम के पौधे का आविष्कार यूनान के लोगों ने किया। होमर आदि यूनानी कवियों के काव्य-ग्रन्थों में इसका वर्णन पाया जाता है। किन्तु यूनानियों ने इसके उत्तेजक (?) और मादक गुणों का आविष्कार किया उसके बहीं पहले अरब

लोगों ने अफ़ीम की जानकारी ठेठ चीन तक फैला दी थी। ईसवी सन की तीसरी सदी में इसके गुणों की खोज यूनान में होने लगी। यूनान के थियोफ्रेस्टस, व्हर्जिल, प्लिनी डियोस्कोराइड्स वगैरा लेखकों ने मौके-मौके पर इसके गुण विशेष और क्रिया का उल्लेख किया है। रोमन साम्राज्य के समय सिर्फ एशियामायनर की अफीम का ही संसार को पता था।

भारत में आठ सौ वर्ष पहले लिखे भाव प्रकाश में, अफीम के विषय में यों उल्लेख पाया जाता है :—

"उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकं॥"

और "आफूकं शोषणं ग्राहि श्लेष्मघ्नं वातपित्तलं॥"

शार्ङ्गधर में इसकी क्रिया पर लेखक यों अपना मत प्रकट करता है :—

"पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकंच गच्छति।"

"व्यपायि तद्यथा भङ्गा फेनंचाहि समुद्भवं॥"

परन्तु ईसा की सोलहवीं सदी के पहले भारत में अफीम के विषय में कोई जानकारी नहीं पायी जाती। ज्ञात होता है कि बिहार में कोई दो ढाई सौ वर्ष पूर्व अफीम की खेती शुरू की गई थी। सोलहवीं सदी में भारत में अफीम की पैदायश अच्छी तरह होने लग गई थी। बल्कि मालवा में तो अफीम की खेती और उसका व्यापार और कारखाने एक महत्वपूर्ण वस्तु बन बैठे थे।

मध्यकाल में अफीम के उपयोग के विषय में संसार में बड़ा भ्रम रहा है। चीनी लोग इसे 'ईश्वरीय रस' कहते थे। भारत-

वर्ष में भी इसे बच्चों और वूढ़ों के लिए एक अमूल्य औषधि समझा जाता था। किन्तु अब तो संसार में इसकी भयंकरता पूर्णतया सिद्ध हो गई। भारतवर्ष से चीन में प्रतिवर्ष हजारों पेटियां जाती थीं। जब चीन को इस वस्तु की भीषणता का पूरा-पूरा ख्याल हुआ तब उसने एक स्वर से इसका विरोध करना शुरू किया। किन्तु भारत में भी इसका प्रचार कम नहीं है। इतिहास तथा व्यापार के विषयमें तो हम आगे चल कर लिखेंगे। किन्तु पहले हम यह देख लें कि भारत में अफीम का व्यवहार किस तरह होता है।

भारत में अफीम का व्यवहार और उसका परिणाम

व्यवहार

अफीम का कई तरह से प्रयोग होता है। बहुत से लोग तो सिर्फ कच्ची अफीम की गोलियां बना कर खाते हैं। कुछ लोग तमाखू की तरह उसे पीते भी हैं। डॉक्टर लोग अफीम को इन्जेक्शन देते हैं और बहुतेरी दवाइयों में, उनके असर की छाप ग्राहकों पर डालने के लिए, धूर्त वैद्य और डॉक्टर थोड़ी अफीम भी डाल देते हैं। कई पेटेन्ट दवाइयां इस तरह की होती हैं।

पर दवा के बतौर तो अफीम का बहुत कम उपयोग होता है। उसका व्यवहार अकसर नशे के लिए अधिक होता है, और इस उपयोग की बुराई के विषय में कहीं दो मत नहीं है। कलकत्ता की नॅशनल क्रिश्चन कौन्सिल के श्रीयुत पैटन देशभर के नामी-नामी डॉक्टरों से जानकारी प्राप्त कर के अपनी "ओपियम इन इण्डिया" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि भारत में अफीम का नीचे लिखे अनुसार व्यवहार होता है।

(१) भारत में बच्चों को प्रायः अफीम दी जाती है।

(२) थकावट और जाड़े को भगाने के लिए भी उसका उपयोग किया जाता है।

(३) किसी बीमारी को रोकने या भगाने के लिए लोग अफीम का सेवन करते हैं।

(४) और कई शुद्ध व्यसन के बतौर उसको नित्य खाते या पीते हैं।

जांच करने पर पाया गया है कि भारतवर्ष के प्राय: प्रत्येक हिस्से में बच्चों को अफीम की छोटी-छोटी गोलियां देने की प्रथा है। जब तक बच्चा दो या तीन साल का नहीं हो जाता; यह प्रथा शुद्ध रक्खी जाती है। परन्तु उपर्युक्त संस्था को अब तक जो सबूत मिला है उसके आधार पर श्रीयुत् पेटन का कथन है कि वह कुप्रथा देश में बहुत फैली हुई है। बच्चों को अफीम देने के कारण कई हैं। बम्बई की विख्यात महिला डॉक्टर श्रीमती जीवान् मिस्त्री L. M. S. उपर्युक्त संस्था को भेजे अपने पत्र में लिखती हैं। "नीचे लिखे कारणों से अफीम भारत में बच्चों को प्राय: दी जाती है और यह उसका सब से भयंकर दुरुपयोग है।

(१) अफीम बच्चों को इसलिए दी जाती है कि वे रोने न पायें। यद्यपि रोने का कारण कई बार उचित ही होता है। मसलन् माता का दूध काफी न होना।

(२) जब माता को घर से बाहर कहीं खेत या कारखाने में काम के लिए जाना पड़ता है तो वह बच्चे को इसलिए अफीम दे देती है कि वह चुपचाप पड़ा रहे।

(३) इस गलत ख्याल से भी माता-पिता बच्चों को अफीम खिलाते हैं कि वह उनकी बढ़ती और स्वास्थ्य के लिए फायदेमन्द है।

(३) झाड़ा, कय, वगैरः को रोकने के लिए।

(४) क्योंकि अफीम कब्ज करती है, मामूली तौर से भी बच्चा बार-बार टट्टी न फिरता रहे और उसको उठाने के लिए अपना काम छोड़ कर माता को न दौड़ना पड़े इसलिए लोग बच्चों को अफीम खिला दिया करते हैं।"

माताओं को जिन कारणों से बच्चों को अफीम देनी पड़ती है उससे हमारे देश की दरिद्रता और हमारी विषय-लालसा प्रकट होती है। ऊँचे वर्ग के लोगों को तो समाज को प्रत्यक्ष देखने का शायद ही कभी मौका मिलता है। पर हम मध्यम वर्ग के लोग भी अपने और अपने पड़ोसी के सुख दुख से बेखबर और उदासीन रहें तो काम कैसे चलेगा? यदि संतति इनी-गिनी होती न उनकी माता दुर्बल होगी न बच्चे ही दुर्बल होंगे। दुबले बच्चे खाते भी खूब हैं और टट्टी भी खूब जाते हैं उनमें अन्न का सत्व खींचने की शक्ति नहीं होती। संयमी माता-पिता के बच्चे सुंदर सतेज, बलिष्ट और हँसमुख होते हैं। पर जब मनुष्य संयम के सुखमय किन्तु मुश्किल पाठको भूल कर विषय-सेवन की आसान राह को पकड़ता है, तो वह फौरन अपने और अपने बच्चों के लिए एक संपूर्ण नारकीय-जीवन बना लेता है। सारा मकान और मकान के सारे वस्त्र बच्चों के मैले के मारे बदबू मारने लग जाते हैं। क्योंकि जब एक, दो, तीन, चार, पांच, छः, सात इस तरह साल-साल डेढ़-डेढ़ साल में बालकों की पैदायश होने लगे, तो क्या तो इन बच्चों में सत्व होगा और क्या उस माता में उनको सँभालने की शक्ति होगी? इस तरह से यदि कार जारी रहे तो धन कुबेर भी दो दिन में सुदामा हो जायगा। बच्चों को सँभा

खने के लिए घर में कोई मनुष्य न हो, नौकर रखने और उनके खाने की चीजें खरीदने या बना कर रखने के लिए पैसा न हो और साथ ही उसके भाई-बहन बढ़ाने के मोह को रोकने की शक्ति भी न हो तो नतीजा क्या होगा ?—सिवा इसके कि खिलाया बच्चे को जहर और लिटा दिया उसे चीथड़ों पर ? ऐसे निःसत्त्व बालक न भूख को बरदाश्त कर सकते न टट्टी को एक मिनट रोक सकते। खाना खाया कि उनके लिए रसोई घर से बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। उनकी बुद्धि मंद होती है। शरीर कांटे का सा होता है और आगे चल कर वे नीति और सदाचार में भी दुर्बल ही निपजते हैं। अस्तु।

अफीम का प्रचार देश में बहुत बड़े पैमाने पर है। डॉ० मिस्त्री का कथन है कि हिन्दुओं में फी सदी ९० और मुसलमानों में फी सदी ७० बच्चों को अफीम दी जाती है।* खंभात के एक डॉक्टर का कथन है कि उनके प्रदेश में आने वाली अफीम में से करीब-करीब तीसरा हिस्सा बच्चों में खर्च होती है। मध्यप्रदेश की एक महिला डॉक्टर कहती हैं कि फी सदी ८० बच्चों को वहां अफीम दी जाती है।

इससे बच्चों पर जो दुष्परिणाम होते हैं उन पर हम विस्तृत रूप से आगे लिखेंगे।

---

* इसमें डॉ० मिस्त्री से हम नम्रतापूर्वक अपना मतभेद प्रकट करते हैं। हमने भी समाज का कुछ अवलोकन किया है। उसके आधार पर हमें श्रीमती मिस्त्री का कथन सारे समाज के लिए अत्युक्तिपूर्ण प्रतीत होता है। संभव है बम्बई और अहमदाबाद की मजदूर जनता से मिस्त्री का कथन सम्बन्ध रखता हो।

अफीम का दूसरा उपयोग किया जाता है थकावट या जाड़े को मिटाने के लिए। इसे आधा डाक्टरी उपयोग कहा जा सकता है।

उपर्युक्त कौन्सिल में जिन-जिन डॉक्टरों की रायें आई हैं वे सब इस कारण को सरासर झूठा और बनावटी बताते हैं। कलकत्ता के डॉ० म्योर का कथन है कि ऐसे मामलों में मनुष्य को शुरू से ही किसी मर्ज की शिकायत होती है और वह थकावट को दूर करने के लिए नहीं, बल्कि इस डर से अफीम लेता है कि कहीं थकावट के समय में अथवा जाड़े के समय वह मर्ज ज्यादह जोर न पकड़ ले। कुछ डॉक्टरों का कथन है कि यह केवल थोथा कारण है। अफीम का इस्तेमाल करने वालों की अपेक्षा उन लोगों पर थकावट का या जाड़े का कोई अधिक बुरा असर नहीं पाया गया जो अफीम नहीं खाते। कुछ लोग तो महज लज्जा के कारण कोई न कोई कारण ढूँढ़ कर बता देते हैं। वास्तव में उन्हें अफीम खाने की आदत ही होती है।

कहा जाता है कि खांसी, दमा, क्षय, झाड़ा, मधुमेह, प्लीहा के रोग, रक्तार्श, संधिवात, फसली बुखार इत्यादि रोगों पर अफीम का दवा के समान उपयोग होता है। इसका कारण यही हैं कि जनसाधारण को डॉक्टर की सहायता नहीं मिल सकती। क्योंकि वह बहुत महँगी पड़ती है। जनता में अफीम कई रोगों के लिए भूल से एक अक्सीर दवा भी समझी जाती है। इसलिए इस गलत सामाजिक धारणा तथा मित्रों की सलाह के कारण ऐसे लोग भी अफीम का उपयोग करने लग जाते हैं, जो डॉक्टरी इलाज से फायदा उठा सकते हैं।

परिणाम

(२)

अफीम के सेवन के परिणामों को दिखाते हुए श्रीयुत् विलियम पैटन लिखते हैं कि बच्चों पर अफीम का इस तरह परिणाम होता है।

(१) मालूम होता है कि मर्ज थोड़ी देर के लिए कम हो गया। किन्तु कुछ समय बाद वह और भी अधिक भीषण रूप में दिखाई देता है। एक रोग में कई दूसरे रोग भी मिल जाते हैं—बच्चे को मंदाग्नि हो जाती है। अफीम खाने वाले बच्चे अक्सर कम खाने वाले होते हैं।

(२) बदन का खून सूख जाता है। बच्चे की बढ़ती रुक जाती है। दिमाग कमजोर हो जाता है। मध्यप्रदेश के एक डॉक्टर का कथन है कि हमारे प्रान्त के पिछड़ने का खास कारण बच्चों में यह अफीम की आदत ही जान पड़ती है। एक शिक्षिका दावे के साथ कहती हैं कि मैं स्कूल में बच्चों की एकाग्रता शक्ति के अभाव को देख कर बिना पूछे बता सकती हूँ कि किस बच्चे को अफीम दी गई थी।

(३) बच्चे निःसत्व हो जाते हैं। रोगों के बहुत जल्दी शिकार होने लग जाते हैं। दवाओं का उनपर ठीक तरह से असर नहीं होता। और बड़ी देर में बीमारी से उठते हैं।

माता-पिताओं को चाहिए कि वे अपने बच्चों के कल्याण के ख्याल से उन्हें (१) अफीम देना बन्द कर दें और खुद भी संयमपूर्वक रहने लग जावें। जिससे मौजूदा बच्चों के सामने अच्छी

मिसाल बनी रहें; न अधिक बच्चे पैदा हों न उनको सँभालना भारी पड़े और न उन्हें अफीम देनी पड़े। डॉ० मिस्त्री सूचित करती हैं कि जिन बहनों को अपने बच्चों को घर पर छोड़ कर खेत में या मिल में काम करने के लिए जाना पड़ता है, उनके बच्चों के लिए हर एक स्थान या गांव में एक धात्रीगृह होना चाहिए। वहां माताएँ बच्चों को छोड़ कर अपने काम पर जावें। यह सूचना भी अच्छी है। उपर्युक्त दो सूचनाओं में से जिनके लिए जो व्यवहार्य हों उसपर वे अमल करें। परन्तु, यदि भारत में ऐसे धात्री-गृह हो सकते हों तो भी बच्चों की फौज की फौज पैदा करके धात्री-गृह में उन्हें छोड़ने के बजाय संयमपूर्वक रहना अधिक श्रेयस्कर है। जो हो पर किसी प्रकार वे अपने बच्चों को इस भयंकर विष से जितनी जल्दी हो सके बचावें।

जो थकावट और जाड़े से बचने के लिए अफीम का व्यवहार करते हैं उन्हें अफीम खाने की आदत हो जाती है। कुछ लोग ऐसे जरूर होते हैं जो इस आदत के वश नहीं है। पर साधारणतया लोगों का यही अनुभव है कि उससे बचना बहुत मुश्किल है। इसलिए अच्छा यही है कि समझदार आदमी अफीम के फेर में न पड़ें। अपनी थकावट या जाड़े को भगाने के लिए वे किसी दूसरे ऐसे साधन का उपयोग करें जो सचमुच फायदेमन्द हो।

ऊपर कहा जा चुका है कि अफीम दवा के बतौर भी खाई जाती है। जैसा कि श्रीयुत पैटन ने लिखा है, उसमें एक बात बड़ी मार्के की है और उसपर ध्यान देना बहुत जरूरी है। इस तरह के उपयोग के फी सदी ९० उदाहरणों की जड़ में एक

भारी गलती पाई जाती हैं। बेशक अफीम दर्द को मिटा देती है। और एक अपढ़ आदमी के लिए तो दर्द ही बीमारी है। इसीलिए कितने ही लोग अफीम को कई रोगों पर रामबाण दवा समझते हैं।

पर वास्तव में दर्द का मिटना और बीमारी का हटना दो जुदी-जुदी बातें हैं। बात यह है कि अफीम बीमारी को कभी नहीं मिटाती। वह तो सिर्फ दर्द को रोक कर बीमारी के असली लक्षणों को ढँक देती है। वह एक विष है और विष दर्द करने वाले हिस्से के जीवाणुओं को मूर्च्छित कर देता है। इसका नतीजा यह होता है कि आदमी अपनी बीमारी का ठीक-ठीक इलाज भी नहीं कर पाता। कलकत्ता के डा० म्योर लिखते हैं कि "एक मामूली देहाती में इतनी बुद्धि नहीं होती कि वह जा कर डाक्टर से अपने मर्ज का इलाज करा ले। उसे तो डाक्टर के इलाज की अपेक्षा अफीम की खुराक ही ज्यादह फायदेमन्द मालूम होती है। वह तो तत्कालिक फायदा देखता है। आगे की राम जाने। नतीजा यह होता है कि अफीम से रोग के चिन्ह दब जाते हैं। पर अफीम का विषैला प्रभाव दूर होते ही फिर वहीं लक्षण और भी भीषण रूप में दिखाई देते हैं। मामला बिगड़ने पर मेरे पास ऐसे कई लोग आते रहते हैं। पर तब उनका इलाज करना बड़ा कठिन होता है। यद्यपि शुरू-शुरू में मामूली इलाज से भी काम चल जाता है।"

यह देहातियों के अज्ञान का परिणाम तो होता ही। परन्तु हमें इसका कारण भारत की भीषण दरिद्रता मालूम होती है।

साधारणतया मध्यम वर्ग के लोगों के पास भी डाक्टर की फीस देने को पैसे नहीं होते। बेचारे गरीब किसान और मजूर तो फिर इतने पैसे कहां से लावें ?

श्रीयुत पैटन आगे लिखते हैं:—

नियमित तौर से अफीम का व्यवहार करने पर नीचे लिखी बीमारियाँ मनुष्य को हो जाती हैं।

१ कब्ज	८ आलस्य और निद्रालुता, चित्तभ्रम
२ रक्त की न्यूनता,	९ Halucinetein
३ मंदाग्नि,	१० नैतिक भावना का बोठा होना
४ हृदय, फेंफड़े और	११ काम का भार आ पड़ने पर
५ गुर्दा के रोग	चीं बोल देना
६ स्नायुजन्य कमजोरी,	१२ साधारण नैतिक अविश्वास
७ फुर्तीलेपन का अभाव,	१३ मृत्यु

अफीमची के दिमाग पर भी अफीम का असर तो पड़ता ही है। डाक्टर म्योर की राय हम ऊपर लिख ही चुके हैं। अपने-अपने प्रान्त के प्रसिद्ध अफीमचियों की कथायें प्रायः प्रत्येक प्रान्त के लोग जानते ही हैं। कथायें अनेक हैं, स्थानाभाव के कारण हम उन्हें नहीं लिख सकते। इसलिए अफीम के विशेष गुण-अवगुण जानने के लिए तो पाठक उन अफीमचियों का ही अध्ययन करें तो उन्हें बहुत सी शिक्षा प्राप्त होगी।

यह कथन गलत है कि अफीम की आदत कभी छूट ही नहीं सकती। हां जिनकी आदतें बहुत मजबूत हैं, उन्हें जरा देर लगेगी। पर वे भी छूट तो जरूर सकती हैं। इसके उदाहरण

जेलों में बहुत मिलते हैं। कई कैदियों की अफीम खाने की आदतें छूट गई हैं और वे स्वास्थ्य, नीति-शील और बुद्धिशाली हो गये हैं।

भारत में अफीम बहुत बड़े पैमाने पर नहीं पीजातीहै। कहीं-कहीं राजपूताना में और कच्छ में यह पाया जाता है। कलकत्ता में बसनेवाले कुछ चीनी भी इस तरह अफीम पीते हैं। कहीं-कहीं साधु वैरागियों तथा गरीब मुसल्मानों में भी इसके प्रचलित होने की बात कही जाती है। अफीम का धुआँ सेवन करने की मुमानियत १९११ में ही कर दी गई है। और पीने योग्य अफीम का बेचना भी तभी से बन्द कर दिया गया है। पर पीने वाले तो घर पर भी ऐसी अफीम बना लेते हैं। जब तक अफीम उन्हें मिलती रहेगी इसका छूटना प्रायः असंभव है।

कलकत्ता की नैशनल किश्चन कौन्सिल ने इस बात पर भी डा० की राय ली कि अफीमखाने और उसका धूआँ पीने में क्या फर्क है।† उनमें से प्रायः सभी ने अफीम पीने का महा भयंकर व्यसन बतलाया। अफीम खानेवाले की अपेक्षा अफीम पीनेवाले का शरीर अधिक दुर्बल होता है। उसके दिमाग पर भी ज्यादा बुरा असर पड़ता है। परन्तु कई डा० अफीम खाने को अधिक भयंकर बताते हैं। क्योंकि पीने में तो उसका सत्त्व जल जाता है, कुछ धुँए के रूप में भीतर जाने पर भी फौरन निकल जाता है। यद्यपि अफीम खाने के दुष्परिणाम इतने स्पष्ट न दिखाई दें, पर उसमें सारी अफीम शरीर के अन्दर रह जाती है और वह निसन्देह अपना

† आगे लखनऊ को 'ओपियमडेन' का वर्णन पढ़िए।

बुरा प्रभाव शरीर पर डालती रहती है। जो हो इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि अफीम खाना और पीना दोनों बुरे हैं।

ब्रिटिश भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अफीम का व्यवहार प्रति १०००० मनुष्य इस प्रकार होता है:—

प्रान्त	सेर	प्रान्त	सेर
युक्त-प्रान्त	६.६	बम्बई	२३
बंगाल	८.१	ब्रम्हा	५८
बिहार	८.३	मरगुई	१४७
उड़ीसा	८	टेव्हॉय	६६
पंजाब	१२	काठा	५५
बलुचिस्तान	६	आसाम	५८
कूर्ग	२.३	कुछ जिलों में	१७३
मद्रास	८.५	”	१८९
		”	२३७
उत्तर पश्चिमी सीमाप्रान्त	१०.२	मध्यप्रदेश	१६.१
		अजमेर मेरवाड़ा	५२.७

कुल भारत की औसत खपत को १०,००० आदमी १२ सेर है। लीग ऑफ नेशन्स ने इस प्रश्न को जब से हाथ में लिया है, अफीम के व्यवहार को नियन्त्रित करने का उसने खूब प्रयत्न किया। उसने फी १०,००० आदमी अफीम के व्यवहार की मर्यादा सिर्फ ६ सेर की कायम की है, और दूसरे देशों ने इसे मान भी लिया है। पर भारत में न जाने क्यों अभी इस पर कड़ाई के साथ व्यवहार नहीं होता।

श्रीयुत गॅविट अपने "The survey on two opium conferences of Geneva" में लिखते हैं।

"औषधि और वैज्ञानिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए फी आदमी नीचे लिखे अनुसार नशीली चीजों की जरूरत होती है:—
प्रतिवर्ष अफीम ४५० मिलिग्राम (करीब-करीब ७ चावल के बराबर)
,, कोकेन ७॥ मिलिग्राम

यदि हम मान मानलें कि संसार की १,७४,००,००००० जन संख्या में से ७४४०००००० मनुष्यों को पश्चिमी ढंग के अनुसार शिक्षा पाये हुए डाक्टरों का इलाज नसीब हो सकता है, तो सारे संसार के लिए नीचे लिखे अनुसार औषधि के लिए मादक द्रव्यों की जरूरत होगी।

अफीम	१००	टन (स्थूल मान से एक टन २८ मन का होता है)
मार्फाइन	१३६	,,
कोडाइन	८४	,,
हिराइन	१५	,,
कोकेन	१२	,,
	३४७	

परन्तु संसार में उपर्युक्त द्रव्यों की उत्पत्ति ८६०० टन की जाती है। कोकेन की उत्पत्ति किसी प्रकार १०० टन से कम नहीं होती होगी।

शेष नशीली चीजों का क्या होता है? निश्चय ही उनका अनावश्यक और हानिकर उपयोग हो रहा है।

खेती का व्यवसाय करनेवाली जनता जिन प्रान्तों में घनी है वहाँ अफीम का प्रचार उतना नहीं है। परन्तु जिन प्रान्तों में पश्चिमी ढंग के कल कारखाने ज्यादह हैं वहाँ अफीम की खपत ज्यादह है। हम ऊपर देख चुके हैं कि अफीम की खपत ऐसे स्थानों में भी अधिक है जहाँ चीनी अथवा ब्रह्मी लोगों की बस्ती ज्यादह है। आसाम के कुछ जिलों में फी १०००० अफीम की खपत २३७ सेर तक बढ़ जाती है। उसी प्रकार बम्बई की एक शिशु-प्रदर्शिनी में लेडी विल्सन ने कहा था कि बम्बई की फी सैकड़ा ९८ माताएं काम पर जाने से पहले अपने बच्चों को अफीम खिला कर जाती हैं। पाठक देखेंगे कि पश्चिम के कल कारखानों की बदौलत जिन शहरों का विकास हुआ है उनमें अफीम की खपत बहुत ज्यादह बढ़ी हुई है। भारत के कुछ खास खास शहरों में फी १०००० आदमी अफीम की खपत नीचे लिखे अनु सार (सेरों में) पाई गई :—

शहर	अफीम सेरों में	शहर	अफीम सेरों में
कलकत्ता	१४४	बम्बई	४३
रंगून	१०८	भड़ौच	५१
फिरोजपुर	६०	सोलापुर	३५
लुधियाना	४५	कराची	४६
लाहौर	४०	हैदराबाद (सिंध)	५२
अमृतसर	२८	मद्रास	२६
कानपुर	२९	कटक	३५
अहमदाबाद	४२	बालासोर	५६

तमाखू के असाधारण प्रचार ने अफीम को पीछे हटा दिया है। परन्तु अब भी वह हमारे देश में किस भीषण रूप में फैली हुई है यह उपर्युक्त अंकों से मालूम हो सकता है। अफीम की भयंकरता और इसके इस प्रचार को देखते हुए भारतीयों को सावधान हो जाना चाहिए। बल्कि हम तो जोरों से इस बात की सिफारिश करेंगे कि सर्वसाधारण के लिए इसकी कानूनन बन्दी हो जाना ही सर्वोत्तम मार्ग है।

सम्भव है कि इस तरह अफीम की बन्दी करने से उन लोगों को कुछ कष्ट होगा जो उसके अधीन हो गये हैं। हमारी समझ में ऐसे लोगों के भी कुछ वर्ग कर दिये जायँ। अफीम के अत्यंत पुराने सेवकों को जो चालीस या पचास वर्ष के ऊपर हों थोड़ी मात्रा में अफीम दी जाय। दूसरे वर्ग को जो उतना पुराना सेवक नहीं है, निश्चित समय के अन्दर अपनी आदत को छोड़ने की सूचना दे दी जाय और उतने समय के भीतर तक अफीम कम करते-करते उसे यह भयंकर आदत छोड़ने पर मजबूर किया जाय। निश्चित समय खतम होते ही उसे अफीम देना बन्द कर देना चाहिए। और तीसरे वर्ग को जो नया है अफीम देने से एक दम इन्कार कर दिया जाय। शेष सब लोगों को जिन्हें दवा के लिए अफीम की जरूरत हो सिर्फ डॉ. या प्रतिष्ठित वैद्य की आज्ञा मिलने पर ही वह दी जाय अन्यथा नहीं। अफीम लेने वालों के नाम रजिस्टर में दर्ज हों, और उनमें कभी नवीन लोगों को शामिल न किया जाय। बच्चों को अफीम देना भी एकाएक बन्द हो जाना नितान्त आवश्यक है।

हमारा दुगुना पाप

पिछले अध्याय से पाठकों को कुछ-कुछ ख्याल हो गया होगा कि हमारे देश में अफीम का कितना प्रचार है। परन्तु हमारा पाप यहीं समाप्त नहीं होता। गुलाम देश को शासक अपने पाप में भी शरीक करते हैं। दूसरे देशों की स्वाधीनता का हरण करने के *लिए केवल भारत के सिपाहियों का ही उपयोग नहीं किया* जा रहा है। बल्कि भारत की अफीम का भी इस काम के लिए उपयोग करने में हमारे शासकों को संकोच नहीं हुआ। चीन जैसे एक शान्ति प्रिय राष्ट्र को अफीमची बना कर भारत सरकार ने दो पाप किये और हमें उनमें शरीक होने के लिए मजबूर किया। एक तो यह कि चीन अफीमची हो जाय तो उसको जीतने और भारत की तरह निगल जाने में सुविधा हो, दूसरे यह कि अफीम की बिक्री से जो धन मिले उसकी सहायता से फौजें रख कर के स्वयं भारत को भी पराधीन बना कर रक्खा जाय। भारत के इतिहास में अफीम का व्यापार एक बहुत भारी कलंक है। आज भी यदि संसार का लोकमत इस घृणित व्यापार के इतने जोरों से विपक्ष में न होता तो सरकार अपना व्यापार शायद ही रोकती। अब भी कहां रोका है? पाठक आगे पढ़ेंगे कि इस समय भी धन कमाने की गरज से कितनी अफीम बाहर भेजी जाती है।

भारतभक्त ऐण्ड्रयूज अपनी The Drink and opium evil नामक पुस्तिका में लिखते हैं—

"The curse of Opium in some ways is more deadly to the soul of India than intoxicants,

because it has its effect chiefly on a neighbouring and a friendly people the Chinese. It is thus at once more cruel and more selfish than the curse of Drink.

अफीम की बुराई भारत की आत्मा के लिए कुछ अंशों में मादक द्रव्यों की अपेक्षा भी अधिक भयंकर है। क्योंकि उसका परिणाम खास कर हमारे पड़ोसी और मित्र राष्ट्र चीन पर पड़ रहा है। इसलिए यह शराब की बुराई की अपेक्षा अधिक दुष्ट और स्वार्थी है।

आगे चल कर एण्ड्रूज साहब एक पुस्तक से भारत सरकार की चीन सम्बन्धी अफीम की नीति पर एक उदाहरण देते हैं। वह इस प्रकार है:—

"भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार का जो अन्याय पूर्ण और दुष्ट एकाधिकार (Monopoly) स्थापित किया गया था उसका उद्देश केवल धन जोड़ना ही था।

"यह बात किसी से छिपी हुई नहीं थी कि चीन के लिए अफीम पीना हर तरह से एक शाप था। अफीम की आदत धीरे-धीरे मनुष्य के शरीर और आत्मा को भी खा जाती है। जिन जिलों में अफीम पीने की आदत है, वहां का सारा पुरुष वर्ग निकम्मा हो जाता है। उससे कोई मिहनत का काम नहीं होता। वह धीरे-धीरे व्यभिचारी होता है और अंत में निराश जीवन व्यतीत करते हुए यमलोक को सिधारता है। पर इससे अंगरेज व्यापारी, पूंजी-पति और राजपुरुषों को क्या? यहां तो थोड़ी पूंजी पर बेहद पैसा कमाने का आसान तरीका हाथ लग गया था। अफीम

के एकाधिकार में भारत के कोश को भी सहायता मिल जाती थी—इसलिए अफीम अच्छा व्यापार बन गया।"

पाठक जरा दिल थाम कर इस करुण कहानी को पढ़ें और देखें कि किस शास्त्रीय ढंग से चीन को भारत की अफीम की चाट लगा कर हमें उस पाप में शरीक किया गया।

हम पहले लिख चुके हैं कि मुगल साम्राज्य के स्थापन-काल से ही भारत में अफीम की खेती होती थी और यहां के लोग उसका व्यवहार भी करते थे। पूर्व के देशों में भी अफीम का व्यवहार कम अधिक मात्रा में होता ही था। और भारत का उनसे व्यापारी सम्बन्ध प्राचीन काल से चला आया है। भारत से चीन को भी अफीम जाती थी। हमें यह कबूल करना पड़ेगा कि अफीम की बुराइयां एशिया के लोगों से छिपी नहीं थीं। परन्तु जब तक पश्चिम के साहसी देशों ने पूर्व में अपने व्यापार का जाल नहीं फैलाया, ये बुराइयां बड़े पैमाने पर नहीं फैली थीं। पहले पहल ई० स० १५३७ में पुर्तगीजों ने और बाद में यूरोप के अन्य राष्ट्रों ने चीन से व्यापारी सम्बन्ध कायम किये और इस महान् बुराई को सुसंगठित रूप से बढ़ाने का प्रयत्न होने लगा। शनैः शनैः चीन में यह बुराई जड़ पकड़ती गई। यहां तक कि ईसवी सन् १७२९ में चीन की सरकार को यह आज्ञा जारी करनी पड़ी कि चीन में कोई अफीम के धूएँ का सेवन न करे। पर इसका कोई परिणाम नहीं हुआ, तब अन्त में ई०स० १७९९ में चीन सरकार को दूसरी आज्ञा जारी कर के अफीम की आयात को ही बन्द करना पड़ा। पर इसका भी कोई नतीजा

नहीं निकला। अफीम का छिप-छिप कर चीन में प्रवेश होता ही रहा।

१७२९ में चीन में केवल २०० पेटियां गई थीं, वहां सन् १८०० में करीब यह संख्या ४००० के लगभग बढ़ गई। इसका कारण अंगरेज व्यापारी ही थे। चीन अफीम का सब से अच्छा बाजार था। और वहां भारत की अफीम भेजना जरूरी था। आखिर चीन ही के लिए तो भारत में अंगरेजों के द्वारा अफीम की खेती इतने बड़े पैमाने पर हो रही थी और प्रतिवर्ष बढ़ाई जा रही थी। यहाँ पर यह कह देना जरूरी है कि यह सब अफीम ईस्ट-इण्डिया कम्पनी की अधीनता में ही तैयार नहीं होती थी। ईसवी सन् १७५८ में बंगाल और बिहार को अपने अधीन करने पर ईस्ट-इण्डिया कंपनी ने अफीम की पैदायश पर अपना अधिकार जरूर कर लिया था। परन्तु अभी वैदेशिक व्यापार को उसने पूर्णतया अपने अधीन नहीं किया था। ईस्वी सन् १८३० के लगभग कलकत्ता में कोई ४००० पेटियां नीलाम की गई थीं। चीन में अफीम ले जानेवाले व्यापारियों की मांग तो बढ़ती ही जा रही थी। शेष मांग को मालवा के देशी राज्य पूरी करते थे। अब कंपनी का ध्यान इन देशी राज्यों की ओर लगा। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में मालवे के अफीम के व्यापार पर इसका प्रभाव पड़ने लग गया। अंगरेजों ने इस बात की विशेष सावधानी रक्खी कि मालवा की अफीम समुद्र तक पहुँचने ही न पावें। क्योंकि समुद्र किनारा तो उस समय अंगरेजों के अधीन हो गया था। अलावा इसके ब्रिटिश प्रजा को तथा ब्रिटिश जहाजों को इस तरह की हिदायतें भी मिल गई थीं कि वे मालवा से

अफीम संबन्धी कोई व्यापार न करें। मालवा के देशी राज्य भी उस समय इस विषय में कुछ नहीं कर सकते थे, क्योंकि उस समय वहां अशान्ति छाई हुई थी। अन्त में १८१८ में मालवा के देशी राज्यों से कंपनी की सुलह हो गई। कंपनी को अपनी नीति जरा शिथिल कर देनी पड़ी। कंपनी सरकार ने मालवा के अफीम के व्यापार को अपने अधीन करने की गरज से वहाँ अफीम खरीदने के लिए अपने आदमी भी रक्खे। परन्तु देशी व्यापारियों की प्रतिस्पर्धा में वे टिक न सके। तब सरकार ने देशीराज्यों से अफीम की पैदायश को घटाने और भारत सरकार के हाथ में सारा वैदेशिक व्यापार सौंप देने के लिए देशी नरेशों से कहा। परन्तु इससे देशी राज्य भारत सरकार से और भी अधिक असंतुष्ट हो गये। अतः यह चाल भी व्यर्थ हुई। अन्त में १८३० में सरकार ने ट्रान्जिट ड्यूटी सिस्टिम शुरू की। अर्थात् बंगाल की अफीम के भाव को विदेशी बाजारों में बनाये रखने की गरज से उसने मालवा की अफीम पर कर लगा दिया। यह भी बन्दोबस्त कर दिया गया कि वह बिना कर दिये समुद्र तक न पहुँच सके तथा अंगरेजी प्रदेश में वह किसी प्रकार छिप कर भी प्रवेश न पा सके।

साथ ही मालवा को अधिक फायदा न मिलने पावे इस गरज से कंपनी सरकार ने बंगाल में अफीम की खेती बढ़ाना शुरू किया। शीघ्र ही वहां पहले की अपेक्षा दुगुनी बल्कि चौगुनी जमीन में अफीम की खेती होने लग गई।

इस प्रकार भारत में अफीम के व्यापार को अपने हाथों में ले कर अंगरेज व्यापारियों ने छिप-छिप कर चीन में अफीम

भेजना शुरू किया। परन्तु फिर भी कमजोर और शस्त्रसामर्थ्य न होने पर भी चीन ने इसका काफी विरोध किया। अंगरेजों ने सन् १८३४ और १८३६ में चीन से घनिष्ट राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात चलाई। परन्तु चीनी लोग इन यूरोपियनों की नीति से एकदम अपरिचित नहीं थे। वे भारत, ब्रह्मा, जावा सुमात्रा आदि देशों की हालत को देख चुके थे। उन्हें अपनी स्वाधीनता प्रिय थी। इसलिए वे जानते थे कि ऐसे मित्रों को दूर से ही नमस्कार करना भला है। फलतः चीन की सरकार ने ऐसे संबन्ध स्थापित करने से इन्कार कर दिया। इसका परिणाम अंगरेजों के व्यापार पर भी पड़ा। * कैंटन के किनारे पर सन् १८३९ में अङ्गरेजी जहाजों पर २०,००० पेटियां पड़ी रह गईं। चीन के बादशाह को भय था कि अगर अङ्गरेजों से यह अफीम छीन कर नष्ट न कर दी जायगी तो वे चुरा कर उसे चीन के लोगों में बेंच देंगे। अतः उसने अपने लिन नामक एक अधिकारी को आज्ञा दी की वह अंगरेजों से यह अफीम छीन कर उसे नष्ट कर दे। लिन ने यही किया।

चीन ने जो कुछ किया था उचित था। उसने अपने आपको इस विष से बचाने के लिए अपने दरवाजे पर खड़े हुए विष-बेचनेवाले से विष छीन कर नष्ट कर दिया अङ्गरेजों को चीन पर

* इससे पहले भारत से चीन को अफीम की निकास क्रमशः यों थी।

१७९० में ४००० पेटियां
१८२० में ५००० ,,
१८३० में १८७७० ,,
१८३८ में २०६१९ ,,

अपनी अफीम जबरदस्ती लादने का कोई अधिकार नहीं था। पर धन का लोभ बड़ी बुरी चीज होती है। उसने अङ्गरेजों को इसी बहाने चीन से युद्ध घोषणा करने को मजबूर कर दिया। अङ्गरेजों के जंगी जहाज आये और एक के बाद एक चीन के बन्दरगाह लेने लगे। यांगट्सी नदी के मुहाने से हो कर वे चीन के अन्दर घुस गये। और ग्रैंड कैनल की राह से जो शाही खजाना पेकिंग को जा रहा था उसे छीन लिया। बेचारे चीन की हड्डी पसली ढीली हो गई। उसे लाचार हो १८४२ में सुलह करनी पड़ी। और अपने अपराध (?) के दण्ड स्वरूप ब्रिटेन को हांगकांग अर्पण करना पड़ा और ऊपर से दक्षिणा स्वरूप २१ मिलियन डालर्स अर्थात् कोई सवा छः करोड़ रुपये देने पड़े। इसके अतिरिक्त कैंटन अमोय, फूचू, निंगपो, और शँघाय नामक बन्दरगाहों को "ट्रीटी पोर्ट स" के बतौर अफीम के व्यापार के लिए खोल देना पड़े। यहां पर यह कह देना अनुचित न होगा कि इस युद्ध का खर्चा भारत से ही लिया गया।

ब्रिटिश सरकार ने इस बार बड़ी कोशिश की कि अफीम का व्यापार चीन की सरकार द्वारा कानूनन करार दे दिया जाय। लार्ड पामर्सटन ने ब्रिटिश प्रतिनिधि को लिखा था कि "छिप कर चीन में अफीम लेने वाले के प्रलोभन को तोड़ देने की गरज से वह चीन की सरकार से मिल कर चीन में अफीम की आयात पर कानूनन मंजूरी ले ले। परवा नहीं अगर चीन उस पर थोड़ा कर भी लगा दे।" परन्तु चीन की सम्राट तो इसके बहुत ही खिलाफ था। चीन के कमिशनरों को उससे इस विषय में बातचीत करने की हिम्मत भी नहीं हुई। उन्होंने अङ्गरेजों की बात को नीचे

लिखे गोलमोल शब्दों में कबूल कर लिया। चीन न तो इस बात की तहकीकात करेगा और न कानूनन कार्यवाही करेगा कि भिन्न-भिन्न देशों के जहाज अफीम लाते हैं या नहीं" (ओपियम कमिशन पृ० २११)

खैर, पंद्रह वर्ष तक व्यापार बराबर बढ़ता रहा। बीचबीच में, चीन अफीम का प्रतिकार कर ही रहा था। १८५८ में भारत से चीन के लिए ७०,००० पेटियों का निकास हुआ पर ब्रिटिश सरकार को केवल इतने भर से संतोष नहीं था। वह अफीम को एक बार चीन में कानूनन वस्तु बना देने के लिए बड़ी उत्सुक थी। लॉर्ड क्लेरेन्डन ने लॉर्ड एल्गिन (वाइसराय) को लिखा कि "इस तरह अव्यवस्थित रूप से व्यापार चलाने की अपेक्षा अफीम पर कुछ कर मंजूर करके उसे कानून के आधार पर मजबूत बना देना अधिक अच्छा होगा। इससे होनेवाले फायदे स्पष्ट हैं।"

शीघ्र ही दूसरी बार युद्ध छेड़ने के लिए भी कारण मिल गया। इस बार भी अभागा चीन सशस्त्र ब्रिटिशों के मुकाबले न टिक सका। ब्रिटेन और उसकी अफीम की विजय हुई। और ३०,००,००० डॉलर्स का दण्ड दे कर ब्रिटेन के लिए चीन को पांच अधिक ट्रीटी पोर्ट खुले करने पड़े। सुलह १८५८ के जून महीने में टिएन्टसिन में हुई। पर उसमें अफीम से प्रत्यक्ष संबन्ध रखनेवाली कोई बात नहीं थी। हां, चीन के करों में संशोधन करने की बात जरूर तय हो गई थी। बाद में इसी वर्ष के नवम्बर महीने में दोनों सरकारों के बीच यह तय हो गया कि प्रत्येक पेटी पर प्रतिशत पांच के हिसाब से कर लिया जाय। इस तरह अन्त में अंग्रेजों ने पशुबल की सहायता से चीन में अफीम के प्रवेश को कानूनन रूप दिलवा ही दिया। पर इसमें भी चीन ने एक

शर्त अपनी ओर से रख दी। शर्त यही थी कि बंदरगाह पर अफीम आने पर वह देश में चीनियों द्वारा ही लाई जाय चीनियों का उद्देश यह था कि देश के भीतर यह व्यापार विदेशियों के हाथों में न जाने पावे। बल्कि पूरी तरह चीनियों के अधीन रहे। इस समय चीन में भारत से जानेवाली अफीम की पेटियां की संख्या ७०००० तक बढ़ गई थी। वह १८३० तक ४९२० थी।

इस तरह जब चीन ने देखा कि व्यसन किसी प्रकार रुकता नहीं है तब उसने बजाय इसके कि यहां का पैसा विदेशों में जाय, अपने यहां अफीम की खेती शुरू कर दी। विशाल प्रदेश इसके लिए खुले कर दिये गये। जहां अच्छे-अच्छे पोषक नाज बोये जाते, वहां विष के पौधे बोये जाने लगे। परन्तु फिर भी वे भारत की अफीम को न रोक सके। चीन की अफीम यहां के जैसी अच्छी न थी। हां इससे एक फायदा हुआ। लोगों को दो प्रकार की अफीम मिलने लग गई। सस्ती और महंगी, और सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार बुरी-भली, अफीम लेने लगे।

१८५८ में भारत में कम्पनी के हाथों से सरकार ने अपने हाथों में शासन सूत्र ले लिये। और इसके साथ-साथ अफीम के व्यापार को भी।

इ०स०१८६८ में करों का संशोधन करने के लिए फिर बात-चीत छिड़ी। चीन के अधिकारियों ने इस बात पर बड़ा जोर दिया कि भारत से अफीम की निकास बन्द कर के अफीम के व्यापार का अन्त कर दिया जाय। पर यह तो कुछ नहीं हुआ। इसके बदले उन्हें कह दिया गया कि आप अपने कर बढ़ा सकते हैं। १८७६ में फिर चेफू कन्वेन्शन की बैठक हुई। इसने तत्कालीन

सम्बन्धों को मजबूत कर दिया। और चीन में अफीम का कर इकट्ठा करने की पद्धति का संशोधन कर के उसे अधिक सुसंगठित बना दिया। पर इसे मंजूर होने में बड़ी देर लगी। तब तक १८८५ में उसमें एक और बात जोड़ दी गई। इसके पहले आयात-कर के अतिरिक्त देश के भीतर अफीम पर कई कर लगाये गये थे। अब की बार उन सब को एक कर के प्रत्येक पेटी पर ११० टेलस कर लगा दिया गया। अब ब्रिटिश सरकार एक तरह से निश्चिन्त हो गई, उसने अपनी संगीन की नोक को भी चीन की ओर से हटा दिया। अफीम अब स्थायी हो गई थी। उसे अंगरेजी संगीन की सहायता की जरूरत नहीं रही। इसलिए सन् १८९१ में अप्रैल की १०वीं तारीख को वैदेशिक मंत्री (Foreign secretary) ने इंग्लैंड की साधारण सभा में बादशाह ओर से यह जाहिर कर दिया कि अब "चीनी जब चाहे एक साल की सूचना देकर सुलह का अन्त कर सकते हैं। यदि वे अपनी रक्षा करना चाहें तो वे विदेशी अफीम की बन्दी भी कर सकते हैं। मैं यह भी कह देता हूँ कि यदि चीन सरकार कर को यहां तक बढ़ा दें कि विदेशी अफीम का चीन में जाना असंभव हो जाय अथवा उसके प्रवेश को ही रोक दे, तो यह देश चीन को अपनी भारतीय अफीम लेने पर मजबूर करने के लिए एक भी सिपाही की जान न खोएगा और न एक पौंड बारूद ही जलाएगा।"

पर अब तक चीन और भारत-सरकार के बीच अफीम सम्बन्धी प्रश्न पर जो नरम-गरम बातें और झगड़े हो रहे थे, उनसे ब्रिटिश जनता एक दम अपरिचित नहीं थी। बल्कि उसमें

से कई सच्चे हृदय के लोगों को इस बात पर बड़ा बुरा मालूम हुआ कि ब्रिटिश सरकार ने चीन पर जबरदस्ती अफीम लाद दी है। शीघ्र ही वहां अपनी सरकार की इन हरकतों को रोकने के लिए तथा जनता को सरकार के द्वारा किये जाने वाले अन्याय के प्रति जागृत करने के लिए अफीम के व्यापार को रोकने वाली संस्था का जन्म हो गया। १८७४ के लगभग उसने अखबारों और पार्लियामेन्ट में अपना आन्दोलन शुरू कर दिया। १८८५ की सुलह में सरकार ने जिस निराग्रही वृत्ति का परिचय दिया उसका कारण इस संस्था की हलचल ही था। पर संस्था को इतने भर में संतोष नहीं हुआ। उसने चीन और भारत में भी प्रचार शुरू किया। फलतः सरकार को १८९३ में अफीम के प्रश्न की जांच के लिए एक रॉयल कमिशन की स्थापना करनी पड़ी। भारत और चीन के बीच अफीम के व्यापार के सम्बन्ध में कमिशन ने यह राय दी कि*

(१) चीन में अफीम की आयात के लिए चीन सरकार की मंजूरी है।

(२) अफीम चीन पर जबरदस्ती नहीं लादी गई है।†

(३) आज अगर चीन से अफीम का व्यापार भारत न भी करे तो उससे चीन में अफीम का व्यवहार कम न होगा।

(४) बल्कि इस तरह व्यापार बन्द करना भारत के किसानों के साथ अन्याय करना है जो अफीम की खेती करते हैं।‡

---

* भारत में अफीम के प्रचार के विषय में कमीशन ने जो राय दी उसके संबंध में आगे चल कर यथास्थान लिखा जायगा।

† यह तो पाठक पढ़ ही चुके हैं।

‡ भारत के किसानों के प्रति कैसा प्रगाढ़ प्रेम (?) है! धन्य है!

(५) अफीम से मिलने वाली यह आय बन्द करने से सरकार को घाटा होगा। इस घटी की पूर्ति करना अत्यंत कठिन है।

(६) भारत के लोगों पर अगर कर बढ़ाने की बात कही जायगी तो वे उसे मंजूर नहीं करेंगे।

(७) और इस कार्य से जो घटी होगी उसके साम्राज्य सरकार से पूरी होने की भी तो आशा नहीं है।

रॉयल कमिशन ने जो कारण परम्परा दी है वह अनोखी है और उसकी असाधारण बुद्धि की सूचक है। उसपर विशेष टीका करना व्यर्थ है। श्री० सी० एन वकील अपने फायनेंनशियल डेवलोपमेन्ट आफ इण्डिया में इसपर टीका करते हुए लिखते हैं।

"हम देख चुके हैं कि चीन की सरकार ने अफीम के प्रवेश को अपने प्रदेश में किस परिस्थिति में मंजूरी दी है। हम यह भी बता चुके हैं कि रायल कमिशन का यह वचन कहां तक सत्य है कि ब्रिटिश सरकार ने चीन पर अफीम के मामले में कोई जबरदस्ती नहीं की। अपने व्यापार को जारी रखने के लिए पेश की गई तीसरी दलील बड़ी विचित्र है। कहा गया है कि यदि हम व्यापार बन्द कर देंगे तो चीन या तो अफीम की खेती बढ़ा देगा या और कहीं से अफीम मँगाने लग जायगा। फिर हम ही क्यों न उसे अफीम दें? मतलब, यह कि इस ख्याल से कि अनंत आत्मघात करने पर तुला हुआ है और मोहन-सोहन उसको विष देकर अवश्य मार डालेंगे फिर धनपत ही उसे विष देकर क्यों न दो पैसे सीधे कर ले? बंगाल में अफीम की खेती करने वाले तो सरकार के आदमी थे। अगर वे अफीम के बदले नाज

बोते तो उन अकाल के वर्षों में निःसन्देह देश को फायदा हो
देशी राज्य भी तो सरकार के अधीन ही थे। यदि उनके सा
यह मानवोचित नीति रक्खी जाती तो संभव नहीं कि वे
मानने से इन्कार कर जाते। सची बात तो यह है कि सर
के सामने धन का सवाल ही जबरदस्त था। और इसके
यही है कि सरकार ने भारत के शासन यंत्र को इतना की
बना दिया है कि उसको सुचारु रूप से जारी रखने के लिए
कार के लिए ऐसे नीति-हीन मार्गों से धन इकट्ठा करना आवश्य
हो गया है।"

रायल कमीशन की सिफारिशों को संपूर्ण महत्व दिया गया।
चीन से अफीम के व्यापार के संबन्ध में कुछ न किया गया।
और वह महान देश दिन बदिन शैतान के जाल में अधिकाधिक
जकड़ता गया।

पर ईसवी सन १९०६ में एक ऐसी बात हो गई कि जिसकी
किसी को कल्पना भी नहीं थी। और न होता था किसी को
विश्वास। चीन की जनता ने अब की बार अफीम को कतई
छोड़ने का अटल प्रण कर लिया। चीन ने ब्रिटेन से सुलह की
कि वह अपने देश में प्रतिवर्ष १० हिस्सा अफीम की खेती कम
करता जाय। और ब्रिटेन भी भारत से प्रतिवर्ष अपने निकास
का १० वां हिस्सा घटता जाय। इस तरह १० वर्ष में चीन में
अफीम की खेती और भारत की अफीम के व्यापार का भी
एक साथ अन्त हो जाय। किसी को कल्पना न थी कि ऐसे
प्रस्ताव का भी पालन हो सकता है। परन्तु परमात्मा की दया
से दोनों ओर से इसका पालन करने की भर सक कोशिश हो

रही थी। चीन तो हृदय से अफीम से छुटकारा चाहता था। और ब्रिटेन में भी इस समय उसके अफीम के व्यापार के खिलाफ बड़ी खलबली मची हुई थी। ब्रिटिश सरकार उसका नैतिक दृष्टि से कोई जवाब नहीं दे सकती थी। इस कारण उसे हेठी लेनी पड़ी। चीन का मार्ग सरल हो गया। यदि एक बात न होती तो यह चीन की विजय अपूर्व होती। परन्तु एक देश-द्रोही आदमी की गलती ने सारे राष्ट्र के उत्साह और शुद्धि पर पानी फेर दिया। बात यों हुई :—

इस समझौते का अन्तिम दिन १९१७ के अप्रैल मास की १ली तारीख था। महीनों पहले से जाहिर कर दिया गया था कि उस दिन सारे देश में उत्सव मनाया जाय। स्थान स्थान पर बड़ी बड़ी तैयारियां होने लगीं। पर इधर विघ्न-कर्ताओं की मण्डली भी अपने काम में मशगूल थी। भारत और चीन के व्यापारी-मंडल इस बात के लिए तन-तोड़ मिहनत कर रहे थे कि इकरार की मीयाद नौ महीने और बढ़ा दी जाय। उनका कहना था कि 'हमारे पास अभी थोड़ीसी अफीम पड़ी हुई है। तब तक हम इसे खतम कर देंगे।' शँघाई ओपियम कम्बाइन (उस मण्डल का नाम था) ने चीन में रहने वाले अंगरेज अधिकारों से अपील की, लंदन में भी अपील की! पर ब्रिटिश सरकार ने भी उनकी एक न सुनी। और इस कार्य के लिए ब्रिटिश सरकार चीन और भारत की जनता के धन्यवादों की पात्र है। बात यह थी कि यदि इस मीयाद को एक बार भी बढ़ा दिया जाता तो उसे फिर बार बार बढ़ाने के लिए लोग अपीलें करते रहते। अंत में शंघाई ओपियम कम्बाइन की दाल

जब अपनी सरकार के पास न गली तब उसने दूसरे उपायों का अवलम्बन किया। उसने किसी प्रकार चीन के उपाध्यक्ष को अपने वश में कर लिया। और उसके हाथ में बची हुई ३००० पेटियां बेच दीं। उपाध्यक्ष ने यह माल चीन की सरकार के नाम से खरीद लिया और व्यापारियों को १०,०००,००० डॉलर्स देने के लिए हुक्म दे दिया। यह घटना अप्रैल की पहली तारीख के कुछ सप्ताह पहले की है। जब इस लेन देन की बात देश में फैली तो सारा राष्ट्र मारे रोष के पागल हो गया। सारे देश में विराट-सभायें होने लगीं। प्रत्येक शहर, कस्बे और जिले के मुख्य स्थानों से तारों का तांता लग गया 'सौदे को रद कर दो'। अखबार पृष्ठ के पृष्ठ रंगने लगे और पार्लियामेन्ट ने कठोर शब्दों में इस सौदे की निन्दा की। पर किसी अज्ञात कारण से सौदा रद नहीं किया जा सका।

सारे देश का उत्साह बात की बात में निराशा में परिणत हो गया। वह वीर प्रयत्न दस साल का वह भगीरथ परिश्रम एक देशघातकी रिश्वतखोर अधिकारी की मूर्खता के कारण मिट्टी में मिल गया। यह सत्य है कि कुछ महीने बाद यह सब अफीम जिसकी कीमत छः करोड़ रुपये के करीब थी, खुले आम जला दी गई। पर उस एक आदमी की गलती ने सारे राष्ट्र के आत्म-विश्वास पर ऐसा जोरों का प्रहार किया कि फिर वह उससे उठ न सका। अब क्या है ? आश्चर्य नहीं यदि चीन के निवासी फिर अफीम की खेती करने लग गये हों।

भारत से चीन को नीचे लिखे अनुसार अफीम उन दिनों में जाती रही थी।

वर्ष	पेटियां
१७२९	२००
१७९०	४०००
१८२०	५०००
१८३०	१६८७७
१८३८	२०६१९
१८५८	७००००
१८७०	५९०३५
१८८०	७३२८८
१८९०	७६६१६
१९००	४९२७७
१९०५	५१९२०
१९१०	३५४८८

"चीन सदियों तक भारत की अफीम का प्रधान ग्राहक रहा है। मालवा की अफीम को जोड़ कर सन् १८५३ से लेकर १८९२ तक किसी भी वर्ष में ६०,००० पेटियों से कम अफीम चीन को नहीं गई। १८९२ से १९०७ तक वह औसतन् ५०००० पेटियों में गई। जिसकी कीमत ४०,००,००० पौंड से भी अधिक होती है। १० वर्ष में अफीम भेजना कम करने के हिसाब से १९०७ से प्रति वर्ष ५००० पेटियां कम जाने लगीं।

कहते हैं, इस प्रकार भारत की अफीम के लिए चीन का दरवाजा सदा के लिए बन्द हो गया। परन्तु "मिस ला मोटे की पुस्तक को पढ़ने से जो कि ब्ल्यू बुक्स और सरकारी हिसाबों के आधार पर लिखी गई है, हमें पता चलता कि यद्यपि भारत की

अफीम के लिए सामने का दरवाजा तो बन्द हो गया है तथापि हर कोशिश कर के दूसरे रास्तों से अब भी भारत की अफीम चीन में भेजी जा रही है। भारतभक्त एँड्रूज लिखते हैं:—

The hateful and miserable thing is this, that the British Government in India, all through the war and since the war, has been a party to this new psincess of Opium poisoning in China. I have with me a letter from the International Anti Opium-Association at Peking, in which the Secretary asserts, from intimate knowledge of the facts, that the greatest hindrance to the suppression of opium in China is the production and sale of such large amounts of Opium by the Indian Government.

बड़ी घृणित और दुःख की बात तो यह है कि महायुद्ध के दिनों में और उसके बाद भी भारत सरकार का चीन को अफीम पहुँचाने में हाथ रहा है। पेकिंग की अंतर्राष्ट्रीय अफीम विरोधिनी संस्था का मेरे पास एक पत्र है जिसमें उस संस्था के मंत्री, जिन्हें असली बातों का खूब पता है, लिखते हैं कि चीन में अफीम के व्यसन को रोकने के काम में सब से भारी विघ्न भारत-सरकार है, जो इतनी अधिक तादाद में अफीम पैदा करती और बेचती है।

मिस ला मोटे सरकारी अंकों के आधार पर लिखती हैं कि स्ट्रेट सेटलमेन्ट्स की वार्षिक आय १९०००००० डॉलर है। इनमें से ९०००००० डॉलर भारत की अफीम के व्यापार से उसे मिलते हैं।

हांग-कांग, जिसकी जनसंख्या पांच लाख है, इतनी अफीम हर साल लेता है जो १५,००,००,००० लोगों की औषधि विषयक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकती है। अपनी सारी वार्षिक आय का तीसरा हिस्सा उसे केवल इस भारत की अफीम के व्यापार से ही मिलता है। और यह सब अफीम चोरी से चीन में भेजी जाती है। स्वयं हांगकांग की सरकार इस बात का प्रतिवाद नहीं करती।

मिस लामोंटे लिखती हैं "हम सुदूर पूर्व में एक वर्ष तक रहे थे और हम जिस देश में गये इस विषय (अफीम) में तहकीकात की। जहां कहीं हो सका हमने शासन-विवरण भी ध्यानपूर्वक पढ़े। हमने देखा कि सरकार ने अफीम के व्यापार को बड़ी मजबूत बुनियाद पर प्रतिष्ठित कर रक्खा है और इसमें अपना एकाधिकार (Monopoly) रक्खा है। अफीम पर आबकारी (Excise) कर लगा कर और ठेकेदारों से ठेके की फीस के रूप में खुले-आम सरकार टके कमा रही है। यह सब पूर्ण व्यवस्था के साथ हो रहा है और विदेशी सरकारें अपने शासित प्रजाजनों के हितों का बलिदान देकर अपना नफा कमा रही हैं। अमेरिका और यूरोप के देशों में हम देखते हैं कि सरकारें ऐसी नशीली चीजों के व्यवहार को रोकने की हर तरह से कोशिश करती हैं। पर यहां तो सर्वत्र इसके विपरीत दशा है।"

अब भी इस सुदूर पूर्व के देशों में अफीम पीने के लिए अंगरेज सरकार ने चण्डूखाने खोल रक्खे हैं। मिस लामोंटे सिंगापुर में इसी प्रकार के एक चण्डूखाने में गई थीं और वहाँ का हालत देख कर चकित हो गई थीं। वे लिखती हैं:—

We three got into the Rikshaws and went down to the Chinese quarters where there are several hundreds of these places all doing a flourishing bussiness. It was early in the afternoon but even then trade was brisk. The people purchased their opium on entering: each packet bears a red lable "Monopoly Opium."

हम रिक्शा में सवार हुए और चीनी बस्ती की तरफ गये। वह पर ऐसे चण्डूखाने सैकड़ों की संख्या में हैं, और जहाँ व्यापार तेजी से चल रहा है इत्यादि।

इसके बाद एक चण्डूखाने का प्रत्यक्ष वर्णन देकर मिस लामोटे लिखती हैं:—

So we went on down the street. There was dreadful monotany about it. House after house of feeble emaciated wrecks, all smoking Monopoly opium, all contributing by their shame and degradation to the revenue of the mighty British Empire.

अर्थात् "इस तरह हम जब उस सड़क से गुजरे तो एक के बाद एक ऐसे हमें कई मकान मिले, हर एक मकान का वही भीषण दृश्य था! दुबले-पतले अभागे मोनोपोली (जिसके व्यापार का एकाधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथों में था) अफीम पी रहे थे और अपने पतन और लज्जा द्वारा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की आय को बढ़ा रहे थे।"

एक ओर इंग्लैंड में Dangerous Drugs Act जारी है और दूसरी ओर यही सरकार अपने अन्य जातीय प्रजाजनों में इस तरह अफीम बेच रही है! यह है घृणित लोभ का परिणाम! जिस अपराध के लिए इङ्गलैंड में वह अपने देश के निवासियों को सजा देती है, पूर्वीय देशों में उसी पर वह टके कमाती है! मारिशस की भारतीय मजदूर जनता में भी इसी तरह अफीम का प्रचार बढ़ाया जा रहा है। १९१२-१३ में दस पेटियां भेजी थीं उसे बढ़ाते-बढ़ाते १९१६-१७ तक वहाँ प्रतिवर्ष १२० पेटियाँ तक जाने लग गई थीं।

स्टेटिसटिक्स ऑफ ब्रिटिश इण्डिया से मिस ला मोटे नीचे लिखा महत्वपूर्ण उदाहरण पेश करती है:—

During the ten years, ending 1916-17 the receipts from opium consumed in India incresed at the rate of 44 per cent. The revenue from drugs consumed in India (excludring opium) has risen in ten years by 67 per cent.

भारत में १८१६-१७ में खतम होने वाले १० वर्ष में अफीम की खपत पर सरकार को पहले की अपेक्षा ४४ फी सैकड़ा अधिक आय हुई। और अफीम को छोड़ कर दूसरी नशीली चीजों पर कुल ६७ फी सैकड़ा अधिक आय हुई।

संभव है बहुत दिन से गुलामी के आदी होने के कारण भारतवासियों को इसमें कुछ भी विशेषता न दिखाई दे। उन्हें पता नहीं कि स्वाधीन देश की सरकारें अपने प्रजाजनों के स्वास्थ्य और

नीति की रक्षा करने में कितनी सावधान रहती है। इसीलिए आ हमारे देश में इन नशीली चीजों का ऐसा भीषण प्रचार होने प भी देश के इने-गिने नेताओं को छोड़ कर न कोई अपनी आवा इसकी रोक-थाम के लिए उठाते हैं और न उस प्रश्न में को दिलचस्पी लेते हैं।

आज भी हम अफीम की बन्दी से कोसों दूर हैं मालूम होता है। जब स्वयं शिक्षित लोगों का यह हाल है नरेश और सरकार यदि इस बात में उदासीन हों तो आश्चर्य की बात है ? परन्तु मिस लामोटे जैसी स्वतन्त्र देश रहने वाली महिला को तो यह परिस्थिति बड़ी भीषण मालूम हु उसने उपर्युक्त उदाहरण पर टीका करते हुए लिखा है :—

A nation that can subjugate 300000000 helple Indian people and turn them into drug addicts f the sake of revenue is a nation, which commi a cold blooded atrocity unparalleled by any atr city committed in the rage and heat of war.

युद्ध के आवेश और द्वेष पूर्ण वायुमण्डल में यदि किसी र से कोई पाप हो जाता है तो समझ में आ सकता है। परन्तु राष्ट्र, जो तीस करोड़ गरीब भारतीयों को जीत कर धन कमाने लिए उन्हें नशीली चीजों का गुलाम बना देता है, ऐसा घृणित प करता है जिसकी तुलना में युद्ध में किये गये वे अत्याचार न कुछ है

मिस लामोटे का यह धिःकार-वचन अंगरेज राष्ट्र के लिए भले कहा गया हो, परन्तु उसमें भारतीयों के लिए व्यंग्य-रूप में का अधिक जोरदार धिःकार है। ऐसे लोगों को किस पशु की उप

दी जाय जिनकी संख्या तीस करोड़ होने पर भी जो कुछ लाख विदेशियों की गुलामी में सड़ रहे हैं, जिन्हें अपनी गुलामी पर लज्जा नहीं आती और जो मजे में नींद के खुर्राटे ले रहे हैं! इतना ही नहीं बल्कि जो अनेक प्रकार के व्यसनों और व्यभिचारों के चक्कर में पड़ कर शरीर और आत्मा को और भी पतित और भ्रष्ट कर रहे हैं।

भारतीयों के लिए यह दूनी शर्म और लज्जा की बात है। केवल वे खुद ही अफीम खा कर अपना ही स्वास्थ्यनाश नहीं कर रहे हैं परन्तु अफीम पैदा करके दूसरे देशों को भी अफीम का और विदेशियों का गुलाम बनाने में सरकार की सहायता कर रहे हैं। आज भी भारत की अफीम से यह घृणित काम किया जा रहा है। पाठक जरा अफीम की पैदायश और व्यापार पर एक नजर डालें और देखें कि यद्यपि उसे पहले की अपेक्षा सरकार को बहुत घटा देना पड़ा है; तथापि इस समय भी वह हमारे देश और हमारे पड़ोसियों और मित्रों के लिए भारी खतरनाक है।

भारत में अफीम की पैदायश और व्यापार

आरंभ में कहा गया है, अफीम की खेती सिर्फ सरकार की आज्ञा से सरकार के ही लिए की जा सकती है। अफीम की खेती करने वाले किसान को खर्चे के लिए पेशगी दाम सरकार से मिलते हैं। प्रतिवर्ष किसान सरकार से अफीम की खेती करने के अधिकार को प्राप्त करते हैं और पैदा की गई अफीम सरकार को सौंप देते हैं। उस समय पेशगी रकम काट कर किसान को अफीम की कीमत दे दी जाती है। कच्ची अफीम को गाजीपुर के अफीम के कारखाने में भेज दिया जाता है; वहां पर वह विदेशों में भेजे जाने लायक रूप में बना कर पेटियों में बन्द कर दी जाती है।

इन तैयार पेटियों का बटवारा सरकार यों करती है :—

(अ) विदेशों में भेजने के लिए कलकत्ता में अफीम की पेटियां नीलाम से बेचना।

(आ) जिन सरकारों से इकरार हो गये हैं, उनके लिए प्रत्यक्ष रूप से अफीम खरीद कर उन्हें सौंप देना ऐसे देशों में स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स, हांग-कांग, दि नेदर लैंडस् इन्डीज, श्याम, ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो, और सीलोन मुख्य हैं।

(इ) कुछ अफीम भारत के मेडिकल डिपार्टमेंट को बतौर दवा के उपयोग करने के लिए भी दी जाती है।

(ई) और शेष, भारत के अफीमचियों में फुट कर बेचने के लिए भारत के आबकारी विभाग को दे दी जाती है।

अफीम दो प्रकार की होती है। विदेशों के लिए और भारत के लिए। विदेशों के लिए जो अफीम तैयार होती है उसे 'प्रावीजन' अफीम कहा जाता है और जो भारत में बेचने के लिए बनाई जाती है उसे 'एक्साइज' अफीम कहा जाता है। हमें इन दोनों के पृथक पृथक अंक नहीं मिले हैं :—*

श्री रशब्रुक विलियम्स कुछ पुराने अंक यों देते हैं। ये बंगाल की अफीम के ही अङ्क हैं जो कंपनी सरकार की देखभाल में पैदा की जाती थी :—

वर्ष	पेटियां
१७९८-१८२१	४००० प्रतिवर्ष
१८३०-१८४८	१९००० ,,
१८४८-१८५६	५०००० ,,
१८५९-१८६२	४०००० ,,

उत्पन्न या आय	पौंड
१७९७—१८ तक	११००००
१८५० तक	९०००००
१८८०-१९१०तक औसतन	४००००००

इसके अतिरिक्त मालवा से भी अफीम जाती थी उसके अंक श्री रशब्रुक विलियम्स यों देते हैं :—

१८४३	प्रतिवर्ष	१६०००
१८७५-७६	,,	४००००
१९०१ में	,,	२६०००
१९०१-०५	,,	१९०००

* Finnance and Revenue accounts of the Government of India for the year 1921-28 Page 76

पिछले कुछ वर्षों में नीचे लिखे अनुसार प्रोविजन अफीम तैयार की गई।

वर्ष	पेटियां
१९१७-१८	१४४९९
१८-१९	१२५०७
१९-२०	७४००
२०-२१	५८००
२१-२२	७५००
२२-२३	९०००

प्रत्येक पेटी में १४० पौंड अफीम होती है। यह अफीम ब्रिटिश साम्राज्य के पूर्वी उपनिवेशों तथा सुदूर पूर्व के अन्य अफीम-सेवी देशों में जाती है।

भारत से इंग्लैंड, सीलोन, लंका, स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स, हांगकांग, मकाओ, जापान, इन्डो चायना, जावा, श्याम, ब्रिटिश उत्तरी बोर्नियो, मॉरिशस, ब्रिटिश वेस्ट इन्डीज, न्यू साउथवेल्स, फीजी द्वीप समूह और ब्राजिल आदि देशों में प्रतिवर्ष अफीम जाती है। इन देशों में नीचे लिखे अनुसार अफीम की पेटियां जाती है। एक पेटी में १४० पौंड अफीम होती है।

	१९१७-१८	१८-१९	१९२०
ब्रिटेश और इंग्लैंड के उपनिवेशों की सरकारों को	७८६४	८७०१	७८१६
ग्रेट ब्रिटेन	३०५१६	२४००	९००

उपर्युक्त देशों के खानगी व्यापारियों को	५७३८	६२२७	२६४३
कुल विदेशों में	१६६५३२	१७३२८	११३५९®

भारत के किसानों, व्यापारियों और नरेशों के लिए यह एक लज्जा की बात है कि वे दूसरे देशों की जनता को जहर खिला कर धन इकट्ठा कर रहे हैं। क्या अफीम से उन्हें जितना पैसा मिलता है उतना और किसी अच्छे व्यापार या फसल से नहीं मिल सकता ? खुद अफीम खाना भले ही एक बार क्षम्य हो पर दूसरे को जहर दे कर अपने रुपये सीधे करना तो महा पाप है। अस्तु, खानगी व्यापारियों को अपने अपने देश की सरकार के प्रमाण पत्र के आधार पर ही अफीम बेची जाती है। ध्यान देने की बात है कि :—

"१८१३-१४ में चीन में अफीम की बन्दी होते ही परिवर्ती देशों में मसलन् जापान, हांगकांग, और स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स में अफीम की बिक्री और कोकेन बनाने के लिए जोरों से आन्दोलन शुरू हो गया। चीन में अफीम की तो बन्दी थी पर कोकेन के प्रवेश को रोकने के लिए वहां कोई कानून नहीं था। अतः अंगरेजों की विलक्षण साहसिकता की चातुरी के बल पर चीन में कोकेन इन्जेक्शन की आदत को खूब उत्साहित किया गया।" †

® Statistics British India vol. 10 Financial Tenth issue

† The Drink & Drug Evil in India P. 110

फलतः कोकेन बनाने वाले देशों में अफीम की मांग बढ़ने लगी। इंग्लैंड में डेन्जरस ड्रग्स ऐक्ट प्रचलित है अर्थात् वहां कोई अफीम नहीं खा सकता, पर हम उपर्युक्त कोष्ठक में पढ़ चुके हैं कि वहां पर भी अफीम मंगाई जाती है। खैर, पहले पहल स्टेट्स सेटलमेन्ट को लीजिए।

वर्ष	अफीम की पेटियां
१९१४-१५	६००
१९१५-१६	२५५०
१९१६-१७	३७५०
१९१७-१८	४७८९
१९१८-१९	४१३६*

श्री रशब्रुक विलियम्स कहते हैं कि वैदेशिक व्यापार की नीति सरकार ने यों रक्खी है कि "अफीम का व्यवहार करनेवाले देशों को अफीम सीधे देदी जाय बजाय इसके वह खानगी व्यापारियों को नीलाम से दी जाय।" ज्यों ज्यों विदेशी सरकारों से सौदा पटता जाता है नीलाम की रकम घटती जाती है।

"इसके अतिरिक्त भारत से "एक्स्ट्रा चायना" † मार्केट के लिए प्रतिवर्ष १६००० पेटियां जाती थीं। पर अब तो केवल ११००० पेटियां ही भेजी जाती हैं। यह संख्या किसी समय

---

* पृष्ठ १११

† एक्स्ट्रा चायना मार्केट में नीचे लिखे देश हैं उनकी आवश्यकताएँ जिनका अंदाजा १९११ में लगाया गया था, श्री रशब्रुक विलियम नीचे लिखे अनुसार देते हैं।

२००००० पेटियों तक पहुँच गई थी। इस शताब्दि के आरम्भ में वह ७०००० पेटियों से कभी कम नहीं रही है। पर १९१८-१९ और १९१९-२० में वह बढ़कर १४००० और १२००० तक चली गई। अब आशा है कि भविष्य में वह ११००० से भी कम हो जायगी।" अस्तु।

आय व्यय का हिसाब देशी और वैदेशिक व्यापार का अलग अलग न मिलने के कारण हम उसे यहां नहीं दे सकते। भारत में अफीम के प्रचार के प्रश्न पर विचार कर लेने पर स्वदेशी तथा वैदेशिक आय का हिसाब इकट्ठा दे दिया जायगा।

ब्रिटिश भारत की अफीम के वैदेशिक व्यापार के विषय में श्री रशब्रुक विलियम्स यों लिखते हैं:—

"अफीम के निकास के सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति के विषय में बड़ी गलत फ़हमी फैली हुई है। अगर कोई देश इस दवा की बन्दी करना चाहता है और उसे अपनी सीमा के अन्दर नहीं आने देना चाहता तो भारत सरकार भी उस देश को यहां से अफीम न जाने देगी। मसलन किसी शख्स को जहाज में अफीम लेकर कलकत्ता से चीन नहीं जाने दिया जायगा। दूसरे भारत सरकार किसी देश की सरकार को अथवा उस सरकार का प्रमाण-पत्र रखने वाले शख्स को ही अफीम बेचना पसन्द करती है। और भारत से विदेशों में जाने वाली अफीम का $\frac{७०}{१००}$ हिस्सा इसी तरह बेचा जाता है। पर आयात के कानून बनाना (अर्थात् किसी चीज की आयात को कानून द्वारा रोकना या नियन्त्रित करना) और कर्त्तव्य-कठोर हो कर उस पर अमल करना प्रत्येक देश की सरकार का काम है न कि भारत सरकार

का। भारत सरकार उस देश के लिए अपने यहाँ के निकास
कोई नियन्त्रण नहीं डाल सकती जो दूसरे देशों से अफी
मँगाता है। इसके मानी हैं अफीम बन्दी की ओर बिना प्रग
किये वे फायदा अपनी आय को घटा लेना। भारत-सरकार
बरसों तक खुलेआम और प्रामाणिक ढंग से अफीम का व्यापा
किया है। और वह शुद्ध वस्तु बनाती आई है। लोग भी तु
और फारसी अफीम के मुकाबले में उसे खरीदते आये हैं। स
कार इस व्यापार का बराबर क्रमशः नियन्त्रण करती जा रही
पर उसका विश्वास है कि जब तक संसार के अधिकांश देशों
अफीम की जरूरत रहेगी भारत की अफीम उनकी आवश्य
ताओं को पूर्ण करती रहेगी। क्योंकि यहां की अफीम में मॉर्फाइ
कम होने के कारण वह सौम्य है। और वह उन लोगों के स्वास्
या शरीर को बिना अधिक हानि पहुँचाये उनकी आवश्यकता
को पूर्ण करती रहेगी। एक शब्द में कहना चाहें तो भारत स
कार का ख्याल है कि जो देश इस भयंकर द्रव्य के व्यापार प
कठोर नियन्त्रण रखना नहीं चाहते वहां यदि वह अफीम भेज
बन्द भी कर दे तो संसार की नैतिक उन्नति नहीं हो सकेगी।

इसका भाव साफ है। इसलिए इसपर विशेष टिप्पणी करन
व्यर्थ है।

चार और आय

पहले हम बता चुके हैं कि भारत में बहुत समय से अफीम की पैदायश होती आई है। फिर
के बन्दी या रोक करने वाला कोई कानून भी नहीं था।
शास्त्रों में भी कोई जोरदार निषेध नहीं था, इसलिए मध्यकाल
अफीम का व्यसन काफी फैला हुआ था। उसके बाद जब
क्रम से सुधरी हुई अंगरेज सरकार का आगमन हुआ तो
ने अफीम की पैदायश, व्यापार और प्रचार को भी पूर्णतया
ने हाथों में ले लिया। इसके बाद का इतिहास तो हम पिछले
यायों में लिख ही चुके हैं। परन्तु जिस प्रकार बाहरी देशों को
फीम देकर सरकार ने टके कमाना शुरू किया उसी तरह उसने
रे देश में भी किया। उन्नीसवीं सदी में सरकार द्वारा बा-
यदा चण्डूखाने चलाये जाते थे। ३० अप्रैल सन् १८८९ के
तसाई में श्रीयुत केन ने लखनऊ के एक चण्डूखाने का वर्णन
या है। मिसाल के तौर पर हम उसीको यहाँ उद्धृत किये
हैं। वर्णन जरा लम्बा तो है, परन्तु १८८९ में हमारे देश की
वस्था का वह एक हूबहू चित्र कहा जा सकता है। उससे हमें
त होता है कि देश में अफीम का व्यसन किस हद तक फैला
या था और देश के शासक तथा समाज उसकी ओर से कैसा
दासीन था। चित्र यों है:—

"हम दूसरों के साथ दरवाजे के अन्दर घुसते हैं और

अपने आपको एक गंदे आंगन में खड़ा हुआ पाते हैं। इ
आंगन के आस-पास चारों ओर मिल कर १५ छोटे-छोटे क
हैं। दुर्गन्धि बहुत भयंकर थी। मक्खियों की भिन-भिनाहट
जी घबड़ा रहा था। सड़क से इस दरवाजे के अन्दर घुस
वालों के चेहरों पर एक प्रकार की विचित्र नारकीय-अमानुष
दिखाई देती थी। अब मुझे मालूम हुआ कि एक दूसरी
'सरकार' के बाजार में मैं आ गया और सो भी अपने जीवन में
पहली बार। मैं एक 'चराडू' खाने की चहार दिवारी के अन्दर था।
फाटक पर एक चीनी सुंदरी बैठती है। उसका पति अपने ग्राहक
से बातें करने में तथा उन्हें ऐसे कमरों में ले जाने में लगा हुआ
है जिनमें भीड़ नहीं है। उस सुंदरी के सामने एक मेज़ है
जिस पर कई पैसे पड़े हुए हैं। सचमुच वह पूरी 'पिशाचाज'
प्रतीत होती है। इस दुकान की आय में से आधी रकम तो
कलकत्ता के सरकारी कोश में जाती है और [illegible] सरकारी
कर उगाहने वाले—अर्थात् अफीम के [illegible] (
वही तो सच्चा रूपक है)। इस स्थान [illegible]
ले कर मैं उन कमरों में से एक के अन्दर घुसा। कमरे में कोई
रोशनदान या खिड़की नहीं है। बिलकुल अँधेरा है। बीच में
कोयले जल रहे हैं। उनके धुंधले प्रकाश से मालूम होता था
कि कमरे के अन्दर कोई नौ दस व्यक्ति बैठे हुए हैं—नहीं, गोल
बांध कर पड़े हुए हैं, मानों किसी गंदी गुफा में सुवर पड़े हों।
प्रत्येक कमरा एक पंद्रह सोलह साल की लड़की के जिम्मे होता
है। आग कहीं बुझ न जाय इसका वह ख्याल रखती है। वह
प्रत्येक आगन्तुक के मुँह में चिलम देकर उसे जला देती है और

चिलम को तब तक बराबर पकड़े रहती है जब तक कि धुंआ खींचते-खींचते वह आगन्तुक बेहोश हो कर अपने से पहले आने वाले ग्राहक के बदन पर नहीं लुढ़क जाता। उस समय हमने देखा कि उस कमरे के अंदर २।२ आदमी इस स्थिति को पहुँचने को थे। मैं शनिश्चर की रात को ईस्ट एण्ड जिन पॅलेसेस पर भी गया था। मैंने इससे पहले कई प्रकार की सान्निपातिक बेहोशियों के मरीजों को देखा है, पागलखानों को भी देखा है। पर कहीं भी मनुष्य के रूप में परमात्मा की प्रतिमा का ऐसा भयंकर नाश मैंने नहीं देखा, जैसा कि लखनऊ में अफीम की उस 'सरकारी' दुकान पर देखा है। अफीम के शिकारों में एक १८।१९ वर्ष की सुंदरी युवती भी थी। उसके दयनीय चेहरे को मैं मरणपर्यन्त नहीं भूल सकता। उस भयंकर विप के कारण वह कैसी बेहोश होती जा रही थी! उसकी नशीली आँखें कैसी मुंदती जा रही थीं—उन चमकीले सफेद दाँतों पर से उसके वे लाल होंठ कैसे खिंच रहे थे! उसी उम्र की एक दूसरी लड़की उन आगन्तुकों के झुंड में एक मस्त करुण गीत गा रही थी जब कि उस विप की चिलम बारी-बारी से एक दूसरे के हाथों में दी जा रही थी। उस सारी दुकान में मैंने चक्कर लगाया। पंद्रहों कमरों में गया। और गिन कर ९७ स्त्री पुरुषों को बेहोशी की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में पाया। नौसिखिये अफीमची तो दो चार पैसे में भी काम चला लेते थे। प्रतिदिन उन्हें अधिकाधिक अफीम की जरूरत पड़ती। इस दुष्ट दुकानदार ने तो मुझे ऐसे शख्स भी बताये, जिनकी तमाखू में तात्र अफीम की १८० बूंदें डालने पर भी उन्हें नशा नहीं आता था। पर इस भयंकर विषैले स्थान में

ठहरना मुश्किल था। ज्यों-त्यों कर के मैं गिरता पड़ता इस वि
मंदिर से बाहर भागा"।

उन्नीसवीं सदी के अन्त में भारत की यह दशा थी। शह
में अफीम का बेहद प्रचार था। और जैसा कि इस उद्धरण
ज्ञात होता है सरकार ऐसी भयंकर दूकानें चलाती थी। य
अवस्था हमारे समाज के लिए तथा सरकार के लिए भी निःसन्दे
लज्जाजनक थी। जबतक हम किसी भी बुराई का सक्रिय प्रति
कार करना नहीं सीखेंगे तब तक हम अपनी वर्तमान अवस्था
कभी निकल नहीं सकते। श्रीयुत केन जैसे सज्जनों ने इग्लैंड
जा कर भारत की अवस्था का वर्णन किया। वहाँ बहुत भा
आन्दोलन हुआ। हमें पता नहीं कि भारतीय जनता ने इ
बुराई को मिटाने के लिए क्या किया। अंगरेज जनता
आन्दोलन के फल-स्वरूप भारत में अफीम के प्रचार और व्यापा
की दशा का अवलोकन और जांच करने के लिए एक रॉयल
कमिशन की नियुक्ति हुई (१८९३)। कमिशन ने जांच की
और उसकी रिपोर्ट सात भागों
उसने यह आविष्कार किया कि
और एक तो लोग उसका उपयो
नहीं और यदि कोई करता भी
निन्दा होती है।" इत्यादि। परन्तु इसमें सब एक मत नहीं
भिन्न मत रखनेवाले सदस्यों ने अपनी रिपोर्ट अलग प्रकाशि
की थी। पर उसे अब भुला दिया गया है। आश्चर्य तो यह
कि आज भी इस १८९३ ई० के कमिशन की बातों को वेद
वाक्य के समान माना जाता है। अधिकारियों के दृष्टिकोण

अभी अफीम की खेती और प्रचार को बन्द करने के विषय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता। गत एक दो साल से शिमला और दिल्ली में अफीम की बन्दी की सभायें जरूर होने लगी हैं। परन्तु उनका कोई ठोस फल अभी प्रकट नहीं हुआ है। भारत सरकार की सेंट्रलब्यूरो ऑफ इन्फरमेशन के डायरेक्टर श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स लिखते हैं "भारत की विशेष परिस्थिति पर बिना विचार किये भारत सरकार की नीति को समझना असंभव है। ईसवी सन् १८९३ में रॉयल कमिशन ने पाया कि भारतीय जनता का बहुत भारी हिस्सा अफीम को बन्द करने के पूर्णतया विरोधी था। क्योंकि लोग इसे व्यक्तिगत स्वाधीनता पर अनावश्यक नियन्त्रण समझते थे, और वास्तव में यह तो सदियों की पुरानी आदतों और रिवाजों में हस्तक्षेप है भी। हमें यह याद रखना चाहिए कि भारत की जमीन अफीम तो पैदा करती ही रहेगी। भारत की जनता ने सदियों से अपने आपको अफीम का आदी बना लिया है और उसका ख्याल है कि अफीम में कितने ही रोगों को मिटाने के गुण भी हैं। आदत पुरानी हो जाने के कारण सामाजिक रसम रिवाजों में भी वह जड़ पकड़ गई है। इत्यादि लिखकर फिर रायल कमिशन की दुहाई देते हुए श्रीयुत रशब्रुक विलियम्स अफीम की बन्दी को खतरनाक बताते हैं।

रॉयल कमिशन की राय है "दूर दृष्टि, विचार-शीलता तथा राजनीति के दृष्टिकोण से विचार करने पर यही साफ-साफ दिखाई देता है कि जब तक भारत ऐसी बात के पक्ष में अपना मत नहीं दे देता, भारत की शासक ब्रिटिश सरकार की हैसियत से हम एक ऐसी बात के लिए, उन्तीस करोड़ जनता पर प्रयोग

नहीं कर सकते, जिसका सम्बन्ध उसके गहनतम वैयक्ति
जीवन से है।"

एक महान देश का इससे अधिक उपहास और किन शब्दों में हो
सकता है? हां, भारत अभी सामूहिक विरोध की कला है
नहीं सीखा है। पर उसने अफीम का इतने बड़े पैमाने पर चीन
के साथ व्यापार करने को भी तो अंगरेज सरकार से कब कहा
था? वह कब अंगरेजों को सात समुद्र पार से यहां शासन
करने का न्यौता देने के लिए इग्लैंड गया था? उसने कब कहा
था कि वे उसके जन्म-सिद्ध अधिकार को छीन कर इस देश के
स्वामी बन बैठें। क्या स्वाधीनता मनुष्य के और देश के व्यक्ति
गत जीवन में इस अफीम और शराब-बन्दी के प्रश्न की अपेक्षा
कम महत्वपूर्ण स्थान रखती है? भारत ने कब कहा था कि उस
पर लंका शायर का कपड़ा लाद कर इस देश की कला कौशल
और आजीविका के साधन को निर्घृण दुष्टता पूर्वक नष्ट कर
दिया जाय?

जिस समय रायल कमिशन भारत के लिए ऊपर लिखे
अनुसार राय दे रहा था, इग्लैंड में उसी समय नशीली चीजों
की रोक करने वाला कानून बना था। अफीम या उससे बनने
वाली चीजों का खरीदना, खाना और पीना इग्लैंड में रोक दिया
गया। ब्रिटिश साम्राज्य के कनाडा ऑस्ट्रेलिया; और न्यूजीलैण्ड
आदि उपनिवेशों में भी यही कानून हो गया। पर उसी साम्राज्य
के अन्य देशों में, जिनमें स्वायत्त शासन नहीं है, जिनका शासन
ठेठ इग्लैंड से होता है, जो रक्षित संस्थान हैं, रॉयल कमिशन की
वही पुरानी दलीलें वहाँ काम देती हैं।

सन् १९२२ में इण्डिया आफिस से The truth about Indian Opium (भारत की अफीम के बारे में सची बात) नामक एक पुस्तक प्रकट हुई है। तब तक रायल कमिशन को पचीस वर्ष हो चुके थे। परन्तु शासकों के दृष्टिकोण में इन पचीस वर्षों में भी कोई फर्क नहीं हुआ। अफीम-बन्दी पर इस पुस्तिका में नीचे लिखे विचार हम देखते हैं।

"भारत में अफीम खाने की बन्दी को हम तो असंभव समझते हैं। इसके लिए प्रयत्न करना भी सरकार तथा जनता के लिए खतरनाक है। हम यह बिना किसी हिचकिचाहट के रायल कमिशन के आधार पर कह रहें हैं जिसने १८९५ में रिपोर्ट किया था कि—"व्यसन के तौर पर अफीम की आदत भारत में नहीं के समान है। अफीम का भारत में दवा के बतौर और वैसे भी बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा है। कई उदाहरण ऐसे हैं जिनमें यह फायदे मन्द पाई गई। पूर्णतया और आँशिक उसका दवा के रूप से भी समान ही उपयोग होता है। अफीम बेचते समय इस बात को ध्यान में रख कर अफीम नहीं बेची जा सकती कि किसे दवा के लिए और किसे अपनी दूसरी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अफीम देनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि ब्रिटिश भारत में सिर्फ दवा के लिए ही अफीम पैदा की जाय और बेची जाय तथा अन्य सब प्रकार के उपयोगों के लिए उसकी बन्दी कर दी जाय। भारत के अधिकांश अफीम खानेवाले अपनी आदत के गुलाम नहीं हैं। वे थोड़ी मात्रा में लेते हैं और जब उसकी जरूरत नहीं होती उसे छोड़ सकते हैं और छोड़ भी देते है। लोग अफीम को एक सर्वसाधारण किन्तु गृहस्थ के लिए

अत्यन्त कीमती दवा समझते हैं और देश भर में उसका उपयोग करते हैं। लोग अपनी थकावट को दूर करने के लिए अफीम खाते हैं और उदर रोगों पर भी उसका सेवन करते हैं। मलेरिया से बचने के लिए भी लोग अफीम खाते हैं। मधुमेह में पेशाब में जानेवाली शक्कर को रोकने के लिए अफीम का लोग उपचार करते हैं। साधारणतया सभी उम्र के स्त्री-पुरुषों के दुःखों को दूर करने के लिए अफीम का उपयोग किया जाता है। यह याद रखने की बात है कि भारतीय जनता का अधिकांश हिस्सा सुशिक्षित डाक्टरों की सेवाओं से लाभ उठाना भी नहीं जानता। वे प्रायः संपूर्णतया अपनी घरेलू दवाओं और जड़ी-बूटियों पर निर्भर रहते हैं। फासला और सहिष्णुता उन्हें कुशल और सुयोग्य डाक्टरों को इलाज करने से रोकते हैं। इस परिस्थिति में थोड़े-थोड़े परिमाण में बच्चों को बीमारी में अफीम देना उनके लिए एक अत्यन्त फायदे की चीज है। बूढ़े अपाहिजों के लिए भी वह कम फायदेमन्द नहीं है। असाध्य बीमारियों में भी उसका उपयोग होता ही है। इस परिस्थिति में अफीम को इतनी दुर्लभ बना देना कि वह केवल डाक्टर की आज्ञा से ही आदमी को मिल सके, एक हास्यास्पद बात होगी। और उन करोड़ों भारतीयों के प्रति तो वह शुद्ध अमानुषता होगी।" (The Truth about Indian Opium)

एक स्वतन्त्र देश को जिसका हृदय साम्राज्यवाद की महत्वाकांक्षा से दूषित नहीं हुआ है, इस बात पर विश्वास नहीं होगा कि धन तथा सत्ता-लोभ मनुष्य की बुद्धि को कितनी विपरीत बना सकता है। समझदार पाठक जान गये होंगे कि ऊपर के उदाहरण में सारी सहानुभूति मतलब की है।

इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अफीम में दर्द दबा देने के गुण हैं। परन्तु, साथ ही उसमें आदत डालने के गुण भी तो हैं। और क्या अफीम की आदत हानिकर नहीं है? यूरोप के देशों में तो उसके देने न देने का अधिकार डाक्टरों के अधीन रक्खा गया है और वह डाक्टरों की देख भाल ही में ली भी जाती है।

हम मानते हैं कि स्वर्गीय श्री केरहार्डी, श्रीयुत स्टेड और इंगलैंड की अफीम विरोधी सभा के प्रयत्नों के फल-स्वरूप यहाँ पर अफीम का धूआँ पीने पर कठोर नियन्त्रण रख दिया गया है और उसके लिए सरकार देश के धन्यवाद की पात्र भी है। पर उसका कर्त्तव्य यहीं समाप्त नहीं होता। उसके लिए बहुत कुछ करना बाकी है। अब भी भारत में अफीम का काफी प्रचार है। इधर कुछ वर्षों से भारत में बेंचने के लिए नीचे लिखे अनुसार अफीम की पेटियाँ बना कर एकसाइज (आबकारी) विभाग को दी गईं।

१९१६-१९१७	८७३२
१९१७-१९१८	८५६७
१९१८-१९१९	८५१२
१९१९-१९२०	७२८९
१९२०-१९२१	७०७४
१९२१-१९२२	५६२८
कुल जोड़	४५८०२

अत्यन्त कीमती दवा समझते हैं और देश भर में उसका उपयोग करते हैं। लोग अपनी थकावट को दूर करने के लिए अफीम खाते हैं और उदर रोगों पर भी उसका सेवन करते हैं। मलेरिया से बचने के लिए भी लोग अफीम खाते हैं। मधुमेह में पेशाब में जानेवाली शक्कर को रोकने के लिए अफीम का लोग उपचार करते हैं। साधारणतया सभी उम्र के स्त्री-पुरुषों के दुःखों को दूर करने के लिए अफीम का उपयोग किया जाता है। यह याद रखने की बात है कि भारतीय जनता का अधिकाँश हिस्सा सुशिक्षित डाक्टरों की सेवाओं से लाभ उठाना भी नहीं जानता। वे प्रायः संपूर्णतया अपनी घरेलू दवाओं और जड़ी-बूटियों पर निर्भर रहते हैं। फासला और सहिष्णुता उन्हें कुशल और सुयोग्य डाक्टरों का इलाज करने से रोकते हैं। इस परिस्थिति में थोड़े-थोड़े परिमाण में बच्चों को बीमारी में अफीम देना उनके लिए एक अत्यन्त फायदे की चीज है। बूढ़े अपाहिजों के लिए भी वह कम फायदे-मन्द नहीं है। असाध्य बीमारियों में भी उसका उपयोग होता ही है। इस परिस्थिति में अफीम को इतनी दुर्लभ बना देना कि वह केवल डाक्टर की आज्ञा से ही आदमी को मिल सके, एक हास्यास्पद बात होगी। और उन करोड़ों भारतीयों के प्रति तो वह शुद्ध अमानुषता होगी।" (The Truth about Indian Opium)

एक स्वतन्त्र देश को जिसका हृदय साम्राज्यवाद की महत्वाकाँक्षा से दूषित नहीं हुआ है, इस बात पर विश्वास नहीं होगा कि धन तथा सत्ता-लोभ मनुष्य की बुद्धि को कितनी विपरीत बना सकता है। समझदार पाठक जान गये होंगे कि ऊपर के उदाहरण में मारी सहानुभूति मतलब की है।

इस बात से तो कोई इन्कार नहीं कर सकता कि अफीम में दर्द दवा देने के गुण हैं। परन्तु, साथ ही उसमें आदत डालने के गुण भी तो हैं। और क्या अफीम की आदत हानिकर नहीं है? यूरोप के देशों में तो उसके देने न देने का अधिकार डाक्टरों के अधीन रक्खा गया है और वह डाक्टरों की देख भाल ही में ली भी जाती है।

हम मानते हैं कि स्वर्गीय श्री केरहार्डी, श्रीयुत स्टेड और इंगलैंड की अफीम विरोधी सभा के प्रयत्नों के फल-स्वरूप यहाँ पर अफीम का धूआँ पीने पर कठोर नियन्त्रण रख दिया गया है और उसके लिए सरकार देश के धन्यवाद की पात्र भी है। पर उसका कर्त्तव्य यहीं समाप्त नहीं होता। उसके लिए बहुत कुछ करना बाकी है। अब भी भारत में अफीम का काफी प्रचार है। इधर कुछ वर्षों से भारत में बेंचने के लिए नीचे लिखे अनुसार अफीम की पेटियाँ बना कर एकसाइज (आबकारी) विभाग को दी गई।

१९१६-१९१७	८७३२
१९१७-१९१८	८५६७
१९१८-१९१९	८५१२
१९१९-१९२०	७२८९
१९२०-१९२१	७०७४
१९२१-१९२२	५६२८
कुल जोड़	४५८०२

इसके अतिरिक्त भारत सरकार मालवा के देशी राज्यों से भी अफीम लेती रहती है। जब चीन का व्यापार बन्द हुआ तब इन राज्यों में अफीम की ६०००० पेटियाँ रक्खी रह गईं। उनके माल का भी उपयोग कर लेने की दृष्टि से सरकार प्रतिवर्ष अपनी आवश्यकता के अनुसार देशी राज्यों से पेटियाँ ले लिया करती है। इनमें की प्रत्येक पेटी १२३ पौंड की होती है। १९१६ से १९२१ तक नीचे लिखे अनुसार देशी राज्यों से अफीम ली गई।

१९१६-१७	५२५७
१९१७-१८	४९१६
१९१८-१९	५३१४
१९१९-२०	५९
१९२०-२१	७५८
१९२१-२२	२२९७
	१८६०१

इसके अतिरिक्त युक्तप्रान्त की 'अफीम की पैदायश' की न्यूनता को पूर्ण करने के लिए अफीम की खास पैदायश भी की जाती है। इसमें से सरकारी अफीम-विभाग ने नीचे लिखे अनुसार अफीम खरीदी।

१९१६-१७	२२२३
१९१७-१८	२३१५
१९१८-१९	१२००
१९१९-२०	१८०३

१९२०-२१	६५०७
१९२१-२२	८७२०
	२२७६८

इस प्रकार देखने पर मालूम होगा कि आबकारी विभाग जितनी अफीम सरकारी कारखाने सें प्रतिवर्ष खरीदता था प्रायः उतनी ही वह अन्य रीति से भी प्राप्त करता था। अर्थात् सन् १९१६-१७ से लेकर १९२१-२२ तक छः वर्षों में भारत की जनता को ८७१७१ पेटियाँ यानी ४७८६ टन अफीम खिला दी गई।

इसके अतिरिक्त देशी राज्य अपनी प्रजा के लिए अपनी अफीम अलग पैदा करते रहते हैं। उसका कोई हिसाब नहीं मिला।

नीचे प्रान्तों के हिसाब से अफीम की खपत दी जाती है। अंक 'सैकड़ों' सेरों में हैं:—

प्रान्त	१९०१-०२	१९०६-०७	१९११-१२	१९१६-१७	१९१८ १९
मद्रास	३५.६	३८.१	४१.४	३६.५	३७.१
बम्बई और सिंध	४६.०	४६.९	५६.३	५७.७	५९.३
बंगाल बिहार और उड़ीसा	९२.८	८४.९	९६.७	७८.७	७३.४
आसाम	४८.२	५५.७	६०.३	६२.२	६३.०
युक्त-प्रान्त	६२.३	६८.९	६१.८	...	४६.२
पंजाब	५२.८	५९.९	६३.५	६१.१	५३.४
मध्यप्रदेश और बरार	३०.०	४८.४	५४.३	५२.५	४३.९
ब्रह्मा	३९.८	५४.७	५३.१	४७.२	४६.५
केवल उपर्युक्त प्रान्तों में खपने वाली कुल अफीम	४०७.५	४५७.५	४८७.४		४२३.२

अंक एकड़ों के हैं।

	युक्त-प्रान्त	देशी राज्य	घटी की पूर्ति के लिए
१९१६-१७	२०४,१८६	४६४४१	१४६५५
१९१७-१८	२०७०१०	५४३४१	२६४७९
१९१८-१९	१७७१२४	२४८७१	१०३५०
१९१९-२०	१५४६२१	५६९३४	३०८१३
१९२०-२१	११६०५५	६३००४	३५८६६
१९२१-२२	११७९३०	६४१४०	३८९२१
१९२२-२३	१४३०२० (अनुमान पत्र में)		...

मांग की घटती-बढ़ती के अनुसार खेती भी जिस तरह घटती-बढ़ती गई वह उपर्युक्त अंकों से स्पष्ट ही है। अंतिम दो वर्षों से मालूम होता है फिर माँग बढ़ने लग गई है।

मालवा में अफीम—एकड़ जमीन

१९०३–१९२०

वर्ष	मध्यभारत	राजपूताना	कुल
१९०३-४	१५१७२८	१०२८५९	२५४५८७
१९०६-७	१६२६२२	८४२८९	२४६९११
१९०९-१०	६२८७३	४६१००	१०८९७३
१९१३-१४	२२०१६	२५१२७	४७१४३
१९१५-१६	१४५०	९११८	१०५६८
१६-१७	१५४१९	३१०२२	४६४११
१७-१८	२६६५८	२७६९३	५४३४१
१८-१९	११२३७	१३६३४	२४८७१
१९-२०	१२०२७	२९१८०	४१२०७

मालवा में अफीम सब से अच्छी होती है। भारत-सरकार ने मालवा के राज्यों से (यहां मालवा और राजपूताना दोनों समझना चाहिए) अफीम खरीदने की व्यवस्था की है। इस व्यवस्था के अनुसार गत १९२०-२१ में ८४००० एकड़ जमीन में अफीम की खेती हुई थी। इसके अतिरिक्त अपनी प्रजा की मांगों को पूरी करने के लिए इन देशी राज्यों को अलग अफीम बोनी पड़ी थी।

भारत में अफीम की दुकानें तथा फी आदमी अफीम की खपत देखने के लिए पाठक जरा नीचे लिखे कोष्टक पर नजर डालें।

भारत में अफीम का व्यवहार १०१८-१९

प्रान्त	रकबा वर्ग मील	जन संख्या	दूकानों की संख्या	फी आदमी व्यवहार सेनों में
आसाम	५३०१५	५८४२०००	३३०	१४५.९२
बंगाल	७८६९९	४२१४१०००	८२०	१३.८२
बिहार-उड़ीसा	८३१८१	३३२४३०००	५४८	१३.८२
बम्बई	१२३०५५	१८५६००००	५२३	४६.०८
ब्रह्मा	२३०८४९	१०४९१०००	१२४	६९.१२
मध्यप्रदेश	९९८२३	११९७१०००	१०६९	४९.१६५
मद्रास	१४२३३०	३८२३००००	६३८	१३.८२
उ० प० सीमान्त-प्रदेश	१३४१८	२०४२०००	६६	४७.६२
युक्तप्रान्त	१०७२६७	४७६९२०००	१०३१	१५.३६
			४५२९	

इसमें देशी रियासतों के अंक शामिल नहीं हैं।

"सरकारी अफीम केवल उन्हीं लोगों को बेचने के लिए दी जाती है जिनके पास परवाने होते हैं। थोक अथवा फुटकर बेचने वाले अलग-अलग होते हैं। थोक बेचनेवाला फुटकर बेचने वालों को अथवा अन्य थोक व्यापारियों को देता है। और फुटकर बेचनेवाला जनता को बेचता है। कानून ने नियत कर दिया है कि प्रत्येक आदमी के पास निश्चित परिमाण में ही अफीम रहे। यह परिमाण प्रत्येक आदमी के लिए अलग-अलग है। प्रायः वह ३६० से लेकर ५४० ग्रेन के भीतर-भीतर है। फुटकर बिक्री की दूकानें ६३९४ हैं जहाँ स्वतन्त्रतापूर्वक अफीम खरीदी जा सकती है।"*

शराब के अनुसार अफीम में भी सरकार ने अपनी वही जानी-बूझी हुई गलत नीति रक्खी है। अर्थात् यही कि ज्यों-ज्यों कीमत बढ़ाई जायगी अफीम की खपत घटती जायगी। इसका एक फल (कीमत) तो सरकार को प्रत्यक्ष मिलता ही है। दूसरा फल (खपत का कम होना) उसके लिए इतनी चिंता की बात नहीं है। पहली बात का सबूत यह है।

वर्ष	रुपये
१९०१-०२	१०१५७६१०
१९०५-०६	१३६५४४३४
१९१०-११	१५५५६२०५
१९१५-१६	२०५४५०६५
१९१८-१९	२४२२५१७०
१९१९-२०	२५८९००००

* The Truth About Opium पृ. ९ और १०

वास्तव में यह गलत नीति है। सच पूछा जाय तो सुधार को टालने का यह एक कुशल तरीका है। इससे अफीम का प्रचार घटना उतना ही कठिन है जितना पत्थर पर कमलों का खिलना। आसाम के ही अंक लीजिए। इसी नीति को काम में लाते हुए आसाम में ४५ वर्ष हो गये। इस अवधि में प्रतिवर्ष १८०० मन अफीम से घट कर अब पैंतालीस वर्षों में १५०० मन तक अफीम की खपत आई है और आय १२ लाख से बढ़ कर ४४ लाख तक चली गई है। इस गति से बढ़ें तो अफीम बन्दी को अभी सदियाँ चाहिए। इस नतीजे को देख कर यदि कोई इस नतीजे पर पहुँचे कि खपत को घटाने की बात तो बहाना मात्र है और सच्चा हेतु है टके सीधे करना तो शायद वह सत्य से बहुत दूर न होगा।

जहाँ इतने शुद्ध हृदय से शासित देश के कल्याण के लिए प्रयत्न होता है वहाँ यदि उसका भला हो जाय तो क्या यह आश्चर्य की बात न होगी?

अंगरेज सरकार जिस हेतु से शासन कर रही है उसका परिचय हमें उसके कामों से प्रतिदिन मिलता ही है। उपर्युक्त पोथा तो हमें उन भोले-भाले भाइयों के ख्याल से लिखना पड़ा जो प्रत्येक काम में राजाश्रय और राजा की सहायता की अपेक्षा करते हैं। निःसन्देह राजा को अपने शासितों के कल्याण के लिए रातदिन प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु हमें अभी यह सुख नसीब नहीं है। इसलिए हमारे कल्याण का आधार और आश्वासन तो हमारे अपने प्रयत्न ही हैं।

असली रूप

अफीम और अन्य भयंकर मादक द्रव्यों के उपयोग को नियन्त्रित करने के आन्दोलन का अन्तरराष्ट्रीय ढंग पर ईसवी सन् १९०९ में आरम्भ हुआ। प्रेसिडेन्ट टॅफ्ट ने शांघाय में पहले पहल १९०९ की फरवरी में अफीम के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय सभा निमन्त्रित की। उसी वर्ष के सितम्बर मास में युनाइटेड स्टेट्स ने संसार के उन सभी राष्ट्रों को हेग में एकत्र होने के लिए निमन्त्रित किया जिन्होंने शांघाय की सभा में भाग लिया था। और उनसे प्रार्थना की कि "शांघाय की सभा में, जो भूमिका के तौर पर काम हुआ था, उसके आधार पर सब मिलकर, एक अन्तरराष्ट्रीय समझौता या सुलह कर लें" यही वह प्रख्यात "हेग ओपियम कन्वेन्शन" है जिसका उद्देश संसार में अफीम आदि नशीली चीजों के दुरुपयोग का अन्त कर देना था। इस कन्वेन्शन का अधिवेशन ईसवी सन् १९१२ की जनवरी मास में हुआ था। और ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रान्स, इटाली, हॉलैंएड, पुर्तगाल, रूस, चीन, संयाम, ईरान, और युनाइटेड स्टेट्स इन बारह देशों ने मिल कर अफीम तथा अन्य नशीली चीजों के उपयोग को बन्द करने के लिए आपस में सलाह-मशविरा किया। जिसके फलस्वरूप एक लम्बा-चौड़ा समझौता हुआ। इसमें सभी राष्ट्रों को अपने राज्यों, साम्राज्यों या रक्षित प्रदेशों में अफीम तथा उसीके

समान नशीली चीजों के व्यवहार को केवल डॉक्टरी उपचारों के लिए सीमित करने की सलाह दी गई। कच्ची अफीम, बनी बनाई (Manufactured) अफीम, कोकेन, मॉर्फाइन, हिरोइन तथा ऐसे ही भयंकर नशीले द्रव्यों को बिना सरकार की आज्ञा के पास रखना, बेचना, बनाना, विदेशों में भेजना तथा पुरा का अपने देश में लेना इत्यादि को अपने प्रदेशों में अपराध करार देने तथा उस आज्ञा के उल्लंघन करने वालों को अन्य नैतिक तथा सामाजिक अपराध करने वालों के समान दण्ड देने का आदेश सभी सम्मिलित राष्ट्रों को दिया गया। सिफारिश तो सभी राष्ट्रों से यही की गई कि इन मादक द्रव्यों का साधारण व्यवहार बन्द ही कर देना चाहिए। केवल डॉक्टरी या रासायनिक तथा वैज्ञानिक उपयोग के लिए सरकार की आज्ञा से सुविधा रहनी चाहिए। परन्तु प्रत्येक देश को अपनी अपनी सुविधा और परिस्थिति के अनुसार इस आदर्श की ओर आगे बढ़ने के लिए अनुरोध किया गया। इस कन्वेन्शन के कामकाज को चलाने आगे बढ़ाने इत्यादि कामों के लिए नेदरलैण्डस की सरकार को जिम्मेदार बना दिया गया और जनवरी २३ सन् १९१२ को इंग्लैंड को छोड़ उपर्युक्त सभी राष्ट्रों ने उस पर हस्ताक्षर कर दिये। ग्रेट ब्रिटेन ने नीचे लिखा डिक्लेरेशन (घोषणा) पेश करके तब इस कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर किये। डिक्लेरेशन यों है—

"The articles of the present Convention, if ratified by His Britannic Majesty's Government, shall apply to the Government of India, Ceylon, the Straits Settlements, Hongkong and Weihaiwei

in every respect in the same way as they shall apply to the United Kingdoms of great Britain and Ireland, but His Britannic Majesty's Government reserve the right of signing or denouncing separately the said Convention in the name of any dominion, colony, dependency, or protectorate of His Majesty, other than those which have been specified.

[अर्थात यदि ब्रिटेन के सम्राट की सरकार ने इस कन्वेन्शन को मंजूर कर लिया तो यह ब्रिटिश भारत, सीलोन, स्ट्रेट्स सेटलमेन्ट्स हाँगकाँग और वीहाईवो (चीन) को उसी तरह लागू होगा जिस तरह कि वह ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंएड के संयुक्त राज्य में लागू होगा। परन्तु उपयुक्त देशों, उपनिवेशों आदि को छोड़ कर साम्राज्यान्तर्गत अपने अन्य प्रदेशों की ओर से इस कन्वेशन को पृथक-पृथक मन्जूर करने या नामन्जूर करने के हक को ब्रिटेन की सरकार सुरक्षित रखती है।"]

इसके बाद इसे और भी परिष्कृत करने के लिए १९१३ में और १९१४ के जून में और एक-एक बार कन्वेशन की बैठक हुई थी।

कन्वेन्शन में यह समझौता करना आसान नहीं था। कोई राष्ट्र इन विषैले पदार्थों के व्यापार-व्यवहार को बन्द करने के लिए उत्सुक नहीं था। व्याकुलता तो किसी में थी ही नहीं। क्योंकि सब इन पदार्थों के व्यापार से कुछ न कुछ आर्थिक फायदा उठा रहे थे। जिस पर इस समझौते से पानी फिरने का डर था। अतः

प्रत्येक अपने फायदे को बनाये रखने की चिन्ता में था। समम
का विरोध करने के लिए जितनी कोशिशें हो सकीं, की गईं, जि
तरह हो सका बचाव की सूरतें भी हुईं और हम देखते हैं
इसके फलस्वरूप जो समझौता हुआ, वह भी बड़ा ढीला-ढा
हुआ है। एक मामूली (Formal) नैतिक कुबूली के सिवा
है ही क्या ? हर एक राष्ट्र ने अपने बचाव के लिए, या उसमें
सटकने के लिए कहीं न कहीं छिद्र रख लिये हैं। बात यह थी
यद्यपि कितने ही राष्ट्र इस समझौते को चाहते तो नहीं थे पर
वे ख्वाहमख्वाह यह शोर भी तो होने देना पसन्द नहीं करते
कि फलां राष्ट्र ऐसे फायदेमन्द और संसार के हितकारी काम
भी विरोधी है। और बड़ी बात तो यही थी कि इस रूप में
सही समझौता तो हो गया। यह तो सब राष्ट्रों ने कबूल
लिया कि फलां-फलां चीजें मनुष्य जाति के लिए हानिकर
और उनके प्रचार को रोकना सरकारों का काम है।

पर उसका नतीजा कुछ न हुआ। एक तो वह एक चल
के समान छिद्रों से भरा हुआ था। अनिच्छुक राष्ट्रों के लि
छूटने के कई रास्ते थे। "अपने-अपने देश की परिस्थिति" औ
अफीम को "क्रमशः" बन्द करने के ये मनमाने अर्थ लगा सक
थे। फिर कन्वेन्शन की अन्तिम बैठक १९१४ में हुई। जब
चारों ओर से यूरोप के भीमकर्मा वृकोदर राष्ट्र पृथक-पृथ
अपने-अपने युद्ध-शंख बजा रहे थे। इस शंखनाद और तो
की घनघनाहट में अफीम को भी अपना मौका मिल गया
युद्ध के बाद जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब उसमें जो तय हु

धारा २९५ जनवरी २३ सन् १९१२ के हेग कन्वेन्शन को उसमें भाग लेने वाले जिन राष्ट्रों ने हस्ताक्षर नहीं किये हैं वे स्वीकार करते हैं। अब वे उसपर अमल करेंगे और उसे व्यावहारिक रूप देने की गरज से इस सुलह के तय होने के बाद बारह महीने के अन्दर आवश्यक कानून बनावेंगे।

वे राष्ट्र यह भी कुबूल करते हैं कि जिन राष्ट्रों ने १९१२ के कन्वेन्शन पर हस्ताक्षर नहीं किये हैं, उनके लिए इस सुलह (वर्सेलिज की) पर हस्ताक्षर करना उस कन्वेन्शन को मानने तथा उसके बाद १९१४ में निमन्त्रित तीसरी ओपियम कान्फरन्स में स्वीकृत प्रस्तावों के अनुसार बनाये गये इकरारनामे पर भी हस्ताक्षर-करने के समान ही है।"

इसलिए फ्रांस की प्रजासत्ताक सरकार नेदरलैंड्स (हालैण्ड) सरकार को इस सुलह की प्रामाणिक प्रति भेज कर उसे अपने दफ्तर में उसी प्रकार सुरक्षित रखने के लिए कहेगी, मानों वह ओपियम कन्वेंशन की मन्जूरी और १९१४ में तय हुए विशेष ऐकरारनामे पर किये गये हस्ताक्षर वाला महत्वपूर्ण दस्तावेज ही हो।"

इस तरह जब वर्सेलिज की सुलह हुई तब हेग कन्वेन्शन को राष्ट्र-संघ की शर्तों में शामिल कर दिया गया। और लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्र-संघ) को इस बात के लिए जिम्मेदार बना दिया कि वह ख्याल रक्खे कि उपर्युक्त राष्ट्र उस कन्वेन्शन की शर्तों का ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं।

राष्ट्र-संघ के अधीन यह काम आते ही उसने इस विभाग की देख-भाल के लिए एक सलाहकार समिति (Advisory

Committee) बना दी और अपना काम आसान कर लिया। समिति एक स्थायी संस्था है। निश्चित समय पर उसकी बैठकें होती रहती हैं। उसने सभी प्रकार की नशीली चीजों के सम्बन्ध में अत्यंत महत्वपूर्ण और उपयोगी साहित्य भी खूब इकट्ठा कर लिया है। और यदि वह स्वतंत्र होती, उसके हाथों में कुछ सत्ता भी होती, तो वह संसार का बहुत उपकार कर सकती थी। पर वास्तव में वह तो केवल सलाहकार-समिति मात्र है। सिर्फ सूचनाएँ और सिफारिशें राष्ट्र-संघ की कौन्सिल में विचारार्थ पेश करने के उसके हाथों में कुछ है ही नहीं। उन सूचनाओं का स्वीकार करना, उनपर अमल करना या उन्हें रद्दी की टोकरी में डाल देना, उस कौन्सिल की मर्जी की बात है।

और यह कौन्सिल क्या है ? उन्हीं राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की वह बनी है जो संसार में शक्तिशाली हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने देश के आदर्श, विचार और फायदे के अनुसार अपनी वृत्ति रखता है। फलतः कई उस कौन्सिल के कार्य को उदात्त बनाने की कोशिश करते हैं तो कुछ उसे खींच कर गिराने की (अर्थात् उनकी दृष्टि से सद्‌भावपूर्वक ही) कोशिश करते हैं। और हम देखते हैं कि जिन उच्च सिद्धान्तों को ले कर राष्ट्र-संघ की स्थापना हुई थी, उनमें से बहुत थोड़ी बातों का पालन राष्ट्र-संघ के हाथों हुआ है। बात यह है कि यह दोष उस भव्य इमारत में लगी लकड़ी या पत्थर का नहीं है, वह उस वृक्ष का और पत्थर की खान का ही दोष है, जिससे लकड़ी-पत्थर लेकर यहाँ लगाये गये थे। अफीम के प्रश्न का भी लीग ऑफ नेशन्स की कौन्सिल में यही हाल हुआ।

सन् १९२१ में चीन के डेलिगेट श्रीयुत वेलिंगटन कू ने लीग की कौन्सिल के सामने यह प्रस्ताव पेश किया कि संसार में अफीम की केवल उतनी ही खेती की जाय जितनी डॉक्टरी तथा वैज्ञानिक उपयोग के लिए आवश्यक हो। ऐसेम्बली ने क्या किया? बड़ी खूबी के साथ, इसके शब्दों को बदल कर प्रस्ताव की आत्मा को उसमें से निकाल कर फेंक दिया। ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधि ने यों सूचित किया कि अफीम संसार की 'उचित' आवश्यकताओं (Legitimate demands) के अनुसार पैदा की जाय। इस छोटे से परिवर्तन ने तो जमीन-आसमान का फर्क कर दिया। पूर्व में तो अफीम खाना और पीना भी 'उचित आवश्यकता' में ही शुमार किया जाता है। दुर्भाग्यवश ऐसेम्बली ने इस परिवर्तन को कबूल भी कर लिया। और इस अशुभ परिवर्तन ने अभागे हेग-कन्वेन्शन के सारे काम को एक प्रहार में चौपट कर दिया। राष्ट्र-संघ जैसी महान्-महान् संस्थाएँ नीति-च्युत होने पर संसार के लिए कितनी भयंकर साबित हो सकती हैं यह बताने के लिए यह छोटा सा उदाहरण काफी होगा।

फिर समुद्र-मंथन शुरू हुआ। अमेरिका (यु० स्टे०) ने लीग की ओपियम कमिटी के सामने हेग-कन्वेन्शन के असली अर्थ को रखने तथा उसके उद्देश को समझाने की आज्ञा चाही और उसके प्रतिनिधि फिर १९२३ में जिनेवा पहुँचे। माननीय श्रीयुत स्टिफेन जी. पार्टर इस मंडल के अध्यक्ष थे। उन्होंने नीचे लिखे प्रस्ताव कमिटी के सामने पेश किये।

(१) "यदि हेग के कन्वेन्शन के उद्देश को उसके ठीक अर्थ और भावों में पूर्ण करना हमें मंजूर है तो हमें यह जरूर

क़बूल कर लेना चाहिए कि डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग को छोड़ कर, अफीम को अन्य प्रकार से व्यवहार करना अनुचित है, वह उसका दुरुपयोग है।

(२) और इन चीजों के दुरुपयोग को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि अफीम की पैदायश को इतनी थोड़ी कर दी जाय कि उपर्युक्त डॉक्टरी और वैज्ञानिक उपयोग के अलावा और तरह के व्यवहार के लिए अफीम बच ही न पाए।

श्रीयुत् पोर्टर ने बड़े जोरों के साथ अपने पक्ष को कमिटी के सामने रक्खा और उससे अनुरोध किया कि वह हेग कन्वेन्शन के उद्देश के इस स्पष्टीकरण पर फिर अच्छी तरह विचार करे। उन्होंने कमिटी से यह भी साग्रह निवेदन किया कि यदि वह ठीक समझे तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए लीग की कौन्सिल से और ऐसेम्ब्ली से अनुरोध करे।

कमिटी में इन अमेरिकन प्रस्तावों पर बड़ी जोरों की बहस हुई। पहले-पहल तो चीन को छोड़ कर एक भी देश इन अर्थों को स्वीकार करने के लिए तैयार न हुआ। पर आगे चल कर विरोध का किला टूट गया। और एक को छोड़ कर सब देशों ने अमेरिकन प्रस्ताव में बताये अर्थ को क़बूल कर लिया। और वह एक देश कौनसा था? हमें कहते हुए लज्जा आती है कि वह भारत ही था। भारत से मतलब है भारत-सरकार का भेजा हुआ प्रतिनिधि। उसने इस बात को मानने से इन्कार किया कि हेग कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अफीम खाना अनुचित है। बात मैदान में आ गई। दलील यह थी—

"The use of raw opium according to the established practice in India, and its production for such use, are not illegitimate under the convention."

अर्थात् कच्ची अफीम का उपयोग भारत की रूढ़ी के अनुकूल है और इस उपयोग के लिए अफीम पैदा करना कन्वेन्शन की मन्शा के अनुसार अनुचित नहीं है। भारत सरकार के प्रतिनिधियों ने यह भी कहा कि भारत में अफीम का प्रचार या व्यवहार यह हमारे अपने घर की बात है। इसमें एक आन्तर-राष्ट्रीय संस्था को हस्तक्षेप करने या सवाल करने का भी कोई अधिकार नहीं है।

आश्चर्य की बात यह है कि भारत सरकार इस बात को कबूल करती है कि वह ऐसे देशों को अफीम नहीं भेजेगी जिन्होंने अपने प्रदेश में अफीम की बन्दी कर रक्खी है। पर भारत में अफीम के प्रचार के विषय में उसकी यह वृत्ति है। ब्रिटिश सरकार दूसरे देशों को अफीम की बन्दी में सहायता करना चाहती है। इंग्लैंड में भी ब्रिटिश सरकार ने Dangerous Drugs Act बना रक्खा है, पर जब कोई उसे भारत में अफीम के विषय में ऐसा नियंत्रण करने को कहता है तो यह जवाब मिलता है। अस्तु

.... इसके बाद लीग ऑफ नेशन्स की कौन्सिल और एसेम्बली ने अमेरिका के प्रस्तावों को मान लिया। पर केवल मानने से काम नहीं चलता था। अन्त में सन् १९२३ में श्रीयुत पोर्टर ने फिर लीग से प्रार्थना की कि एक सार्वराष्ट्रीय कान्फरन्स कर के उन प्रस्तावों पर एक बारगी पूरी बहस हो कर के कुछ तय हो

जाय। लीग ने यह कुबूल किया और सन् १९२४ में जिनेवा में फिर उन राष्ट्रों की एक महासमिति निमन्त्रित की गई। वही प्रस्ताव रक्खे गये। चीन, जापान और अमेरिका का कहना था कि केवल डॉक्टरी उपयोग ही अफीम का जायज उपयोग है। अन्य कितने ही छोटे-छोटे राष्ट्रों ने इस पक्ष से अपनी सहानुभूति जाहिर की। परन्तु सवाल था अफीम की पैदायश बन्द करने का। इसलिए ग्रेट ब्रिटेन और भारत के प्रतिनिधियों ने इसका बड़े जोरों से विरोध किया। इसके बदले उन्होंने अफीम की पैदायश को क्रमशः (gradually) कम करने का वही लम्बा और हर तरह की गुंजाइश वाला चौड़ा रास्ता फिर बताया। हां मॉर्फिया तथा हिराइन आदि पर कठोर नियन्त्रण रखना कबूल कर लिया। सुधारक राष्ट्रों का कथन था कि यदि हम संसार को व्यसन-मुक्त करना चाहते हैं तो उसकी जड़ ही में कुठाराघात करना चाहिए। अफीम पैदा होने पर आप उसपर चाहे कितना ही नियन्त्रण रखिए वह महंगे से महंगे बाजार में, चोरी से, छिप कर चली ही जायगी। अफीम पैदा हुई कि उसे खानेवाले मिल ही जावेंगे। अतः बार-बार अनुरोध—आग्रह करने पर भी जब ग्रेट ब्रिटेन ने उनकी सूचनाओं को स्वीकार नहीं किया तब अमेरिकन डेलीगेट उठ खड़े हुए और कान्फरन्स छोड़ कर चले गये। पर चीन ने दो-तीन महीने और शान्ति से काम लेते हुए प्रयत्न किया। पर जब यह भी विफल हुआ तो उसके प्रतिनिधि भी कॉन्फरन्स छोड़ कर चले गये। पर समुद्रों की शासिका ब्रिटानिया समुद्र के समान ही निश्चल रही। अपनी सीमा को छोड़ कर वह टस से मस नहीं हुई।

अपने ३० मई सन् १९२८ के अंक में हिन्दुस्तान टाइम्स नीचे लिखे समाचार प्रकाशित करता है—

"डेली हरेल्ड का विशेप संवाददाता लिखता है कि अब की वार जेनेवा में अंगरेजों की प्रतिष्ठा को बड़ी भारी ठेस पहुँची—अंगरेज प्रतिनिधियों को मुसोलिनी के प्रतिनिधि की खरी-खरी और पते की बातें सुननी पड़ीं और राष्ट्रीय सन्मान और शिष्टता का नया पाठ पढ़ने पर उन्हें मजबूर होना पड़ा।

प्रत्येक राज्य में नशीली चीजों के व्यापार और उत्पादन की रोक के लिए अंतर राष्ट्रीय ढंग से कई वर्षों से प्रयत्न हो रहा है—लीग की अफीम कमिटी कई दिनों से देख रही है कि अंगरेज सरकार अपने अधीनस्थ प्रदेशों के व्यापारी हितों की रक्षा का प्रयत्न करते हुए इस अंतर राष्ट्रीय उपयोगी समझौते का भंग करने का कुत्सित प्रयत्न कर रही है।

इटली के प्रतिनिधि सिगनर कावाशन (Cavaztion) ने इस बार मादक पदार्थों के व्यापार सम्बन्धी कुछ आश्चर्यजनक उद्घाटन किया है। वह इस बात को खास कर इसलिए प्रकट कर सके कि उनका देश इन चीजों के व्यापार में विशेप उलझा हुआ नहीं है।

सिगनर कावाशन का कथन है कि १९२१ में मॉर्फाइन की उत्पत्ति ३९ टन थी। परन्तु १९२६ तक वह बढ़ कर ६० टन हो गई। और यह वृद्धि खास कर ऐसे समय में हुई जब कि सब राष्ट्र मिल कर के इन चीजों के प्रचार को रोकने के काम में विशेष रूप से प्रयत्नशील थे।

अंकों से पता चलता है कि संसार की औषधीय आवश्य-

कता के लिए साल भर में १५ टन मॉर्फाइन काफी है। इससे यह स्पष्ट है कि शेष ४५ टन मॉर्फाइन का दुरुपयोग हुआ है।

ब्रिटिश प्रतिनिधियों से वाद-विवाद करते हुए सिगनर कॅवाओनी (दूसरे प्रतिनिधि) ने ब्रिटिश सरकार पर मक्कारी का इलजाम लगाया और कहा कि वह नशीली चीजों के निर्यात के असली अंकों को छिपाए रखती है। सिर्फ इंग्लैंड के निकास और अमेरिका के आयक के अंकों में २० टन का फर्क है। इससे यह स्पष्ट है कि इन चीजों का गुप्त व्यापार बहुत काफी पैमाने पर हो रहा है।

पर अंगरेज प्रतिनिधियों की सूरत उस समय तो और भी देखने लायक हो गई थी जब उन्हींमें से एक विशेषज्ञ मि० एल० ए० लायल नामक अंगरेज ने जो कि वर्षों तक चीन के महकमा सायर में काम कर चुके हैं, और जो चीनियों की तारीफ करते हैं एवं उन्हें पसन्द करते हैं, चीन के प्रति गोरी जातियों के अन्याय की खुले शब्दों में निन्दा की। मि० लायल ने अपना यह वक्तव्य कमिटी को स्वेच्छापूर्वक दिया था। अंगरेजों के कानों ने अपने सम्बन्ध में इतनी अवमानना-जनक बातें शायद ही कभी सुनी हों।

मि० लायल ने कहा कि यद्यपि चीन में नशीली चीजों के व्यापार की रोक के सम्बन्ध में कानून हैं तथापि युरोपियन और जापानी व्यापारी चीन के गृह-युद्धों से अनुचित लाभ उठा रहे हैं। एक तरफ चीन इस लज्जा-जनक व्यापार के फन्दे से अपने आपको छुड़ाना चाहता है तब दूसरी ओर युरोपियन और जापानी व्यापारी उनके प्रयत्नों को तोड़ गिराने की कोशिश में लगे हुए हैं।

इंग्लैंड ने यह प्रस्ताव किया कि अफीम नियन्त्रक संघ ("Opium Control Board") लीग के अधीन न रहे। और उसमें केवल उन्हीं सरकारों के प्रतिनिधि हों जिनका इस विषय से स्वार्थ सम्बन्ध (Interests) है। पर खास कर इटली के प्रयत्नों से उनका यह प्रस्ताव अस्वीकृत हुआ। अन्त में लीग की अफीम कमिटी में सिगनर कॅवाजानी का यह प्रस्ताव छः मत से स्वीकृत हो गया कि अफीम का नियन्त्रण लीग के "समाज शिष्ट-मंडल" (Social Commission) के अधीन रहे। विपक्ष में ४ मत थे। और ये चार राष्ट्र थे ब्रिटेन, भारत यहां (भारत से मतलब है भारत सरकार) हॉलैण्ड और जापान जिनका अफीम के व्यापार में बहुत स्वार्थ है।

तमाखू

तम्बाकू—मैंने सबको गुलाम बना लिया है।

तमाखू

भ्रातः, कस्त्वं ? तमाखु, गमनमिहकुतो ? वारिधेः पूर्वपारात्,
कस्यत्वं दण्डधारी ? न हि तव विदितं, श्रीकलेरेव राज्ञः ।
चातुर्वर्ण्यं विधात्रा विविधविरचितं पावनं धर्महेतो,
रेकीं कर्तुं बलात्तन्निखिल जगति रे शासनादागतोस्मि ।
भाई तू कौन है ?
तमाखू ।
तेरा आगमन कहां से हुआ ?
समुद्र की उस पार से ।
तू किसका दूत है ?

अरे, जान पड़ता है तू निपट अज्ञान है । महाराज कलि का मैं दूत हूँ । उन्हीं की आज्ञा से उस पवित्र चातुर्वर्ण्य को, जिसे विधाता ने धर्माचरण के लिए बनाया है, बलपूर्वक नष्ट-भ्रष्ट और एकाकार करने के लिए इस संसार में अवतीर्ण हुआ हूँ ।

सुभाषितकार कहते हैं—

न स्वादु नौषधमिदं नचवा सुगन्धि
नाक्षिप्रियं किमपि शुष्क-तमाखु-चूर्णम् ॥
किंचास्ति रोगजनकं च तदस्य भोगे।
बीजं नृणां नहि नहि व्यसनं विनान्यत् ॥१॥

परन्तु तमाखु भक्तों का कथन है—

(१)

"बिड़ौजाः पुरा पृष्टवान् पद्मयोनिं,
जगत्यांतले सारभूतं किमस्ति ?
चतुर्भिर्मुखैः प्राह ब्रह्मा तदानीं,
तमाखुस्तमाखुस्तमाखुस्तमाखुः ॥"

(२)

तमाखुपत्रं परमं पवित्रं रसैर्गुणैर्यत्तुलसीसमानम्
प्रभु-प्रियं कृष्णमुखोद्गतं हि तद्वैष्णवाग्र्यैः परिसेवनीयम्

——::o::——

शैतान की लकड़ी

तमाखू।

इतिहास

संसार के इतिहास में वह दिन खून के अक्षरों से लिखा जायगा, जब मानव-जाति ने इस विषैले पौदे का उपयोग बतौर शौक के करना आरम्भ किया। कहते हैं तमाखू अज्ञात काल से अपने भयंकर विष से मानव-जाति का नाश करती आ रही थी। परन्तु सन् १४९२ तक उसका उपयोग अमेरिका के आदिम निवासियों तक ही सीमित रहा। सन् १४९२ में जब कोलम्बस भारत की खोज में निकला और रास्ता भूल कर अमेरिका को जा निकला, तब इसके साथियों ने वेस्टइन्डीज के निवासियों को एक पौदे का धूआँ पीते देखा। यह बात इनके लिए बिलकुल नवीन थी। अतः स्वभावतः वे चकित हो गये! उस स्थान का नाम क्यूबा था परन्तु इसमें थोड़ा सा मतभेद है। कुछ इतिहासकारों का कथन है कि उस स्थान का नाम गुआनाहनी (आधुनिक सैन सल्वाडोर) था। सम्भव है, दोनों सच हों; क्योंकि बाद में पाया गया कि तमाखू का व्यवहार तो सारे उत्तर अमेरिका में फैला हुआ था। लॉबेल अपने वनस्पतियों के इतिहास में लिखता है (१५७६) कि सैन सैलवाडोर के लोग ताड़ के पत्तों की बीड़ियाँ बनाकर उसमें तमाखू भर के

पीते थे। वे लोग इसे कोहीबा कहते थे। और उस बीड़ी को टोबाको। करीब-करीब यही बात रोमानेपानो नामक एक इसाई ने सैन डोमिंगो के निवासियों के विषय में भी लिखी है। यह व्यक्ति सन् १४९४–९६ में कोलम्बस के साथ उसकी दूसरी अमेरिका यात्रा में गया था। सैन डोमिंगो का गवर्नर गोंजालो फर्नान्डिज अपनी Historia General de Las Indias नामक इतिहास में १५३५ में इस विषय में और भी मनोरंजक बातें लिखता है। वह लिखता है कि इस बीड़ी का आकार अङ्गरेजी Y वाय का सा होता था। लोग इस चिलम के उपर के दो सिरों को तो नाक में रखते और निचले सिरे को आग पर जलती हुई तमाखू के धूएँ में रखते और नाक से खूब धूआँ पीते। गोंजालो यह भी लिखता है कि अमेरिका के आदिम निवासी तमाखू की बड़ी कद्र करते थे। क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इसमें अनेकों अद्भुत गुण भरे हैं। अब तक किसी ने उत्तर अमेरिका में किसी भी आदिम निवासी को तमाखू खाते हुए नहीं देखा था। यह दृश्य पहले पहल सन् १५०२ में दक्षिण अमेरिका में स्पेनिश लोगों को दिखाई दिया। इसके बाद तो यूरोप के साहसी यात्री ज्यों-ज्यों इस नवीन भूखण्ड के अंतः प्रदेश में प्रवेश करते गये, त्यों-त्यों उन्होंने देखा कि सारे अमेरिका में तमाखू का प्रचार है। सब जगह उसका उपयोग एकसा नहीं होता था। दक्षिण अमेरिका में खाई अधिक जाती थी, तो उत्तर अमेरिका में लोग इसे पीना ही अधिक पसन्द करते थे। और वास्तव में अमेरिका के निवासियों के लिए यह नई चीज न थी। पता नहीं कितने पहले से वे इस भयंकर विष के पंजे में फंसे हुए थे। मेक्सिको की

आजेटो की क़ब्रों में कई प्रकार की पुरानी चिलमें मिली हैं। इन पर विचित्र पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई हैं जो उत्तर अमेरिका के नहीं हैं। प्रत्येक प्रान्त में तमाखू के नाम भी भिन्न-भिन्न ही हैं।

यूरोप में इस पौदे की खेती पहले पहल स्पेन के दूसरे फिलिप द्वारा १५६० में कराई गई। उसने फ्रॉन्सिसको हरनान-डेज नामक एक वनस्पति शास्त्रवेत्ता को अमेरिका की वनस्पतियों और खनिज सम्पति की खोज करने के लिए भेजा। हरनानडेज वहां से अन्य चीजों के साथ-साथ तमाखू का पौदा और उसके बीज भी लाया। अब स्पेन में बाक़ायदा तमाखू की खेती होने लगी। परन्तु वहां इसका विशेष स्वागत नहीं हुआ। फिर भी कुछ लोग इसे पीने और सूंघने तो लग ही गये। यूरोप के अन्य देशों में इसका प्रचार पुर्तगाल से हुआ। जीन निकोट नामक फ्रेंच सज्जन पुर्तगाल के दरबार में फ्रान्स के राजदूत की हैसि-यत से रहता था। उसने एक डच से तमाखू के कुछ बीज लिये और अपने लिस्बन वाले भवन के बगीचे में उन्हें बोया। कहा जाता है कि उसने इस पौदे की पत्तियों से कई लोगों के रोग भगा दिये थे। इससे उत्साहित हो जीन निकोट ने इस अद्भुत वनस्पति के बीज फ्रान्स के राजा के पास भेजे। तबतक यह वस्तु इटली भी पहुँच गई। वहां इसका काफी स्वागत हुआ। इटली से तमाखू यूरोप के अन्य देशों में बड़ी तेजी से फैल गई। लोग इसके गुणों पर मुग्ध हो कर इसे अमृतवल्ली कहने लगे।

इंग्लैंड में इसका प्रवेश सन् १५८६ में हुआ, जब कॅप्टन रॅल्फ लेन सर फ्रान्सिस ड्रेक के साथ वर्जिनिया से लौटा। परन्तु वहाँ तमाखू पीने का प्रचार करने का श्रेय तो सर वाल्टर रैले

की है। रैले साहब ने दो साल पहले वर्जिनिया में लेन की अध्यक्षता में एक उपनिवेश स्थापन कर तमाखू की खेती आरम्भ कर दी थी। कहा जाता है कि इंग्लैंड में सबसे पहले तमाखू पीने वाले यही रैले साहब थे। इनके नौकर की कथा बड़ी मशहूर है। एक दिन रैले साहब, अपने बाग में बैठे-बैठे तमाखू पी रहे थे। इतने में उनका आदमी चाय ले कर आया। उसने देखा कि साहब के मुँह से धुँए के बादल के बादल निकल रहे हैं। वह घबड़ाया। समझा, मालिक के पेट में आग लगी है। वह दौड़ा, पानी की एक बालटी उठाई और अपने मालिक के सिर पर ऊँडेल दी!

शनैः शनैः तमाखू का प्रचार इंग्लैंड में काफी हो गया। वर्जिनिया से जहाजों में लद कर तमाखू आने लगा। पहले पहल इस पर फी पौंड दो पेन्स आयात कर लिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही लोगों पर तमाखू के असली गुण प्रकट हो गये। राजा जेम्स भी सचेत हो गया। उसने १६०३ में एक पौंड पर १० शिलिंग ६ पेन्स कर बैठा दिया। उसने तमाखू के गुण-धर्मों की जांच की और Counter'Blaste To Tobacco नामक एक पुस्तक की रचना करके लोगों को सचेत भी कर दिया।

यूरोप में वर्षों तक लोग तमाखू को सचमुच अमृतवल्ली समझते रहे। प्रत्येक रोग पर उसका उपचार किया जाने लगा। पर शीघ्र ही लोगों का भ्रम दूर हो गया और उसके असली गुण उनपर प्रकट हो गये। तब तो राजा, बादशाह और धर्माधिकारी आदि सभी इसका विरोध करने लगे।

भारत में इसका प्रचार करने का श्रेय पुर्तगीज लोगों को है। ई० स० १६०५ के लगभग तमाखू उनके साथ-साथ यहां आई। उस समय अकबर राज्य कर रहा था। कुछ लोगों का कथन है कि एशिया में तमाखू का प्रचार इसके कहीं पहले से चला आया है। परन्तु यह ठीक नहीं प्रतीत होता। भारत और एशिया के समस्त प्राचीन साहित्य में कहीं इस पौदे का उल्लेख नहीं मिलता। जहां कहीं है भी वहां उसका आधुनिक विदेशी नाम ही पाया जाता है। इससे प्रतीत होता है कि वह भाग पीछे से जोड़ दिया गया है। उस समय एशिया में पुर्तगीज सत्ता का मध्यान्ह-काल था। और अरब, ईरान, भारत, चीन आदि देशों में तमाखू का प्रचार इन्हींके द्वारा हुआ, यह तत्कालीन ग्रन्थ-साहित्य देखने पर सिद्ध हो जाता है। "बहार इ अजां" का निम्न लिखित उद्धरण जो ब्लोकमन ने Ind. Autiq के १६४ पृष्ठ पर छापा है देखने लायक है। वह लिखता है—"मआसिरि रायिमि से ज्ञात होता है कि तमाखू यूरोप से दक्खिन में आई और दक्खिन से अकबर शाह के राज में होते हुए उत्तर भारत को वह गई। तब से वहां उसका प्रचार बराबर बढ़ रहा है।" तमाखू के प्रचार के आरंभ-काल के विषय में यले और बर्नेल अपनी ग्लॉसरी ऑफ एंग्लो इंडिन वडर्स् नामक ग्रन्थ में नीचे लिखा उद्धाहरण देते हैं।

"बिजापुर में मुझे कुछ तमाखू दिखाई दी। भारत में पहले और कहीं इस अनोखी चीज के दर्शन नहीं हुए थे, इसलिए मैं कुछ तमाखू अपने साथ ले आया। उसके लिए एक जड़ाऊ कामदार चिलम भी बनवाई।" यही लेखक आगे चलकर लिखता है "शाह अकबर मेरी भेंटों से प्रसन्न हुए और पूछते रहे कि इतने

थोड़े समय में इतनी सारी अजीब-अजीब चीजें मैं कैसे इकट्ठी कर सका । जब उनकी नजर तमाखू की तश्तरी और उस सुन्दर चिलम पर पड़ी, तब वे बड़े चकित हुए और उन्होंने पूछा कि "अरे, यह क्या है" ? उन्होंने तमाखू को भी ग़ौर से देखा और पूछा कि यह चीज कहां से लाये हो । नवाब खां आजाम ने जवाब दिया, जहांपनाह, यह तमाखू है । मक्का और मदीना में लोग इसे पीते हैं । डॉक्टर आपके लिए इसे बतौर औषधि के लाया है । बादशाह ने उसे फिर देखा और अपने लिए एक चिलम भर के देने लिए कहा । मैंने ऐसा ही किया और शाह अकबर चिलम पीने लगे । जब उनके हकीम आये तो उन्होंने शाह को तमाखू पीने से मना किया । मैं तो काफी तमाखू और चिलमें लाया था । इसलिए मैंने उसे कई अमीर-उमरों के पास भेज दियो । कितने ही सरदारों ने अपने लिए तमाखू और चिलम भेजने को मुझ से कहा । धीरे-धीरे सभी तमाखू पीने लग गये । और अब तो व्यापारी लोग भी तमाखू मंगा मंगाकर बेचने लगे । इस तरह सारी जनता में तमाखू फैल गई । पर शाह ने फिर कभी चिलम को हाथ में न लिया ।" (आसाद बेग इन ईलियट ६, १६५-७)

परन्तु क्या भारत में और क्या यूरोप में तमाखू जनता की आंखों में अधिक दिन तक धूल न झोंक सकी । इसके असली गुण सब लोगों पर प्रकट हो गये । राजाओं, बादशाहों और धर्माधिकारियों ने इसके प्रचार का यथाशक्ति विरोध भी किया । तुर्कस्तान में तमाखू पीने वाले के होंट काट लिये जाते थे और सूंघने वालों की नाक । कभी-कभी तमाखू के भक्तों को जान से मार भी डाला जाता था । एलिजाबेथ, पहला चार्ल्स और पहले जेम्स ने

भी इसके प्रचार को रोकने की कोशिश की। जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं पहले जेम्स ने एक पुस्तक द्वारा इसे बहुत घृणित और मस्तिष्क तथा फेफड़े के लिए अत्यन्त भयंकर बताया। रूस में पहली बार तमाखू पीने वाले का कठोर शरीर-दण्ड दिया जाता और दूसरी बार प्राण दण्ड। जहांगीर ने इसे युवकों के लिए बहुत हानिकर बता कर तमाखू के भक्तों के लिए तशीर*नामक दण्ड तजवीज किया था। ईरान के शाह अब्बास ने भी इसके प्रचार को रोकने के लिए ऐसी कठोर राजाज्ञा जारी की थी कि तमाखू के अनन्य भक्तों को अपने बचाव के लिए जंगलों में भागना पड़ता था। स्विट्जरलैण्ड में तमाखू पीना एक अपराध करार दिया गया था।

बारहवें इन्नोसेण्ट पोप ने तमाखू पीने वालों के बहिष्कार की आज्ञा जारी की थी। इस्लाम में आलङ्कारिक ढंग से तमाखू की उत्पत्ति निषिद्ध बता कर उसको वर्जित बताया है। हिन्दूधर्म, पद्मपुराण और ब्रह्मपुराण में इसकी साफ-साफ निन्दा है। सच तो यह है कि सभी महान धर्मों के आचार्यों ने इसकी निन्दा ही की है और इसके व्यवहार को निषिद्ध बताया है। आज भी कितने ही राज्यों में बालकों के लिए तमाखू पीना कानूनन मना है।

तमाखुः पित्तलस्तीक्ष्णा श्चोष्णा वस्ति विशोधनः,
मदकृत् भ्रामकृत्तिक्तो दृष्टिमांद्यकरः परः।
वमनो रेचनश्चैव नेत्रघ्नो शुक्रनाशकः॥

* आदमी का काला मुँह करके उसे गधे की पूँछ की तरफ मुँह करके बैठाना और शहर में घुमाना।

तमाखू के गुण धर्म

तमाखू के इस सार्वभौम निषेध का और उस निषेध के होते हुए भी उसकी सार्वभौम विजय का रहस्य क्या है? उसमें ऐसी कौनसी बुराई है जिसके कारण लोग इस तरह उसकी निन्दा करते हैं? साथ ही उसमें ऐसी कौनसी जबर्दस्त शक्ति है जिसकी साहयता से वह लोगों को अब भी तेजी से अपने वश में करती जाती है?

संक्षेप में इन दोनों प्रश्नों का उत्तर यह है कि तमाखू एक महाभयंकर विष है और उसकी सम्मोहन शक्ति उसका बल है।

संसार के तमाम बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य, रसायन-शास्त्री और वैज्ञानिक अब इस बात पर एक मत हो गये हैं कि तमाखू संसार के अधिक से अधिक मारक विषों में से एक है। प्रूसिक ऐसिड को छोड़कर प्राणियों का प्राण इतनी जल्दी हरण करने की शक्ति किसी अन्य विष में नहीं है। तमाखू पौदों की एक जाति का (जिसे अंगरेजी में Volaccoe कहते हैं) महा भयंकर विषैला पौदा है। संसार में इसकी कोई ५० जातियां हैं और सभी न्यूनाधिक परिणाम में विषैली होती हैं।

वह भयंकर विष जिसके कारण तमाखू को यह जबरदस्त संमोहन शक्ति प्राप्त है Nicotine C. १० H. १४ N. २ निकोटाइन कहलाता है। निकोटाइन एक घन द्रव है। तमाखू की सूखी पत्तियों का गाढा अर्क निकालने से यह प्राप्त हो सकता है। तमाखू में यह दो से लगाकर आठ प्रतिशत तक की मात्रा में पाया जाता है। ज्यों-

ज्यों तमाखू पुरानी होती जाती है उसमें इस विष की मात्रा बढ़ती जाती है। वर्जिनिया की उत्कृष्ट समझी जाने वाली तमाखू में वह प्रतिशत छः या सात के परिमाण में होता है। डॉ० केलॉग का कथन है कि "एक पौंड (आधा सेर) तमाखू में ३८० ग्रेन निकोटाइन विष होता है। यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दसवां हिस्सा कुत्ते को ३ मिनट में मार सकता है। एक शख्स इस विष से ३० सेकन्ड के अन्दर मर गया था। आधा सेर तमाखू में इतना विष होता है जो ३०० आदमियों का प्राण ले सकता है। एक मामूली सिगरेट में जितनी तमाखू होती है उसके विष से दो आदमियों की जान ली जा सकती है भयंकर से भयंकर विषधर सांप तमाखू के विष से इस तरह मर गये मानो उनपर बिजली गिर पड़ी हो।

तमाखू का विष इतना भयंकर और तेज होता है कि तमाखू की पत्तियों के बाहरी प्रयोग से भी मनुष्य के शरीर पर गंभीर परिणाम देखे गये हैं। आप एक चिलम तमाखू को पेट पर बांधकर देखिए कि क्या क्या परिणाम होता है। थोड़ी ही देर में आपको कय होने जैसी स्थिति हो जायगी। युद्ध से डरने वाले सिपाही कई बार तमाखू को पेट पर या बगल में बांध कर बीमारी को बुलाते हैं और लड़ाई से बच जाने की कोशिश करते पकड़े गये हैं।

डॉ० फूट अपने होम एन्सायक्लोपीडिया में लिखते हैं निकोटाइन की एक बूंद से एक मामूली कुत्ता और दो बूंदों से मजबूत से मजबूत कुत्ता मर जाता है। छोटे-छोटे पक्षी तो उसकी ट्यूब की हवा से ही मर कर गिर पड़ते हैं।

"तमाखू की पत्तियों को पानी में उबालने से एक Empyreumatic नामक तेल निकलता है। इसका रंग गहरा मटियां होता है। दुर्गन्धि वही होती है जो हुक्के या बहुत पुरानी चिलम में होती है। इसकी एक बूंद अगर बिल्ली के पेट में चली जाय तो वह ५ मिनिट में मर जायगी और दो बूंदों से वही हाल कुत्ते का हाल होगा।

डॉ मूसी अपने प्रयोगों का हाल यों लिखते हैं "तमाखू के तेल की दो बूंदों से बिल्लियों को मरते देखा है। एक जवान बिल्ली की जबान पर मैंने २ बूंदें डालीं और तीन मिनिट में वह मर गई। एक बूंद से एक नन्हीं सी बिल्ली पांच मिनिट में मर गई। तीस ग्रेन तमाखू की चाय एक आदमी के दर्द को कम करने के लिए दी गई और वह फौरन मर गया।

तमाखू के बाहरी प्रयोग से जब ऐसे भयंकर परिणाम होते हैं तो उसके धूंए से मनुष्य के हृदय और फेफड़ों की क्या हालत होती होगी ?

निकोटाइन के अलावा तमाखू के धुंए में कई प्रकार के अन्य भयंकर विष भी होते हैं।*

डॉ॰ केलॉग अपने Hosue book of Modern Medicine में लिखते हैं—"किसी भयंकर से भयंकर विष को अपने शरीर

---

*इनमें से कुछेक के नाम ये हैं Pyridine Picoline, Sulphereted Hydroygen, Carbon dioxide, Carbonous Oxide और Prussic Acid ये सभी महाभयंकर विष होते हैं।

में ग्रहण करने का सबसे सरल उपाय है उसका धूंआ लेना। इसका कारण स्पष्ट है। देखिये न। हमारे फेंफड़ों के आस-पास एक कोमल आवरण है। वह इतना पतला है और इतनी तहों में उनके आस-पास लपेटा हुआ है कि यदि उसे फैलाया जाय तो १४०० वर्ग फीट जमीन उससे ढांकी जा सकती है। इसका प्रत्येक इंच धूंएदार पदार्थों को जज्ब करने की क्षमता रखता है। यह आवरण इतना महीन और कोमल होता है कि उसके अंदर से वायु मजे में छनती हुई फेंफड़े तक जा सकती है। शरीर का खून इस कोमल आवरण के नीचे से हो कर तीन मिनिट में एक बार जाता है। अब कोई यह न समझे कि तमाखू का धूंआ मुँह में से ही लौट करके आ जाता है। वह बराबर ठेठ फेंफड़े तक पहुँचता है और अपने भयंकर विष से खून सजीव परमाणुओं को मूर्च्छित कर देता है।

तमाखू पीने वाले का खून हर बार इस विषाक्त धूंए में स्नान करके शरीर की सैर करने के लिए निकल जाता है। सुंघनी सूंघने अथवा तमाखू खाने से भी यही असर होता है। सूंघने से नाक के द्वारा उसकी विषैली बू और परमाणु अन्दर पहुँचते हैं और खाने से लार के साथ वह पेट में पहुँचती है।"

डॉ० रिचर्डसन तमाखू पीने वाले की हालत का यों वर्णन करते हैं :—

"उसका मस्तिष्क सूखा हो जाता है, उसमें खून नहीं रहने पाता। पेट के कोमल त्वचात्मक भीतरी आवरण पर गोल-गोल दाग पड़ जाते हैं। खून बहुत पतला हो जाता है। फेंफड़े कमजोर हो जाते हैं। हृदय में खून को साफ करने की शक्ति नहीं रह

जाती। आवरण के कोमल परमाणु तमाखू के विषैले धुंए से सं जाते हैं। इसलिए उसमें फैलने-सिकुड़ने की शक्ति नहीं रहती। ऐसी हालत में खून का प्रवाह जब आता है तो हृदय फैलने के बजाय कांपता है। मानों एक सदाचारी मनुष्य से कोई बुरा का हो गया है और वह कांपता है। इसे हृदय की धड़कन नहीं कह जा सकता। यह तो एक छटपटाते हुए प्राणी का कंपन है। यं तो ज्यों का त्यों है परन्तु एक शैतान उसपर अपना अधिका किये बैठता है।"

अपनी आत्म-कथा में महात्माजी लिखते हैं:—

"मैं सदा इस टेव को *जंगली हानिकारक और गन्दी* मानत आया हूँ। अब तक मैं यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने क इतना जबर्दस्त शौक़ दुनियां को क्यों है? रेल के जिस डिब्बे बहुतेरी बीड़ियाँ फूँकी जाती हों, वहाँ बैठना मेरे लिए मुश्किल हो पड़ता है और उसके धुँए से दम घुटने लगता है।"

दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह नामक पुस्तक में महात्मा एक पुराने दमे के बीमार का जिक्र करते हुए लिखते हैं कि जि समय यह बूढ़ा, जिसका नाम लुटावन था, मेरे पास आया, त उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर ही होगी। उसे बड़ी पुरानी द और खांसी की व्याधि थी। अनेक वैद्यों के क्वाथ-पुड़ियाँ औ कई डाक्टरों की बोतलों को वह हज़म कर चुका था। मैंने उस कहा कि यदि तुम मेरी तमाम शर्तों को स्वीकार करो और य पर रहो तो मैं अपने उपचारों का प्रयोग तुम पर कर सकूँगा उस समय मुझे अपने इन उपचारों पर असीम विश्वास था उसने मेरी शर्तों को क़बूल किया। लुटावन को तमाखू का बहु

व्यसन था। मेरी शर्तों में तमाखू छोड़ने की भी एक शर्त थी थी। मेरे बताये उपचार तथा धूप में दिये क्यूनी बाथ से उसे लाभ हुआ पर रात को उसे खांसी बहुत सताती। मुझे तमाखू पर शक हुआ। मैंने उससे पूछा पर उसने कहा कि मैं नहीं पीता। इसी प्रकार कितने ही दिन और बीत गये परन्तु लुटावन की खांसी में फ़र्क न पड़ा। इसलिए मैंने लुटावन पर छिप कर नजर रखने का निश्चय किया। हम सब लोग जमीन पर ही सोते थे, इसलिए सर्पादि के भय के कारण मि० कैलनबेक ने मुझे बिजली की एक बत्ती दे रक्खी थी। मैं इस बत्ती को लिए हुए दरवाजे से बाहर बरामदे में बिस्तर लगाये हुए था। और दरवाजे के नजदीक ही लुटावन लेटा हुआ था। क़रीब आधी रात के लुटावन को खांसी आई। दियासलाई सुलगा कर उसने बीड़ी पीना शुरू किया, मैं चुपचाप उसके बिस्तर पर जा कर खड़ा हो गया और बिजली की बत्ती का बटन दबाया। लुटावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझा कर वह उठ खड़ा हुआ और मेरे पैर पकड़ कर बोला:—

"मैंने बड़ा गुनाह किया। अब मैं कभी तमाखू नहीं पीऊंगा। आपको मैंने धोखा दिया, आप मुझे क्षमा करें।" यह कह कर वह गिड़गिड़ा ने लगा। मैंने उसे आश्वासन देते हुए समझाया कि बीड़ी छोड़ने में उसीका हित है। मेरे बताये अनुमान के अनुसार तुम्हारी खांसी मिट जानी चाहिए थी, परन्तु वह न मिटी, इसी लिए मुझे शक हुआ। लुटावन की बीड़ी छूटी और उसके दो तीन दिन बाद ही उसकी खांसी और दमा कम हो गया। इसके बाद एक मास में लुटावन पूर्ण नीरोग हो गया।"

जब तमाखू का विष इतना मारक है तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आदमी मर क्यों नहीं जाता ? वह इतने विषों का प्रयोग होने पर भी जी कैसे सकता है ? इसका मात्र उत्तर यही है मानव-शरीर एक असंगठित राष्ट्र के दुर्बल नहीं है। वह सहसा अपने किले शत्रु के हाथों में सौंपने लिए तैयार नहीं हो सकता। मनुष्य को ईश्वर-दत्त प्राण-शक्ति और विष की मारक-शक्ति में भीषण युद्ध छिड़ जाता। जब तक यह विष मनुष्य के मस्तिष्क पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, शरीर के रक्षक सिपाही बराबर युद्ध करते रहते हैं। मस्तिष्क के आक्रान्त होने पर भी युद्ध तो जारी रहता है परन्तु तब प्राणशक्ति के विजय की इतनी सम्भावना नहीं रह जाती। आखिर परमात्मा का बनाया हुआ वह राष्ट्र इतना दीन और निर्बल नहीं है जो इस थोड़े से आक्रमण से शत्रु के हाथों में चला जाय। हां एक बात जरूरी है। एक निर्व्यसनी मनुष्य और व्यसनाधीन पामर के शरीर में वही अन्तर होगा जो एक शान्तिशील समृद्ध राष्ट्र में और ऐसे राष्ट्र में होता है जहां शत्रु बारम्बार आक्रमण करते रहते हैं, जिसका सारा बल, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि अपनी रक्षा करने ही में बरबाद हो जाती है। एक व्यसनी और निर्व्यसनी पुरुष में वही अन्तर होगा जो भारत और अमेरिका के बीच में है, जो चीन और जापान के बीच में है, जो मिश्र और तुर्किस्तान के बीच में है, जो अफगानिस्तान और निजाम के राज्य के बीच में है। व्यसनों से अपने आपको छुड़ाते ही दुर्बल से दुर्बल मनुष्य भी उसी तरह बात की बात में बलवान और समृद्ध हो सकता है जैसे तुर्किस्तान।

चौपाल में तम्बाकू एक स्वागत-सत्कार की चीज बन गई है।

हमने देखा कि तमाखू के विषैले परमाणु फेफड़े और हृदय तक पहुँच कर मनुष्य के खून को भी अशुद्ध, रोगी और कमजोर बना देते हैं। और आखिर मानव-शरीर में खून ही तो सब कुछ है। खून प्राणियों की जीवन-शक्ति का सजीव प्रवाह है। यही शरीर के कोने-कोने तक पहुँच कर हमारे अंग-प्रत्यंग को नवजीवन अर्पित करता रहता है, उनकी थकावट को दूर करता है और जीर्ण भागों की मरम्मत करता है। पर निर्बल और रुग्ण खून प्राणियों के अंगों को क्या जीवन देगा ? शरीर के सैनिक परमाणु भी असंगठित और कमजोर हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में जरा सा मौका मिलते ही हर कोई रोग उस शरीर पर अपना अधिकार कर लेता ।

इसलिए इस बात का यहां पर विस्तृत वर्णन देना व्यर्थ है कि तमाखू से कौन-कौन से रोग मनुष्य को होते हैं। मादक चीजों के सेवन करने वाले सभी लोग रोगों के बहुत जल्दी शिकार होते हैं, बहुत दिन तक बीमार रहते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं।

तमाखू और क्षय

क्षय फेफड़ों का रोग है, अतः इसका सब से गहरा सम्बन्ध वायु की स्वच्छता से है । दूषित वायु को अन्दर लेने से क्षय होता है। स्वयं हम अपने श्वासोच्छ्वास द्वारा जो वायु छोड़ते हैं वही इतनी विषैली होती है कि उसका पुनः ग्रहण करना बड़ा खतरनाक है। इसीलिए मुँह ढांक कर सोना आरोग्य शास्त्र के अनुसार मना है। अगर ऐसा है तो निकोटाइन जैसे भयंकर

विष के परमाणुओं को धारण करने वाले धुँए को प्रतिदिन पल्ले पीते रहना तो स्पष्ट ही महान भयंकर है। उससे अगर फेंफड़ा सड़ जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

तमाखू और हृद्रोग

क्षय और हृद्रोग तमाखू की खास देन हैं। क्योंकि इसका विष पहले इन्हीं दो अंगों पर आक्रमण करता है। हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार हृदय की आवरणात्मक त्वचा सुन्न हो जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है। यही हृदय का रोग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमाखू सेवक की नाड़ी की गति को देखने से ही मिल सकता है।

उदर रोग

खून के अशुद्ध होते ही उसकी गरमी और इसीलिए आँतों में, आवश्यक सत्त्वों को आकर्षण करने की जो शक्ति होती है वह भी स्वभावतः घट जाती है। इसीका दूसरा नाम है अपचन। पेट में अपक्व अन्न के पड़े रहने से और भी अनेकों प्रकार के उदर-रोग होते हैं।

नेत्र रोग

तमाखू यों तो अपने भक्तों के सारे शरीर में एक प्रकार की शून्यता उत्पन्न कर देती है। परन्तु नेत्रों पर उसका सबसे अधिक असर होता है। तमाखू के भक्तों की दृष्टि बड़ी कमजोर हो जाती है। इसका प्रमाण आँखों के तमाम वैद्य-डाक्टर दे सकते हैं। आयर्लैंड के लोग तमाखू के कट्टर भक्त हैं ! उनमें यह रोग बहुता-

यत से पाया जाता है। जर्मनी और बेल्जियम में भी इसकी अधिकता है। तमाखू के भक्तों में रंगों के लिए अन्धापन आ जाता है। वे भिन्न-भिन्न रंगों को ठीक तरह नहीं पहचान सकते।

तमाखू और चरित्र-हीनता

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि तमाखू अनेक भारी-भारी पापों की जननी है। इसका प्रवेश होते ही पापों की सेना आती है। तमाखू के सेवन से मनुष्य का चरित्र शिथिल हो जाता है। शराबखोरी और व्यभिचार की तरफ वह बहुत जल्दी झुक जाता है। सत्यासत्य नीति-अनीति का विवेक न रहना तो तमाखू भक्त के लिए एक बिलकुल मामूली बात है।

तमाखू केवल उसके भक्त की ही जान नहीं लेती, वह उसकी सन्तति पर भी हाथ साफ करती है। पिता के तमाखू-रोग पुत्र को विरासत में मिलते हैं।

नपुंसकता

डॉ०—कूट लिखते हैं मैंने देखा है कि तमाखू नपुंसकता के कारणों में से एक मुख्य है। और जब मेरे पास ऐसे लोग इलाज के लिए आते हैं तो मैं उनसे कहता हूँ तुम्हें दो में से एक बात पसन्द करनी होगी। विषय-सुख या तमाखू। तमाखू से प्यार हो तो विषय-सुख से निराश हो जाओ। वास्तव में तमाखू से शरीर की सारी नसें ढीली पड़ जाती हैं। पर कभी-कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है। सब से पहले उसका असर शरीर के सब से अधिक कमजोर अंग पर ही

होता है। और चूंकि पुरुष अपने जननेन्द्रिय का बहुत दुरुपयोग करता है, तमाखू का विष इस दुर्बल और दलित अंग को सबसे पहले धर दबाता है।

पागलपन

तमाखू का धुंआ गैस के रूप में सीधा मस्तिष्क को पहुंच जाता है और वहां के ज्ञान-केन्द्रों को सुन्न कर देता है। यह आदत बढ़ जाने पर मनुष्य बहुत जल्दी पागल भी हो जाता है। संसार के पागलों की जांच करने पर तमाखू पीनेवाले निःसन्देह अधिक पाये जाते हैं।

संसार के तमाम गण्यमान्य डॉक्टरों और वैद्यों ने एवं धार्मिक नेताओं ने तमाखू की निन्दा की है। और समाज को बचाने की कोशिश की है। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य रायें इस प्रकार है :—

तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नरकार्णवे ॥—ब्रह्मपुराण

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः ।

दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥—पद्मपुराण

डॉ० रश वारन आदि—तमाखू का जहर दांतों को हानि पहुँचाता है—

डॉ० कैलन—हमने जितने अजीर्ण के रोगी देखे वे सब तमाखू का सेवन करने वाले थे।

डॉ० हॉसेक—तमाखू मंदाग्नि का मुख्य कारण है।

डॉ० रगलेस्टर—"तमाखू से पाचन-यंत्रों की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम होकर सब प्रकार के अजीर्ण संबन्धी रोग हो जाते हैं।"

तमाखू विरोधिनी सभा न्यूयार्क—"तमाखू से प्यास बहुत लगती है।

तमाखू के सेवन से जिव्हा के रुचि-परमाणु अपनी संज्ञा शक्ति खो कर मूर्च्छित हो जाते हैं। इसी प्रकार पाचन-यंत्र के परमाणुओं को मार कर तमाखू मनुष्य के अन्दर मन्दाग्नि की बीमारी उत्पन्न करती है।"

प्रोफेसर सीलीमेन—"तमाखू के दुर्व्यसन से अनेक हृष्ट-पुष्ट और बलवान नवयुवक क्षय के शिकार हो कर मर जाते हैं।" (यह हमारे नित्य के अनुभव की बात है।) तमाखू के धुएं से श्वास नली और फेफड़े सड़ जाते हैं। इसलिए वहाँ क्षय रोग के जन्तु फौरन अपना अड्डा जमा लेते।

डॉ० रश—"तमाखू के सूंघने से श्वास की गति में रुकावट हो कर स्वरयंत्र बिगड़ जाता है।" उत्तम आवाज़ होना भी एक वरदान है। परन्तु मनुष्य इसी वरदान को खराब वस्तुओं के सेवन से खो देता है।

विलियम अलकाट—"तमाखू को सूंघने, खाने और पीने से आंखों को भारी नुकसान पहुँचता है।"

डॉ०—ऐलिन्सन्—"तमाखू का व्यसन मनुष्य को अन्धा बहरा एवं जिह्वा और नासिका की शक्ति से हीन बना देता है।"

डॉ० एलिन्सन—"तमाखू जिन अवयवों को अधिक हानि पहुँचाती हैं उनमें हृदय मुख्य है। तमाखू से उसमें असाधारण गति उत्पन्न हो जाती है। और वह विकृत हो जाता है। पहली बार तमाखू पीने से ही हृदय की गति अनियमित और लगभग दुगुनी तेज हो जाती है। आगे चल कर. उसकी गति में इतना अन्तर

पड़ जाता है कि पांच छः धड़कनों के बाद एक धड़कन नहीं होती। यदि कहीं ऐसी पांच छः धड़कनें न हो तो मनुष्य फौरन मर जावे।" लकड़ी के धूंए से जो दशा रसोई घर की होती है वही निःसन्देह तमाखू के धूंए से हृदय की भी होती है।

तमाखू से आदमी का खून विषाक्त हो जाता है और उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है।

डॉ० निकोलस—"तमाखू का असर जननेन्द्रिय पर भी बहुत बुरा होता है। इससे सन्तानोत्पत्ति में रुकावट आती है। जहां स्त्री और पुरुष दोनों को तमाखू का व्यसन होता है वहां प्रायः सन्तान का अभाव ही रहता है। व्यसन की अधिकता से स्त्रियां वन्ध्या और पुरुष नपुंसक बन जाते हैं।"

अमेरिका में तमाखू के कारखानों में काम करने वाली अधिकांश स्त्रियाँ वन्ध्या होती हैं।

डॉ० फुटका—"नपुंसकता का एक मुख्य कारण तमाखू का व्यसन भी है।"

डॉ० फावल—"मेरी पवित्र बहनो! रोगोत्पादक अत्यंत गंदे और निन्द्य तमाखू और शराब के दुर्व्यसनों में फंसे हुए पामरों से हमेशा दूर रहने की मैं तुमको सलाह देता हूँ। क्योंकि वे बहुत ही विषयांध होते हैं। तमाखू और शराब का सम्बन्ध दिन-रात का सा है। ये दोनों मनुष्य को दरिद्री, रोगी, शीघ्रकोपी—चिड़चिड़ा और अल्पायु बना देते हैं। इसलिए बहनो मेरी अनुभवी वाणी को ध्यान देकर सुनो। आज ही से तुम निश्चय कर लो कि तमाखू और शराब पीने वालों में तुम कोई सरोकार न रक्खोगी। निर्व्यसनी पुरुष से ही तुम अपना विवाह करना। कुमारी रहना बेहतर है

परन्तु कभी व्यसनी पुरुष को अपना पति न बनाओ। क्योंकि व्यसनी पुरुष पिता और पति बनने के अयोग्य होता है।" The Sci nceer Of Now Life.

प्रो० नेज़सन—"आजकल बहुत से बलवान मनुष्य युवावस्था में ही मर जाते हैं। हृदय और दिमाग की खराबी से उनकी मौत बतलाई जाती है। किन्तु खोज से पता लगा है कि उनमें सौ में से ९५ मनुष्य अवश्य ही तमाखू आदि गर्म चीजों के व्यसनी थे। जर्मनी के वैद्यों ने प्रकाशित किया है कि, वहां १८ से ३५ वर्ष की उमर में मरने वाले मनुष्यों में आधे से अधिक आदमी तमाखू के व्यसन और उससे होने वाले रोगों से मरते हैं।

चिलम, हुक्का, चुरट और बीड़ी के कारण कई बार एक मनुष्य का रोग दूसरे को लग जाता है।

मानसिक शक्तियों की बरबादी

डॉ० अलकाट—"तमाखू का सूंघना मस्तिष्क के लिए बहुत ही बुरा है।"

डॉ० इर्स्टब्रेन्स:—"तमाखू से धारणा, ध्यान और स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है।"

डॉ० कैलन:—मेरे अनुभव में ऐसे कई उदाहरण हैं कि तमाखू के कारण वृद्धावस्था के पूर्व ही मनुष्य स्मरणशक्ति और ज्ञान से शून्य हो गये हैं।"

तमाखू के दुर्व्यसन के साथ ही संसार में पागलों की संख्या भी बढ़ रही है।

गवर्नर सैलिवान:—"तमाखू मुझे कभी जड़ और सुस्त किये बिना न रही। उससे मेरी विषयों के पृथक करण और सुविचारों

के प्रकट करने की शक्ति लुप्त हो जाती थी।"

प्रो० हिचकाक-अन्य मादक पदार्थों की अपेक्षा तमाखू से बुद्धि की अधिक हानि होती है। इसके समान इन्द्रिय दौर्बल्य, बुद्धिनाश, स्मरणशक्ति की हानि, चित्त की चंचलता, और मस्तिष्क के रोग पैदा करने वाली वस्तु और नहीं है। मादक पदार्थ बृहस्पति के समान असाधारण बुद्धिमान मनुष्य की बुद्धि को भी नष्ट करके उसे अपना दास बनाकर नचाते हैं।"

डॉ० फावलर—"तमाखू से ईसाई प्रजा के बुद्धिबल को आज तक जो नुकसान पहुँचा है, वह अपार है। ऐसे अनेक मनुष्य, जो संसार में उपयोगी और कीर्तिशाली होते, तमाखू के व्यसन से निकम्मे हो गये हैं। उनकी बुद्धि गायब हो गई है।"

डॉ० फोर्बस बिन्सलो—(पागलपन के रोगों के विशेषज्ञ) "मैं पागलपन के कारणों को इस क्रम से रक्खूँगा—मद्य, तमाखू, और परम्परागत।"

रस्किन "आधुनिक सभ्यता में तमाखू सब से खराब राष्ट्रीय खतरा है।"

लूथर बर्बैंक'(अमेरिका के वाटिका विज्ञान के वेत्ता) "मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि मादक द्रव्यों का थोड़ा भी व्यवहार उस कार्य का विरोधक है जिसमें एकाग्रता की आवश्यकता होती है।"

डॉ० चुन्नीलाल बोस—"शारीरिक हानियों का वर्णन करने के बाद लिखते हैं—लड़कों और नवयुवकों के ज्ञानतन्तुओं और शरीर के दूसरे भागों में उसके विष के कारण परिवर्तन हो जाता

है। मानसिक कार्य करने की शक्ति कम हो जाती है। स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है और वे आलसी हो जाते हैं।"

पं० ठाकुरदत्त शर्मा—"अजीर्णता, कास, फेंफडों के तमाम रोग, त्वचारोग निद्रानाश, दुस्वप्न, चक्कर; नेत्ररोग हृदय और मस्तिष्क की निर्बलता और उन्माद आदि तमाखू से होने वाले सामान्य रोग।"

द्रव्यनाश

तमाखू के पीछे जो अपरिमित द्रव्य नाश हो रहा है उसका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है। "पान-बीड़ी-माचीस-सिगरेट" की पुकार हर स्टेशन पर अवश्य सुनाई देती है। वहां एक पैसे के चने चाहे नहीं मिलेंगे पर बीड़ी और माचीस तो व्यसनी बेवकूफों की सूरतों में आग लगाने के लिए अवश्य तैयार रहती है। मजदूर मजूरी पर जब जाता है, तब वह एक पैसे के चने नहीं लेगा; दो पैसे की तमाखू जरूर अपने पास रखलेगा। बाबूसाहब जब दफ्तर में या घूमने के लिए जाते हैं तब और कोई खाने-पीने की चीज साथ में नहीं ले सकते; पर सीजर या पेडरो का एक बकस जरूर रख लेंगे। कुछ हजरत घर और अकेले में तो 'खाकी' (बीड़ी) से काम चलाते हैं पर मित्र समुदाय में तो 'मलमल' (सिगरेट) ही चाहिए। गरीब आदमी मजूरी पर जाते समय अगर मुट्ठी भर चने ले जाय और ये बड़े-बड़े बाबू लोग अपनी शान बघारने के लिए सिगरेट या बीड़ी लेजाने के बजाय काम पर अथवा दफ्तर में जाते समय उतनी ही क़ीमत की कोई पौष्टिक चीज़ रख लें तो उनका दिमाग़ कितना ताज़ा और शरीर कितना हृष्ट-पुष्ट और निरोग रह सकता है? परन्तु उन्हें यह सुबुद्धि नहीं होती। कुछ भोले-भाले लोग तो अच्छी सोसायटी में शामिल होने के लिए इन चीजों का इस्तेमाल शुरू कर देते हैं। और ये अच्छे लोग कौन होते हैं? पतित अफ़सर और विलासी धनिक। दोनों निकम्मों के राजा! इस जमाने में

अच्छेपन की परिभाषा भी बदल गई है। आलसी और चरित्रभ्रष्ट किन्तु साफ-सुथरे कपड़े पहनने वाले पठित मूर्ख अच्छे आदमी और अच्छी सौसायटी कहलाते हैं। उनका मुख्य व्यवसाय होता है दिन भर दफ्तरों और बाजारों में लोगों को लूट कर शामको क्लब में जाना और वहां ताश खेलना, सिगरेट के धूंए के बादलों से वायुमण्डल को दूषित करना और भगवती मदिरा का पान करके अपने मित्रों, गुरुजनों गृहिणी और पड़ोसी को सुललित शब्दों में आशीर्वाद देना।

आजकल दूध, निर्मल जल और सात्विक भोज्य पदार्थों से अतिथि और अभ्यागतों का स्वागत करने के बदले उन्हें चबाने के लिए दी जाती हैं सुपारी की सूखी लकड़ी और पीने के लिए बीड़ी या सिगरेट। हुक्का और चिलम आदर सत्कार की वस्तुएं समझी जाती हैं।

परन्तु सबसे अधिक दुर्दैव की बात तो यह है कि जिनसे हम ज्ञान प्रचार की आशा रखते हैं वही साधु, सन्यासी, वैरागी और ब्रह्मचारी लोग इन व्यसनों में फँसे हुए हैं। बावाजी का अखाड़ा व्यसनी और चरित्र-भ्रष्टों का खासा अड्डा समझा जाता है। वहां जो-जो बुराई न हो वही गनीमत समझिए। भांग, गांजा और तमाखू तो वहां की त्रिपथगा भागीरथी है। बाबा जी की धूनी तो मानो स्वयं गंगोत्री या मानस सरोवर और चिमटा शंकर के अवतार। उसका मुख्य उपयोग होता है धूनी में से आग उठा कर चिलम में रखने के लिए। इनके अखाड़े पर बातें तो ऐसी होती हैं मानों सभी जीवन्-मुक्त जीव है। परन्तु यह सब क्षणभर के लिए। अपने और समाज के कल्याण के लिए घरबार

छोड़कर साधुवृत्ति का अवलम्बन करने वाले, इन साधु कहलाने वाले लोगों के पतन को देखकर मस्तक लज्जा से नीचे मुड़ जाता है। पर वास्तव में यह साधु-जीवन नहीं है और न ये साधु कहलाने वाले सभी साधु हैं। वास्तव में ये रणभीरू और कायर गृहस्थ हैं। गृहस्थी में असफल होने पर या होने के डर मात्र से भाग खड़े होने वाले कायरों का यह समुदाय है। कहीं स्त्री से लड़ाई हुई, लड़के से निराशा हुई, भाई बन्दों ने सताया, रोजी-रोजगार से छूटे, किसी प्रियजन की मृत्यु हुई, घर में आग लगी या चोरी हुई, परीक्षा में असफल हुए कि हुए बाबाजी। सच्चा वैराग्य और आत्म साक्षात्कार का प्रेम तो कहीं ढूंढे भी नहीं मिलता। अन्यथा जिस देशमें छप्पन लाख साधु हों उसके उद्धार में क्या विलम्ब लग सकता है? पर आज तो ये साधु हमारे गरीब समाज के सिर पर भार रूप हो रहे हैं। यदि ये अपने अकर्मण्य जीवन को सुधार कर व्यसनों के पंजे से अपने-आपको मुक्त कर लें तो भारत का उद्धार दो दिन में हो जाय। साधु समुदाय एक दुर्दमनीय शक्ति है। भारत के साढ़े सात लाख गांवों में, यदि वे निर्व्यसनी होकर फैल जायें और खुद सदाचार पर आरूढ होकर समाज-सुधार का बीड़ा उठालें तो फलहो अंगरेजों को बोरिया-बिस्तर लेकर भारत से विदा होना पड़े। एक-एक गांव में सात-सात आठ-आठ तेजस्वी साधू वह आग लगा सकते हैं जो किसी बड़ी से बड़ी सल्तनत के बुझाये नहीं बुझ सकती।

पर अब तो साधु अकर्मण्यता की खान समझे जाते हैं। हट्टे-कट्टे मजबूत होने पर भी उन्हें भीख मांगते शरम नहीं आती। और यहीं अकर्मण्यता के रोग को फैलानेवाले ये बड़े

होते हैं। जो कोई भी उनके अड्डे में जा फंसता उसे भी गांजा, भांग, चरस आदि मन्त्रौषधियों के प्रयोग के साथ-साथ अकर्मण्यता की दीक्षा दी जाती है। ये साधु छोटे-छोटे बच्चों को भी जो प्रायः उन्हींके पापों की मूर्ति होते हैं, इसी अकर्मण्यता और नशाबाजी की दीक्षा देते हैं। वीतरागी, इन्द्रिय-निग्रही समझे जाने वाले साधु नशे को अपना विश्वस्त मित्र समझते हैं। एक बार भोजन के बिना वे रह सकते हैं परन्तु गाँजे के बिना नहीं। कई ऐसे भावुक भक्त भी देखे गये हैं जो अन्न के दान के बदले उन्हें गाँजे का ही दान देते हैं।

जो समाज इस कदर आत्म-हत्या करने पर तुला हुआ है उसका निर्वाह कैसे हो सकता है? यहाँ तो राजा से गरीब तक इस विष के चक्कर में फंसे हुए हैं। तमाखू मानों अमृत समझी जाती है और उसका खुले आम जोरों से प्रचार हो रहा है। शायद ही कोई ऐसा अखबार आपको दिखे जिसमें तमाखू का विज्ञापन न हो। अंगरेजी अखबारों में तो वर्जिनिया, एलिफेंट महल्ला, लिगेशन आदि सिगरेट कम्पनियों के विज्ञापनों से पूरे पृष्ठ रंगे हुए होते हैं। और जहाँ नीचे से ले कर ऊपर तक सभी अधिकारी इसके गुलाम हैं वहाँ इसे बंद कौन करें? संसार में बेरोक टोक इसकी खेती होती है। लाखों-करोड़ों आदमी इसको व्यवहार में लाने योग्य बनाने के लिए दिन-दिन भर प्रयत्न और और मजूरी करते हैं और अरबों की संख्या में इसपर रुपया बरबाद होता है।

हमें ठीक-ठीक पता नहीं कि संसार में तमाखू कि कितनी पैदावार होती है, और उसपर कितना रुपया व्यय होता है। यहां

तो हमें सिर्फ यही देखना है कि हमारे देश में तमाखू के नाम कितने रुपयों की होली होती है।

भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में नीचे लिखे अनुसार, तमाखू बोई जाती है। अंक सन्० १९२६-२७ के हैं।

प्रान्त	एकड़
मदरास	२६५४०२
बम्बई	१२०३९९
बंगाल	२८०३००
संयुक्तप्रान्त	७३३९४
पंजाब	५४४०७
ब्रह्मा	११८६०५
बिहार और उड़ीसा	११३०००
मध्य प्रान्त और बरार	१७५३३
आसाम	८९९४
उ. प. सीमाप्रान्त	११०५१
अजमेर मेरवाड़ा	६३
कुर्ग	२५
दिल्ली	४८३
	१०६५६५६

सन् १९२१-२२ में १२८६५७९ एकड़ में तमाखू बोई गई थी। परन्तु उपर्युक्त संख्या देशी राज्यों के अंक सम्मिलित नहीं हैं। इसलिए यदि उन्हें भी जोड़ लिया जाय तो प्रायः इतने ही और एकड़ हो जावेंगे जितने २१-२२ में थे।

अतः हम मध्यम मार्ग को धारण कर के यह माने लेते हैं कि भारत में प्रतिवर्ष १२००००० एकड़ में तमाखू की खेती होती है।

प्रत्येक एकड़ में तमाखू २०० पौंड से लेकर ३००० पौंड तक होती है। तथापि इसमें भी मध्यम मार्ग १५०० पौंड फी एकड़ उत्पत्ति मान ली जाय तो कुल १८७५०००००० पौंड तमाखू भारत में होती है। यदि रुपये को दो सेर के भाव से इसकी क़ीमत लगाई जाय तो ४६,८७,५००००, रुपये की तमाखू प्रति वर्ष यहां पैदा होती है। यही सन १९२१-२२ में ४८२६६२१०१ रुपये की हुई थी। सन् १९२६-२७ में विदेशों से २१३००,०००) की और २१-२२ में २,९५,००,०००) की तमाखू भारत में आई थी। इस तरह क़रीब-क़रीब ५०,००,०००००) की तमाखू प्रति वर्ष हमारे देश में खप जाती है।

पर यह मूल्य केवल कच्चे माल का है। इसके बाद तो इसके कई संस्कार होते हैं। देश में लाखों आदमी इसका व्यवसाय कर रहे हैं, कोई बीड़ी बनाते हैं तो कोई नस्य बनाते हैं। सिगरेट के कई कारखाने बने हुए हैं। हुक्का, चिलम, आदि का बनाना तो एक खास उद्यम बन बैठा है इन सब का हिसाब लगाया जाय तो तमाखू के और उसमें आवश्यक अन्य चीजों पर होने वाला द्रव्यनाश एक अरब से भी ऊपर बढ़ जायगा।

हमारा देश स्वाधीन नहीं है। इसलिए सरकार ने न कोई ऐसे अंक एकत्र किये हैं और न प्रयोग ही कि जिससे हमें इन दुर्व्यसनों की भयंकरता का कुछ अनुमान हो सके। इस समय तो हम दोनों तरह से नुकसान में हैं। एक तो सरकार कुछ ऐसी चीजें हम पर लादती है, जिनसे यद्यपि हमें तो नुकसान

है और उसे फायदा है। हमारे नुकसान की उसे कोई परवाह ही नहीं। दूसरे ऐसी बुराई को भी यह दूर नहीं करती जिससे उसे कोई नुकसान तो नहीं पर उसके लिए प्रयत्न करने में व्यर्थ की परेशानी उठानी पड़ती है। तमाखू इन्हीं चीजों में से है।

प्रतिवर्ष ५०,००,००,०००) की आर्थिक हानि के अतिरिक्त इसके भयंकर विष से न जाने कितने करोड़ मनुष्य प्राणियों की जीवन-शक्ति नष्ट होती है। क्या इस राष्ट्रीय हानि का ठीक-ठीक हिसाब लगा कर उसे दूर करने का बीड़ा उठानेवाला कोई वीर भारत में है? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसमें राजनैतिक, सामाजिक, या धार्मिक कोई रुकावट नहीं है। भारत अपने युवकों की, ओर इस दृढ़व्रत के लिए आंखें लगाये हुए है।

विजया

जाता मन्दरमन्थनाज्जलनिधौ पीयूषरूपा पुरा ।
त्रैलोक्ये विजयप्रदेति विजया श्रीदेवराजप्रिया ॥
लोकानां हितकाम्यया क्षितितले प्राप्ता नरैः कामदा ।
सर्वातङ्क विनाश हर्षजननी यै सेविता सर्वदा ॥

—राजवल्लभः

तमाम भय और आतङ्क को नष्ट करके मनुष्य के चित्त में हर्ष की नदियां बहाने वाली और उसकी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली इस देवी का जन्म पहले-पहल समुद्र-मन्थन के समय अमृत रूप में हुआ था। इसलिए इसका नाम विजया हुआ। देवेन्द्र को यह विशेष प्रिय हुई। अन्त में इस संसार के लोगों के कल्याण के लिए मनुष्य ने इसे प्राप्त किया ।

भांग, गांजा और चरस

चाय और तम्बाकू जिस तरह आजकल की सभ्यता के अनुगामी और सेवकों की प्रिय चीजें हैं, उसी प्रकार भांग, गांजा और चरस प्राचीनता प्रेमी व्यसनियों की प्रिय वस्तु है। आज चाय तो शहरों और कस्बों में आपको मिलेगी। पर भांग का प्रचार छोटे से छोटे देहात तक में है। यह भारतीयों का प्रिय पेय है। जहां कहीं साधु-संत बैरागी और राम, कृष्ण और खासकर शंकर के मंदिर हैं, (और भारत में ये सर्वत्र हैं) वहां वहां जरूर भांग और गांजे का निवास है। यह नियम इतना सत्य है, जैसा कि न्यायशास्त्र का "यत्रयत्र धूमस्तत्र तत्रवन्हिः" वाला प्रमेय। बल्कि मैं तो इससे भी आगे बढ़कर यह कहूँगा कि ये भांग, गांजे और चरस का समाज में प्रचार करने वाले जीते जागते प्रचारक हैं। चाय, काफी और कोको का प्रचार हमारे देश में इतनी तेजी से इसलिए बढ़ा कि वह हमारे शासकों का व्यसन था। [और गुलाम तो अपने शासकों की बुरी आदतों का सब से पहले अनुकरण करते हैं, चाहे उनके गुण आवें या न आवें। गुणों का अनुकरण करने में आत्म संयम और काफी प्रयास की जरूरत भी तो होती है। और आदमी गुलाम तो कहलाता है जब वह आराम तलब हो जाता है। इसलिए एक जाति की हैसियत से गुलाम राष्ट्र दुर्गणों का ही अनुकरण करता है। जिस क्षण ही वह सद्गुणों का अनुकरण या अवलम्बन करने लग जायगा हमें समझ लेना चाहिए कि उसकी गुलामी का जाना

अब नजदीक है] पर भांग-गांजा तो यहीं की चीजें हैं, इनके प्रचारक तो ५६ लाख उत्साही साधू और गांव-गांव में मंदिर हैं। मंदिरों और साधुओं द्वारा भक्ति का प्रचार कितना होता है सो तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता पर वे भंगेड़ियों के अड्डे तो जरूर होते हैं। शाम-सुबह गांव के लोग बाबाजी की धूनि पर और शहरों के सेठिया तथा गुंडे वगैरा अपने बाग़-बगीचों या शहर के बाहर वाले मन्दिरों में भांग छानने अथवा गांजे का दम लगाने के लिए नियम और एकनिष्ठापूर्वक एकत्र होते हैं। नाना प्रकार के व्यापार, उद्यम, कला-कौशल आदि की बातें और सलाह मशविरा करके अपने जीवन-संघर्ष को सौम्य बनाने एवं देश को लाभ पहुँचाने वाली बातें सोचने के बजाय, आज ये लाखों स्थान दुर्गुणों को बढ़ाने का काम कर रहे हैं। तीर्थ-स्थानों में तो यह बुराई और भी अधिक परिमाण में पाई जाती है। प्रत्येक घाट और मंदिर निश्चित रूप से भांग का अड्डा होता है। ब्राह्मणों, को प्रायः सिवा दान मांगने और खाने के कोई काम नहीं रहता! यात्री लोग वहां पहुँचते ही रहते हैं; इनको वे मूँड़ते हैं और फिर दिन भर अपना समय इन्हीं व्यसनों में और व्यभिचार में बरबाद करते हैं। तीर्थ-स्थानों में जाने वाले या तो भावुक लोग होते हैं या लापरवाह धनिक। भावुक-जन धर्म समझकर के इन लोगों को धन दान करते हैं और लापरवाह धनिक लोग शौक के लिए, मनोरंजन के लिए। जैसे चार दूसरे भिखमंगों को टुकड़ा डाल देते हैं वैसे ही इन्हें भी वे कुछ न कुछ दे ही देते हैं। ऐसे भक्त जनों को और धनिकों को भी अब से सावधान हो जाना चाहिए। भक्तों को चाहिए कि वे कुपात्रों को दान न दें। और धनिकों को ऐसे शौक और मनोरं-

जनों से दूर रहना चाहिए जो दूसरे को गिराने वाले हों। ऐसे शौक और मनोरंजन निर्दोष चीजें नहीं प्रत्यक्ष पाप है। अस्तु।

भांग मालूम होता है हमारे देश की बहुत पुरानी चीज है। "इसका सबसे पहला उल्लेख अथर्ववेद में* मिलता है? वेदों में सोम के साथ-साथ भांग की भी उन पांच पेयों में गणना की है जिनको पापमोचन पेय बताये हैं। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि जानते थे कि भांग एक नशीली चीज है। ऋग्वेद के कौशीत के ब्राह्मण में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। सुश्रुत ने इसे कफ वर्धक बताया है।"

भांग के पौदे की दो जातियां हैं। एक नर और दूसरी मादा। नशीले पौदे को (गांजा) नर कहा जाता है और मामूली पौदे को मादा। पर वास्तव में वनस्पति-शास्त्र के अनुसार यह वर्गीकरण ठीक विपरीत है। क्योंकि जो नर पौदा होता है वह नशीला नहीं होता। इसलिए लोग उसे उखाड़ कर अलग कर देते हैं और मादा पौदा जिसमें फल और बीज नहीं होते रहने दिया जाता है। इसीलिए शायद इस मादा पौदे को यहां नर कहने की चाल पड़ गई है। केवल इस पौदे का वर्गीकरण भले ही चाहे गलत हो पर चीन और भारत के प्राचीन साहित्य को देखते हुए हम यह अच्छी तरह जान सकते हैं कि पौदों की नर मादा इस तरह दो जातियों का पश्चिम ने आविष्कार किया उससे नहीं, पहले से हम लोग उसे जानते थे।

---

* D. Watts Dictionary of the Economic products of India.

भांग का पौदा तमाखू की ही तरह पूरा विष का पौदा है। इससे भी भांग, गांजा और चरस तीन चीजें पैदा होती हैं। सुश्रुत ने भांग, या गांजे के पौदे का स्थावर विषों में उल्लेख किया है। उनके मतानुसार इसकी जड़ में विष होता है। सुश्रुत कल्प २ अध्याय)

यूरोपियनों ने गाँजे और सन के पौदे को एक जातीय माना है। वे उसे Cannabis hemp कहते हैं। परन्तु हमारे देश में गाँजा और शन का पौदा अलग-अलग है।

भाँग के पौदे का फूल गाँजा, पत्ती भाँग, और उसका गोंद चरस कहलाता है। सभी चीजें नशीली हैं। भाँग खाते हैं। उसका पेय बना करके पीया भी जाता है, भांग की माजूम भी बनती है। लोग भोजन को रंगतदार बनाने के लिए मिठाइयों में भी भांग डाल देते हैं।

गाँजा तमाखू की तरह पीया जाता है। भाँग से गांजे का नशा कहीं तीव्र होता है और गाँजे की अपेक्षा चरस बहुत ज्यादा तीव्र होता है। लोग चरस को तमाखू के साथ पीते हैं। चरस भांग की पत्तियों और फूलों पर लगा रहता है। इसके निकालने की तरकीब बड़ी अजीब होती है। आदमी को नंगे बदन या चमड़े का कोट पहनाकर भांग के खेतों में दौड़ाते हैं। तब वह चरस अपने-आप उसके बदन को लग जाता है। चरस भारत में बहुत कम पैदा होता है। भारत में भांग के फूलों में बहुत कम मात्रा में लगा रहता है। चरस के कारण गांजे के (फूलों का) नशा चढ़ जाता है। भरात में तो मध्य एशिया से चरस आता है। इसे बोखारी तथा यारकन्दी चरस कहते हैं। नेपाल में बोखारी चरस

अच्छा समझा जाता है। दिल्ली प्रान्त में गढ़ बहादुर नामक गांव चरस की खास जगह है।

गांजा पीने से बात की बात में नशा आता है। आंख का रंग सुर्ख पड़ जाता है और सिर चक्कर खाने लग जाता है! हमारे देश में लोग भांग पीने से वैसे ही मतवाले हो जाते हैं। गांजा पीने वालों का दिमाग बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। भांग पीने से भी चित्त की स्थिरता चली जाती है और अत्यधिक भांग पीने से आदमी पागल हो जाता है।

पहले सब लोग बिना रोक-टोक गांजेभांग की खेती किया करते थे। परन्तु १८७६ ई० में सरकार ने की लेने का कानून चलाया। गांजा तैयार करने पर सरकारी गोदाम को भेज दिया जाता है। इस कर से सरकार को बहुत फायदा होता है,

गांजे भांग चरस के विषय में सरकार की नीति हेम्पड्रग्स कमिशन की सिफारिशों पर आधार रखती है। गांजे की खेती करने के लिए सरकार से पहले आज्ञा लेनी पड़ती है। नियत समय के बाद फसल की जांच होती है। फसल का अन्दाजा लगाया जाता है। व्यापारी या किसान अपने माल को बेच भी सकता है परन्तु बेचने पर भी माल को तो सरकारी गोदाम में ही रखना पड़ता है। गोदाम से माल ले जाते समय उसपर सरकार को कर देना पड़ता है। थोक और फुटकर बिक्री के लिए सरकार से आज्ञा लेनी पड़ती है।

बाहर से आने वाली चरस पर फी मन ८०) आयात कर देना पड़ता है। चरस भी सरकारी गोदाम में ही रखना पड़ता है। वहां से फिर ले जाते समय और दो बारा कर देना पड़ता है।

प्रायः भांग पर भी कर लिया जाता है! इन तीनों चीजों को बेचने के हक़ नीलाम किये जाते हैं। इसमें भी साधारण नीति वही रक्खी गई है जो अफ़ीम के विषय में सरकार ने कायम कर रक्खी है।

सरकार तो अपनी तरफ से भांग, गांजा, चरस आदि को बहुत उपयोगी बतलाती है। हमें पता नहीं कि इस उपयोग के मानी क्या हैं? यदि वे सचमुच उपयोगी हों तो उन्हें बतौर औषधि के भले ही डाक्टर या वैद्य के द्वारा मरीजों को दिया जा सकता है। परन्तु देश में इतने बड़े पैमाने पर उनकी खेती करके उनके बेचने के हक़ नीलाम करना और इस तरह इन चीजों के व्यवहार को एक टके कमाने का साधन बना देना, किसी अच्छी सरकार को शोभा नहीं देता।

सन् १८६० से लेकर १९०० तक सरकार ने भांग, गांजा, वग़ैरा की आय ११ लाख से बढ़ाकर ५९ लाख तक कर ली थी।

सन् १९०१ से तफसीलवार अङ्क यों हैं—

वर्ष	रुपये
१९०१	६१८३८७३
१९०४	६८०३०९८
१९०७	८८४९५०३
१९१०	१०६९५७८९
१९१३	१३६५९१६३
१९१७	१४९२४४४८
१९१८-१९	१५९२१३७९

परन्तु आय के साथ साथ इन चीजों के व्यवहार में भी निस्सन्देह वृद्धि हुई। हम पीछे शराब और अफीम के अध्याय में भी बता चुके हैं कि सरकार ने जान बूझ कर यह ग़लत नीति अख़्त्यार कर रक्खी है कि ज्यों ज्यों कर बढ़ाते जावेंगे, नशीली चीजों का व्यवहार घटता जायगा परन्तु वास्तव में ऐसा होता नहीं। सरकार ने भांग गांजा आदि के विषय में निश्चित नीति नहीं रक्खी है। प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न कर रक्खे गये हैं यहां तक कि एक ही प्रान्त में कहीं कहीं भिन्न-भिन्न जिलों में भी अलग-अलग कर लगाये गये हैं।

मालूम होता है इस विषय में सरकार ने अपनी नीति बिलकुल व्यापाराना ढंग पर रक्खी है। "जिन चीजों का लोगों को बहुत भारी व्यसन है, उनपर अधिक कर लगाया गया है। हां यह सावधानी जरूर रक्खी जाती है कि कहीं आय घटने न पावे। जिन चीजों की मांग बहुत ज्यादह नहीं होती उनपर कर कुछ कम कर दिया जाता है।* जहां बिक्री निश्चित है वहां अगर कुछ अधिक क़ीमत बढ़ा दी [illegible] भी ग्राहक आते ही हैं। और जहां प्रतिस्पर्धा का [illegible] यह [illegible] है कि लोग उस चीज के बिना [illegible] लेंगे [illegible] क़ीमतें कम [illegible] है जि[illegible] को [illegible] उन चीजों को [illegible]

भांग गांजा चरस की खपत

फी १०,००० लोगों में। अंक सेरों के हैं।

	वर्ष १९०१	वर्ष १९११-१२
मद्रास	१०.६	११.७
बम्बई	२०..	३८.५
बंगाल	३२.९	३५.१
आसाम	३९.	५२.३
युक्तप्रान्त	९३.५	६४.७
पंजाब	६०.८	६०७
मध्यप्रदेश-बरार	२५.४	३६.७
सिंध	३३७.८	३६७.३

युक्तप्रान्त को छोड़ कर सारे प्रान्तों में इन चीजों की खपत हम बढ़ी हुई देखते हैं। सन् १९११ से ले कर १९१८-१९ तक प्रत्येक प्रान्त में इस प्रकार इन मादक चीजों की खपत थी। अंक सेर के हैं :—

प्रान्त	११-१२	१६-१७	१७-१८	१८-१९
बम्बई	×	१७८०००	१५८०००	१६७०००
मदरास	४७०००	४८०००	४७०००	४५०००
पंजाब	१२०००	× ×	११८०००	११३०००
मध्यप्रदेश बरार	५८०००	४५०००	४५०००	३९०००
आसाम	३४०००	२९०००	२३०००	२५०००

बिहार-				
उड़ीसा	१२५०००	९३०००	९१०००	[illegible]
बंगाल	१५९०००	१०८०००	१०१०००	१०६०००

श्रीयुत बद्रलहुसेन ने अपनी The Drink and Drug will of India नामक पुस्तक में भारत सरकार की इन चीजों की नीति के विषय में लिखा है:—

In a word the Government is not above profitting from the sins of the people and trafficking with thir weakness. If atithe of that thoroughness which has marked the executing of the drug policy had been given to a better cause the course of the Indian History would have been different. The Drug policy has tempted the strong and demoralised the weak. It has exploited the rich and the poor and it has ruined both young and old, the strong and the infirm of all classes of creeds and races.

अर्थात् मादक पदार्थों के विषय में सरकार की नीति ऐसी नहीं रही जैसी कि होनी चाहिए। लोगों के पापों से फायदा उठाने और उनकी कमजोरियों को अपने व्यापार के साधन बनाने में वह कोई बुराई नहीं देखती। मादक द्रव्यों के सम्बन्ध में उसने जो नीति धारण कर रक्खी है और उसपर जिस दक्षता के साथ अमल कर रही है अगर उसका दसवां हिस्सा दक्षता वह किसी अच्छे काम में बताती तो आज वह भारतवर्ष के इतिहास को ही बदल देती। सरकार की आबकारी नीति ने सच्च-

रित्र लोगों के सामने प्रलोभन उपस्थित किया है और कमजोर आदमियों को गिरा दिया है। उसने गरीब और अमीर सबको एक सा लूटा और उनको धोखा दिया है। और उसने सभी वर्ग, धर्म और जाति के बूढ़े और जवान, तथा कमजोर और ताकतवर स्त्री-पुरुषों का सर्वनाश किया है!

चाय और काफ़ी

आधुनिक सभ्यता में चाय और काफी का बड़ा ऊँचा स्थान है। देहातियों के लिए जिस प्रकार तमाखू है, वैसे ही शहर वालों के लिए चाय और काफी है। हम दीवालों पर लिखा हुआ पाते हैं "चाय गरमी के दिनों में ठंडक पहुँचाती है और सर्दी में गरमी। चाय थकावट को दूर करती है। एक पैसा चा—पाकिट में तीन पियाला चाय। लिपटन का चाय पीओ" इत्यादि। स्टेशनों पर "चा गॅरम" की आवाज जरूर सुनाई देती है। वैशाख-ज्येष्ठ की कड़ी धूप में मैंने अपने कई सभ्य कहलाने वाले मित्रों को चाय पीते देखा है। अहमदाबाद और बम्बई की सड़कें बारहों महीने चाय के प्यालों और रक़ाबियों की खन-खनाहट से संगीत-मय रहती हैं। धनिक-लोग इसे अंगरेजी सभ्यता का एक चिन्ह समझ कर अपनाते हैं, मध्यमवर्ग के लोग कुछ फ़ैशन और कुछ भोज्य पदार्थ के रूप में इसका श्री गणेश करते हैं, और ग़रीब लोग इसे नशा समझ पीते हैं। ग़रीब लोगों में आजकल इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। बढ़ई-कारीगर, राज-मजदूर से लेकर मेहतर तक नियमपूर्वक इसका प्रातः स्मरण और सेवन करते हैं। प्रसन्नता का विषय है कि उत्तर भारत में चाय और क़हवे का उतना भीषण प्रचार नहीं, जितना दक्षिण भारत में है। फिर भी उत्तरी भारत के निवासियों को इसमे होने वाले हानि-लाभ का ज्ञान लेना जरूरी है, जिससे कोई इसके चक्कर में न पड़ने पावे।

चाय एक पौधे की पत्तियों का चूरा है। यह पौधा चीन की चीज़ है। पर अब तो यह भारत और संसार के अनेकों भागों में होता है। चाय में "थीन" (Theinn) नामक एक ज़हर होता है। वह प्रतिशत तीन से लेकर छः तक की मात्रा में उन चायों में पाया जाता है, जिन्हें हम पीते हैं। दूसरी वस्तु जो इसमें होती है, टैनिन (tannin) कहलाती है। टैनिन चाय में प्रायः प्रतिशत २६ तक की मात्रा में पाई जाती है।

कॉफ़ी अरबस्तान के एक पौधे का भूना हुआ फल है। यह उस पेसवियन बोली के पौधे से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, जिससे कि कुनाइन प्राप्त होती है।

कॉफ़ी में कैफ़िन (caffeine) नामक द्रव्य होता है, जो थीन का ही भाई-बन्द है। इसमें टैनिन भी होता है। परन्तु चाय का अपेक्षा इसमें ये दोनों कहीं कम मात्रा में होते हैं।

कोको मैक्सिको का पौदा है। चोकोलेट (chocolate) इसी-से बनते हैं। कोको में भी वही ज़हर प्रतिशत पाँच मात्रा में होता है। कोको फल को पीस कर, उसमें चीनी आदि मिला कर, रोटियां बना कर सुखा लिया जाता है। इसीको छोटे-छोटे डिब्बों में भर कर भेजा जाता है, जिसे हम पीते हैं।

सभ्य समझे जाने वाले राष्ट्रों में चाय और काफ़ी का प्रचार हुए बहुत दिन नहीं हुए। कहा जाता है कि अरबस्तान के लोग एक हज़ार वर्ष से कॉफ़ी पी रहे हैं। चीन और जापान में चाय का भी उपयोग शुरू हुए लगभग इतने ही वर्ष हुए। सोलहवीं सदी के मध्य में कुस्तुंतुनिया में एक कॉफ़ी की दूकान खोल कर यूरोप में इसका पहले पहल प्रचार हुआ। वहाँ से इंग्लैंड तक

जाने को इसे पूरी एक सदी लग गई। कुस्तुन्तुनिया में जब यह दूकान खुली तो वहाँ के मुल्ला-मौलानाओं ने इसका जबर्दस्त विरोध किया। वे कहते थे कि कॉफी पीना पैगम्बर साहब की शिक्षाओं के विपरीत है। पर नशों का प्रचार इस तरह नहीं रोका जा सकता। आज तुर्कस्तान कॉफी के कट्टर से कट्टर भक्तों में गिना जाता है।

सभ्य संसार में भी शुरू-शुरू में इसका विरोध तो जरूर हुआ, पर उस तरह नहीं, जैसा कि तमाखू का हुआ था। इसलिए इसका प्रचार तेजी से बढ़ने लगा। एक विश्वसनीय अर्थ शास्त्री का कथन है कि उन्नीसवींसदी के अन्त तक संसार में इन चीजों की खपत नीचे लिखे अंकों तक बढ़ गई थी—

चाय	३,००,००,००,००० पौंड
कॉफी	१,००,००,००,०००
कोको और चोकोलेट	१०.००.००.०००

रूस और हालैंड को भी चाय ही प्रिय है। परन्तु तुर्कस्तान, स्वीडन, फ्रांस और जर्मनी में काफी का प्रचार अधिक है। भारत में नीचे लिखे अनुसार चाय की खपत हुई:—

सन्	पौंड
१९१०	१,३४,८७,२९७
१९१५-१६	४,१३,११,९००
१९२१-२२	१६,००,००,०००

इनके दुष्परिणाम

चाय और काफी के रसायनिक गुण-दोष जांचने के लिए कई प्रयोग किये गये हैं। डॉ० स्मिथ और डा० रिचर्डसन के प्रयोगों से पता चलता है कि थोड़ी मात्रा में चाय पीने से हृदय की गति बढ़ जाती है। फेंफड़े अधिक मात्रा में कारबोलिक एसिड छोड़ते हैं। शरीर की गरमी कम हो जाती है, और गुर्दे की भी गति बढ़ जाती है। अधिक मात्रा में चाय पीने से जी मिचलता है, आदमी बेहोश हो जाता है और अन्त में उसकी मृत्यु हो जाती है। डॉ० एडवर्ड स्मिथ ने दो औंस काफ़ी जिसमें ७ ग्रेन कैफ़िन का जहर होता है क्वाथ पिया तो वे बेहोश हो कर जमीन पर गिर पड़े थे।

डॉ०—केलॉग, चाय से एक घोड़े की मृत्यु किस तरह हुई, इसका हाल यों लिखते हैं—

"ब्रिटिश फ़ौज के एक ऊँचे अफसर का प्यारा घोड़ा बड़ी विचित्र तरह मर गया। उनके रसोइये की गलती से एक चाय के बोरे के अन्दर कुछ पौंड चाय रह गई। सईस आया और उसने उसी बोरे में चने भरे और घुड़सवार फौज के और घोड़ों को चने बांटता-बांटता आया और जब उसमें थोड़े से रह गये, तो वह बोरा इस अफ़सर के घोड़े के सामने रख दिया। स्वभावतः इसके हिस्से सब से ज्यादह चाय आई। घोड़ा तो चनों के साथ में चाय भी खा गया, पर उसका नतीजा यह हुआ कि वह जानवर नशे में चूर हो गया, अपने पिछले पैर उछाल-उछाल कर खूब

कूद-फाँद मचाने लगा और अन्त में एक खाई में गिर कर मर गया !"

जीवन शक्ति का ह्रास

डा० स्मिथ, डा० गाजू और कई बड़े-बड़े डाक्टर खोज के बाद इस नतीजे पर पहुंचे है कि चाय और काफी पीने पर शरीर का क्षय तेजी से बढ़जाता हैं। कारण कि इसके सेवन से शरीर के अन्दर से निकलने वाले 'कारबोलिक एसिड' का परिमाण बढ़ जाता है। फेफड़ों के भीतर से निकलने वाली "कारबोनिक एसिड" की मात्रा शरीर के क्षय का परिमाण जानने का सर्वोत्तम साधन है।

शरीर-क्षय की यह मात्रा सारे शरीर-क्षय के $\frac{1}{20}$ वें भाग से ले कर $\frac{1}{8}$ भाग तक पहुंच जाती है। नतीजा यह होता है कि जो लोग अधिक पोष्टिक अन्न और वह भी अधिक मात्रा में खाते हैं, वही इस व्यर्थ के क्षय को बरदाश्त कर सकते हैं। इसके मानी कम से कम यह तो जरूर हुए कि श्रीमान् लोगों के लिए यह व्यसन उतना बुरा चाहे न हो परन्तु मामूली लोगों के लिए तो अवश्य ही नुक़सानदेह है

पाचन-शक्ति का बिगड़ना

अनेक तजुर्बेकार डॉक्टरों का निश्चित मत है कि चाय और काफी से पाचन-शक्ति तो बिगड़ती ही है। अनावश्यक मात्रा में और बहुत गरम-गरम द्रव शरीर के अन्दर पहुँच जाने से सारी पाचनक्रिया अव्यवस्थित हो जाती है। आस्ट्रेलिया के एक प्रसिद्ध डाक्टर ने ब्रिटिश मेडिकल ऐसोसियेशन के एक अधिवेशन में

कर हाथा कि चाय और काफ़ी निश्चित रूप से आदमी के शरीर में बदहजमी का रोग पैदा करते हैं। सर विलियम रॉबर्ट का कथन है कि थोड़ी थोड़ी मात्रा में चाय और काफ़ी का सेवन करने से भी हमारे शरीर के पाचक क्षार कमजोर हो जाते हैं, जिससे अन्न के पोष्टिक तत्त्वों के सत्त्वों को हमारा शरीर नहीं खींच सकता दूसरे शब्दों में यही अग्निमांद्य अथवा अजीर्ण होता है।

दन्त रोग

चाय और काफ़ी बहुत गरम-गरम पी जाती है। इतनी अधिक गरमी से दांतों की जड़ें कमजोर हो जाती हैं। इसी कारण हम देखते हैं कि चाय और बरफ़ का अधिक उपयोग करने वाले लोगों के दाँत अकसर कमजोर रहते हैं। बहुत ज्यादा गरम और बहुत ज्यादा ठंडी चीजें दांतों के लिए हानिकारक होती हैं।

चाय और काफी से स्नायुओं को क्षणिक उत्तेजना तो मिलती है, परन्तु उनसे मनुष्य की यथार्थ शक्ति या खून नहीं बढ़ने पाता। इसलिए चाय का प्रभाव कम होते ही शरीर पर प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और शीघ्र ही शरीर सुस्त हो जाता है।

नैतिक प्रभाव

जो लोग चाय पीने के बहुत अधिक अभ्यस्त होते हैं, उनके आचरण पर भी इसका स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। एक प्रसिद्ध स्नायु-विशेषज्ञ (Neurologist) ने Journal of Men-

tal and Nervous Diseases) में उपयुक्त सत्य के विषय में इस प्रकार लिखा है—"बहुत दिनों तक चाय का सेवन करते से जैसे बदहज़मी की शिकायत होती है वैसे ही आदमी का स्वभाव भी चिड़-चिड़ा हो जाता है।" "प्रत्येक दातव्य संस्था में, खास कर वृद्धों की में, चाय पीने वालों की अधिकांश संख्या होती है; इसका परिणाम यह होता है उन लोगों में चिड़चिड़ापन, शारीरिक दौर्बल्य, और नींद न आना आदि दोष पाये जाते हैं।"

न्यूयार्क (अमेरिका) के प्रसिद्ध डॉक्टर मार्टन ने चाय और काफ़ी के दुष्परिणामों की बड़ी सावधानी के साथ जाँच की है। हम उनकी इस जांच के परिणामों में से कुछ महत्वपूर्ण अंश नीचे देते हैं—

"चाय और काफ़ी के सेवकों का स्वास्थ्य बहुत जल्दी गिर जाता है। यहाँ तक कि वे अपने काम-काज को भी भली भाँति नहीं सम्हाल सकते। अगर कुछ करते भी हैं तो उससे उनके स्वास्थ्य को बड़ी हानि पहुँचती है। अपने लम्बे अनुभव से मुझे तो कहना पड़ता है कि जिन लोगों को वर्षों से चाय पीने का अभ्यास पड़ गया है उनके स्वास्थ्य को तात्कालिक और हमेशा टिकने वाली हानि पहुँचती है। अमेरिका के एक बहुत बड़े धनिक व्यापारी ने कहा था—"मुझे एक लाख डॉलर की हानि हो जाय तो परवा नहीं, पर मैं यह कभी पसन्द नहीं करूँगा कि मेरा लड़का चाय पीने लग जाय।"

हम जितनी चाय पीते हैं उसकी मात्रा को देखते हुए हमें पहले पहल यही ख़याल होता है कि इतनी सी चाय से क्या हानि होती होगी! परन्तु जब उसकी चाट हमें लग जाती है, तभी

में उसकी शक्ति और बुराई का ख़याल होता है। एक शराबी, अफ़ीमची और तमाखू भक्त की तरह चाय भी आदमी को लाचार बना देती है। कई भले आदमी चाय की आदत लग जाने पर उसके इस तरह ग़ुलाम बन जाते हैं कि यदि किसी दिन ठीक समय पर चाय नहीं मिल पाती तो उनका सिर घूमने लग जाता है, बुख़ार हो आता है, हाथ-पैर दुखते हैं, और सारा बदन टूटने लगता है! काम-काज में दिल नहीं लगता! ऐसा मालूम होता है, मानों शरीर में कोई बल नहीं रहा।

चाय के दुष्परिणामों को जाँचने के लिए डॉ० मार्टन एक ऐसे आदमी का उदाहरण पेश करते हैं, जिसे बेहद चाय पीने की आदत थी। ऐसे मामलों में जो परिणाम पाये जाते हैं, उनसे कम परिमाण में चाय पीने के असर का भी अनुमान भली भाँति किया जा सकता है। चाय के एक मरीज़ का वे यों बर्णन करते हैं:—

"चाय पीने पर दस ही मिनट में उसका चेहरा तमतमा उठता है। सारे शरीर में गरमी मालूम होती है, और मस्तिष्क कुछ हलका मालूम होता है। ऐसा अनुभव होता है, मानों एका-एक कहीं से बहुत सी बुद्धि आ कर दिमाग़ में घुस गई। उसे प्रसन्नता मालूम होती है, मारे आनन्द के हृदय नाचने लगता है, चिन्तायें और कष्ट अदृश्य हो जाते हैं। सारा विश्व आनन्दमय और आशामय मालूम होता है। शरीर हलका और फ़ुर्तीला मालूम होता है। विचार सुलझे हुए और खूब आते हैं, वाणी खिल उठती है, पहले की अपेक्षा बुद्धि अधिक तेज़ और चपल मालूम होती है। और यह सब भ्रम नहीं। आप उससे बातें

कीजिए और वह आपको थका देगा। ऐसी-ऐसी गप्पें लगायेगा कि आप चकित हो जावेंगे।'

क़रीब एक घण्टे के बाद प्रतिक्रिया का आरम्भ होता है। कहीं थोड़ा सा सिर-दर्द मालूम होता है। चेहरे पर शिकनें पड़ने लगती हैं, वह सूख जाता है, आंखें निस्तेज-सी हो जाती हैं। पलकों के नीचे के हिस्से पर स्याही छा जाती है।

दो घंटे के बाद तो प्रतिक्रिया पूर्ण रूपेण आ जाती है। वह गरमी न जाने कहाँ चली जाती है। चेहरे की सुर्खी नदारद। हाथ-पाँव ठंडे। सारे शरीर में कँपकँपी सी आ जाती है। वह प्रसन्नता न जाने कहाँ रफू-चक्कर हो जाती है। मानसिक निराशा घर दबाती है।

इस समय वह ऐसा चिड़चिड़ा हो जाता है कि बात बात पर सनक उठता है। कहीं जरासा खटका होते हो वह चौंक पड़ता है, बेचैनी बढ़ जाती है और थकावट के मारे वह चूर-चूर हो जाता है। अब कोई काम करने की हिम्मत उसमें नहीं रह जाती। न चल सकता है, न बैठने को जी चाहता है।

यह तो एक बार चाय लेने का परिणाम है। इस समय शराब वगैरा नशीली चीजें पीने की बहुत इच्छा होती है। पेशाब की हाजत बार-बार और खूब होती है। कुछ बदहज़मी भी मालूम होती है।

चाय की आदत बढ़ जाने पर सिर-दर्द की शिकायत बार-बार होती है। आंखों को घुमेरें आती हैं, कानों में सन-सन्न सी सुनाई देती है। ऐसा मालूम होता है, मानों अपने आस-पास की सारी चीजें घूम रही हैं। नींद कम आती है, नींद में आदमी

उठ-उठ कर भागता हैं। खूब सपने आते हैं। बदहज़मी की शिकायत बढ़ जाती है। भूख का कोई ठिकाना नहीं रहता। खट्टी-मीठी डकारें आती रहती हैं। परन्तु डकार के समय कुछ कष्ट होता है।

ऐसे कट्टर चाय भक्त की मनोदशा विचित्र होजाती है। उसे हमेशा किसी न किसी चीज़ का डर बना रहता है। अगर कहीं मोटर में बैठता है तो यह डर लगता है कि यह कहीं किसी दूसरी मोटर से टकरा न जाय। रेल में पुलों और पहाड़ों के टूटने का डर रहता है। रास्ते में चलते वक्त मोटरों और गाड़ियों के नीचे कुचल जाने का भय रहता है। यह भी डर लगता है कि कहीं कोई मकान का हिस्सा या छप्पर का कोई खपरैल उसके ऊपर गिर न पड़े। कुत्तों को देखते ही उसे उनके काटने का भय होता है।"

डा मार्टन ने जितने चाय बाजों की जांच की सब के अन्दर यही लक्षण उन्हें मिले। तब उन्होंने खुद चाय पीकर देखा और अपनी जांच का फल बिलकुल ठीक पाया। इसके बाद उन्होंने अपने ये सारे अनुभव प्रकाशित कर दिये। उनके आविष्कारों का खण्डन करने का खूब प्रयत्न किया गया। पर इसका कोई असर न हुआ। उल्टे दूसरे डाक्टरों ने भी डा० मार्टन की जाँच को ही सत्य पाया।

इंगलैंड के सुविख्यात डॉक्टर सर बी० डब्ल्यू० रिचर्डसन लिखते हैं:—

"चाय से बद हजमी की शिकायत शुरू हो जाती है। शरीर के स्नायु कमजोर हो जाते हैं और मानसिक दुर्बलता बढ़ जाती है।

लोग इस शिकायत को दूर करने के लिए शराब का सहारा लेते हैं। इस तरह एक से दूसरी बुराई बढ़ती है।"

काफी तो चाय की बहिन है। उससे भी बदहज़मी होती है, इस विषय यह चाय से भी भयंकर है। नींद कम हो जाती है। जब आदमी को गहरी नींद में सो कर थकावट को मिटाना चहिए उस समय ये दोनों बहने—चाय और काफी—आदमी के दिमाग़ को बेचैन किये डालती है।

इसके बाद जो वैज्ञानिक आविष्कार हुए हैं उनसे तो पता चलता है कि चाय और काफी का थीन नामक द्रव्य यूरिक एसिड से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यूरिक एसिड वही भयंकर द्रव्य है, जो प्राणियों के पेशाब में पाया जाता है। * इसलिए चाय या काफी का मनुष्य के शरीर पर वही असर होगा, जो मूत्र के उत्पन्न होने वाली ऐसिड की दवा पीने से हो सकता है।

पर यह होने पर भी चाय के भक्त इसकी प्रशंसा करते करते नहीं थकते। बात यह है कि इन विषैले द्रव्यों के नशे ने बड़े-बड़े और बुद्धिमान लोगों तक को भ्रम में डाल रक्खा है। ऐसे लोग प्रत्येक नशीली चीजों के गुणों को गिनाते हैं। पर वे नशे के आवश्यक धर्म को नहीं जानते इसलिए एक भ्रम में पड़ जाते हैं।

चाय के भक्त कहते हैं:—

"चाय से शक्ति बनी रहती है, थकावट दूर होती है। हाज़मे को सहायता मिलती है, सिर दर्द अच्छा हो जाता है। क्षुधा की

---

* URIN यूरिन-पेशाब और रक्त-पेशाब का-पेशाब सम्बन्धी।

शान्ति होती है। मनोबल बढ़ता है! भिन्न भिन्न जगहों का पानी नहीं लगता, और चित्त की प्रसन्नता बढ़ती है!"

परन्तु वास्तव में देखा जाय तो यह सब भ्रम है। प्रत्येक प्रकार के विष का थोड़ी मात्रा में सेवन करने से वही परिणाम होता हुआ ज्ञान पड़ता है। परन्तु वास्तव में उसका असर भयंकर ही होता है। विष जब संज्ञा और चिंतन के ऊंचे केन्द्रों को मूर्छित कर देता है तो निम्न केन्द्रों पर से मस्तिष्क का अधिकार उठ जाता है। शरीर बिना ब्रेक की गाड़ी और ड्राइवर के इंजन की तरह मन माना दौड़ने लग जाता है। उसमें विचार और चेतन-शक्ति नहीं होती। मस्तिष्क के निम्न केन्द्रों के विचार और भाव उच्छृंखल हो जाते हैं और हमें मालूम होता है कि हमारी विचार शक्ति उत्तेजित अथवा जागृत हो उठी है। जिन बातों को दूसरों पर प्रकट करने में मामूली अवस्था में हमें संकोच और लज्जा मालूम होती है, नशे में हम बेधड़क उन्हें बोलते और लिखते चले जाते हैं।

चाय, तम्माखू काफ़ी अथवा दूसरा कोई नशा आपकी थकावट को मिटाता नहीं। थोड़ी देर के लिए आपको उत्तेजित कर देता है। एक दुबले पतले भूखे बैल को मार मार कर कितनी देर तक काम ले सकते हैं? किराये के इक्केवाले अपने घोड़े को शराब पिलाकर उसकी थकावट को भुला देते हैं और उससे खूब काम लेते हैं। पर यह कब तक हो सकता है? चाय के कारण बद-हजमी के शिकार बने हुए लोग भी अपने दुर्बल पाक-यन्त्र को चाय की आर लगाकर उससे कुछ दिन अन्न हजम करवा लेंगे। परन्तु आगे चलकर के ऐसा प्रसंग कभी आ सकता है, जब चाय के मनमाने प्याले पीने पर भी पाक-यन्त्र अन्नको हजम करने

से इन्कार कर देगा। सिर दर्द को रोकने, बुखार भगाने, मनोबल को बढ़ाने आदि बातें भी इसी श्रेणी की हैं। आसन्नमृत्यु प्राणी की छटपटाहट को जिस तरह कितने ही लोग स्वास्थ्य और नीरोग होने के आशाप्रद लक्षण समझते हैं, वही हाल नशीली चीजों से बीमारियाँ अच्छी होने वाली बातों का भी है।

तमाखू, भांग, गांजा काफी जैसे हानिकर पदार्थों की खेती और पैदायश एक गुनाह समझा जाना चाहिए। इसका पीना और पिलाना दोनों पाप समझे जाने चाहिएँ। पर हमारे यहाँ तो जुदी बात है। आजकल यही आदर और आतिथ्य की प्रधान वस्तु हो गई है। जहाँ सारा संसार बावला हो रहा है, वहाँ निन्दा भी किस-किस की की जाय? भारत केवल अपने पीने के लिए ही चाय नहीं पैदा करता।

भारत में आसाम, बंगाल और दक्षिण भारत की पहाड़ियों पर चाय के बाग हैं। भारत में चाय की खेती प्रायः पूर्ण-रूपेण गोरों के हाथों में ही है। और वे भारतीय मजदूरों से काम लेकर इस खेती से बेहद फायदा उठाते हैं। चाय के खेतों पर मजदूरों को बड़ी बुरी तरह रक्खा जाता है। गुलामों की अपेक्षा भी बदतर सलूक उनके साथ होता है। गुण्डे गोरों के भारतीय मजदूरों की स्त्रियों पर बलात्कार की हम कई खबरें पढ़ते हैं। फिर न जाने कितनी कहानियां तो वहीं न दब जाती होंगी? इस तरह चाय की खेती भारत के लिए एक तरह से दुगुनी शर्म की चीज है। एक तो चाय जैसी अनावश्यक और हानि कर चीज को पैदा करके विदेशों पर लादने में हम भाग लेते हैं, और दूसरे वहां जानेवाले भारतीय मजदूरों के सन्मान की हत्या के कारण बनते हैं।

इस जगह अगर अन्य उपयोगी और पोष्टिक फल लगाये जायँ तो कितना लाभ हो।

भारत में नीचे लिखे अनुसार चाय की खेती होती है।

	१९२०	२१	२३	२४	२५
प्रान्त	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़	एकड़
आसाम	४२८२००	४१२१००	४११९००	४१२३००	४[illegible]६५००
शेष उत्तर भारत	१९३८००	२०३२१०	२०३५००	२०४४००	२११९००
दक्षिण भारत	८०४००	९२९००	९५८००	९८०००	१०१२००
कुल	७०२४००	७०८२००	७११२००	७१४७००	७२७८००

पैदायश १००० पौंडों में इस प्रकार है

आसाम	२२४३१४	१९९९६५	२३७६०१	२३७१५३	२३५१८५
शेष उत्तर भारत	७०२३७	७५१२६	९२०७६	९१२०१	८९०१७
दक्षिण भारत	३५६५५	३६५४८	४५६७९	४६७५२	४९३०५
	३४५२०६	३११६३९	३७५३५६	३७५२५६	३६३५०७

केवल समुद्र-मार्ग से नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष चाय भारत से विदेशों में जाती है—अंक हजारों के हैं (अर्थात् प्रत्येक संख्या पर तीन शून्य और लगा कर पढ़िए)

१९२०–२१		२२–२३	२३–२४	२४–२५	२५–२६
उत्तर भारत से (कलकत्ता और चटगांव)	२५०२३३	२५३१७६	२२६७१८	२९९७४७	२८००२४
दक्षिण भारत (इलाका मदरास के बन्दरगाह)	३०६३८	३०३८६	३८५६०	३७७१७	३२१३३
बम्बई, सिंध और ब्रह्मा के बन्दरगाह	४८८१	४११४	३४१७	२६४३	२५७६
	२८५७५२	२८८२९६	३३८७५५	३४०१०७	३२५७३३

ज़मीन के रास्ते से जो जाती है, वह१०७६९५८४ पौंड है।

सन् १९२५-२६ में नीचे लिखे अनुसार चाय विदेशों को गई—

ग्रेट ब्रिटेन	२८०५७२६९३
शेष यूरोप	३६०१३७२
आफ्रिका	६०८६९५८
कनाडा	७९०२०२५
संयुक्त राज्य (अमेरिका)	४९०२०२५
शेष अमेरिका	१०४६००८
सीलोन	४१७३२१६
चीन	२०८९७७२
ईरान ,	३१८७७१४
तुर्कस्तान (एशिया)	३३७३८८७
शेष एशिया	२४९८३१९
आस्ट्रेलिया	६३६१९७०
जमीन के मार्ग से	१०७६९५८४
कुल पौंड—	३३७३१४७६०

कुल पैदायश	३६३५०७०००
विदेशों को गई	३३७३१४७६०
भारत में रही	२६१९२२४०

बाहर जानेवाली चाय का थोक नीलाम होता है। उसका फ़ी पौंड भाव सन् १९२३-२४ में पंद्रह आने था।
१९२४-२५ ,, पंद्रह आने ग्यारह पाई था।
१९२५-२६ ,, तेरह आने पाँच पाई था।

पर यह भाव तो बड़े-बड़े व्यापारियों का है, सर्वसाधारण को तो यह कहीं महँगी मिलती है।

× × ×

बाजार में चाय फ़ी पौंड १॥ के भाव से मिलती है। इस हिसाब से भारत में—

५४५२६०५००) की चाय पैदा होती है।
५०५९७२०४०) कीमत की चाय विदेशों को जाती है और
०३९२८८४६०) कीमत की चाय भारत में खपी।

काफ़ी का इतिहास ज़रा अन्धकार-पूर्ण है। ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि भारत में इस देवी का आगमन कब हुआ। पर दक्षिण भारत में यह कहानी बहुत प्रचलित है कि बाबा बुदन नामक एक मुसलमान यात्री मक्का से लौटते समय दो सदियों पूर्व मैसूर में इसके सात बीज लाया था। संभव है यह सच हो। परन्तु अङ्गरेज़ी इतिहासकार कहते हैं कि उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में काफ़ी भारत में आ चुकी थी। सन् १८२३ में फोर्ट ग्लास्टर को एक परवाना दिया गया था, जिसमें कलकत्ता में उसे कपड़े की मिल, काफ़ी की खेती और शराब की डिस्टिलरी खोलने के लिए आज्ञा दी गई थी। पर उत्तर भारत में कहीं उसके पैर न जमे : आखिर काफ़ी ठेठ वहाँ जा पहुँची, जहाँ दो सदियों

पहले उसके आगमन की कहानी प्रचलित थी। आज नीलगिरी पहाड़ की घाटियाँ काफ़ी से लहलहा रही हैं।

सन् १९२५-२६ में अपनी रिपोर्ट देनेवाले काफ़ी के खेतीहरों की संख्या ३१४३ थी, जो २५३४५१ एकड़ में काफ़ी की पैदायश करते थे। सन १९२०-२६ में कुल २२१०६७१७ पौंड काफ़ी पैदा हुई थी, और सन १९२४-२५ में ३०४७५६४४ पौंड।

नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष काफ़ी विदेशों में जाती रही है:—

सन्	कार्टर	सन्	कार्टर
१९०२-३	२६९१६५	१९२१-२२	२३५०००
१९१०-११	२७२२४९	१९२२-२३	१६९०००
१९१९-२०	२७२६००	१९२३-२४	२१८०००
		१९२४-२५	२४२०००
		१९२५-२६	२०५०००

जब से संसार में ब्राजिल की सस्ती काफ़ी का प्रचार हुआ है, भारत के काफ़ी के व्यापार को बड़ी हानि उठानी पड़ रही है।

कोकेन

कोका नाम का एक पौदा होता है। उसके अन्दर, अन्य द्रव्यों के साथ-साथ, कोकीन नाम का द्रव्य भी होता है। सबसे पहले सन् १८५९ में नीमन नाम के विज्ञानवेत्ता ने इसका पता लगाया था। यह एक बड़ा भयानक जहर है और इसका असर थीन, केफीन, गारेनीन तथा थ्योब्रोमीन नामक घातक विषों के समान ही होता है जो डॉ० ब्रेनेट के मतानुसार अँतड़ियाँ स्वांस प्रणाली, ग्रंथि-प्रणाली और रक्त-प्रवाह प्रणाली के ऊपर बहुत ही घातक असर डालता है।

कोका के पौदे की कुल पचास जातियां हैं। ये गृह्त-ऊष्ण प्रदेश में ही होते हैं। भारतवर्ष में इसकी छः जातियां हैं। इसका मूलस्थान पेरु बोलिविया (दक्षिण अमेरिका) है। "भारतवर्ष में अभी उसकी खेती बतौर प्रयोग के सीलोन, दक्षिण-भारत और बंगाल-आसाम के चाय-बागान में की जा रही है। कोकेन नामक अतीव मादक पदार्थ इसी के रस से बनता है। इसकी पत्तियां भी इतनी उत्तेजक होती हैं कि उनके सेवन से आदमी की नींद उड़ जाती है। पर अभी यहां इससे कोकेन बनाना शुरू नहीं हुआ है। इसलिए इसकी पैदायश पर कोई रोक टोक नहीं है।

भारतवर्ष में कोकेन का व्यापार दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है। सन् १९०३ में बम्बई की सरकार ने इसे पहले-पहल अपने मादक द्रव्यों की फेहरिस्त में शुमार किया। और प्रान्तों में भी अब तो इसकी बिक्री और व्यवहार पर नियन्त्रण है; परन्तु यों

छिपे तौर पर इसका प्रचार भारत में बहुत भारी परिमाण में है। इसके भक्त-जन ऊँचे वर्ग के लोगों में से ही प्रायः होते हैं जो सामाजिक बन्धनों के कारण शराब या अफीम का खुले तौर पर व्यवहार नहीं कर सकते। ब्रह्मदेश में तो स्कूल के लड़कों तक में यह बुराई फैल गई है। भारत में वैश्याओं के यहां इसको अधिक खपत है। व्यभिचारी लोग क्षणिक उत्तेजना के लिए इसका उपयोग अक्सर करते हैं।

भारत में कोकेन पैदा नहीं होती। कहा जाता है कि यहां वह प्रायः जर्मनी और जापान से आती है। औषधीय उपयोग के लिए इसकी आयात नियमित है। परन्तु व्यसनी लोग और धन के लोभी व्यापारी उसे उसे चुराकर मँगाते हैं। यद्यपि कानून से इसकी बिक्री की मुमानियत है तथापि बहुत भारी परिमाण में यह भारत में खपती है। बम्बई, कराची, कलकत्ता, मदरास मारमागोआ और पांडीचेरी की राह से यह छिपे-छिपे कभी अखबारों की पार्सल में तो कभी संदूकों में कभी कपड़ों के गट्ठरों में तो कभी किताबों के बक्सों में आती है, और चुपचाप भारत के प्रायः तमाम बड़े-बड़े शहरों में फैल जाती है। देहली लखनऊ मेरठ, लाहौर मुलतान सूरत अहमदाबाद इसके खास अड्डे बताये जाते हैं।

इस समय इंग्लैंड में इसकी क़ीमत ३० से ले कर चालीस शिलिंग फी औंस तक है। भारत में अधिकतर दवा बेचने वालों के यहां वह २७ से ले कर ३१ रुपये फी औंस के भाव से बिकती है। परन्तु मौका पड़ने पर व्यसनी लोग एक-एक औंस के ४००) रुपये तक दे कर ले जाते हैं।

प्रत्येक प्रान्त में इसके व्यवहार पर भिन्न-भिन्न क़ानून हैं। बम्बई में इसके विषय में यों प्रतिबन्ध है। "वही आदमी विदेशों से कोकेन मंगा सकता है जिसने परवाना हासिल कर लिया है। डाक से कोकेन मंगाना बिलकुल मना है। कलेक्टर की आज्ञा बिना कोकेन की कोई बिक्री नहीं कर सकता, पास रखना, देश से बाहर भेजना तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना भी मना है। डॉक्टरी नुसखा मिलने पर मामूली आदमी ६ ग्रेन से अधिक कोकेन अपने पास नहीं रख सकता और सुशिक्षाप्राप्त डॉक्टर २० ग्रेन से अधिक नहीं। इन नियमों के भङ्ग करनेवालों को अधिक से अधिक एक वर्ष की क़ैद या २००० रुपये तक का दण्ड हो सकता है। बार-बार यही अपराध करनेवाले की सज़ा बढ़ती जाती है।

कोकेन की आयात के अंक नहीं मिले।

——::o::——

(महाराष्ट्र ज्ञान-कोश और इंडियन इयर बुक से.)

व्यभिचार

१८

कथापि खलु पापानामलमश्रेयसे —माघ

पापियों की कथाएं भी बड़ी अकल्याणकर होती हैं।

Vice is a monster of so frightful mien
As, to be hated, needs but to be seen
Yet seen too oft familier with her face,
We first endure, then pity, then embrace.

Alexander Pope

पाप, भयानक शकलवाला एक ऐसा दैत्य है कि इससे घृणा करने के लिए इसकी सूरत भर देख लेना काफ़ी है। लेकिन बार-बार देखने से आदमी उसकी घृणित सूरत से कुछ अभ्यस्त सा हो जाता है। अभ्यस्त होने के बाद हृदय में उसके प्रति सहन-शीलता बढ़ती है, सहन-शीलता, बढ़ी नहीं कि आदमी को उस-पर दया आ जाती है। जहां एक बार दया आई नहीं कि मनुष्य ने उसके आलिंगन किया नहीं। अतः ईश्वर न करे कि इस राक्षस के कभी दर्शन हों!

शैतान की लकड़ी

व्यभिचार

प्रास्ताविक

अब मैं एक ऐसे विषय पर कुछ लिखने का साहस कर रहा हूं जो अत्यन्त नाजुक है। इस विषय पर लिखते हुए मेरी लेखनी कांप रही है हर एक बात हर एक मनुष्य के मुख से शोभा नहीं देती। प्रत्येक विषय पर कुछ कहने के लिए अधिकार की जरूरत है, अनुभव की आवश्यक्ता है। मेरे पास न तो अनुभव है और न अध्ययन से प्राप्त होने वाला अधिकार। पर हमारे समाज में यह भीषण पाप जिस तरह फैल रहा है उसे देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। अपनी आंखों के सामने भयंकर से भयंकर प्रकरणों को देख कर चुपचाप बैठे रहना मेरे लिए असम्भव हो रहा है। फिर भी परमात्मा की दया से मुझे ऐसे सत्संग का लाभ प्राप्त हुआ है जिससे समाज के पूर्ण पतन की कहानी, मैं समझता हूँ, मेरे कानों तक नहीं पहुंच पाई है। पर मैं यह जरूर कहूंगा कि जो कुछ भी मैंने सुना है या देखा है वह मेरे हृदय को दहला देने के लिए, मेरे विचारों में क्रान्ति कर देने के लिये काफी था। हवा किस ओर वह रही है यह जान लेने के लिए दूर से किसी पेड़ की पत्तियों को या तिनकों और धूल को देख लेना काफी है।

उसमें स्वयं उड़ जाने की आवश्यकता नहीं। मुझे इस विषय संदेह नहीं है कि समाज की दशा क्या है। हां समाज को उस भयङ्कर अवस्था का ज्ञान कराके मैं सचेत कर सकूंगा या नहीं इस मुझे जरूर संदेह है। इस लिए ऐसे काम के लिए जरूरत थी किसी बुजुर्ग अनुभवी वैद्य या डाक्टर की जिन्होंने इस विषय का शास्त्रीय ढंग से अध्ययन किया हो। जिन्हें अपने दैनिक अनुभव से यह ज्ञात हो कि समाज में यह बुराई कितनी फैली हुई है, उसका मुख्य कारण क्या है, तथा उसे कैसे दूर किया जा सकता है। बड़ा अच्छा होता अगर कोई ऐसे सज्जन इस विषय पर लेखनी उठाते और हमारा उपकार करते। सौभाग्य वश हमारे देश में एक से एक प्रतिभाशाली वैद्य और डाक्टर भी हैं। परन्तु दुर्भाग्य की बात तो यह है कि उन्हें अपने व्यवसाय से ही अवकाश नहीं मिलता। जिसे भोजन करने और सोने को भी समय न मिले वह बेचारा हजार इच्छा होने पर भी पुस्तक लेखन जैसा शांति युक्त काम कैसे कर सकता है?

दूसरे वैद्य और डाक्टर हैं उनमें या तो ऐसा उत्साह ही नहीं या वे यह आवश्यक ही नहीं समझते कि इन विषयों का ज्ञान जनता को कराया जाय।

हां, कहने भर को हिन्दी में इस विषय पर कुछ साहित्य प्रकाशित हुआ है। एक-दो मासिक पत्र भी स्त्री-पुरुषों से सम्बन्ध रखने वाले विषयों पर समय-समय पर कुछ लिखते रहते हैं और व्यभिचार से जनता को सावधान करने का कुछ प्रयत्न करते हैं। परन्तु उनका ढंग कुछ ऐसा विचित्र है कि कुछ समझ में नहीं आता कि उनका वास्तविक उद्देश्य क्या है? जिन बातों से जनता

को बचाना चाहिये उन्हें वे ऐसे ढंग से उनके सामने रखते हैं कि इन पापों से सावधान होकर दूर रहने के बजाय लोग पापों की तरफ ललचाने लगते हैं। जिन पापों का पाठकों को ख्याल भी नहीं होता उनके नये-नये संस्करण अनजान पाठक जान जाते हैं और जान कर उनमें लुभा जाते हैं। कुछ लोगों ने समाज का असली स्वरूप प्रकट करने के उद्देश से इन पाप-कथाओं को प्रकाशित करना शुरू किया है। मेरे ख्याल से समाज सुधार का यह बड़ा ही खतरनाक तरीका है। पर मैं देखता हूं कि मूढ़ जनता उस प्रवाह में बराबर बही जा रही है। जीवन को सात्विक और शुद्ध बनाने वाले साहित्य को पढ़ने का कष्ट बहुत कम लोग उठाते हैं, और ऐसी पतित अभिरुचि उत्पन्न करने वाली चीजों की तरफ वे बड़ी बुरी तरह आकर्षित होते रहते हैं। इसमें जनता का उतना दोष नहीं जितना लोकमत को बनानेवाले—उसका नेतृत्व करने वाले साहित्य-सेवियों का है। क्या उनसे ऐसी आशा की जा सकती है कि वे अपनी महान जिम्मेदारी को समझेंगे? आजकल समाज में जो विषय-लोलुपता दिखाई देती है—विद्यार्थियों में जो बुरी तरह से पापाचार फैला हुआ है, उसका कारण मुझे बहुत बड़ी हद तक हमारी यह असावधानी ही मालूम होती है! और भी कारण हैं, जो हमारे भावी राष्ट्र के नागरिकों को पतन की ओर ले जा रहे हैं। परन्तु साहित्य सुविचार का स्रोत है। लोक-मत पर उसका बहुत भारी प्रभाव पड़ता है। इसलिए उसका पवित्र होना बहुत जरूरी है। साहित्य-क्षेत्र इतना गन्दा हो जाने पर भी लोगों की अभी बहुत कुछ श्रद्धा उस पर बनी हुई है। अतः वह अच्छे उदाहरण अच्छी, सुरुचि

को बढ़ाने वाली चीजें जनता के सामने रक्खेगा तो समाज की अन्य अनेकों बुराइयों को भी हम शनैः शनैः दूर कर सकेंगे। पर आज तो हमारा साहित्य अनेकों स्थान पर कुपथ्य का काम कर रहा है। सद्भाव-पूर्वक और व्यभिचार से जनता को बचाने के शुद्ध हेतु से लिखे हुए साहित्य में भी ऐसे कई स्थान हैं जिनके द्वारा व्यभिचार घटने के बजाय बढ़ने ही की सम्भावना है। यह सब देखते हुए यदि इस विषय-पर कुछ लिखते समय अपनी जिम्मे- दारी का भान मुझे दबाये तो आश्चर्य नहीं। मैं नहीं कह सकता कि मैं अपने आपको इस दोष से कैसे बचा सकूंगा। मैं प्रयत्न करता हूं। पाठक अपने दिल को हाथ में लेकर अपनी कमजोरियों की गहराई को देखें और उससे ऊपर उठने की कोशिश करें, अपने आपको और अपने बालकों को इन बुराइयों से बचाने के ख्याल को मद्दे नजर रख कर ही वे इस हिस्से को पढ़ें।

एकान्त का पाप

पराधीनता परमात्मा का निष्कारण शाप नहीं है। मानव-जाति के कर्म-चक्र में उसका एक निश्चित स्थान है। उसकी पूर्व स्थिति धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दुर्बलता होती है। यदि आक्रामक राष्ट्र असाधारणतया शक्तिशाली न हो तो कोई नीरोग राष्ट्र पराधीन नहीं बनाया जा सकता। भारतवर्ष की वर्तमान दुरवस्था केवल पराधीनता का प्रसाद नहीं है। पहले वह पतित हुआ, असंगठित हुआ तभी विदेशियों की यहां बन आई। पहले उसने अपनी शक्ति को गंदे क्षेत्रों में बहा कर दुर्बल होने का पाप किया, तभी पराधीनता रूपी दण्ड परमात्मा ने उसे दिया। अब अगर उसे फिर उठना है तो वह अपनी बुराइयों को दूर करे, नीरोग हो जावे। दुर्बलता अपने आप भाग जायगी। ज्यों ही उसके शरीर में नवीन खून दौड़ने लगेगा, पराधीनता को इसकी ओर आँख उठा कर देखने की हिम्मत तक न होगी।

हम नैतिक दृष्टि से अपने आपको उन्नत मानते हैं। परन्तु केवल ऊँचा नैतिक साहित्य होने भर से कोई देश उन्नत नहीं कहा जा सकता। जबतक हम उस नीति को आचार में परिणत नहीं करेंगे तब तक वह व्यर्थ है। वह धनी कैसा जिसे अपने धन का उपयोग करने की स्वतंत्रता नहीं है—शक्ति नहीं है?

व्यभिचार एक ऐसी सामाजिक बुराई है जो प्रत्येक राष्ट्र के लिए महान् हानिकर है। सिर्फ भारत की इस विशिष्ट परिस्थिति में यह बनिस्बत अन्य राष्ट्रों के उसके लिए अधिक कष्ट-कर है।

परन्तु स्वयं इस बुराई के परिणाम ही इतने भयंकर हैं कि इन्हें देख कर दिल थर्रा जाता है।

संसार में और हमारे देश में यह अनेक रूपों में फैली हुई है। स्त्री-पुरुषों के जीवन-सत्व को नष्ट करने के जितने भी तरीके हैं, सभी ऐकान्तिक पाप हैं। और चूंकि इस जीवन-सत्व का दुरुपयोग करना प्रकृति और परमात्मा के प्रति अपराध है, मनुष्य को इस पाप के फलस्वरूप कड़ा से कड़ा दण्ड भी प्रकृति देती है। मनुष्य इस संसार की सरकारों के दण्ड से भले ही एक-आधा बार या पूरी तरह बच जाय परन्तु प्रकृति बड़ी न्याय-कठोर है। वह उसे कदापि नहीं छोड़ती।

और क्या आप को पता है कि हमारे समाज में यह पाप किस क़दर फैला हुआ है? स्त्रियों ने अपनी तपस्या से पाति-*व्रत को तो जीवित रक्खा है।* परन्तु एक पत्नी-व्रत शब्द तो केवल साहित्य में ही रह गया है। यदि दो-चार मित्रों का गुट कहीं इकट्ठा होता है तब ज़रा इस बात पर ध्यान दीजिएगा कि किस प्रकार के विनोद का रस सभी अच्छी तरह ले सकते हैं। किस विषय पर बात-चीत छिड़ते ही उनके हृदय में गुदगुदी होने लगती है। और आपको समाज की नीति-शीलता का पता लग जावेगा। जिन बातों की कल्पना मात्र से साधारण तया स्त्रियों का शरीर रोमांचित हो जाता है, घृणा से हृदय कांप उठता है, और मन दहल जाता है उन्हींका उच्चारण पुरुष अपने इष्ट मित्रों में एक दूसरे के प्रति करने में तनिक भी नहीं शरमाते बल्कि आनन्द मानते हैं और उसी विनोद पर सब से अधिक कह कहा उठता है।

यह बुराई समाज की, राष्ट्र की, हमारे गार्हस्थ जीवन की, और भारत के उज्वल भविष्य की जड़ खोखली कर रही है, वह हमारे सुख स्रोत को सुखा रही है, हमारे-हरे भरे जीवनोद्यान को वीरान बनाने जा रही है।

वह अब इस दर्जे तक पहुँच चुकी है कि उसकी उपेक्षा करना, उसकी ओर ध्यान न देना हमारा महान अपराध होगा। पहले मनुष्यों और विद्यार्थियों में फैली हुई बुराई को ही लीजिये,

हमारे बच्चे, जो आज १० १५ या २० वर्ष के हैं, कल ही राष्ट्र के नागरिक बनेंगे। उनके चारित्र का एकीकरण उनके बल का योग, उनकी तेजस्विता की जोड़ राष्ट्र-समस्त का चारित्र्य, बल और तेजस्विता होगी। उनके निर्माण में हम जितना ध्यान देंगे, उतना ही हम अपने देश के भावी-निर्वाण में सहायक होंगे।

कभी आपने देखा है कि पाठशालाओं, हाईस्कूलों, या कालेजों के दिवालों पर लिखे हुए कुवाक्यों से लड़कों के पारस्परिक सम्बन्ध पर क्या प्रकाश पड़ता है ?

व्यापार, सुधार तथा सभ्यता के केन्द्र माने जाने वाले बड़े बड़े शहरों में घूमते हुए वहां की सफेद, पुतीहुई दिवालों पर लिखे हुए अपशब्दों को आपने कभी पढ़ा है ?

क्या आप किसी प्रसिद्ध वैद्य या डाक्टर के मित्र हैं ? उनके यहां बिकने वाले नपुंसकत्वारितैल, तिला या घृत के ग्राहकों की सूचि कभी तलाश की है ? प्रतिदिन हजारों की संख्या में बिकने वाली अखबारों में नामर्दी की दवा आदि के विज्ञापन आपने पढ़े हैं ?

बड़े बड़े शहरों के चौराहों पर खड़े रह कर अपनी जड़ी बूटी और 'अव्यर्थ' दवाईयों की दुकान फैला कर, धन्वन्तरी अथवा लुकमान हकीम की तरह नपुंसकता को दूर करने की जिम्मेदारी लेने वाले धूर्त और बदमाश हकीम तथा वैद्यों की उल्टी-सीधी बातों में आकर फंसे हुए भोले-भाले युवकों से आप कभी मिले हैं ?

दूर जाने की जरूरत नहीं, आपने कभी हाईस्कूलों में—नहीं, प्राथमिक पाठशालाओं में जा कर भी अपनी आंखों यह देखा है कि आपका लड़का, भाई या भतीजा कैसे वायुमण्डल में पढ़ता है ? वहां के लड़के—उसके साथी आपस में कैसे गाली-गलौज करते हैं ? कभी आपको यह जानने की इच्छा भी हुई है कि आपका बच्चा अपना समय किस तरह व्यतीत करता है, एकान्त में क्या करता है ? कभी आपके दिल में यह सवाल भी खड़ा हुआ है कि अच्छा खाना मिलने पर भी, तथा अविवाहित होने पर भी वह इतना दुर्बल क्यों है ? वह सूखता क्यों जा रहा है, उसका चेहरा जिसे इस अवस्था में खिले हुए कमल को भी लज्जित करना चाहिए, इतना निस्तेज और मलिन क्यों है ? उसकी स्मरण-शक्ति इस तरह नष्ट सी क्यों होती जा रही है ? ये सब वही लक्षण हैं जो उस भयंकर बीमारी को प्रकट करते हैं ? ये वे लक्षण हैं जो हमारी घातक लापरवाही को प्रकट करते हैं ?

हम अपने बच्चे को पाठशाला में भेज कर यों निश्चिन्त हो जाते हैं मानों कृतार्थ हो गये; बच्चा यदि इम्तिहान में पास हो गया तब तो हमें वह धन्यता मालूम होती है, मानों सभी पुरखों

को अनायास ही स्वर्ग प्राप्त हो गया। प्रत्येक गृहस्थ अपने बच्चे को मुहब्बत और प्यार करता है, उसकी प्रत्येक हठ को पूरी करता है, उसके पहनने के लिए नित्य नये सूट-बूट खरीदने में कभी देरी या गफ़लत नहीं होती। किंतु क्या यही सच्चा प्यार है, यही सच्चा दुलार है, यही सच्ची मुहब्बत है ?

अपनी सन्तति के लिए यदि मनुष्य के दिल में सच्चा प्यार होगा तो वह क्या करेगा ? वह उसके शारीरिक स्वास्थ्य के साथ-साथ उसके मानसिक स्वास्थ्य की भी चिंता रक्खेगा, बारीकी से इस बात की ओर भी ध्यान देगा कि उसके विचार कैसे हैं ? उसे कैसी कहानियाँ अधिक प्रिय हैं। कैसे बच्चों में खेलना उसे ज्यादा पसंद है। अपने बच्चे को सच्चा प्यार करने वाला पालक या पिता उसकी बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ उसके नैतिक सुधार पर भी सूक्ष्म दृष्टि रक्खेगा। उसके लिए बच्चे का केवल इम्तिहानों में पास हो जाना काफ़ी न होगा। वह अपने बच्चे की पढ़ाई को, उसकी बौद्धिक प्रगति को, सचाई, सदाचार, इमानदारी, श्रद्धा और विवेक की कसौटी पर भी कसेगा। वह अपने बच्चे के लौकिक और तात्कालिक अभ्युदय के साथ-साथ उसके शाश्वत कल्याण की भी चिंता करेगा। वह यह जरूर चाहेगा कि उसका पुत्र प्रत्येक सभा में प्रथम पंक्ति में बैठने योग्य हो, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ में अपने प्रतिपक्षी पर विजय प्राप्त करे, कुश्ती और मल्ल-विद्या में अपने से भिड़ने वाले को परास्त कर दे। किंतु वह अपने लड़के की प्रगति, वैभव और उन्नति से सच्चे दिल से तभी प्रसन्न होगा जब वह उसके हृदय को भगवद्भक्ति के अमर दीप के प्रकाश से आलोकित देखेगा।

अब हम सोचें कि इस कर्तव्य को हम कहां तक पूर्ण कर रहे हैं। हमें इस बात की तो चिन्ता होती है कि बच्चा कहीं दुबला न हो जाय, कहीं बीमार न हो जाय, कहीं वह अपने इम्तिहान में फेल न हो जाय। परन्तु हम इस बात की ओर कितना ध्यान देते हैं कि वह सदाचार से पतित न हो, वह बुरे लड़कों की सोहबत में बिगड़ न जाय?

आज हजारों नहीं, लाखों लड़के इस तरह बुरी सोहबत में पड़ कर बिगड़ रहे हैं। किन्तु हमें अपने व्यापार-व्यवसाय या नौकरी से इतना समय कहां मिलता है जो हम उन पर कुछ ध्यान दे सकें। प्रत्येक पाठशाला, हाईस्कूल, कॉलेज या छात्रालय इन बुराइयों के केन्द्र बने हुए हैं। देश की प्रतिष्ठित तथा पवित्र से पवित्र संस्थायें तक इस बुराई से बची नहीं हैं। वीर्यनाश और सृष्टि-विरुद्ध-कर्म के ये अड्डे से हो रहे हैं! हमारे बच्चे या भाई अपने जीवन-रस को गन्दी नालियों में बहा रहे हैं और हम लापरवाह हैं! ये आनन्दोत्साह के लहलहाते हुए पौदे कमल के जैसे चेहरों को तथा स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट शरीरों को लेकर इन सरस्वती-मंदिरों में भगवती शारदा की आराधना करने के लिए जाते हैं और अपने यौवन, तेज, स्वास्थ्य और इनके साथ-साथ पौरुष तथा स्वाभिमान को भी खोकर, कायर हृदय वाले बनकर, जीवन-संग्राम में उतरते हैं! यही हमारे वे बालक, हमारी आंखों के तारे, हमारे जीवन के प्रदीप, हमारी वृद्धावस्था के सहारे, हमारे भावी-राष्ट्र के निर्माता हैं। हमारी आशा-लता के अवलम्ब, इन बच्चों की, कुल के उजियारों की, यह दशा देख कर किन माता-पिता या भाई का दिल टूक-टूक न होगा?

भले ही आप कल ही से यह निश्चय क्यों न कर लीजिए कि लड़का बी० ए० पास न हो लेगा तब तक इसकी शादी न करेंगे। भले ही परमात्मा की दया से हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य की जटिल समस्या कल ही सुलझ जाय, चरखे और खद्दर का मन-माना प्रचार कर हम अपने देश की आर्थिक स्वाधीनता को भी आज ही प्राप्त कर लें और अन्ततः किसी योगी महात्मा के तपस्या-बल से आज ही एक पके फल की तरह आकाश से हमारे हाथों में स्वराज्य आ जाय, किन्तु जब तक हमारी और आपकी इस लापरवाही से फैली हुई बुराई के कारण देश के नवयुवक अपने वीर्य का इस तरह नाश करते रहेंगे तब तक इस वीर-भूमि में भी वास्तविक चैतन्य, सच्ची शूरता, और असली पौरुष का हमें दर्शन नहीं होगा और इनके बिना स्वराज्य क्या, प्रत्यक्ष मोक्ष का भी, यदि असंभव बात भी होजाय तो, क्या मूल्य है ?

तब इस बुराई को कैसे दूर करें ? इसके दूर करने के लिए इसके कारणों का जांच लेना जरूरी है। इसके उत्पन्न होने या फैलने के कारणों को मिटाते ही यह अपने आप नष्ट हो जायगी।

जहां तक मेरा ख्याल है इसके पांच कारण हैं:—

(१) घर का गन्दा या बुरा वायुमण्डल

(२) बुरी सोहबत, कुसंगति, नौकरों की संगति।

(३) दुश्चरित्र पाठक और छात्रालयों के संचालक

(४) सिनेमा, नाटक, इत्यादि

(५) अश्लील शब्द प्रयोग—भाषा, समाज

अब इन में से प्रत्येक पर कुछ विचार करें

जब मैं पहले कारण पर विचार करने लगता हूं, तब तो

मुझे हमारे गार्हस्थ्य जीवन का सारा वायु-मण्डल ही विकार पूर्ण दिखाई देता है। विकार के वश होना मनुष्य के लिए लज्जा की बात होनी चाहिए। किन्तु ऐसे अवसरों को हमने उत्सवों का गौरव दे रक्खा है। घर में ऋतु-शान्ति, गर्भादान इत्यादि अवसर उत्सव के दिन माने जाते हैं। ब्रह्मचारी, अविवाहित तथा विधुर विधवा लड़के लड़कियों को और स्त्री-पुरुषों को हम इन उत्सवों के अर्थ और प्रभाव से कैसे अलग रख सकते है ? इनका अवलोकन और उनको समाज द्वारा प्रदान किया हुआ गौरव ही इनकी ओर उन व्यक्तियों का ध्यान आर्पित करता है, और हृदय के अन्तस्तल में छिपी एक विकाराग्नि को जागृत करता है।

नव-विवाहिता युवक-युवतियों से उनके सगे-सम्बन्धी कई प्रकार के चुभते हुए, गुदगुदी उत्पन्न करने वाले मजाक करते हैं। समाज में इन बातों का विशेष ख्याल नहीं रक्खा जाता कि यह मजाक किनके सामने किया जाता है।

दम्पतियों के सोने के कमरे तथा उनके पारस्परिक व्यवहार में अक्सर आवश्यक सावधानी नहीं रक्खी जाती। कितने ही माता-पिताओं तथा चाचा या भाइयों को यही विवेक नहीं होता कि किसके सामने कैसी बातें करें। अपनी मित्र-मंडली में बैठ कर बच्चों के होते हुए भी वे ऐसी ऐसी बेहूदी और मूर्खता-पूर्ण बातें कह जाते हैं कि जिसका उन्हें ख्याल भी नहीं होता।

कई माता-पिता तो अपने विकारों के इतने गुलाम होते हैं कि उन्हें न दिन का ख्याल होता है न रात का, न घर का न बाहर का। बच्चों की उपस्थिति तो उनके लिए कोई चीज ही नहीं है। अपनी बेवकूफी के इन पापी क्षणों ही में हम अपने बच्चों के

दिलों पर धावक कुसंस्कार अनजान में डाल देते हैं। परन्तु बच्चों पर उनके जन्म के पूर्व माता-पिता का जैसा आचरण होता है उसका बड़ा जबर्दस्त असर पड़ता है। डॉक्टर कॉवेन लिखते हैं:—

The Husband and wife in their life of lust and licentiousness, especially during the antenatal life of the child, endow in full measure the quality of abnormal and perverted amative desires in the nature of the child, the child on arriving at five, eight or ten years of age adopts as naturally as it would onthe observance of any other transmitted quality, the exercise of the perverted amativeness by the only means known to it that of self-abuse. Especially will it be promipt in adopting this foul and sickening habit if its father--in connection with the exercise of licentiousness during the child's antenatal life—has at any time of his life practiced self-abuse.

भाव यह कि बालक के इस संसार में आने के पहले उसके माता-पिता के आचरणों के संस्कार उस पर जरूर पड़ते रहते हैं। ऐसे माता-पिता से जन्म पाने वाले बालक में स्वभावतः विकार अधिक होता है और बड़ा होने पर इस विकार-वशता के कारण वह इस घृणित आदत का शिकार बन जाता है। और यदि यह दुर्गुण अपने जीवन में किसी समय खुद पिता ही में रहा है। तब तो लड़का अवश्य ही इस पाप का शिकार होगा।

किन्तु कितने ही लोग तो बड़े कुलीन होते हैं। उनके यहाँ इन बातों की ओर बड़ा ध्यान दिया जाता है। ... कुलीन घरों में भी यह बुराई घुस गई है! ... सकता है?

ऐसे लोगों के घर पर तो बच्चों के दिलों पर काफी नियन्त्रण होता है किन्तु वे खराब लड़कों से तो नहीं बच सकते। वे जिन लड़कों के साथ खेलते-कूदते हैं, जिनके साथ वर्ग में बैठ कर पढ़ते हैं उन्हीं में इस बुराई के कीटाणु फैले हुए हैं। विकार एक मोहक राक्षस है, और मनुष्य स्खलन-शील प्राणी है। और कुछ नहीं तो केवल मनोविनोद ही के लिए, कौतूहल के लिए, वे इस भीषण बुराई के शिकार बनते जाते हैं। दबंग और भीरु किन्तु खूब-सूरत लड़कों की जोड़ हो जाती है और मध्यम-वर्ग के लड़के जो न भीरु हैं, न दबंग, जो सभ्य बने रहना चाहते हैं, वीर्य नाश के तीसरे उपाय का अवलम्बन करते हैं।

हमारे समाज में इन मासूम बच्चों के जीवन-नाश करने वाला एक वर्ग और है। वह नौकरी पेशा और व्यापारी वर्ग में से छूट कर, पढ़े-लिखे और भले आदमी दिखाई देने वाले लोगों का एक दल है। इनके जीवन बचपन में स्वयं नष्ट हो चुके होते हैं। अतः बड़े हो कर ये इन बच्चों का जीवन भी उसी तरह बिगाड़ते हैं जैसा कि इन का स्वयं का बिगड़ चुका होता है। इन्हें वैसे चाहिए तो यह कि आप ठोकर खा कर गिर जाने के बाद दूसरों को उससे बचावें, परन्तु बचना तो दूर ये तो उल्टे उसी नीच-वर्ग के प्रचारक बनते हैं ये लोग भोले-भाले निर्दोष और नासमझ बच्चों को पान, सिगरेट, रबड़ी, मलाई तथा चाय आदि

खिला-खिला कर, मेले-तमाशों तथा बाग़-बगीचों में सैर-सपाटे के लिए उन्हें ले जा कर उन्हें फुसलाते हैं और आप पाप के गड्ढे में तो गिरते ही हैं परन्तु इस होनहार भोली-भाली सन्तान का जीवन भी नष्ट करते हैं। ये लोग बड़े हो कर वही करते हैं जो इनके साथ हो चुका होता है। इस प्रकार यह बुराई एक परम्परागत सी बन गई है।

ऐसे घरों में इस बुराई के फैलने का एक और ज़रिया भी है। बड़े घरों में बच्चे अक्सर नौकरों के पास ही ज्यादह रहते हैं। नौकरों में सदाचार की मात्रा की हमें उतनी आशा नहीं करनी चाहिए। कहीं-कहीं उनके द्वारा भी इन अबोध बालकों में ये बुराइयां फैली हुई पाई जाती हैं।

तीसरे कारण पर विचार करते हुए दिल थर्रा जाता है। जिन गुरुदेव के पास हम अपने बालकों को विद्याध्ययन करने के लिए भेजते हैं, कभी कल्पना में भी उनके चारित्र्य पर शक करना पाप होगा, किन्तु अब वह आदर्श कहाँ रहा! कितनी ही पाठशालाओं में हमारे दुर्भाग्य से दुश्चरित्र अध्यापक भी होते हैं। वे अपने विद्यार्थियों की नम्रता और आज्ञाकारिता का दुरुपयोग करते हैं। आप गिरते हैं और उन अबोध बालकों को भी गिराते हैं। यही हाल कहीं-कहीं सभ्य, देश-सेवा की डींग मारनेवाले उन पुरुषों का भी होता है, जो छात्रालयों के संचालन या व्यवस्थापक होते हैं। विवाह देश-सेवा में बाधक होता है। इसलिए वे अपनी शादी नहीं करते; किन्तु इस तरह अपने विकारों के गुलाम बन कर स्वयं गिरते हैं और दूसरों को भी गिराते हैं। यह उन पाठशाला या छात्रालयों का वायु-मण्डल है

जहाँ हम अपने बच्चों को सदाचार, नीति, देश-सेवा, अनुशासन का वस्तुपाठ पढ़ने के लिए भेजते हैं।

मेरे कहने का आशय यह कदापि न समझा जाय कि प्रत्येक पाठशाला या छात्रालय का यह हाल है। किन्तु गृहस्थों, माता पिताओं और पाठकों को सावधान करने के लिए मैं यह जरूर कह देना चाहता हूँ कि ऐसी बहुत कम संस्थायें होंगी जो इन बुराइयों से मुक्त हों। अतः अपने बच्चों को छात्रालय में रखते समय इस विषय पर अच्छी तरह सोच-विचार लें और फिर उनकी ओर से निश्चिन्त तो कभी न हो जायँ। सदा आँखों में तेल डाल कर उनके स्वास्थ्य और सदाचार आदि पर नजर रक्खें।

चौथा कारण है समाज के इर्द-गिर्द का वायुमण्डल। हमारा समाज प्रगतिशील अवश्य होता जा रहा है। किन्तु अभी इसमें सुधार के लिए बहुत गुंजाइश है। अभी तो उसमें विकार का मानो साम्राज्य है। समाज, साहित्य और रंगभूमि तीनों तरफ से बच्चों और युवकों के कोमल अन्तःकरणों पर 'शृङ्गार-विष' के फौवारे छोड़े जाते हैं। समाज में भी भाषा और व्यवहार ऐसे दो अंग किये जा सकते हैं। निचली श्रेणी के लोगों की तो कौन कहे, मंझले दरजे के गृहस्थों के यहां भी अश्लील शब्दों का प्रयोग मामूली बात सी होगई है। कई लोगों के लिए ये शब्द तकिया-कलाम बन बैठे हैं। निःसन्देह अधिकांश उदाहरणों में ऐसे शब्द उनके प्रयोग करने वालों के दिल में कोई भाव जागृत नहीं करते। किन्तु सुनने वाले पर अपने विष का असर छोड़े बिना वे रह नहीं सकते। कई बार युवक और बालक अपने गुरुजनों के मुँह से सहज ही में निकले हुए इन शब्दों का विश्लेषण और अर्थ का पृथक्करण करते हैं।

व्यवहार में तो हम और भी आगे बढ़े हुए हैं। वेश्यानृत्य, वेश्यागमन, छिपा व्यभिचार तथा बहु-विवाह की प्रथायें हमारे समाज के कलंक हैं—(इनके विषय में आगे पढ़िए) किन्तु फिर भी समाज में इनकी काफी निन्दा नहीं हो रही है। वीर्यनाश की बीमारी के कीटाणुओं को उत्पन्न कर उन्हें फैलाने वाली बुराइयां यही हैं। किन्तु फिर भी समाज में इनके प्रति घोर घृणा उत्पन्न नहीं हुई है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है उनका अकुतोभय अस्तित्व। कब हमारे दिल के अन्दर इतना चारित्र्यबल और पवित्रता जागृति होगी कि हम इन बुराइयों को, इन चलती-फिरती सजीव बुराइयों को एकबारगी रसातल को पहुँचा दें ?

जब हमारे घर में, हमारे समाज में विकार का ऐसा साम्राज्य है, तब हम अपने बालकों को उससे मुक्त रखने की आशा कैसे कर सकते हैं ? वीर्य-नाश की बीमारी फैलने का समाज में एक और भी कारण है। यह बीमारी प्रायः उन शहरों या प्रान्तों में अधिक पाई जाती है जहां मुसलमान जनसंख्या अधिक तादाद में है। अतः मुसल्मान माता-पिताओं तथा उन प्रान्त, विभाग या शहरों में रहने वाले हिन्दू गृहस्थों को इसके विषय में अधिक सावधान रहना चाहिए। यों भी आहार-विहार, रहन-सहन आदि को देखते हुए इस विकार के लिए पोषक सामग्री मुसल्मान समाज में अधिक पाई जाती है।

अब आप साहित्य का अवलोकन करें। संस्कृत साहित्य जहाँ ऊँचे से ऊँचे अध्यात्मिक ग्रन्थों से भरा पड़ा है तहां जनसाधारण के पढ़ने के काव्यों में शायद ही एक आध काव्य ऐसा हो जिसमें शृंगार रस के एक दो कटोरे न भरे हों। वास्तव में महाकाव्य

की व्याख्या में इन विषय-विलास की कथाओं का एक खास स्थान है। और पीछे होने वाले कवियों में से किसी को यह हिम्मत नहीं हुई कि उस व्याख्या की परवा न करके ऐसे काव्य दे देता जो निर्मल-हृदय बालक-बालिकाओं के हाथों में भी रक्खा जा सके।

यही हाल मध्य-कालीन प्राकृत या हिन्दी साहित्य का भी है। मालूम होता है इस साहित्य की रचना करते समय रचयिताओं को निर्दोष-चित्त युवकों का ख्याल ही नहीं रहता था। वे अपनी रचनाएं प्रायः गृहस्थों के मनो-विनोद और काल-यापन के लिए ही बनाते थे। और अपने विकारों को सह्य बनाने के लिए, समाज के सुरुचि-संपन्न अंतःकरणों की भर्त्सना से बचने के लिए वे परमात्मा पर अपने विकारों का आरोप करते थे। श्रीकृष्ण और उनकी अनन्य भक्ता राधाजी के प्रति उन्होंने कितना अन्याय किया है! आज उनकी मूक आत्मायें हमें इस घृणित पाप के लिए कितना शाप देती होंगी? और कितना शाप देती है वह हिन्दू जाति की वह आत्मा जो इन विकार-मय वर्णनों से वासित हो अपने विकारों को सह्य और सम्य समझने लग गई? हमारी वर्तमान कायरता, विलासिता तथा गुलामी के लिए क्या ये विकार और विलासिता का कायर वायु-मण्डल बनानेवाले काव्य ग्रन्थ कम जिम्मेदार हैं?

और अब उनके अधूरे काम को हमारे आजकल के मासिक तथा साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाएँ और उपन्यास पूर्ण कर रहे हैं। लोक शिक्षक के ऊँचे स्थान से उतर कर जनता के अधम विकारों को उत्तेजित करके वे लोक कल्याण करने का दावा कर रहे हैं!

इनके मुख पृष्ठों पर, तथा भीतर सुंदर कामिनियों के लुभावने चित्र होते हैं। सन्तान-शास्त्र, दम्पती-रहस्य, गृहस्थ-धर्म आदि के नाम पर कोकशास्त्रों को भी लज्जित करने वाली भाषा में स्त्री-पुरुषों के विषय की विकारोत्तेजक बातें लिखते हैं! और ऐसे साहित्य का प्रचार करते हैं जो ब्रह्मचर्य का तो दूर गृहस्थधर्म का भी अपमान करता है! क्या यही साहित्य हमें कल्याण की ओर ले जायगा?

निर्दोष युवकों के हृदयों में विकारों को बढ़ाने वाला एक और भी महत्त्वपूर्ण कारण है, रंगभूमि—सिनेमा और नाटक। सिनेमा और नाटकों में जो कितने ही अश्लील दृश्य दिखाये जाते हैं उनके कुपरिणामों से हम अपने बालकों को कैसे बचा सकते हैं। यथार्थ में पूछा जाय तो शृंगार—पातक शृंगार—ही हमारे समाज को मनोरंजन का एक मात्र साधन रह गया है। देश को वीर्यशाली, स्वतंत्र बनाने, सुविद्या बनाने के महत्त्वपूर्ण साधन हमारे हाथों से छिन जाने पर एक पराधीन समाज के पास सिवा इसके और रह ही क्या जाता है कि वह अपनी रही-सही शक्ति को भी बरबाद करे? और इस काम में विदेशी सत्ता यथासम्भव उसकी सहायता ही करती है! दूर खड़े रह कर वह प्रसन्नता पूर्वक देखती रहती है कि इस दौड़ में वह कितनी तेजी से दौड़ सकता है?

परन्तु ये तो वे कारण हैं जिनसे नासमझ लड़के अज्ञानवश पतित होते हैं। कॉलेजों और स्कूलों के समझदार युवकों में यह बुराई फैलने का सब से बड़ा कारण तो एक घोर अज्ञान मय कल्पना है। और वह यह है कि अधिक समय तक जबर्दस्ती ब्रह्मचारी रहने से शरीर को हानि पहुँचती है। दिमाग में गरमी

चढ़ती है इत्यादि। कितने ही युवक इस भ्रम-मूलक कल्पना के चक्कर में आकर अपने जीवन-सत्व को नष्ट करने लग जाते हैं।

कहना न होगा कि यह कल्पना केवल नाशकारी भ्रम से परिपूर्ण है। यह कल्पना तो अधम मस्तिष्कों की उपज है। इसे न आयुर्वेद में स्थान है न आधुनिक वैद्यक-शास्त्र में। यह तो बुद्धि और युक्ति के विपरीत है।

जिस समाज में और शासन में लड़कों को गिराने के लिए ऐसी-ऐसी सामग्रियां मौजूद हैं, आश्चर्य होगा यदि उसमें पैदा होने वाले बालक तेजस्वी, सदाचारी, बुद्धिमान तथा बलिष्ठ हों। और सचमुच यदि हमारे समाज में जाति और देश का सिर अभिमान से ऊँचा कर देने वाले बालक अब भी पैदा होते हैं तो उसका कारण वर्तमान सामाजिक या शासन विषयक अनुकूलता नहीं; बल्कि भारतीय संस्कृति की आंतरिक श्रेष्ठता, और उन बालकों की जन्म-जात महत्ता ही है।

आज इस समय जब कि राष्ट्र की सारी शक्तियों के संचित और संगठित करने की सब से अधिक जरूरत है, हम अपने उगते राष्ट्र के इस वीर्यनाश की ओर कभी उदासीनता की दृष्टि से नहीं देख सकते। यह वीर्यनाश बल-बुद्धि, प्रतिभा और स्वातंत्र्य-भावना का नाशक है। इसके विनाश से मनुष्य मनुष्य ही नहीं रहेगा।

अपने वीर्य का नाश करने वाले लड़के की प्रायः अचूक पहचान यह है कि उसकी पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। भूख कभी लगती है, कभी नहीं। पर ऐसे लड़के खाने-पीने में बड़े पेटू होते हैं। सीधा-सादा भोजन उन्हें पसन्द नहीं होता। उनकी

जबान के सारे स्वाद तत्व कमजोर हो जाते हैं। इसलिए चरपरी और मसालेदार चीजों को वे अधिक पसन्द करते हैं। फिर भी क़ब्ज हमेशा बनी रहती है। सरदर्द, बदहजमी रीढ़ की बीमारी, मिरगी, कमजोर आंखें, हृदय की धड़कन का बढ़ जाना; पसलियों का दर्द, बहुमूत्र, पक्षाघात, अनिच्छा पूर्वक और अनजान में रात को तथा दिन को भी वीर्य का गिर जाना, नपुंसकता, क्षय और पागलपन इत्यादि अस्वाभाविक वीर्यनाश के पुरस्कार हैं। हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि इन सब रोगों का एकमात्र कारण वीर्यनाश ही है परन्तु इन रोगों के रोगियों में वीर्यनाश के अपराधी बहुत बड़ी संख्या में होते हैं। अपने जीवन-सत्व के नष्ट करने वाले इस अपराधी के स्वभाव पर भी बड़ा भारी असर पड़ता है। अपनी शक्ति और बुद्धि पर से उसका विश्वास उठ जाता है। मनोबल तो उसके होता ही नहीं। डॉ० कावेन लिखते हैं—

"इस घृणित पाप के अपराधी में उदारता, प्रतिष्ठा सम्मान और पौरुष का अभाव प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर होने लगता है। उसमें न धैर्य होता है न निश्चय। महत्त्वाकांक्षा उसके मनोमंदिर में झांक कर देखती तक नहीं। वह अपनी शक्तियों को भूल जाता है, अनिश्चय उसकी खासी पहचान है। पदपद पर उसे अपने पतन और ऐकान्तिक पाप का ख्याल दबाता रहता है। उसकी दृष्टि विशाल नहीं होती। काम में वह चतुर नहीं होता। एकाग्रता नष्ट हो जाती है। उसके निर्णय ठीक नहीं होते। उसका दिमाग खाली विचार शून्य रहता है, उसके किसी काम में बुद्धि-कौशल नहीं दिखाई देता। उसका मिलने-जुलने का ढंग विचित्र और अपटासा मालूम होता है। उसका बर्ताव उदार नहीं होता और न

होती है उसमें स्त्रियों के प्रति वीरोचित व्यवहार की क्षमता हो। वह समाज में एक पोस्ती की तरह भार रूप बनकर रहता है।"

जिस प्रकार लड़के एकान्त में वीर्य पात अथवा ऐसे ही घृणित तरीके से अपना सर्व नाश करते हैं उसी प्रकार यूरोप और अमेरिका की लड़कियों में भी कृत्रिम मैथुन की बीमारी बहुत बड़े पैमाने पर फैली हुई है। वहां तो लड़कियों की शादी बहुत देर से होती है। वे पढ़ती रहती हैं या वैवाहिक जिम्मेदारियों और कष्ट से डर कर अविवाहित ही रहना चाहती है और किसी व्यापार-व्यवसाय में पड़कर या कहीं नौकरी करके अपना जीवन-निर्वाह करती रहती हैं। ऐसी कुमारिकाएं इस ऐकान्तिक पाप का शिकार बन जाती हैं और कृत्रिम मैथुन से अपने स्वास्थ्य को नष्ट करती रहती हैं। बाल-विवाह की प्रथा के कारण भारत में ऐसी कुमारिकाएं नहीं दिखाई देती। पर बाल विधवायें तो हैं न। और उनकी दशा से परिचित हर एक मनुष्य जानता है कि कुछ हद तक उनमें भी यह बुराई है ही। कहीं-कहीं से आवाज सुनाई देती है कि लड़कियों को उच्च शिक्षा देने वाली संस्थाओं में भी यह बुराई मौजूद है। ऐसी लड़कियों या स्त्रियों के विषयमें डॉ कावेन आगे लिखते हैं :—

So too the female diseased here, loses proportionately the amiableness and gracefulness of her sex her sweetness of voice, disposition and manner, her native enthusiasm, her beauty of face and form, her gracefulness and elegance of Carriage, her looks of love and interest in man and to him;

nd becomes merged into a mongrel neither male or female but marred by the defects of both without possessing the virtues of either.

इसी प्रकार इस एकान्तिक पाप की अपराधिन लड़की या स्त्री भी अपनी आकर्षकता को खो बैठती है। उसकी आवाज, स्वभाव और व्यवहार में वह मधुरता नहीं होती जो रमणी का भूषण है। अपने स्वाभाविक उत्साह, शरीर सौंदर्य, उसकी खूबी और कोमलता से वह हाथ धो बैठती है। स्वभाव में रूखापन कड़ापन, नीरसता और कटुता उत्पन्न होजाती है, जिसके कारण वह एक ऐसा जीव बन जाती है जिसमें न पुरुषोचित गुण होते हैं न स्त्रियोचित। हां दोष जरूर दोनों के होतेहैं।

डॉ० लेमण्ड कहते हैं:—"यदि हम देखते हैं कि एक बुद्धिमान लड़का अच्छी स्मरण शक्ति और पढ़ाई के होते हुए भी दिन ब दिन पढ़ी-पढ़ाई बातों को जल्दी समझता नहीं और समझ लेने पर याद नहीं रख सकता तो हमें समझना चाहिए कि इसमें अनिच्छा और सुस्ती की अपेक्षा कोई गहरा दोष है। उसका दिन ब दिन गिरता हुआ आरोग्य और काम करने की शक्ति का ह्रास, ढीलापन, झुककर चलना, खेल कूद से जी चुराना, सवेरे देरी से उठना, धँसी हुई और निस्तेज आँखें प्रत्येक बुद्धिमान और सावधान पालक को चिन्ता में डाले बिना न रहेंगी।"

डॉ० ओ एस फौलर लड़कों के वीर्य-नाश के लक्षण यों बताते हैं:—

"एकान्तिक पापी को उसके निस्तेज और रक्तहीन चेहरे से भी पहचाना जा सकता है। उसकी आँखें गहरी और कुछ मुर्दे

की सी भयानक मालूम होंगी। अगर वह इस बुराई में बहुत दूर आगे बढ़ गया है तो उसकी आँखों के नीचे हरे और काले धब्बे वर्तुलाकार निशान हो जावेंगे। देखते ही उसके चेहरे पर थकान झलकेगी। मालूम होगा नींद न आने के कारण यह मरा जा रहा है। उसके होटों पर जंगली, विलासी और मूर्ख मुस्क्यान होगी। और खास ऐसे समय जब वह किसी स्त्री की ओर देखता हो। वह कुछ जल्दबाज होगा पर होगा अनिश्चयी ही। एक काम शुरू करेगा फिर उसे छोड़ देगा और दूसरे में हाथ डालेगा। फिर दूसरे को भी छोड़ कर पहले को करने लगेगा। और सो भी लकड़ी या टोपी रखने जैसी छोटी-छोटी बातों में भी (यही असम्बद्धता और अ-निश्चय की झलक दिखाई देगी। छोटी-छोटी बातें उसे घबड़ा देने के लिए काफी होंगी। निश्चय फुर्ती, धीरज, और शक्ति का उसमें अभाव होगा। वह कायर होगा। हर बात करते हुए डरेगा। उसकी चाल में पौरुषता न होगी। दिल में महत्वाकांक्षा न होगी। उसमें स्वाभिमान और आत्मगौरव का अभाव होगा। मतलब यह कि उसकी प्रत्येक नजर से और प्रत्येक कार्य से यह प्रकट होगा कि यह गुप्त रीति से कोई बुरा काम कर रहा है और इसका उसे भान है।

वह बातों को जल्दी समझ न पाएगा, गलतियां करेगा, भूलेगा और असावधान होगा। उसके विनोद जितने होंगे वे सब रस-हीन होंगे। इशारों को न समझेगा। वह उदास होगा, झट से डर जायगा और जरा सी बात से हतोत्साह हो जायगा। उसके विचार सुलझे हुए न होंगे। दिमाग में कल्पनाएं भी नहीं आवेंगी।"

यह सब भयंकर है। एक खिलते हुए फूल की भांति युवक अपने जीवन के वसंत में ही कुम्हला कर सूख जावे यह तो बड़े दुर्दैव की बात है। ऐसे युवकों से क्या तो अपना भला होगा और क्या देश का? धीरे-धीरे जीवन का आनन्द उनके लिए दुर्लभ हो जाता है। लोभी, और धूर्त वैद्य और डाक्टरों के विज्ञापनों के धोखे में आ कर के वे अपना रहा सहा स्वास्थ्य और भी बिगाड़ डालते हैं।

तब हम इसे कैसे रोक सकते हैं? इसका सबसे सरल उपाय है—

(१) अपने जीवन में क्रान्ति कर देना। गृह के वायु-मण्डल को पवित्रता के वातावरण से आच्छादित कर देना।

(२) उन तमाम उत्सवों को बन्द कर देना—कम से कम उनके पालन में परिवर्तन कर देना जिनके कारण बालकों में विकार-जागृत होने की बहुत भारी संभावना है।

(३) बालकों और अविवाहित नवयुवकों को ऐसे स्थानों पर रखना जिनसे वे नव-विवाहित वधू-वरों के क्रीड़ा-कौतुकों को न देख पावें। दूसरों को भी इन नव-विवाहितों से बच्चों तथा कुमारों के सामने अनुचित हंसी मजाक नहीं करनी चाहिए।

(४) माता-पिता तथा दम्पतियों को अपने आचरण में विशेष सावधान रहना चाहिए। बच्चों पर सब से अधिक असर अपने ही घर के वायु-मण्डल का पड़ता है। खास कर उन स्त्री-पुरुषों का उत्तर-दायित्व और भी महान है जिनकी कोई बहन, भाई, लड़का या लड़की अविवाहित है, या बहन, भौजाई बिधवा है। सब से भारी सावधानी इस बात की रखना जरूरी है कि

हमारे आचार-विचार या व्यवहार से किसी प्रकार भी उनके कोमल संस्कार-ग्राही हृदयों में विकार की उत्तेजना जागृत न होने पावे

समाज को शुद्ध बनाने के लिए भी प्रत्येक गृहस्थ को कोशिश करनी चाहिए। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। व्यक्ति और समष्टि का सम्बन्ध आदान-प्रदान का है। हम जैसे होंगे हमारा समाज भी वैसा ही होगा और जैसा हमारा समाज होगा वैसे ही संस्कार हमारे भावी नागरिकों पर पड़ेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने सुधार-क्षेत्र को अपने लड़के या घर तक ही सीमित न रक्खें! नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

(१) हमेशा शिष्ट और सभ्य भाषा का प्रयोग करें। जरा ख्याल कीजिए, हमारे हास-विलास, हमारे अनर्गल आमोद-प्रमोद उस विष के फौवारे हैं जो जाति के जीवन की जड़ को ही खोखला कर देते हैं।

(२) तमाम अश्लील दृश्यों से बच्चों को बचाया जाय।

(३) विकारोत्तेजक साहित्य तथा कहानियों से भी उन्हें दूर रक्खा जाय।

स्मरण रहे कि इन प्रस्तावों के मानी जीवन में आनन्द लेने के तमाम मार्गों को बन्द करना नहीं है। जिनमें बुद्धि होगी, प्रतिभा होगी वे आनन्द प्राप्त करने के कई नवीन और निर्दोष साधन ढूंढ सकेंगे, जिनके द्वारा सचमुच मनुष्य की बुद्धि और बल बढ़ सकता है। परन्तु हां, इस में सन्देह नहीं कि उपर्युक्त साधन अत्यन्त कष्ट-साध्य हैं। इन पर अवलंबन करने में देर लगेगी। तबतक हम इस बुराई को दूर करने के लिए इन-

पर प्रत्यक्ष प्रहार भी कर सकते हैं। नीचे लिखे उपाय अमल में लाये जा सकते हैं।

(१) अपने लड़कों के कार्यक्रम पर कड़ी नजर रक्खें।

(२) उनके साथियों के चरित्र और आचार पर भी ध्यान रक्खें। यदि हमारे लड़के के साथी में कोई बुराई है तो केवल उसकी संगति छुड़ाकर ही हम न रह जाएं। बल्कि उसपर भी भी अपने बच्चे के समान ही नजर रक्खें जिससे वह बुराई अधिक न फैलने पावे। उस लड़के के पालकों को भी सावधान कर देना परम आवश्यक है।

(३) बार-बार उस पाठशाला या छात्रालय में जा कर वहां के चारों ओर के वायुमण्डल की भी जांच करें। लड़कों से हिल मिलकर उनका विश्वास सम्पादन कर उस संस्था में फैली हुई बुराइयों और बीमारियों का पता लगावें। अध्यापकों, संचालकों तथा अन्य विद्यार्थियों के पालकों का ध्यान भी इस विषय की ओर आकर्षित करें।

(४) प्रत्येक शाला के पाठकों या संचालको के चरित्र तथा उनके आचार-व्यवहार पर भी नजर रक्खें। कितने ही अविवाहित पाठक या छात्रालय के संचालकों से ही बुराई फैलती है। उनका ठीक-ठीक पता लगाकर उन्हें ऐसे स्थानों से फौरन हटा देने की व्यवस्था करना चाहिए। हर हालत में बच्चों को पाठशालाओं में भेज कर ही निश्चिन्त न हो जावें।

(५) अपने लड़कों को नौकरों की सोहबत में अधिक देर तक न रहने दीजिए। विशेष कर नौकरों के साथ उनका एकान्त में रहना तो एकदम बन्द ही कर देना चाहिए।

(६) कई बार लड़कों में यह बुराई इतनी बढ़ जाती है कि इस तरह अप्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न करने पर उनसे वह नहीं छूटती। इस हालत में ठीक यही है कि उसको पिता, पालक, शिक्षक या सन्मित्र शान्तिपूर्वक उसे इस बुराई के भावी परिणाम समझावें और यह दिखावें कि किस प्रकार इसके कारण उसका भावी जीवन दुखमय और उसके लिए भारभूत हो जाने की सम्भावना है, और आगे चलकर किस प्रकार इससे व्यभिचार, वर्णसंकर, आदि अन्य आनुषंगिक बुराइयां फैलने की सम्भावना है।

ऐसे युवकों और किशोरों का सुधार चाहने वाले सन्मित्रों, पाठकों तथा शिक्षकों से एक बात और कह देना जरूरी है। वे जो कोई भी हों इस बुराई के शिकार बने हुए युवकों को भय, धमकी, या बदनामी का डर कभी न दिखावें। वे उन्हें बिलकुल निर्भय कर दें, जिससे वे आपको अपने उद्धारक समझ कर अपनी गुप्त से गुप्त भूल को भी आपके प्रति प्रकट कर सकें, और उससे मुक्त होने में आपकी सहायता ले सकें।

बच्चों के माता-पिता को चाहिए कि ज्यों ही उनके बच्चे समझदार हो जावें उनको वे ऐसा पवित्र साहित्य पढ़ने के लिए दें जिसमे वे ब्रह्मचर्य के पालन का महत्व और लाभ और उसके भंग से होने वाली हानियां समझ जावें। पुस्तक की भाषा अत्यंत पवित्र और लेखन शैली बहुत शिष्ट हो। पुस्तक में चित्र भी न हों। अच्छा तो यही है कि उन्हें बाल्यावस्था से ही ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करने वाला वह विख्यात सूक्त पढ़ा दिया जाय। अन-धिकारी लोगों या साथियों से बच्चे इन विषयों के सम्बन्ध में अधूरी और अनर्थ कर बातें सीखें इसकी अपेक्षा ठीक यही है

के वे पवित्र प्रामाण्य ग्रन्थों और अधिकारी पुरुषों से ही इस विषय को समझ लें। संसार में सारी बुराइयों की जड़ अज्ञान अथवा बुरी तरह प्राप्त किया अधूरा ज्ञान ही है।

इस स्थान पर उन भूले हुए भाइयों को भी एक दो शब्द कह देना अनुचित नहीं होगा।

यौवन की प्रभात में आपके शरीर के अन्दर अभिनव-शक्ति और भावों का संचार होना अस्वाभाविक बात नहीं है। संसार में प्रत्येक पुरुष-तत्व और स्त्री-तत्व का उचित समय आने पर पारस्परिक आकर्षण शुरू हो जाता है। यह आपके पौरुष के परिपाक की अवस्था होती है। इसके मानी यह नहीं कि आपको उसका व्यय शुरू कर ही देना चाहिए। सच तो यह है कि इस शक्ति का जितना भी संचय किया जाय, वह आपके जीवन को अधिकाधिक उन्नत ही बनावेगी। संसार के प्रत्येक क्षेत्र में अगर सब से अधिक सफलता कोई प्राप्त कर सकते हैं तो ब्रह्मचारी ही। महात्मा टालस्टाय के शब्दों में हमारा पुण्य तम आदर्श है, मानव-जाति को सुखी बनाना। बेहतर यही है कि हम अपनी सारी शक्तियों को इसी काम में लगा दें। परन्तु यदि किसी कारण हम ऐसा न कर सकें तो हमारे अधूरे काम को पूर्ण करने के लिए अपने प्रतिनिधि उत्पन्न करने की इच्छा से अपनी शक्तियों के कुछ हिस्से का उपयोग हम कर सकते हैं। स्मरण रहे कि हम उसका उपयोग इसी ख्याल से करें। और शेष शक्तियों को अपने प्रतिनिधियों को हमारे योग्य या हम से अधिक सुयोग्य बनाने के काम में लगाने के लिए सुरक्षित रक्खें।

यही परमात्मा का उद्देश दिखाई देता है जैसा कि महापुरुषों ने उसे समझा है। अतः यौवन के प्रभात-काल ही में उसे न करना अत्यन्त घातक है जिसकी सजा परमात्मा हमें दिये बिन कभी न रहेंगे।

जिस क्षण ही आप इस अज्ञान से जाग जाएं, दृढ़ता-पूर्व प्रतिज्ञा कर लीजिए कि आप यह भूल करने का पाप कभी न करेंगे। अपनी करुण आवाज उस दयानिधि तक पहुँचाइए औ उससे प्रार्थना कीजिए कि वह आपको इस पाप से मुक्त होने में सहायता करे अपनी भूल का ज्ञान होने पर भी जो युवक इसे जारी रक्खेंगे वे निश्चय पूर्वक अपना सर्वनाश कर लेंगे।

पत्नी-व्यभिचार

पाप के अनेक रूप होते हैं। अविवाहित युवकों में वीर्य-नाश और लड़कियों में कृत्रिम विषय-भोग के अलावा समाज में यह पाप कई गन्दे रूपों में फैला हुआ है। इसका सब से सभ्य रूप है पत्नी-व्यभिचार।

पत्नी-व्यभिचार आजकल के लोगों को तो एक विचित्र बात मालूम होगी। यह तो वदतो-व्याघात (Contradiction in Terms) सी प्रतीत होगी। लोग समझते हैं—"विवाह जीवन का द्वार है। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनोपवन में घुसे और मनमाना विषय-विलास लूटे। पति-पत्नी के बीच भला भोग की कोई सीमा क्यों हो ? वहां तो सब कुछ न्याय्य है—नहीं, वहां तो एक दूसरे की वासना की तृप्ति के लिए अपना शरीर अर्पण कर देना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। पति का पत्नी पर अधिकार है और पत्नी का पति पर।" पर यह तो उदार मतवादी लोगों का ख्याल है। स्त्रियों को तो अपने अधिकार का पता तक नहीं। अधिकार की भाषा तो पुरुषों ही के मुख में शोभा देती है। वे कहते हैं "हमारी इच्छाओं की पूर्ति करना स्त्रियों का धर्म है। जो ऐसा नहीं कर सकतीं वे दुष्टा हैं।" ऐसे नर-पशुओं को अपनी पत्नी की बीमारी और गर्भावस्था का भी ख्याल नहीं रहता। वे तो विकार के कारण पागल और अन्धे हो जाते हैं। संसार में सिवा विकार-तृप्ति के उन्हें और कुछ नहीं दिखाई देता !

परन्तु क्या कभी किसी ने इस विकारांधता की बुराई से होने वाले भयंकर परिणामों का भी ख्याल किया ? पत्नी-व्यभिचार का सबसे पहला बुरा परिणाम है दोनों के स्वास्थ्य का गिर जाना। विवाह के बाद जब पति-पत्नी मिलते हैं तो इस तरह विलास में कूद पड़ते हैं जैसे अकाल पीड़ित अन्न पर। इसका परिणाम होता है दोनों का स्वास्थ्यनाश। और यह नाश ऐसा होता है कि जिसके दुष्परिणाम से दोनों उठ नहीं सकते। वे खिले हुए कमल जो पहले समाज की शोभा थे, दो चार महीने में ऐसे हो जाते हैं कि जिनसे अपने मुख पर की मक्खियाँ भी नहीं उड़ाई जा सकतीं। स्वयं मेरी नजर में ऐसे कई युवक हैं जिनका स्वास्थ्य सदा के लिए गिर गया है,—कितने ही मरते-मरते बमुश्किल बचे हैं, और कुछ तो इस विषय-विलास के चक्कर में मर भी जाते हैं।

हम आजकल समाज में देखते हैं कि गृहस्थाश्रम और विद्यार्थी अवस्था स्वास्थ्य के लिए दोनों एक सी हैं। इन दोनों के मानी हैं शक्ति का दिवालियापन ! विद्यार्थी पवित्र चरित्र और ब्रह्मचारी बहुत कम मिलेंगे और संयमी गृहस्थी तो हजार में एक आध भले ही हों। जहां पश्चिमी शिक्षा, गरीबी, और गृहस्थी इन तीनों का त्रिवेणी संगम हो, वहां की लाज तो भगवान ही रक्खें। बाजीगर के आम के पेड़ की तरह देखते हो देखते वह पौदा उगता है, लह-लहाता है और फल लाकर बूढ़ा भी हो जाता है। आजकल के युवकों में वय कम होने पर भी बूढ़ों के से निर्बल, निःसत्व और रक्त-हीन शरीर देखने को मिलते हैं। सारा राष्ट्र निस्तेज नर-कंकालों की भूमि हो रहा है। एक तो खाने का

पहले ही से घाटा है, इस पर यह असंयम उनको और भी दुर्गत कर देता है। इन गरीब दीन हीन लोगों को धन, वैभव खान-पान सम्बन्धी अन्य सुख नसीब नहीं होते। सुख-संभोग के क्षेत्र की परिसमाप्ति उनके लिए विषय-भोग ही में हो जाती है। पत्नी को वे सबसे सस्ता सुख-साधन समझते हैं। सस्ता इसलिए कि वह सुलभ है। पतिव्रत का आदर्श पुरुषों ने किसी तरह उन बेचारियों के हृदयों पर अङ्कित कर रक्खा है। इसलिए पति की प्रत्येक बात के सामने उन्हें अपना सर झुकाना ही पड़ता है। पर इसका असर महा भयंकर होता है।

अति विषय-भोग का दूसरा दुष्परिणाम है सन्तान-वृद्धि। सन्तान-वृद्धि दो कारणों से अनिष्ट है। एक तो इसलिए कि बार बार प्रसूति-पीड़ा के कारण स्त्रियों का शरीर बहुत जर्जर और निःसत्व हो जाता है। उनके शरीर में कोई शक्ति नहीं रह जाती। और दूसरे, परिवार का बोझ बढ़ जाता है! भारत में एक जमाना ऐसा था जब लोग सौ-सौ पुत्रों की कामना करते थे। अब तो "अष्ट पुत्रा सौभाग्यवती भव" वाला आशीर्वाद भी भारी मालूम होता है। समझदार लड़कियों में अगर साहस हो तो अब तो वे यहां तक कह देती हैं कि अब इन आठों को अपने पास रखिए महाराज। हमें तो यही आशीर्वाद दीजिए कि "सुपुत्रा सौभाग्यवती भव।" और पुत्र की भी जरूरत इसलिए है कि आगे वृद्धावस्था में सहारा हो जाय। पर दिन-बदिन देश में जो गरीबी बढ़ती जा रही है उसको देख कर कितने ही पुरुष और पढ़ी-लिखी लड़कियां विवाह करना नहीं चाहतीं। इसका कारण क्या है? यही कि वे देखते हैं कि विवाहित स्त्री-पुरुषों का जीवन

सुखमय नहीं रहता। हम न जाने कितनी योजनाओं, भावनाओं, एवम् आदर्शों को ले कर जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। पर गृहस्थी की चक्की में पिसते-पिसते हमारा कचूमर निकल जाता है। न वे महत्वाकांक्षायें पूरी होतीं न जीवन सुखमय होता। पाया तो यह गया है कि जीवन उलटा दुखमय हो रहा है। प्रत्येक बार मनुष्य की और स्त्री की भी शक्ति कम हो जाती है। स्त्री-पुरुष का शरीर जितना निःसत्व और निर्बल होगा वैसी ही उसकी सन्तान भी होगी। वह बुद्धिशाली भी नहीं हो सकती। घर में बालक बढ़ते ही उनके पालन-पोषण और शिक्षा आदि की जिम्मेदारियां आ ही जाती हैं। इन बातों में प्रत्येक मनुष्य की शक्ति परिमित होती है। यदि वह असंयम के कारण आवश्यकता से अधिक सन्तान पैदा कर लेता है तो वह तिगुना पाप करता है।

(१) अपनी शक्तियों पर अनुचित भार ले लेता है। एक ऐसा काम अपने सिर पर ले लेता है जिसको वह निबाह नहीं सकता। इस हालत में उसे अपने उदर पोषण के काम में कपट से काम लेना पड़ता है। वह सत्य आचरण से गिर जाता है। और चूंकि पुण्य की तरह पाप भी एक संक्रामक वस्तु है, वह अपनी गन्दगी से समाज में भी गन्दगी फैला देता है। शारीरिक और नैतिक दोनों दृष्टि से वह पतित होता है।

(२) अपनी विकार-वशता द्वारा अपनी जीवन-सहचरी धर्म-पत्नी के जीवन को वह संकटापन्न कर देता है। उसपर इतने अधिक बालकों के पालन-पोषण का भार आ पड़ता है कि जिसको वह उठा नहीं सकती। उसका प्रसन्न स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता

है। जो एक समय देवदूत सी प्रभामयी और आनन्दमयी मालूम होती थी, पुरुष की विकार-वशता के कारण वह कर्कशा सी हो जाती है। स्त्री की भी शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास हो जाता।

वास्तव में विद्यार्थी दशा की अपेक्षा मनुष्य का गृहस्थ-जीवन अधिक सुखमय और उन्नत होना चाहिए। मनुष्य की ज्ञान और बुद्धि की सम्पत्ति बढ़ जानी चाहिए। स्वभाव की मधुरता अधिक उत्कट होनी चाहिए; परन्तु विकाराधीन मनुष्य उस जीवनको जो कि स्वर्गोपम होना चाहिए था, नरक बना लेता है।

(४) और इस सारे व्यापार में अगर सब से अधिक अन्याय किसी के साथ होता है तो वह है इस दम्पति की अबोध सन्तान।

हम शराब वाले भाग, में बता चुके हैं कि बालक के कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार होते हैं। यह दम्पति अपने व्यभिचारी जीवन द्वारा उन बेचारों के ये सारे अधिकार छीन कर संसार में उन्हें निःशक्त, निर्बुद्धि और ऐसी अवस्था में छोड़ देते हैं जिसमें वे सदाचार का भी पालन नहीं कर सकते। ये बालक आगे चल कर खरी कमाई से अपना पेट नहीं भर सकते। फिर उन माता-पिता का पेट भरना तो दूर की बात है। समाज-सेवा और देश-सेवा का तो फिर इन पामरों के दिमाग में खयाल भी कैसे आ सकता है?

इन सब झंझटों से बचने के लिए कितने ही ना समझ स्त्री-पुरुष गर्भ को ही गिरा देते हैं, दूसरे शब्दों में भ्रूणहत्या कर

डालते हैं। (खास कर भारत की विधवाओं में यह पाप अधिक फैला हुआ है। इस पर हम आगे चलकर विचार करेंगे) मुझे ठीक-ठीक पता नहीं कि भारत में यह पाप किस मात्रा में फैला हुआ है। सन्तति निरोध के कृत्रिम साधनों का आविष्कार होने से पहले पश्चिमी देशों में यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ था। परन्तु जब से इन कृत्रिम साधनों का आविष्कार हुआ है तब से यद्यपि यह प्रत्यक्ष भ्रूण-हत्या तो बन्द होगई तथापि व्यभिचार की बुराई तो बहुत भारी पैमाने पर फैल गई है। पहले तो यह डर था कि कहीं गर्भ रह गया तो डॉक्टर से कुछ दवा लेकर उसे गिराने की व्यवस्था करनी होगी; और इस तरह गर्भ गिराने में बहुत भारी कष्ट होता है। इसलिए पुरुषों के दिल में नहीं तो स्त्रियों के चित्त में तो अवश्य ही उस कष्ट का डर बना रहता था। परन्तु अब तो वह डर भी जाता रहा। व्यभिचार के लिए राज-मार्ग खुल गया। अब तो सब के लिए पाप सुलभ, और अदण्ड्य हो गया। पाप करके भी समाज की नजर में कुमारी-कुमारी और विधवा पवित्र विधवा बनी रह सकती है।

आजकल भारत में भी सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का बड़ी ही तेजी से प्रचार हो रहा है। मैं इस विषय पर पहले टॉल्स्टॉय का 'स्त्री और पुरुष' और महात्माजी का लिखा 'संयम या विलास' नामक ग्रन्थ पढ़ चुका था, जिनमें इन कृत्रिम साधनों के उपयोग से होने वाले कुपरिणामों को बताया गया है। इनके पढ़ते हुए किसी भी भारतीय को संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों की बुराई से इन्कार नहीं

हो सकता। पर इधर मुझे इस विषय पर अनेकों ग्रन्थ पढ़ने का और अवसर मिला, उससे अब मुझे यह कहना पड़ता है कि दुर्भाग्यवश मैं उन्हें पढ़ने के अपने मोह को रोक नहीं सका। उन्हें पढ़ने पर मुझे मालूम होता है कि मैं उन्हें न पढ़ता तो अच्छा होता। इनमें से कई ग्रन्थ तो इतने गंदे थे कि उन्हें आगे पढ़ने की हिम्मत ही नहीं हुई। विकार का इस तरह खुलेआम राज्याभिषेक करते हुए मैंने किसी को नहीं देखा था। साहित्य-क्षेत्र में जिन शब्दों और कामों के उच्चारण मात्र से भारतीय पुरुषों के चित्त को भी आघात पहुँचता है उनके वर्णनों से एक पश्चिमी महिला अपनी किताब में निर्लज्जता पूर्वक अध्याय के अध्याय लिखती चली जाती है! जिस विकार से दिन-रात जागृत रह कर बचने के लिए हमारे शास्त्रों और पुराणों में कहा गया है, उसीको वह परमात्मा की पवित्र आज्ञा बता कर यथेष्ट उप-भोग करने की आज्ञा देती है, और उसकी आवश्यकता बताती है! उसके हूबहू वर्णनों को पढ़ कर लेखिका के स्त्री-हृदय पर आश्चर्य होता है। इस बात को सिद्ध करने के लिए कि विकार तृप्ति मनुष्य के लिए फ़ायदेमंद है, वह इन विकारी जीवों को उनके फलों से बचाने के लिए संतति-निग्रह के कृत्रिम साधनों को बताती है। उसकी युक्तियां बड़ी ही मोहक और घातक हैं। विषय-विलास के नतीजे को टालने की युक्ति का आविष्कार करके आज पश्चिम ने संसार के लिए पतन का दर्वाजा खुला कर दिया है। (वह कहती है, इस आविष्कार ने संसार का बड़ा उपकार किया है!) धर्म-ग्रंथों में जो संयम की आवाज है, उसे वह 'अन्धी चिल्लाहट' के नाम से पुकारती है और इन पापों से संसार

को सचेत करने वाले टाल्स्टाय जैसे द्रष्टाओं को, इस आन्दोलन का समर्थन करने वाले, 'मूर्ख संन्यासी' कहते हैं। विषय-विलास के ये पुरस्कर्ता यदि शीघ्र न सम्हले, तो निःसन्देह प्रकृति इन्हें दिखा देगी कि सचमुच मूर्ख कौन है। सन्तति-निग्रह के लिए इस पक्ष ने जितनी दलीलें पेश की हैं सब उचित और विचारणीय हैं। और वे ब्रह्मचर्य के महत्व को प्रकट करती हैं। अन्य देशों की बात छोड़ दें, हम उन्हें अपने देश की परिभाषा में ही, संक्षेप में यों कह सकते हैं :—

(१) पुरुष-स्त्रियों की इच्छा-अनिच्छा का और समय-असमय का विचार नहीं करते और जबरदस्ती अपनी विषय-क्षुधा को शांत करने के लिए उन्हें मजबूर करते हैं।

(२) फलतः स्त्रियों को पहले ही से अनिच्छा पूर्वक मातृत्व प्राप्त होता है। अधिक विषय-भोग के कारण बच्चों की संख्या बढ़ जाती है।

(३) आजीविका के साधन तो जल्दी-जल्दी नहीं बढ़ते। इसलिए अनावश्यक बच्चों की संख्या बढ़ते ही दारिद्र्य भी अवश्य ही बढ़ता है।

(४) परन्तु दारिद्र्य के साथ-साथ स्त्री-पुरुषों की काम करने की शक्ति अर्थात् रोजी कमाने की शक्ति भी घट जाती है।

(५) इस शक्ति के घटते ही घर पूरा नरक बन जाता है। पुरुष और स्त्री दोनों कमजोर, और चिड़-चिड़े हो जाते हैं। पोषक भोजन न मिलने से बच्चों का लालन-पालन भी ठीक नहीं होता। इससे चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। चिंता को भुलाने

के लिए निचली श्रेणी के लोग शराब पीने लगते हैं और शराब से व्यभिचार शुरू होता है।

(६) व्यभिचार से गुप्त रोग आदि, गुह्य रोगों के कारण सन्तति ही नहीं होती, या होती है तो रोगी, अंधी, कमजोर आदि।

(७) इधर इन रोगी और कमजोर माता-पिता के बच्चे भी कमजोर, अन्धे, लूले, बदसूरत और बुद्धिहीन होते हैं।

(८) जिस समाज में ऐसे स्त्री-पुरुष और बच्चे अधिक संख्या में होने लगते हैं उसके विनाश में भी कहीं सन्देह हो सकता है ?

यह कार्य कारण-परम्परा बिल्कुल निर्दोष है। और भारतीय समाज का ध्यान इस बुराई की ओर जितना जल्दी आकर्षित होगा उतना ही अच्छा। पश्चिमी लेखकों ने अनेक अङ्कों द्वारा इस विचार-परम्परा को अधिक विशद करके दिखा दिया है। किन्तु हमारा देश तो पराधीन है। यहां इन बातों की खोज करने की किसे पड़ी है ? किंतु अङ्कों की जरूरत ही क्या है, जब समाज का प्रत्यक्ष जीवन ही हमारे सामने मौजूद है ?

यहाँ तक सब ठीक है। पर इस तरह समाज का भीषण से भीषण चित्र खींचकर पश्चिम के लेखक सन्तति-निग्रह के कृत्रिम साधनों का उपदेश करते हैं। वे उसके लिए ये दलीलें पेश करते हैं:—

(१) इस साधन द्वारा स्त्री-पुरुष जितने बच्चे चाहेंगे उतने ही पैदा कर सकेंगे, उससे ज्यादा नहीं हो पायेंगे।

(२) और संतति-निग्रह की यह ताली हाथ लगते ही न उनके (अ) आवश्यकता से अधिक बच्चे बढ़ेंगे, (आ) न दारिद्रय बढ़ेगा, (इ) न स्त्रियां कमजोर होंगी, (ई) न पुरुष शराबी और व्यभिचारी होगा, (उ) न उसे तथा स्त्री को गुप्त रोग होंगे, (ऊ) न रोगी, विकलांग, बुद्धी-हीन बच्चे पैदा होंगे, (ए) न गृह सौख्य नष्ट होगा, और (ऐ) न समाज निर्धन और पराधीन होगा।

यह भी सब अनेक अंशों में सत्य है। ये फ़ायदे तो संयम से होते ही हैं, परन्तु इनके अलावा और भी अनेक लाभ हैं।

(१) संयम से माता और पिता दोनों की शक्ति और तेजस्विता बनी रहेगी।

(२) पुरुष इसी शक्ति को अन्य क्षेत्रों में परिवर्तित करके उससे अपने देश को अनेकों फ़ायदे पहुँचा सकते हैं।

(३) यदि यह संयम धार्मिक होगा तो उसके द्वारा मनुष्य की असाधारण आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, जो सच्चे सुख और शांति का सीधा मार्ग है।

(४) जिस देश के स्त्री और पुरुष संयमी होंगे, आत्मविजयी होंगे, उसके लिए सुख-सम्पति बायें हाथ का खेल है।

(५) इस मनोविजय में मनुष्य को जो तालीम मिलती है, वह अमूल्य होती है।

(६) इस संयम के कारण हम अपने आस-पास एक पवित्रता का वायु-मण्डल उत्पन्न कर देंगे, जिससे सारा समाज ऊँचा हो जायगा और हमारे बच्चों पर भी उन उच्च संस्कारों का असर पड़ेगा।

(७) समाज में सन्तोष और भक्ति की वृद्धि हो जायगी, क्योंकि ऐसा संयम केवल भक्ति की सहायता से ही सुरक्षित रह सकता है।

कृत्रिम संतति-निग्रह द्वारा इनमें से एक भी फायदा नहीं होगा। उल्टे उससे ये हानियां होंगी—

(१) चारों ओर स्वच्छन्द और विकार का साम्राज्य फैल जायगा।

(२) स्त्री-पुरुष तेज हीन, लम्पट और कमजोर होंगे।

(३) उनसे ऊँचे पारमार्थिक काम नहीं होंगे।

(४) समाज में आध्यात्मिकता का लेश भी न रहने पायगा।

(५) मनुष्य का जीवन उच्छृंखल और अनियमित होगा।

(६) विषयी वायु-मण्डल में बच्चे भी शीघ्र ही विषयी हो जावेंगे। अर्थात् भावी उन्नति, विजय या स्वाधीनता की आशा पर पानी फिर जायगा।

(७) विधवाओं, अविवाहित लड़कियों और घर-बार छोड़ कर विदेश में रहने वाले स्त्री-पुरुषों में तथा धार्मिक संप्रदायों में भी व्यभिचार बेहद फैल जायगा। क्योंकि पाप के प्रकट होने का डर दूर होते ही मानवी अधमता समाज में बे-रोक-टोक फैलने लग जायगी, और गुप्त रोगों को फैलायगी।

(८) यह एक निश्चित बात है कि गर्भ-धारण का डर दूर होते ही पति-पत्नी अत्यन्त विषयी हो जावेंगे। इस समय अधिक संतति होने से परिवार की वृद्धि का डर उन्हें रहता है। पर इसके बाद तो उनके लिए कोई रोक-टोक न रहेगी। अधिक विषय-

भोग से देश के स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य बिगड़ेगा और राष्ट्र निर्बल तथा निस्तेज हो जायगा।

कृत्रिम साधनों के समर्थक कहते हैं—यह सब ठीक है। पर इतना संयम करने के लिए मनुष्य को कितने ज्ञान और मनोबल की जरूरत होती है? वह देश के इने-गिने लोगों में भले ही कुछ अंशों में हो, पर सर्व-साधारण के लिए तो यह असम्भव ही है।"

पर, किसी काम के केवल मुश्किल होने भर से उसे छोड़ देना तो बुद्धिमानी न होगी। श्रेय का मार्ग हमेशा मुश्किल होता है। पर जिस मनुष्य को अपने सच्चे कल्याण की इच्छा होती है वह तो उसीको पसन्द करेगा। पतन का मार्ग हमेशा ढालू और सुगम होता है। गिरते हुए नहीं, गिर जाने पर मनुष्य को अपनी चोट का खयाल होता। और कई बार यह चोट इतनी भयंकर होती है कि वह मनुष्य को जीवन भर के लिए पंगु बना देती है। अतः मनुष्य को चाहिए कि पहले ही से जरा-सोच समझ कर चले।

अपनी शक्ति और सदाचार को क़ायम रखते हुए यदि दूसरी भाषा में कहें तो सन्तति-निग्रह को उद्देश्य न बना कर सदाचार, वीर्यरक्षा, बुद्धि, बल, तेज आदि के बढ़ाने वाले ब्रह्मचर्य को अपना उद्देश बना कर के संयमपूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्तियों के लिए संयमशील जीवन उतना कठिन नहीं होगा जितना केवल सन्तति-निग्रह को ले कर चलने वालों के लिए होता है।

सन्तति निग्रह में विषय-वासना को दबाने की इच्छा नहीं होती बल्कि उसके उपभोग के साथ-साथ उसके फल से बचने की इच्छा रहती है। और इसका फल भी वैसा ही मिलता है। ब्रह्मचर्य का आदर्श प्रेरक अधिक होता है, सन्तति निग्रह तो उसमें अनायास हो ही जाती है। परन्तु उसके अतिरिक्त और भी मनुष्य की कितनी ही ऊँची शक्तियां भी विकसित हो जाती हैं, जो मनुष्य को प्रत्येक क्षेत्र में विजयशाली बना देती हैं।

इस संयम का सब से सरल उपाय है पृथक शैय्या। पति-पत्नी कभी एकान्त में न रहें। अपने इष्ट देवता या श्रद्धेय आदरणीय पूजनीय व्यक्ति की मूर्ति को सामने रख कर के संयमशील जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा लें। और प्रतिज्ञा भंग पर दोनों २४ घंटे का उपास करने का दृढ़ निश्चय कर लें। स्मरण रहे कि ऐसे प्रसंग पर उपवास करने में कभी शिथिलता न की जाय। प्रायः देखा यह गया है कि प्रतिज्ञाभंग हो जाने पर पति-पत्नी इस संकोच से उपवास नहीं करते कि घर के अन्य लोग पूछेंगे तब उन्हें उपवास का कारण क्या बतावेंगे। आज नहीं, फिर कभी जब अकेले होंगे तब कर लेंगे, यह वृत्ति बड़ी घातक है। व्रत अथवा प्रतिज्ञा में एक बार शिथिलता आते ही वह कमजोरी आदमी को घर दबाती है। पाप या अपराध पर मनुष्य को स्वेच्छापूर्वक या किसी अन्य मनुष्य द्वारा जब दण्ड नहीं दिया जाता तब उसके लिए वह पाप सह्य हो जाता है। उसे उत्तेजना मिल जाती है। वह फिर बार-बार उसी बात को करने को उत्साहित होता है। अपने साथ रिआयत करनेवाले लोग कभी ऊपर नहीं चढ़ सकते। मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा को इसीलिए नहीं निबाह सकता

कि वह अपने साथ रिआयत करने लग जाता है। अपने साथ रिआयत करना मनुष्य के पतन की कुंजी है। उत्थान का मूल मन्त्र है कर्तव्य-कठोरता, प्रत्येक गलती पर स्वशासन और स्वेच्छापूर्वक अपने आपको दण्डित करने की वृत्ति।

पर इस संयमशील जीवन के लिए पति-पत्नी दोनों के संपूर्ण सहयोग की जरूरत है। यह तब और भी अधिक अच्छी तरह निबाहा जा सकता है जब दोनों इसके महत्व को भली भाँति जानते हैं। केवल सन्तति से पिंड छुड़ाने का उद्देश्य जब तक रहेगा, तबतक मनुष्य संयमी जीवन में कभी सफल नहीं हो सकता। जैसा आदर्श होगा वैसा फल मिलेगा। यह निश्चित समझिए।

हां, एक बात और है। इस विषय में असफल होने का एक खास कारण है स्त्रियों के चित्त की कोमलता। संयमी पति-पत्नी को जहां तक हो सके अलहदा कमरों में सोना चाहिए। कम से कम शैया तो जरूर अलग-अलग हो। परन्तु कितनी ही स्त्रियों के लिए इतना छोटासा वियोग (?) भी असह्य हो जाता है, और पति से भी अपनी पत्नी का यह दुःख देखा नहीं जाता! नतीजा होता है संयम का भंग।

संयम का एक और बढ़िया उपाय है कार्यशीलता—किसी काम को अपना प्रिय विषय बना करके उसे पूरा करने में पति-पत्नी दोनों को जुट पड़ना चाहिए। यह कार्य जितना पवित्र, निस्वार्थ होगा उतने ही हम ऊपर उठेंगे। वह जितना स्वार्थ-पूर्ण और नीचा होगा उतना ही हम नीचे गिरेंगे। शहरों में रहने वाले सेठिया तथा व्यापारी लोग भी यों कहने भर को दिन-रात काम

में निमग्न रहते हैं। धन इकट्ठा करने के पीछे बावले हो जाते हैं। दिन-रात दूकान पर रहते हैं। यह कार्य स्वार्थ-पूर्ण होने के कारण इसमें उच्च स्फूर्ति का अभाव है। वह स्त्रियों के कोमल चित्त पर प्रभाव नहीं डाल सकता। न वे स्त्रियों को अपने साथ में लेते ही हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि उन दोनों पति-पत्नी का जीवन पापमय होता है। पत्नी के दिल को ऊँचा उठानेवाला दिन भर काम में लगाये रखने का कोई साधन न रहने के कारण वह अतृप्त रहती है। वह पतित हो जाती है। फिर वहां शुद्ध प्रेम कैसे हो? यह खजाना लुटते ही वह व्यवसायी पति भी मारा मारा फिरने लगता है।

इसके विपरीत हम दूसरे वर्ग को देखें। उन लोगों को देखें जिनके चित्त में उच्च आदर्शों को स्थान मिल गया है। हम देखते हैं कि इस वर्ग के लोग हमारे देश में धीरे-धीरे बढ़ते जाते हैं। एक निश्चित आदर्श ने उनको आकर्षित कर लिया है। पति-पत्नी दोनों उस सुवर्ण-सूत्र में बँधे हुए उस दिशा में बढ़ते ही चले जाते हैं। सेवामय जीवन में विकार-चिंता के लिए अवसर ही नहीं मिलता। कहीं विकार प्रबल हुआ भी तो एकान्त का अभाव। फलतः विकार को अपने आप शान्त हो जाना पड़ता है। वह जीवन शान्त है, भव्य है, अपने आपको अपने परिवर्ती लोगों को ऊँचा उठाने वाला है। इस दरिद्रता में भी स्वर्गीय सुख है।

गुप्त और प्रकट पाप

समाज एक विशाल सागर है। इसमें नाना प्रकार की बुराइयां भी भरी हुई हैं। ऐकान्तिक पाप, और प्रकट व्यभिचार के अतिरिक्त गुप्त व्यभिचार भी समाज में बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है। यह पाप जिस तरह समाज को छिन्न विछिन्न कर रहा है उसे देख कर बड़ा दुख होता है। कैसा दुर्विपाक ! क्या हमारे देश के पुरुषों को अपनी कर्तृत्व-शक्ति दिखाने के लिए कोई क्षेत्र ही नहीं दिखाई देता ? व्यभिचार हमारे देश के पुरुषों के लिए एक मनोविनोद की सामग्री है। जब आदमी अपनी जीवन-शक्ति और नैतिक सम्पत्ति को आग लगाने ही में आनन्द मनाने लगे तब समझना चाहिए कि उसका नाश निकट है। हमारे देश का नीति-शास्त्र बहुत उच्च है। परन्तु आज उसकी अवस्था देख कर लज्जा से सिर झुकाना पड़ता है। जब कोई दूसरा आदमी आ कर हमें अपनी बुराइयाँ बताने लगता है तो हम उसका मुँह बन्द करने भर को भले ही कह सकते हैं कि अरे पापी !! अपने देश को तो जरा देख ! तू कहां का दूध का धुला हुआ है ? पर वास्तव में इससे हमारी आत्मा को सन्तोष नहीं हो सकता है। वह तो तभी होगा जब हम स्वयं शुद्ध हो जावेंगे।

अपने देश की भलाई और बुराई का खयाल दूसरे देशों की बुराई-भलाई की तुलना से करना हमेशा फ़ायदेमन्द नहीं है। दूसरे के बुरे लड़के को बता कर उससे अपेक्षा-कृत कुछ अच्छे

तम्बाकू शराब और वेश्या—त्रिदोष ! अब जिन्दा बचने की आशा कहाँ !

अपने लड़के को देख कर यदि हमें सन्तोष होने लगेगा तो वह आत्मवंचना होगी—हम अपने आपको ठगेंगें। जो बुराई हमारे अन्दर है वह महज इसलिए सह्य नहीं हो जानी चाहिए कि वह दूसरे देशों की अपेक्षा यहां पर कम मात्रा में है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस व्यभिचार के प्रश्न पर भी हमें विचार करना है।

हम देखते हैं कि समाज में कितने ही स्त्री-पुरुषों के आपस में गुप्त रूप से बड़े गन्दे सम्बन्ध हैं। इसका कारण है विकार की अधिकता। जब स्त्री अथवा पुरुष विकाराधीन हो जाते हैं तो उन्हें औचित्य जात-पात, सगे-रिश्ते नीच-ऊँच आदि का कोई ख्याल नहीं रहता। इसमें प्रायः लोग स्त्रियों को ही दोष देते हैं। परन्तु यह (पाप-रूपी) राक्षस किसी के साथ पक्षपात नहीं करता। हां, जहां संस्कार उच्च होते हैं वहां इसकी दाल एकाएक नहीं गलती। समाज में आजकल इसने जो अनर्थ मचा रक्खा है उसे दूर करने के लिए सबसे अच्छा उपाय यही है कि हम उन कमजोर स्थानों को ही दूर कर दें जहां इसे प्रहार करने का मौका मिलता है।

समाज-शरीर को देखते हुए मुझे हमारे अज्ञान और कुप्रथाओं में ही ये कारण दिखाई देते हैं। संक्षेप में उनको यों रख सकते हैं :—

१—सदोष विवाह पद्धति (बाल, वृद्ध और बेमेल विवाह)

२—स्त्रियों के वास्तविक गौरव को न जानना।

३—पौरुष की मिथ्या कल्पना।

४—परदा, गरीबी, अन्ध धार्मिकता।

५—हमारी परिस्थिति, जड़वादिता, प्रेरक आदर्श का अभाव
अब इन पर संक्षेप में क्रमशः विचार करें।

(१ अ) सबसे पहले विवाह पद्धति को ही लें। यद्यपि अधिकांश शिक्षित लोग अब बाल-विवाह को अनिष्ट कर और अनकर मानने लग गये हैं, तथापि हमारे विशाल समाज अभी इस विषय में काफी प्रचार करने की जरूरत है। अभी अज्ञान लोग तो अब भी लड़के-लड़कियों की शादी जल्दी ही क दिया करते हैं। बच्चों को यह ख्याल भी नहीं होता कि विवाह के मानी क्या होते हैं। लड़के-लड़कियों में स्वभावतः कम अन्तर रक्खा जाता है। समाज के विकारमय वायु-मण्डल में वे पनते हैं और असमय ही अपनी जीवन-शक्ति बहाने लग जाते हैं। लड़के की अवस्था छोटी होने के कारण उसका स्वास्थ्य फौरन गिर जाता है। वह निःसत्व या नपुंसक हो जाता है। पहली अवस्था में बदहजमी, संग्रहिणी, प्रमेह या क्षय का रोगी हो कर जल्दी यमराज के यहां जा पहुँचता है और दूसरी अवस्था में मृत मनुष्य का सा यह अपना जीवन व्यतीत करता है। वह मारे लज्जा के मरा जाता है। धूर्त और बदमाश हकीमों तथा वैद्यों के भुलावे में आ कर अपने तथा अपने पिता के धन को भी बरबाद कर देता है। निष्पौरुष और निर्धनपति के प्रति स्त्री में कोई आकर्षण नहीं रह जाता। तब दूसरे धूर्त और बदमाश इस स्त्री की ताक में रहते ही हैं और इस तरह गुप्त रूप से पाप शुरू हो जाता है।

छोटी उम्र में पति मर जाने से लड़कियाँ सांसारिक अनुभवों से वंचित रहती हैं। घर में उनकी कोई पूछ-ताछ भी नहीं करता, और शिक्षा के अभाव के कारण उनके सामने कोई उन्

आदर्श भी नहीं रहता। फिर समाज में तो विकार का साम्राज्य होता ही है। इस अवस्था में अगर वे पतित हो जावें तो इसमें कौन आश्चर्य की बात है? एक पत्नी मर जाने पर चार-चार और दस-दस क्या, अपने लिए असंख्य विवाह करने की स्वतंत्रता का समर्थन करने वाला पुरुष उन्हें किस मुँह से झिड़क सकता है? प्रतिदिन बाहर की बीसों नालियों की गन्दगी में नहानेवाले पामर पतित पुरुष की झिड़की और भर्त्सना में क्या असर हो सकता है? किसी व्यक्ति के महज पुरुष या स्त्री होने से पाप की मात्रा बढ़ या घट नहीं जाती। पाप की तो शकल ही खराब है। वह सब के लिए एक सा निन्द्य होना चाहिए। जितना स्त्री के लिए उतना ही पुरुष के लिए भी।

(१ आ) जो बुराई बाल-विवाह में है वही, बल्कि उससे भी अधिक बुराई वृद्ध-विवाह में है। बाल-विवाह की कुप्रथा का आरम्भ भले ही निर्दोष कहा जा सकता है, परन्तु वृद्ध-विवाह का तो आरम्भ मध्य और अन्त तीनों पापमय है। पहले लड़की का पिता अपनी प्यारी लड़की की शादी वृद्ध के साथ करके पाप कमाता है, और वह बेवकूफ वृद्ध वर भी। बाद में जब वृद्ध-पति मृत या मृतवत हो जाता है तब वह लड़की भी पाप कमा करके अपने पिता और पति के पापों की पूर्ति करती है। वृद्धों के साथ में या अधिक उम्रवाले विधुरों के साथ में अपनी लड़की की शादी करने वाला पिता कैसा पापी होता है? क्या कोई बीस साल का युवक चालीस या पैंतालीस वर्ष की वृद्धा से विवाह करना पसन्द करेगा? फिर एक अबोध बालिका को एक ऐसे अधेड़ या बूढ़े के साथ जबर्दस्ती जीवन भर लिए बांध देना कैसी

निर्घृण दुष्टता है ? वह इन वधू-वरों के बीच निर्मल प्रेम की आशा कैसे करता है ? पहले तो कभी पुरुष ऐसे बेमेल विवाह करने पर राजी ही न होगा और यदि लोभ वश या अन्य किसी कारण से राजी भी हो गया तो या तो वह फौरन दूसरी या तीसरी शादी कर लेता हैं या अन्य प्रकार के गुप्त व्यभिचारों में प्रवृत्त हो जाता हैं ।

(१ इ) व्यभिचार का तीसरा कारण हैं बेमेल विवाह । हम लोगों ने अपनी विवाह-पद्धति में प्रायः कवायद को तो बनाये रखने की कोशिश की है । घूम-धड़ाका भी खूब करते हैं । परन्तु जो सब से अधिक महत्वपूर्ण बात है, वधूवरों का चुनाव, उसकी तरफ बहुत कम ध्यान देते हैं । आधुनिक शिक्षा या सभ्यता का जिन पर असर पड़ गया है उनकी बात को अगर छोड़ दें, तो कहा जा सकता है कि लड़के-लड़कियों के माता पिता वधूवरों की जोड़ी मिलाने की अपेक्षा अपनी आर्थिक स्थिति की तुलना की तरफ ही अधिक ध्यान देते हैं । विवाह करने के पहले वधूवरों के रूप, रंग, गुण शील,स्वास्थ्य आदि को मिला लेना परम आवश्यक है । कभी कभी लड़के-लड़कियों की उम्र में काफी अन्तर होता है, परन्तु एक का शरीर दुर्बल होता है तो दूसरे का हृष्ट-पुष्ट, एक सुन्दर है तो दूसरा कुरूप । एक शिक्षित और चतुर है तो दूसरा अपढ़ और बेवकूफ । एक को चटक-मटक और ठाठ बाट का शौक है, तो दूसरा सरल स्वभाव वाला है । इस तरह जब वधूवरों के बीच इतनी विषमता होती है, तो उनमें काफी आकर्षण नहीं होता । इस अवस्था में यदि वे प्रेम पूर्वक रहते हैं तो इसका कारण है उनका शील और भारतीय धर्म शास्त्रों की

पातिव्रत धर्म की शिक्षा । यह स्त्रियों की महत्ता है । ऐसी अवस्थामें पुरुष तो फौरन दूसरा विवाह कर लेते हैं। वे स्त्रियों के हृदय की अवस्था का जरा भी ख्याल नहीं करते । जैसे एक भैंस दूध नहीं देती और हम दूसरी भैंस ले आते हैं। उसी तरह वे दूसरी शादी कर लेते हैं। और इस पर मतलबी समाज एक अक्षर नहीं बोलता, बल्कि बड़ी खुशी से लड्डू खाने को उस पापी के यहां चला जाता है । किन्तु यदि यही बात किसी स्त्री के द्वारा होती है तो समाज में हाहाकार मच जाता है।

इन सब पापाचारों को देखकर भारत का सारा युवक समाज कांप रहा है। वह इन सब बेहूदी बातों के विरुद्ध बग़ावत का झण्डा उठाने के लिए तैयार खड़ा है। अगर पुराण-प्रिय (Conservative) दल को अपने देश और समाज की रक्षा करना है तो वह इस दिन प्रतिदिन बढ़ते हुए पापाचार को रोकने के लिए नीचे लिखी बातों पर फौरन अमल करने लग जावे ।

(१) बाल और बेमेल विवाह की बन्दी

(२) विधवाओं का विवाह

(३) एक पत्नी के जीवित रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह न करे।

(४) विधुर विधवाओं से ही विवाह करें।

(५) स्त्री-पुरुषों की विवाह मर्यादा बीस और पचीस वर्ष हो ।

दूसरे कारण की विवेचना करते हुए मुझे बड़ी लज्जा मालूम होती है। पुरुषों ने स्त्रियों के नम्र, विनय-शील और कोमल स्वभाव का कितना दुरुपयोग किया है ! उनके अज्ञान से कैसा अनुचित

लाभ उठाया है ? पुरुषों ने तो स्त्रियों को अपनी उपभोग्य सामग्री ही समझ रक्खा है। एक तरफ स्त्रियों को अज्ञान में रख कर पुरुष ने पातिव्रत धर्म की व्याख्या और आख्यायिकायें लिखीं और दूसरी तरफ उस ने स्त्रियों के उपभोग-शास्त्र की रचना की। इस पर नाना प्रकार के काव्य-ग्रन्थ तैयार किये। फल-फूलों की जातियों के समान स्त्रियों की जातियां बनाई गईं। उनके नख, शिख, स्तन, आंख आदि का वर्गीकरणात्मक एक शास्त्र तैयार हुआ।

राजाश्रित पण्डित लोग अपने आश्रय-दाता को वीरता भरे काव्य सुनाने के बदले ऐसी हीन और पातक रचनायें सुना कर के पाप में डुबोने लगे।

जिस समाज के पण्डित लोग राजाश्रित बुद्धिजीवी अपने समाज और मालिक के सामने व्यभिचार को देववाणी में प्रतिष्ठित करके उसे शास्त्र की दीक्षा देने लगा वह स्वाधीन कैसे हो सकता है ! कैसे उसके नरेन्द्र वीर-वृत्ति हो सकते हैं ? क्या इन तमाम चेष्टाओं का परिणाम घोर अधःपतन नहीं होगा ? और दुर्भाग्य की बात तो यह है कि यही कुत्सित कर्म आज कल के कुछ साहित्य सेवी कर रहे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में जैसे चित्र कहानियां और विज्ञापन छप रहे हैं वे इस बात को स्पष्टतया प्रकट करते हैं कि भारत के पुरुष अपनी माताओं बहनों और गृहिणियों के गौरव को नहीं समझ सके।

व्यभिचार का तीसरा कारण है पौरुष की मिथ्या कल्पना। पौरुषवान (?) पुरुष वर्ग कहता है "पुरुष को प्रकृति का यह आदेश है कि वह अनेक स्त्रियों के साथ

उपभोग करे। क्योंकि गृहिणी तो बेचारी गर्भवती होने पर बेकाम हो जाती है। पुरुष की वह शक्ति भी यदि गृहिणी के गर्भवती होने के साथ उसके गर्भकाल और शिशुसंवर्धन के दिनों में नष्ट हो जाती तब तो कोई सवाल ही न था। पर प्रकृति ने यह नहीं किया। इसके स्पष्ट मानी यही हैं कि पुरुष अपनी वासना को अन्य स्त्रियों के उपभोग द्वारा शान्त करे। ऐसी दलील पेश करने वालों के लिए तो संसार के सभी कर्तव्य और सारा पुरुषार्थ विषयोपभोग ही हैं। पर यह रास्ता गलत है, बड़ा ही खतरनाक है। विनाश इसका अवश्यम्भावी परिणाम है। सौभाग्य वश समाज में अधिकांश स्त्री-पुरुष स्वभावतः सत्प्रवृत्त होते हैं। अन्यथा मनुष्य जाति का अस्तित्व इस पृथ्वी पर से कभी का उठ गया होता। वे जानते हैं कि मनुष्य का ध्येय तो धर्म साधन और सच्चा पुरुषार्थ प्राणिमात्र की सेवा करना है। वास्तव में विषय-भोग तो अपनी शक्ति का सब से निकृष्ट उपयोग है। मनुष्य के लिए अपनी शक्ति और पौरुष का उपयोग करने के लिए अनंत क्षेत्र पड़ा हुआ है। करोड़ों अभागे आपकी सहायता के भूखे हैं। आप जिसे विषय-क्षुधा कहते हैं वह इन्हीं सत्कार्यों को करने के लिए प्रकृति का आपको निमन्त्रण है। पर हमारा वासना-लोलुप हृदय उसे उलटा ही समझता है। यदि प्रकृति के इस पवित्र आदेश को आदमी समझने लग जायँ तो राष्ट्रों के बीच अखण्ड शान्ति और प्रेम निवास करने लग जाय।

गुप्त व्यभिचार को बढ़ाने में, परदा-गरीबी और अंध-धार्मिकता का भी कम हिस्सा नहीं। परदा अन्धकार का प्रतिनिधि है और अन्धकार पाप का जनक है। जिस समाज में परदा है वह

जानता है कि परदे की ओट में कैसे-कैसे अनर्थ होते रहते हैं। परदा के मानी लाज अथवा मान-मर्यादा नहीं। यह तो सदैव इष्ट ही है। परदा के मानी हैं अज्ञान की दीवार। यह दीवार कृत्रिम भी होती है और असली भी। पर है दोनों रूपों में घातक। परदा स्त्रियों को स्वाभाविक स्वतंत्रता के उपभोग से वंचित करता है। पर स्वाधीनता तो जीवमात्र का स्वभाव है। इसलिए जब घर के लोग स्त्रियों या लड़कियों को यह स्वाधीनता नहीं देते, तब वे अन्य अपरिचित लोगों के सामने और साथ में इस स्वाधीनता का उप-भोग करने की चेष्टायें करती हैं। और चूं कि जीवन भर परदे के अन्दर रहने के कारण वे धूर्त लोगों की बदमाशी समझ नहीं पातीं, अतः फौरन उनके जाल में पड़ जाती हैं। इधर घर वाले इस बात को तो गवारा कर लेते हैं कि उनकी बहू बेटियां मेले-तमाशों में गैर लोगों के बीच में जिनमें बहुत से बदमाश भी होते हैं, मुँह खोलकर चलें; परन्तु वे इसे सहन नहीं कर सकते कि वे अपने ही घर के आदमियों में, जो उनके भाई, तथा पिता के सदृश होते हैं, मन खोलकर रहें और उनसे बोलें चालें। इस प्रकार इस मिथ्या परदे की आड में अनाचार तथा घोर पाप होते रहते हैं!

ग़रीबी पाप का दूसरा कारण है। कितने ही लोग इतने ग़रीब होते हैं कि अपने गांव में रहकर आजीविका नहीं प्राप्त कर सकते। पुरुष शहरों में कमाने के लिए चले जाते हैं। तनख्वाहें कम होने के कारण वे बार-बार घर को लौट नहीं सकते। स्त्रियों का पेट भरने के लिए भी काफ़ी रुपये नहीं भेज सकते। तब वे क्या करें? स्त्रियां मजूरी करने जाती हैं या वैसे ही कोई धनिक आदमी उन्हें फंसा लेता है। लोग ग़रीबी में इस पाप के शिकार बहुत जल्दी

और आसानी से वन जाते हैं। उधर शहरों में पुरुष भी कहीं फंस जाते हैं। विदेशी ढंग के कारखाने आदि में यह पाप बहुत बड़े पैमाने पर फैला हुआ है।

अंध धार्मिकता भी इस पाप को एक हद तक पोषण दे रही है। श्रीकृष्ण की लीला-कथाओं का इस तरह बहुत बुरा असर फैल रहा है बदमाश पौराणिक और गुरु लोग इन कथाओं द्वारा भोली भाली स्त्रियों को आये दिन ठगते हैं। तीर्थ-स्थानों में यह विशेष रूप से फैला हुआ है। जिन बड़े-बड़े मन्दिरों का भारत भर में नाम फैला हुआ है वे व्यभिचार को उत्पन्न करने और पोषण देने वाले स्थान हैं। वहां पर भगवानजी पुजारियों और पण्डों के कैदी होते हैं। जब चाहते हैं वे अपनी सुविधा और मतलब के अनुसार दिन को और रात को पट खोलते और भगवान को भोग लगाते हैं। उस समय दर्शकों की भीड़ लग जाती है। बस इस भीड़ में बदमाश और गुण्डों की बन आती है। कितनी ही स्त्रियों के पतन का आरम्भ यहीं से होता है भारत के कई तीर्थ-स्थान व्यभिचार के लिए मशहूर हैं। इसी लिए आज कल के सुशिक्षित लोगों को इन तीर्थ स्थानों पर से बहुत कुछ श्रद्धा उठ गई है। कम से कम वे मेले बगैरः के प्रसंग पर तो कभी वहां जाना पसन्द नहीं करते।

भारत की गुरु-प्रणाली में भी यह पाप घुस गया है। हाल ही में ऐसे ही एक विख्यात "भक्ति भवन" का रहस्य स्फोट हुआ है। उसकी पाप कथाएँ सुनकर दिल दहल उठता है। उसपर अपने विचार प्रकट करते हुए पू० महात्माजी लिखते हैं:—

"कलकत्ते के गोविन्द भवन में जयदयाल जी की प्रेरणा से भक्ति

रस उत्पन्न करने के लिए एक भाई रखे गये थे। उन्होंने भक्ति के नाम पर विषयभोग किया। स्त्रियों द्वारा अपनी पूजा स्वीकार की। स्त्रियां उनको भगवान समझ कर पूजने लगीं। उन्होंने स्त्रियों को अपना जूठन खिला-खिला कर व्यभिचार में प्रवृत्त कर दिया। भोली भाली स्त्रियों ने समझ लिया कि 'आत्मज्ञानी' के साथ शरीर-संग व्यभिचार नहीं कहा जाता। यह घटना दुःखदायक है, पर इससे मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। भक्ति के नाम पर विषय-भोग चारों ओर होता दिखाई पड़ता है। और, जब तक भक्ति का असली रहस्य समझ में न आवे, तब तक यदि धर्म के नाम पर अनर्थ हो तो इसमें नवीनता क्या है? बगुला-भक्तों द्वारा जो अनर्थ न उत्पन्न हो वही आश्चर्य है। मैं राम-नाम का—द्वादशमन्त्र का, पुजारी हूँ, किन्तु मेरी पूजा अन्धी नहीं है। जिनमें सत्य है, उनके लिए रामनाम नौकारूप है। पर मैं यह नहीं मानता कि जो लोग ढोंग से रामनाम का उच्चारण करते हैं, उनका उद्धार रामनाम से हो सकता है। अजामिल आदि का उदाहरण दिया जाता है, पर वे काव्य हैं और उनमें रहस्य है। उनके विषय में शुद्धभाव का आरोपण है। जो मानता है कि 'रामनाम से मेरे विषय शांत होंगे', उसको रामनाम फलता है, किन्तु जो ढोंगी यह विचार कर रामनाम का उच्चारण करता है कि 'रामनाम से मैं अपने कर्मों को ढंकता हूँ' वह तर नहीं सकता। + + + +

अस्तु, बहनों के लिए मुझे दो बातें कहनी हैं। जो पुरुष अपनी पूजा कराता है वह तो भ्रष्ट होता ही है; पर बहनें भी उन के साथ क्यों भ्रष्ट हों? जिन बहनों को मनुष्य की ही पूजा करनी हो वे क्या किसी आदर्श स्त्री की पूजा नहीं कर सकतीं। जो

जीवित हैं उनकी पूजा नहीं कर सकती ? जो जीवित हैं उनकी पूजा किस प्रकार अच्छी कही जा सकती है ? ज्ञानी सोलन का यह वाक्य हृदय में अच्छी तरह धारण कर लेने योग्य है कि, "किसी जीवित मनुष्य के विषय में यह नहीं कहा जा सकता कि वह अच्छा है। इसीलिए पूजा केवल भगवान की ही होती है।"

हमें आशा है कि पाठक और पाठिकाएँ ऐसे छिपे कूओं से अपने आपको और अपने प्रिय जनों को अवश्य बचाए रखने की कोशिश करेंगे।

इस पाप के अनेक कारणों में से देवदासी की प्रथा भी एक है। यह प्रायः मद्रास और उड़ीसाप्रान्त में अधिक है। पुराने विचार के लोग मन्नतें मांगते हैं और उसके बदले में अपनी लड़की को भेंट मंदिर के उस देवता को चढ़ा देते हैं जिससे कि मन्नत मांगी गई थी। यह छोटी सी बच्ची मंदिर में रहने वाली उन औरतों के सुपुर्द कर दी जाती है जो इसी तरह देवता की भेंट चढ़ाई हुई होती हैं। इनका काम मंदिर में देवता के सन्मुख नाचना-गाना होता है। इनके सामने न तो कोई उच्च आदर्श होता है और न इन्हें उच्च शिक्षा ही मिलती है। इसी कारण धूर्त लोग इन्हें अपने चंगुल में फंसा लेते हैं और इस प्रकार धर्म के नाम पर पाप करते हैं। सब से प्रथम तो मंदिर के पुजारी दूषित वातावरण में रहने के कारण इन्हें भ्रष्ट करते हैं। फिर तो ये देवदासियाँ धनिक यात्रियों और दर्शकों की सेवा-सुश्रूषा के लिए भी भेज दी जाती हैं। इस प्रकार ये लोगों के अन्दर व्यभिचार की प्रचारिका बन जाती हैं। अगर देवदासी की प्रथा को बन्द कर दिया जाय तो व्यभिचार का यह सरे आम प्रचार बहुत कुछ रुक जाय।

इस तरह हम देखते हैं कि समाज में गुप्त रूप से बहुत बड़े पैमाने पर व्यभिचार फैला हुआ है।

शहरों में जो हमें व्यभिचार के प्रकट अड्डे और बाजार दिखाई देते हैं वह तो इस पाप की तलछट मात्र है। जिन भूली-भटकी स्त्रियों को दुराचार के कारण सगे-सम्बन्धी त्याग देते हैं, समाज जिन्हें घृणा की नजर से देखता है, और जिनके लिए अपने गांव या आसपास के प्रदेश में जीवन कष्ट-मय हो जाता है वे अन्त में ऊब कर सरे आम अपने शरीर का हाट लगा कर शहरों में बैठती हैं; और पेट के लिए पाप कमाती हैं। समाज में गुप्त रूप से जितना पापाचार फैला हुआ है उसकी तुलना में यह प्रकट वैश्या-व्यभिचार नगण्य सा है। जैसी ये स्त्रियां होती हैं वैसे ही इनके पास जाने वाले पुरुष भी समाज की तलछट होते हैं। इनके न प्रतिष्ठा होती न लज्जा। यह वेश्या-व्यभिचार की बुराई मध्यभारत और दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत में अधिक फैली हुई है। गुजरात काठियावाड़ में और भी कम है।

वेश्या-व्यभिचार के विषय में विशेष लिखना व्यर्थ है। यह एक गन्दी प्रथा है। मनुष्य जाति के लिए यह अत्यन्त लज्जा-जनक वस्तु है। इसकी जड़ में स्त्रियों के वास्तविक गौरव सम्बन्धी हमारा अज्ञान है। अगर हम उनके गौरव को जानते होते, संयम के महत्व का हमें ख्याल होता, वैवाहिक बन्धनों में एक दूसरे को बांधते समय विषय की अपेक्षा पारस्परिक कल्याण का हम ख्याल रखते होते तो समाज में न इतना गुप्त व्यभिचार बढ़ता और न समाज के कलंकरूप वेश्याएं इतनी दिखाई देतीं।

व्यभिचार को रोकने का सबसे सरल तरीका यही है कि

पति-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट हों। पति-पत्नी में रूप, रंग, गुण, शील, स्वास्थ्य और शक्ति आदि में उचित समानता होनी चाहिए। परन्तु ये सब बातें दो व्यक्तियों में एक सी कभी नहीं रह सकतीं। अतः जितनी अधिक समानता मिले प्राप्त की जाय और शेष बातों में पारस्परिक सहानुभूति और सहन-शीलता से काम ले लिया जाय। इन सब बातों में स्वभाव का मेल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। समान स्वभाव अर्थात गुणशील वाले भिन्न-भिन्न जाति तथा देश वाले व्यक्ति भी भाई-भाई की तरह रह सकते हैं। परन्तु असमान गुणशील वाले भाई-भाई भी साथ-साथ नहीं रह सकते। अतः पति-पत्नी के लिए समान गुणशील वाला होना बहुत जरूरी है। फिर भी शिक्षा और संस्कार बहुत कुछ सहायता करते हैं।

इस सारे व्यभिचार के लिए हमारे ख्याल से स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष ही अधिक जिम्मेदार हैं। पुरुषों ने अपने आपको स्त्रियों का भाग्य-विधाता बना लिया है। जिन बातों को वे इष्ट समझते हैं वही समाज में प्रचलित हो सकती हैं जिन्हें वे बुरी समझते हैं उनकी निन्दा होती है। पुरुषों ने अपने लिए व्यभिचार सह्य बना करके बहुत भारी गलती की है। स्त्रियों के लिए व्यभिचार जितना निन्द्य बताया गया है; व्यभिचारिणी स्त्री के साथ जितनी कड़ाई के साथ व्यवहार होता है, उतनी ही कड़ाई पुरुषों के साथ भी हो, वैसे ही कठोर दण्ड पुरुषों को हों तो यह पाप बहुत कुछ कम हो सकता है। स्त्री अपना पेट भरने में प्रायः परावलम्बिनी रहती है। इसलिए एक आध बार गलती हो जाने पर यदि वह समाज की नजर में आ जाती है तो उसके लिए आजीविका प्राप्त करना कठिन हो जाता है। सदाचारी समाज

उसे उबारने की कोशिश करने के बजाय सदा के लिए त्याग देता है तहां पापी लोग उसे और भी गिराने के लिए दौड़ पड़ते हैं। ऐसी हालत में उनका सुधार असम्भव हो जाता है।

भारतीय समाज के इस भीषण पतन का आखिरी कारण है उनकी पराधीनता। यह इस पतन का कारण और परिणाम दोनों है। परकीय सत्ता की अधीनता में समाज इतना पामर, आदर्शहीन, निकम्मा और गैर जिम्मेदार बन गया है, उसके वीर्य-विकास के स्वाभाविक मार्ग या साधन इतने दुर्गम और दुर्लभ और अनाकर्षक कर दिये गये हैं, और उसके सामने पतन की ऐसी-ऐसी लुभावनी सामग्री प्रति दिन पेश की जा रही है, साथ ही उसे इतना अकर्मण्य भी बना दिया है कि स्त्री-पुरुषों को अपनी शौर्योत्कर्ष की क्षुधा शान्त करने के लिए कोई मार्ग ही नहीं दिखाई देता। धन, वैभव और यौवन मिलते ही इनके सदुपयोग का कोई अच्छा सा मार्ग ही उन्हें नहीं मिलता। शासक प्रभुओं से मिलकर कोई काम करने में (Humiliation) अवमानना होती है, साधारण समाज में हिल-मिलकर काम करने के लिए हृदय की असाधारण विशालता की जरूरत है। और स्वतंत्र रूप से किसी काम को करने की इन धनीमानियों में क्षमता नहीं होती। तब सिवा विषय-विलास के इन्हें सूझे ही क्या ? ऊँचे दर्जे के लोग अपने मनोरंजन के लिए विषय-विलास में मग्न हैं और निम्न श्रेणी के लोग अपने दुःखों को भुलाने की गरज से शराब खोरी और व्यभिचार में फंस जाते हैं। इस तरह सारा राष्ट्र क्षीण हो रहा है।

गुप्त रोग

अनीति मूलक विषयोपभोग से स्त्री-पुरुषों को अनेक प्रकार के और भीषण गुप्त रोग हो जाते हैं। शरीर में अगर कोई सब से अधिक कीमती चीज है तो वह है वीर्य! वीर्य ही मनुष्य का आधार है। शरीर में अगर वीर्य है तो मनुष्य अथक परिश्रम कर सकता है। खूब अध्ययन कर सकता है। वह वीर और प्रतिभाशाली भी होता है। उसमें उत्साह-शक्ति का खजाना होता है। परन्तु वीर्य के नष्ट होते ही मनुष्य की शक्ति, साहस, उत्साह और प्रतिभा में जमीन-आसमान का अन्तर हो जाता है। ऐसी अमूल्य शक्ति को खोना एक महान अपराध है। परमात्मा उस मनुष्य को और कोई अलहदा दण्ड नहीं देते। उस शक्ति का स्वयं अभाव ही अनेकों दुखों, कष्टों, अवमाननाओं और रोगों का कारण होता है।

अनीति-मूलक सम्बन्धों से दो प्रकार की हानि होती है।

१ सामाजिक अव्यवस्था

२ गुप्त रोग

यदि विवाहित पुरुष अपनी प्रतिज्ञा को तोड़ कर अनीतिमय आचरण करने लग जायं तो उसका नतीजा घोर सामाजिक अशान्ति होगा। प्रत्येक स्त्री और पुरुष दिल से चाहता है कि अपने मनुष्य के प्रेम का उसे सम्पूर्ण उपभोग मिले। अतः जब कभी वह अपने प्रेमी को दूसरे व्यक्ति द्वारा उपयुक्त होता हुआ देखता है तो उसे वह असह्य हो जाता है। यह वृत्ति मानव स्व-

भाव में जन्मजात सी प्रतीत होती है। वह मनुष्य की मनुष्यता का एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसमें वह वृत्ति नहीं है वह मनुष्य नहीं कहा जा सकता। इस प्राकृतिक नियम का भंग करनेवाला मनुष्य-समाज का अपराधी समझा जाता है। फिर यह बात एक इस-लिए भी अपराध समझी जाती है कि गुप्त व्यभिचार द्वारा एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की स्त्री से विषयोपभोग करके उसके गृह-सौख्य को नष्ट करता है और उसके बोझ को बढ़ाता है। क्योंकि इस अनुचित सम्बन्ध से उत्पन्न होनेवाले बालक और उस विश्वास-घातिनी स्त्री का पालन-पोषण तो उस पति को ही करना पड़ता है। इधर अपनी पत्नी से विश्वासघात करनेवाला शख्स भी तो उसके निर्मल प्रेम को खो बैठता है। व्यभिचारी पुरुष की स्त्री का निर्मल बना रहना एक आश्चर्य ही की बात है? वह मनुष्य जो खुद पाप करता है अपनी पत्नी को पाप करने से कैसे रोक सकता है? इसके मानी यह नहीं कि व्यभिचारी पुरुष की पत्नी अवश्य ही व्यभिचारिणी होती है या उसे ऐसा हो जाना चाहिए। परन्तु बात यह है कि जहां किसी मनुष्य को दिल भर प्रेम नहीं मिलता, अगर वह प्यासा अपनी प्यास अन्यत्र बुझाने की कोशिश करे तो इसमें आश्चर्य की बात नहीं है। अतः व्यभिचारी पुरुष साव-धान हो जायं! वे याद रक्खें कि अपने आचरण द्वारा वे सारे घर का आचार भ्रष्ट करते हैं। व्यभिचारी पुरुष की स्त्री, लड़की, और लड़के का इस कुसंस्कार से पूरी तरह बचना असम्भव है।

पर यह मामला केवल आचार भ्रष्टता और सामाजिक अव्य-वस्था तक ही सीमित नहीं रहता। इस आचार विषयक गन्दगी से मनुष्य को कई भीषण रोग भी हो जाते हैं।

आंखों को गनोरिया का विष लग गया है।" बूढ़े ने कहा—यह असम्भव है। डाक्टर साहब ने कहा कि मेरा निदान गलत नहीं हो सकता। और हुआ भी यही। एक साल बाद बूढ़ा फिर आया और बोला—"डाक्टर साहब आपने सच कहा था। जब मैं पिछली बार आपके पास आया था, उस समय मेरा लड़का, जो बाहर नौकरी पर रहता है, यहां आया हुआ था। एक दिन जब उसने स्नान कर लिया तो मैं स्नान-गृह में गया। और मैंने स्नान करने पर उसी अंगोछे से अपना चेहरा पोंछा जिससे वह अपना शरीर पोंछ कर गया था। मुझे बाद में मालूम हुआ कि उन दिनों वह गनोरिया से पीड़ित था।"

और एक परिवार का हाल सुनिए। शनिवार की शाम—कारखानों में काम करने वाले के लिए बड़ी आनन्द दायक होती है। किसी व्यभिचारी गृहस्थ ने कारखाने से आते ही शनिवार की शाम को अपने स्नान-गृह में स्नान किया। उसके बाद उसके लड़के, लड़कियां स्त्री, बहन आदि सब ने स्नान किया। और सब के बदन पर सूजाक के फोड़े हो गये। यद्यपि प्रत्येक मनुष्य ने स्नान करते समय पानी बदल दिया था।

इस तरह कई बार एक का पाप अनेको को कष्ट देता है। यदि इस प्रकार किसी व्यभिचारी पुरुष ने अपनी स्त्री को सूजाक का शिकार बना दिया और दुर्भाग्यवश उसी समय वह गर्भवती भी हो गई तो बच्चे के लिए यह बड़ी घातक होती है। इस हालत में पति-पत्नी को चाहिए कि प्रसूति के पहले पहल माता को वे किसी तरह नीरोग कर दें। प्रसूति के समय यदि स्त्री की योनि दूषित रही तो बालक

निश्चय ही अन्धा होगा। हां, बाहर आते ही यदि उस विष को साफ धो दिया जाय तो उसकी आंखें बच सकती है।

इस प्रकार व्यभिचारी पुरुष केवल नैतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य-दृष्टि से भी एक भयंकर जन्तु है। पता नहीं, वह कब जान में या अनजान में अपने विष से हमारे शरीर और मन को विषाक्त बना दे।

डॉ० निसर ने सं० १८७९ में इस विष के जन्तुओं का पता लगाया। इसके पहले लोगों का ख्याल था कि गनोरिया छः मात सप्ताह में पूर्ण रूप से दूर हो सकता है। आज कल मामूली मरीजों को निरोग होने में छः महीने लग जाते हैं। खास तरह बिगड़े हुए मामलों में तो एक से लगाकर चार चार वर्ष तक लग जाते हैं।

पहले लोगों का ख्याल था कि यह रोग स्त्री-पुरुषों के जननेन्द्रियों तक ही सीमित रहता है। पर अब यह पाया गया है कि इसका जहर शरीर के अंग प्रत्यंग में घुस जाता है। यह तो मस्तिष्क, फेंफड़े, जिग, गुर्दा यकृत तथा शरीर के तमाम जोड़ों तक खून के साथ पहुँचकर धावा कर देता है।

डॉ० गर्नसी अपनी Plain Talk on Avoided Subgects नामक पुस्तक में लिखते हैं।

जब किसी आदमी को सूजाक होता है तो आप भले ही रुग्ण स्थान पर कुछ लगा लगा कर या इन्जेक्शन लगाकर उसे बार बार धो दें पर वह हमेशा के लिए कभी नहीं जाता। यह विष तो गुप्त रूप से शरीर में जीवन भर बना रहता है, और सिकुचर डिसूरिया, ग्लीट आदि रूपों में प्रकट होता रहता है। इससे

दूषित पुरुष अथवा स्त्री से विषयोपभोग करने से या मासिक धर्म की अवस्था में स्त्री से भोग करने से सूजाक के जन्तु कुपित हो जाते हैं और पुरुष की मूत्र नलिका में सूजन पैदा हो जाती है। स्त्रियों का मूत्र-द्वार तो अत्यंत क्षुद्र होता है इसलिए उन्हें इससे उतना कष्ट नहीं होता। इस रोग के कीटाणु उनकी योनि से पुरुष के जननेन्द्रिय में घुस जाते हैं और मूत्र-नलिका को रोक कर उसमें सूजन पैदा करके उसे कड़ा बना देते हैं। इसके कारण अस्वाभाविक लिंगोद्रेक होने लगता है। इस अवस्था को अंगरेजी में कॉर्डी कहते हैं। जब लिंगोद्रेक होता है तो सूजा हुआ हिस्सा तन जाता है। इस क्रिया से अंदर की मुलायम चमड़ी फट जाती है और उसमें घाव हो जाता है। घाव मूत्र-मार्ग पर होने के कारण पेशाब करते समय मनुष्य को भयंकर कष्ट होता है।

अब प्रकृति घाव को भरना शुरू करती है। जब कोई घाव भरता है तो घाव भरने के बाद वहां पर एक गूथ पड़ जाती है। गूथ पड़ने पर मांस कुछ बढ़ जाता है। मूत्र-मार्ग पर हुआ घाव जब भर जाता है तब उस घाव के स्थान पर पड़ी हुई गूथ और गूथ के चमड़े से मूत्र-मार्ग बिलकुल बन्द हो जाता है। (इसको "स्ट्रिक्चर" कहा जाता है) इसे दूर करने के लिए भयंकर पीड़ा होती है। लोहे की एक टेढ़ी सलाई जननेन्द्रिय में डाली जाती है। मरीज़ को उस समय जो वेदनायें होती हैं उनको यहां लिख बताना असम्भव है। इसकी असह्य वेदना के कारण रोगी उस समय इतने ज़ोर से अपने दांत दबाता है कि उनके टूटने का भय रहता है। इसी ख्याल से डॉक्टर लोग मरीज के मुँह में चमड़ा या ऐसा ही

कोई नरम पदार्थ रख देते हैं। पथरी के और स्ट्रिक्चर के ऑपरेशन में फर्क सिर्फ इतना ही है कि पथरी के ऑपरेशन की अपेक्षा इसमें समय कुछ कम लगता है। पर सूजाक के रोगी को यह रोग बार-बार होता रहता है। जब स्ट्रिक्चर के कारण मूत्र मार्ग बन्द हो जाता है तब पेट में एक अलग छेद करके उस रास्ते से कई दिन और महीनों तक मूत्र को निकालना पड़ता है। इसके अलावा इसी के कारण, मनुष्य के गुप्त अंगों के आस-पास अर्थात् रांग और शरीर के जोड़ के स्थान की ग्रंथियाँ भी बढ़ जाती हैं इनको "बद" कहा जाता है। मनुष्य को इससे भी बड़ा कष्ट होता है। कभी-कभी तो इसका दर्द बिना आपरेशन के कम नहीं होता।

कॉर्डी अर्थात् अस्वाभाविक लिंगेन्द्रिक की अवस्था में घावों से खून भी बहने लगता है। इससे रोगी की अवस्था और भी गंभीर हो जाती है। आगे चल कर जब यह रोग अधिक बढ़ जाता है तब उसे लिंगक्षय नामक रोग हो कर पुरुष की तमाम जननेन्द्रिय सड़ कर नष्ट हो जाती है!

सुजाक का विष बड़ा तीव्र होता है। मरीज को इस रोग की दवा करते हुए तथा मामूली अवस्था में भी खूब सावधान रहना चाहिए। भूल से भी यदि इस विष का स्पर्श कहीं आँखों को हो गया तो समझ लेना चाहिए कि वह आदमी हमेशा लिए अन्धा हो गया। इस रोग की भयंकर संक्रामकता के विषय में डॉ० सिलवानिस स्टॉल नीचे लिखे उदाहरण देते हैं।

एक पचास साल का बूढ़ा किसी आंख के डॉक्टर के पास गया और अपनी दुखती हुई आंख दिखाने लगा। डाक्टर ने कहा—"आपकी

दिनों बाद दोनों अच्छे हो सकते हैं। पर इससे मनुष्य को निर्भय नहीं हो जाना चाहिए। क्योंकि सिफलिस का राक्षस रह-रह कर और हर समय पिछली बार से डरावना रूप लेकर आता है और मनुष्य पर आक्रमण करता है।

द्वितीय अवस्था।

दूसरी अवस्था में विष सारे शरीर में भीषण रूप से प्रकट होने लगता है। इस अवस्था को एक महीने से लेकर कोई चार छः महीने भी लग जाते हैं। शरीर पर फुन्सियां ताम्बे के रंग के चकत्ते और चिट्ठे दिखाई देते हैं। बदें बढ़ जाती हैं। जबान पर, मुंह में और कण्ठ में फोड़े हो जाते हैं। पेट, जिगर, आदि तक में विष फैल जाता है। बालों की जड़ें ढीली हो जाती हैं, और बाल गिरने लग जाते हैं। आदमी का उत्साह मर जाता है। विष दिमाग़ तक भी पहुँच जाता है। जिस के फल स्वरूप आदमी पागल और मृगी का रोगी हो जाता है। ये हैं द्वितीय अवस्था के कुछ लक्षण। इसकी आयु कुछ निश्चित नहीं। एक से ले कर तीन वर्ष तक यह अवस्था रहती है।

तीसरी अवस्था

इस अवस्था को पहुँचने पर रोग बाह्य अंग को छोड़ कर शरीर के भीतर और भी गहरे घुस कर कर हड्डियों पर आक्रमण करता है। पहले-पहल गठिया की तरह तीव्र वेदना होती है। सिफलिस की पीड़ा संधियों में नहीं बल्कि दो संधियों के—खासकर घुटने और टखनों के बीच और कुछ सिर पर भी होती है। रात को वह इतनी बढ़ जाती है कि रोगी को बिस्तर पर पड़े रहना भी

मुश्किल सा हो जाता है। हड्डियां Brittle अर्थात इतनी कमजोर हो जाती है कि वे जरा से जोर लगने पर टूटने लग जाती हैं। नाक भी गल जाती है। ऐसे कई अभागों को हम शहरों की सड़कों पर देखते हैं, जिनकी नाक पांव और हाथ की हड्डियां गलगई हैं। डॉक्टर नफीज एक ऐसे आदमी का हाल लिखते हैं जो अपने पैर से बूट खींचने लगा तो जांघ से पूरी टांग ही उखड़ कर अलग हो गई ! एक औरत की खोपड़ी में ऊपर में छेद ही हो गया। इस तरह एक नहीं हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं और हम ऐसे अभागों को समाज में घूमते हुए तथा अपना दुखमय जीवन व्यतीत करते हुए रोज देखते हैं। सिफलिस का बीमार कभी इस डर से मुक्त नहीं हो सकता कि उसके भी हाथ पैर या नाक इसी तरह कभी गल के नष्ट हो जायेंगे।

यह रोग अत्यन्त भयंकर है। इसका शिकार होने पर आदमी का जीवन दयनीय, और दुःखमय हो जाता है। मरीज को जो अपार दुःख होता है उसकी तो बात ही अलग है; परन्तु यों भी उसकी सूरत और शरीर ऐसा गन्दा और घिनौना हो जाता है कि उसे स्पर्श करने तो दूर उसकी तरफ देखने को भी जी नहीं चाहता। उसके कीटाणुओं में संक्रामकता भी भयंकर होती है

एक युवक एक डॉक्टर के पास इस रोग का इलाज कराने के लिए गया। डॉक्टर ने इसकी भयंकरता को दिखाते हुए युवक को खान-पान रहन-सहन आदि के विषय में इतनी हिदायतें दीं कि युवक ने घबरा कर कहा "तब तो, डाक्टर साहब, मेरा मर जाना ही भला है।" डाक्टर ने कहा "बिलकुल ठीक है तुम अपने

आदमी का दिल घबड़ा जाता है। इसीके कारण वृद्ध अवस्थामें मरीज की बड़ी दुर्दशा होती है और शनैः शनैः मरीज प्लास्टिक न्यूमोनिया से ग्रसित होकर मर जाता है।

शेष दो गुप्त रोगों के नाम कंक्राइड और सिफलिस (गर्मी)। पहले पहल दोनों एक से मालूम होते हैं। पर उनकी प्रकृति में महान अन्तर है। कंक्राइड केवल जननेन्द्रिय का और केवल बाह्य चर्म-रोग है! उससे खून दूषित नहीं होता। दूषित स्त्री पुरुष से सम्पर्क होने पर ९ दिन में इसको फुन्सी दिखाई देती है। औषधि करने पर जल्दी अच्छी भी हो जाती है। इसका शरीर पर कोई स्थायी परिणाम भी नहीं होता और न यह कोई आनुवंशिक संस्कार छोड़ता है।

पर कैंकर या सिफलिस, जिसे संस्कृत में फिरंगी रोग कहते हैं, बहुत ही भंयकर रोग है। इसके नाम से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में यह रोग पहले था ही नहीं और यदि होगा भी तो इस परिमाण में नहीं। चौहदवीं और पंद्रहवीं सदी में यूरोप के पश्चियों द्वारा भारत में इसका बहुत फैलाव हुआ। यह रोग बड़ा धोखा देता है। शरीर में इसके विष का प्रवेश हो जाने पर भी तीन से लेकर छः सप्ताह तक मनुष्य को इसके अस्तित्व का पता भी नहीं चलता। और जब इसकी पहली फुन्सी दिखाई देती है, जो कि एक आलपीन को टोपी से बड़ी नहीं होती, सारे शरीर में इसका विष फैल जाता है।

फिरंगी रोग अथवा सिफलिस (गर्मी) से कंक्राइड की तुलना करते हुए कंक्राइड बिलकुल मामूली मालूम होता है परन्तु वह भी इतना मामूली नहीं। इन दोनों रोगों की आश्चर्य जनक

समानता रोगी को घोर चिन्ता में डाल देती है। और जो सिफलिस की भयंकरता को जानता है उसे तब तक अनंत मानसिक कष्ट उठाने पड़ते हैं जब तक कि रोग का ठीक-ठीक निदान नहीं हो जाता। इन दोनों की पहिचान इस तरह है। कंकाइड की फुन्सी जल्दी-कुछ ही दिनों में दिखाई देने लगती है। सिफलिस की फुन्सी कई सप्ताह तक प्रकट नहीं होती। बाह्य रूप में दोनों एकसी होती हैं परन्तु सिफलिस की फुन्सी ज़रा कड़ी होती है और कंकाइड की फुन्सी अपेक्षा कृत नरम। बस इन दोनों रोगों की खास पहिचान यही है। कंकाइड की फुन्सी ज़रा दर्दी होती है। सूजन भी उसमें अधिक होती है। परन्तु शरीर के खून पर उसका कोई असर नहीं होता। औषधोपचार से यह जल्दी जाती भी रहती है। पर सिफलिस की फुन्सी तो तभी दिखाई देती है जब उसका विष सारे शरीर में फैल जाता है। सिफलिस की फुन्सी तो भीतरी और फैले हुए रोग का एक लक्षण मात्र है। इस फुन्सी को देखते ही रोगी और डॉक्टर को भी अधिक भीषण चिन्हों वाली दूसरी अवस्था के लिए तैयार रहना चाहिए।

सिफलिस की नीचे लिखी तीन अवस्थायें होती हैं।

प्रथमावस्था।

प्रथमावस्था में वह छोटी सी फुन्सी दिखाई देती है। उसका नीचे का हिस्सा कड़ा होता है। कुछ दिनों बाद वह बढ़ कर एक खुले मुंह वाला फोड़ा हो जाती है। इसके आस-पास की पपड़ी सुर्ख रहती है। गनोरिया की भांति कंकाइड और सिफलिस के रोगी को भी मद तो होता ही है। पर औषधोपचार से कुछ

	दवा ले जाने वाले मरीज	वहीं इलाज कराने वाले
जे जे हास्पिटल	३० फी सैकड़ा	१८ फी सैकड़ा
मोती बाई स्त्री औषधालय	२९	—
जनरल प्रेक्टीशनर्स	११	—

पर यह संख्या तो बिलकुल अपूर्ण है। कितने ही युवक लज्जा के मारे शफाखाने जाते ही नहीं। बदमाश और बेईमान विज्ञापन बाज वैद्यों और हकीमों के लुभावने और धोखा देने वाले विज्ञापनों के चक्कर में आकर वे खराब दवाइयां खाते हैं और जो अपने शरीर और धन को यों ही बरबाद करते रहते हैं।

शहरों में गुप्त रोगों के विशेष प्रचार का कारण यह है कि वे पश्चिमी उद्यम के केन्द्र हो रहे हैं। यहां पर आस पास के प्रदेशों के लोग धन कमाने के लिए आ जाते हैं। परन्तु शहर में खर्चा अधिक पड़ता है इस लिए अपने बाल-बच्चों का नहीं लाते भारत के कुछ मुख्य मुख्य शहरों में १९२१ की मनुष्य-गणना के अनुसार फी एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों का संख्या इस प्रकार थी।

शहर का नाम	फी एक हजार पुरुषों के पीछे स्त्रियों की संख्या
कलकत्ता	५००
बम्बई	५२४
लाहोर	५७१
रंगून	४४४
रावलपिंडी	४४१

दिल्ली	६७२
अहमदाबाद	७६३
सूरत	९०२
त्रिचना पल्ली	९८८

इस तरह अकेले पुरुष शैतान के चक्कर में जल्दी आ जाते हैं।

देश में विवाह-संस्था जब तक सुव्यवस्थित नहीं हो जाती तब तक व्यभिचार और व्यभिचार से गुप्त रोग बराबर बढ़ते ही रहेंगे। इस समय देश की जन-संख्या इस तरह बंटी हुई है—

	पुरुष	स्त्रियां
अविवाहित	८.०	५.४
विवाहित	७.१	७.१
वैधव्य या विधुरा अवस्था में	१.०	२.६
	१६.१	१५.१

संख्या करोड़ों में हैं। धनाभाव के कारण कितने ही युवकों को अविवाहित ही रहना पड़ता है। सो उधर कई लड़कियाँ धन के लोभ में आ कर बूढ़ों से व्याह दी जाती है और विधवायें हो जाती है! इन कुआरों और विधवाओं में पापाचार बढ़ना अस्वाभाविक नहीं है।

फौजों के सिपाहियों में यह रोग बहुत फैला हुआ रहता है। बहुत दिन तक नीतिशील वायु-मण्डल के अभाव अथवा जबरदस्ती संयम से रहने के कारण जब सिपाही फौज से छुट्टी ले कर कहीं इधर-उधर जाते हैं, तो व्यभिचार के कूए में आंखें मूंद कर कूद

आप को मरा हुआ समझलो तो अच्छा हो। इसी में अब तुम्हारा और समाज का कल्याण है।

पर जीते जी इस तरह मरे के समान रहना कौन पसंद करेगा ?"

डॉक्टरों में इस बात पर बड़ा मतभेद है कि सिफलिस पूर्ण तया निर्मूल हो सकता है या नहीं। किन्तु इसकी भयंकरता के विषय में तथा आनुवंशिक संक्रामकता के विषय में दो मत नहीं है। डाक्टर सिल्वानस स्टॉल लिखते हैं—"अगर प्रारम्भिक अवस्था में ही अच्छा इलाज हो गया और बराबर दो तीन वर्ष तक इलाज जारी रक्खा तो शायद मनुष्य को वह आगे कोई कष्ट न भी दे। परन्तु इसका कुछ निश्चय नहीं। कभी-कभी चार-छै वर्ष तक मनुष्य बिलकुल अच्छा हो जाता है और एकाएक फिर वही बीमारी भीषण आक्रमण कर देती है। इसलिए जहां एक ओर इस रोग का शिकार बने हुए युवक के लिए उसकी पीड़ा से बचने की कुछ आशा है तहां कोई यह समझ कर इस पाप के चक्कर में न पड़े कि "उं: क्या है। एक दो इन्जेक्शन लगवा लेंगे।"

कलकत्ता के इण्डियन मेडिकल रेकार्ड ने व्यभिचार जन्य महारोगों पर एक विशेषांक प्रकाशित किया है। उसमें नड़ियाद के डाक्टर पुराणिक लिखते हैं :—

"सिफलिस और गनोरिया से जो भयंकर परिणाम निकलते हैं ? उन सबको यहां लिखना कठिन है। सिफलिस पागलपन का एक मुख्य कारण है। हाय ब्लड प्रेशर के मरीजों में से अधिकांश सिफलिस के रोगी निकलेंगे। संसार में जितने अधूरे गर्भपात होते हैं और मरे बच्चे पैदा होते हैं, उनमें से फी सदी

९० का कारण सिफलिस है। हम संसार में जितने बदसूरत और विकलांग लोगों को देखते हैं उनमें से अधिकांश के पैदा करने वाले माता-पिता सिफलिस के मरीज थे। स्त्रियों की प्रायः सारी गुप्त बीमारियों का कारण सिफलिस या गनोरिया या दोनों होते हैं। जो लोग बचपन में अंधे होते हैं उनमें से ८० फी सदी के अंधेपन का कारण खोजने पर गनोरिया पाया जायगा।"

गुप्त रोग उन में लोगों में सब से अधिक पाये जाते हैं, जो वेश्या-व्यभिचार और शराब खोरी के शिकार है। ये दोनों गुप्त रोगों के मुख्य कारण है। बल्कि सच तो यह है कि जितनी भी कामोत्तेजक चीजें हैं, वे सब मनुष्य को व्यभिचार में प्रवृत्त करके समाज में गुप्त रोगों को बढ़ाती है।

यद्यपि इस भयंकर रोग के शिकार बने हुए लोगों की ठीक-ठीक संख्या मिलना कठिन है, तथापि जो कुछ भी जानकारी अब तक प्राप्त हुई है उसके आधार पर यही कहा जा सकता है कि यह रोग समाज की प्रत्येक जाति और वर्ग में फैला हुआ है। यूरोप के बड़े बड़े शहरों में फी सैकड़ा बीस स्त्री-पुरुष इसके शिकार बने हुए हैं। विशेषज्ञों का कथन है कि भारत के शहरों में यह परिमाण यूरोप से कहीं अधिक है। क्यों कि यूरोप में तो इनके इलाज की कहीं सुविधायें हैं। यहां तो कुछ भी नहीं है।

बम्बई के गुप्त रोग निरवारक संघ से नीचे लिखे अंक प्राप्त हो सकते हैं।

करने वाले को कितने ही लोग एक कोरा आदर्शवादी कहेंगे। उनके ख्याल से जब तक संसार में मानवजाति है तब तक व्यभिचार बराबर बना रहेगा। पर यहां तो स्वभाव-भेद की बात है। संसार में दो प्रकार के लोग हैं। एक पक्ष यह मानता है कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है, और दूसरा यह कि मनुष्य स्वभावतः दुष्ट है, वह अभ्यास से थोड़ा बहुत सुधर सकता है किन्तु बुराई के कीटाणु उसके अन्दर से कभी नष्ट नहीं होते। मैं यह मानता हूं कि मनुष्य स्वभावतः सत्प्रवृत्त है। वह परमात्मा की एक विभूति है। इस लिए उसमें अनंत शक्ति भरी हुई है, बुराई उसका गुण धर्म नहीं बाह्य विकार है। इस लिए घोर से घोर पतित अवस्था से भी वह केवल एक निश्चय मात्र से मुक्त हो सकता है। हां उसका शरीर भले ही कुछ काल तक कृत-कर्मों का फल भुगतता रहे परन्तु उसकी आत्मा तो उसी क्षण मुक्त हो जाती है। अजामिल जैसे भारी व्यभिचार की मुक्ति की कथा में यही रहस्य है। सदियों से पराधीनता के पाश में पड़ा हुआ देश स्वाधीनता का निश्चय मात्र करते ही गुलामी से मुक्त हो जाता है उसका कारण यही है एक-एक क्षुद्र घटना ने मनुष्यों के चरित्र में अद्भुत परिवर्तन कर दिया है। एक मानिनी पत्नी के ताने ने विषय के दास बने हुए तुलसीदास को परमात्मा का अप्रतिम भक्त बना दिया। जरूरत तो मानसिक परिवर्तन की है। शरीर तो जड़ वस्तु है। लोग मानव-स्वभाव के स्वार्थीपन और दुष्टता की चाहे कितनी ही चिल्लाहट क्यों न मचाते रहें परन्तु संसार का अधिकांश व्यापार-व्यवहार इसी सत्प्रवृत्ति के आधार और विश्वास पर होता है। इस लिए निश्चय है कि सुशासन और संत पुरुषों की दया से

पृथ्वी से व्यभिचार बिल्कुल उठ सकता है। आज हम भले ही उस आदर्श से सैंकड़ों कोस दूर हों, पर यह दूरी हमें उसके नजदीक पहुँचने के प्रयत्न से नहीं रोक सकती। फिर यदि शारीरिक मानसिक और आत्मिक पवित्रता संसार में कुछ मूल्य रखती है, यदि वह प्राप्त करने योग्य वस्तु है, तो हमें उन तमाम बातों को बन्द करना ही होगा जो इसकी प्राप्ति में बाधक हैं।

दूसरे, सारे संसार को पाप मय समझने की इस विचार शैली में क्या सार है—कौनसी प्रेरणा और स्फूर्ति है, क्या आश्वासन है और ऊंचे उठने की कौनसी आशा है! मनुष्य को पापी स्वार्थी और विकारी जीव कहने से तो मनुष्य अपनी कमजोरियों का समर्थन करना सीखता है। अनेक पापियों को अपने पाप के समर्थन में विश्वामित्र, पाराशर, नारद, आदि की पतन-कथाएं कहते हुए सुना गया है। वे कहते हैं कि जो बात ऋषि मुनियों के लिए असम्भव थी उसे हम कैसे कर सकते हैं। यह कह कर वे और भी पतित होते हैं और अपने जीवन को दुखमय बना लेते हैं। अस्तु।

इस लिए अच्छा तो इसीमें है कि मनुष्य पहले निश्चय पूर्वक समझ ले कि संसार से व्यभिचार बराबर नष्ट हो सकता है और फिर उस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दे।

इसमें सब से पहले ध्यान में रखने योग्य बात यह है कि इन मामलों में मनुष्य सारे संसार का विचार करने की अपेक्षा पहले अपना ही विचार करे। पहले अपने-आपको इस बुराई से दूर करे। यदि वह पर-स्त्री गमन का पाप कर रहा है तो पहले पत्नी-व्रती बने। फिर शनैः शनैः अपने आपको गार्हस्थ्य जीवन में भी ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करे। यदि

पड़ते हैं और गुप्त रोगों के शिकार बन कर लौटते हैं। यही जब समाज में सम्मिलित होते हैं तब इन रोगों को स्वभावतः फैलाने के कारण बन जाते हैं।

१९२५ में सरकारी फौज के सिपाहियों में यह रोग नीचे लिखे परिमाण में था :—

	कुल संख्या	गुप्तरोग के रोगी	फी सहस्र
अंगरेजी सोल्जर	६०,०००	४,१३९	७२
फौज के देशी सिपाही	१,३६,०००	२,४७५	१८

पर इस भयंकर रोग के दो अंग और भी अधिक हृदय-विदारक हैं। एक तो वे निर्दोष गृहिणियां जो अपने पापी पति के संसर्ग से इसका शिकार बनती है और दूसरे वे नन्हे-नन्हे कोमल बच्चे जो अपने माता-पिता से यह भीषण प्रसाद विरासत में पाते हैं।

बम्बई के गुप्त-इंद्रिय-रोग-निवारक संघ में इलाज करानेवाले मरीजों में फी सैकड़ा ४८ युवक विवाहित थे और फी सैकड़ा ५० महिलाएं ऐसी थीं जो पति की कृपा से इस रोग का शिकार बनी थीं। इन निर्दोष गृहिणियों को इन भयंकर रोगों के प्रहार से जो कष्ट होता होगा उसकी कल्पनामात्र से रोमांच हो जाता है।

अब हम बालकों की दशा का और अवलोकन करें। केवल बम्बई में ९००० बच्चे एक वर्ष की उम्र होने के पहले ही इस लोक की यात्रा को समाप्त कर देते हैं। इनमें से ३००० अपनी माता के उदर से ही किसी न किसी रोग को साथ लेते आते हैं। अलावा इसके बम्बई में प्रतिवर्ष कई हजार गर्भ-पात होते हैं, जिनकी निश्चित संख्या जान लेना बहुत कठिन है। इनमें से फी सैकड़ा

६० इसी जघन्य रोग से होते हैं। प्रतिवर्ष २००० मरे बच्चे बम्बई में पैदा होते हैं। बम्बई की द्वारकादास डिसपेन्सरी में, जो बम्बई में बच्चों का सब से बड़ा शफाखाना है, प्रति पांच बच्चों में एक प्राय-सिफलिस का शिकार है। डॉ० सॉक्रेटिस का कथन है कि हमारी अन्धशालाओं में फी सैकड़ा ३०; मूकशालाओं में फी सैकड़ा २५, और मूढ़ तथा पागलों में से जो कि हमारे अस्पतालों के मरीजों की संख्या बढ़ाते हैं फी सैकड़ा ५० इसी रोग के जीते-जागते परिणाम हैं।

इन निर्दोष जीवों के इस अकथनीय कष्ट और दुःख के अतिरिक्त इस भयंकर रोग से देश के शारीरिक, राजनैतिक और आर्थिक संपत्ति पर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है? देश की जन-संख्या में कितनी घोर हानि है?

और इन सब बुराइयों की जड़ है व्यभिचार। प्रतिशत ९६ वेश्याएं फिर वे पेशेवाज़ हों या सभ्य-परदानशीन, इस भीषण रोग से विषाक्त होती हैं।

प्रत्येक विवाहित, अविवाहित तथा विधवा स्त्री जो इस पाप मार्ग पर पैर रखती है। गुप्तरोग रूपी सांप के मुँह में अपना पैर देती है। वह पुरुष भी जो कि इस भयंकर मार्ग पर लापरवाही या शौक के लिए पैर रखता है अपनी अकाल-मृत्यु, भीषण रोग और अपनी स्त्री, बच्चों तथा सारे घर भर के लिए अनन्त कष्टों को निमन्त्रण देता है।

अब संक्षेप में हमें यह देखना है कि इन भयंकर रोगों से मानव-जाति कैसे बच सकती है? गुप्त रोगों से मानव जाति के बचाने के मानी हैं व्यभिचार की बन्दी। व्यभिचार की बन्दी की बातें

मनुष्य सच्चा साधक होगा, अपने विकारों और आदर्श के साथ यदि वह खिलवाड़ नहीं कर रहा होगा तो उसे यह सुधार करने में देर न लगेगी।

दुर्भाग्यवश जो युवक गुप्त रोगों के शिकार बन गये हैं, वे जीवन की आशा न छोड़ें। धीरज के साथ किसी साधु-स्वजन से अपने दुर्भाग्य की कहानी कह दें, और उसपर अपने सुधार और उद्धार का भार छोड़ दें। वह जैसा कहे उसीके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करें। जब तक इस बीमारी से वे पूर्णतया निरोग न हो जायं, अपने आपको धर्म-भाव-पूर्वक अछूत समझे रहें। अपने उपयोग की चीजें दूसरों को न दें उन्हें अलग ही रक्खें। क्यों कि वे स्मरण रक्खें कि इस महारोग के कीटाणु इतने भयंकर होते हैं कि जरा से संसर्ग मात्र मे ये दूसरे मनुष्य पर आक्रमण कर देते हैं। एक बात वे खास तौर से ध्यान में रक्खें। कभी इश्तिहार बाज वैद्य, डॉक्टर या हकीमों के चंगुल में फंसकर वे अपने धन और स्वास्थ्य को बरबाद न करें। जहां तक हो अच्छे अनुभवी डॉक्टर या वैद्यों से ही इलाज करावें।

पर समाज से बीमारी को मिटाने के लिए क्या किया जा सकता है।

सब से पहली और निहायत जरूरी बात तो यह है कि जनता में व्यभिचार की बुराई और गुप्त रोगों की भयंकरता को प्रकट करने के लिए खूब प्रचार होना जरूरी है। यह काम वैद्य और डॉक्टर बड़ी अच्छी तरह कर सकते हैं। पाठशालाओं और महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को भी इस विषय का ज्ञान करा दिया जाय तो बड़ा अच्छा हो।

(२) विद्यालयों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा पर अधिक जोर दिया जाय। विद्यार्थियों के चित्त पर आचार-पवित्रता का महत्त्व खूब अंकित कर दिया जाय। इसके लिए प्राचीन गुरुकुल पद्धति सर्वश्रेष्ठ है।

(३) फिर हमें उन समस्त असमानताओं को मिटाना होगा जो आज कल हमारी वैवाहिक प्रथाओं में हैं। यह कोशिश करनी होगी कि प्रत्येक पति और पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट रह सकें।

(४) संयम का आदर्श रखते हुए भी समाज में किसी पुरुष अथवा स्त्री की यह अवस्था नहीं होनी चाहिए जिससे उसे अपने विकार की तृप्ति के लिए अनुचित मार्गों का अवलंबन करना पड़े।

(५) पतित मनुष्यों का त्याग करने की अपेक्षा उन्हें सुधारने की कोशिश होनी चाहिए। इसके लिए आश्रम-संस्थाएं बड़ी उपयोगी होंगी।

(६) गुप्त इन्द्रिय रोग के तमाम रोगियों को समाज से अलग करके उनका इलाज होना चाहिए। धनिक लोगों और सरकारों को चाहिए कि वे इन लोगों के लिए अलग औषधालय बनावें क्यों कि यह रोग इतना भयंकर है कि मामूली औषधालयों में इस के रोगियों को रखना दूसरों के लिए बड़ा खतरनाक है। साथ ही इस रोग का इलाज कराना भी इतना खर्चीला है कि मामूली हैसियत का आदमी इसका इलाज नहीं करा सकता

यह काम बहुत विशाल है। यह पूर्णतया तभी हो सकता है जब वैद्य,डाक्टर, समाज-सुधारक अर्थशास्त्री और राजनीतिज्ञ आदि सब मिल कर इस काम के पीछे पड़ जायँ।

सरकार तो इस काम में सब से अधिक मदद कर सकती है। कानून द्वारा यह गुप्त रोग के रोगियों के लिए बड़े-बड़े औषधालय बनवा सकती है, जब तक डाक्टरी परीक्षा द्वारा यह सिद्ध न हो जाय कि रोगी अच्छा हो गया है, उस मनुष्य को विवाह करने और अन्य प्रकार से समाज में उस रोग को फैलाने से रोक सकती है। और भी नाना प्रकार के कानून बना कर अन्य तरह से अच्छी संस्कृति का प्रचार करके व्यभिचार तथा गुप्त रोगों को रोक सकती है। परन्तु अभी हमारे देश में सरकार से यह आशा करना वृथा है। इस लिए सहृदय पुरुषों को चाहिए कि वे अपने प्रयत्न स्वतंत्र रीति से जितनी जल्दी हो सके शुरू कर दें। यह एक विषय ऐसा है जिसमें कि मतभेद के लिए गुंजाइश होती है। इस लिए प्रत्येक देश के सज्जनों इस बुराई को भारत से दूर करने के काम में लग जाय।

परिशिष्ट

(रूस के विख्यात महात्मा टॉल्स्टॉय ने नशेबाजी पर एक बहुत बढ़िया निबन्ध लिखा है। यद्यपि यह लम्बा तो है, तथापि हम अपने पाठकों के लाभ के लिए उसका मुख्य अंश यहां उद्धृत कर देते हैं। हिन्दी अनुवाद श्री जनार्दन भट्ट एम. ए. का है, और टॉल्स्टॉय के सिद्धान्त नामक पुस्तक में श्री शिवनारायण मिश्र द्वारा प्रताप पुस्तकालय कानपुर से प्रकाशित हुआ है। इसके लिए लेखक और प्रकाशक के हम अनुगृहीत हैं। निबन्ध यों हैं:-

लोग नशा क्यों करते हैं ?

लोग शराब, गांजा, भांग, ताड़ी इत्यादि क्यों पीते हैं ? लोग अफीम इत्यादि नशीली चीजें क्यों खाते हैं ? जहां शराब इत्यादि का अधिक प्रचार नहीं है वहां भी तम्बाकू का इस्तेमाल इतना ज्यादा क्यों होता है ? नशा करने की आदत लोगों में किस तरह से शुरू हुई और सभ्य तथा जंगली हर तरह के लोगों में यह आदत क्यों इतनी फैली हुई है ? लोग नशे में अपने को क्यों रखना चाहते हैं ? यह सब प्रश्न हैं जिनपर इस लेख में विचार किया जायगा।

किसी से पूछिए कि भाई तुम्हें शराब पीने की लत किस तरह से लगी और तुम शराब क्यों पीते हो, तो वह जवाब देगा कि सब लोग पीते हैं इसीसे मैं भी पीता हूँ और इसके अलावा शराब पीने से एक मजा भी मिलता है। कुछ लोग तो यहां तक कह

डालते हैं कि शराब तन्दुरुस्ती के लिए बहुत मुफ़ीद है और उसके पीने से एक मज़ा भी मिलता है। किसी तम्बाकू पीनेवाले से पूछिए कि भाई तम्बाकू तुम क्यों पीते हो तो वह जवाब देगा कि हर एक आदमी पीता है, इसीसे मैं भी पीता हूँ, इसके अलावा तम्बाकू पीने से समय अच्छी तरह कट जाता है। अफ़ीम, चरस, गांजा, भांग इत्यादि खानेवाले लोग भी शायद इसी तरह का जवाब देंगे।

तम्बाकू शराब, अफीम इत्यादि के तैयार करने में लाखों आदमियों की मेहनत खर्च होती है और लाखों बीघा, बढ़िया से बढ़िया जमीन इन सब चीजों के पैदा करने में लगाई जाती है। हरएक आदमी इस बात को कबूल करेगा कि इन नशीली चीजों के इस्तेमाल से कैसी कैसी भयानक बुराइयां लोगों में पैदा होती हैं। इसके अलावा इन नशीली चीजों की बदौलत जितने आदमी दुनियां में मौत के शिकार होते है उतने कुल लड़ाइयों और छूत वाली बीमारियों की बदौलत भी नहीं होते। लोग इस बात को अच्छी तरह से जानते हैं इसलिए उनका यह कहना कि "सब लोग पीते हैं इससे मैं भी पीता हूँ" या "समय काटने के लिए पीता हूँ" या "मजे के लिए पीता हूँ" बिलकुल गलत है। लोगों के नशा करने का सबब कोई दूसरा ही है।

मनुष्य के जीवन में प्रधानतया दो प्रकार के कार्य दिखाई पड़ते हैं। एक तो वे कार्य हैं जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार करता है, और जो उसीके अनुसार किये जाते जाते हैं और दूसरे प्रकार के कार्य वे हैं जिन्हें अन्तरात्मा स्वीकार नहीं करता और जो बिना अन्तरात्मा की राय के किये जाते हैं।

कुछ लोग पहले प्रकार के कार्य करते हैं और कुछ लोग दूसरे

प्रकार के। पहले प्रकार के कार्यों में सफलता पाने का सिर्फ एक उपाय है और वह यह है कि हम अपनी आत्मा को उन्नत करें, अपने आत्मिक-ज्ञान की वृद्धि करें और अपने आत्मिक-सुधार की ओर दत्तचित्त हों। दूसरे प्रकार के कार्यों में सफलता पाने के दो उपाय हैं—बाह्य और दूसरा आंतरिक। बाह्य उपाय यह है कि हम ऐसे कामों में अपने को लगायें जिनके कारण हमारा ध्यान अन्तरात्मा की पुकार की ओर न जाने पाये और आन्तरिक उपाय यह है कि हम अपनी अन्तरात्मा को ही अन्धा और प्रकाशहीन बना दें।

अगर कोई आदमी अपने सामने की चीज को न देखना चाहे तो वह दो प्रकार से ऐसा कर सकता है—या तो वह अपनी नजर कसी चीज पर लगा दे जो ज्यादा तड़क भड़कदार है, या वह अपनी आंखों को ही बन्द कर ले। इसी तरह मनुष्य भी अपनी अन्तरात्मा के संकेतों को दो प्रकार से टाल सकता है—या तो वह अपने ध्यान को खेल-कूद, नाच-रंग, थियेटर, तमाशे और तरह तरह की फिक्रों और कामों में लगा दे या अपनी उस शक्ति ही पर पर्दा डाल दे। जिसके द्वारा वह किसी बात पर ध्यान लगा सकता है। जो लोग बड़े ऊंचे चरित्र के नहीं हैं, और जिनका नैतिक भाव बहुत परिमित है, उनके लिए खेल, कूद, तमाशे वगैरह इस बात के लिए काफी होते हैं। लेकिन जिनका चरित्र बहुत ऊंचा और जिनका नैतिक-भाव बहुत प्रबल है, उनके लिए यह बाहरी उपाय अकसर काफी नहीं होते। इसलिए वे शराब, गांजा, भांग, तम्बाकू इत्यादि से अपने दिमाग को जहरीला बना देते हैं, जिससे उनकी अन्तरात्मा अन्धकारमय हो जाती है और तब वे उस विरोध को नहीं देख

सकते जो उनकी अन्तरात्मा और उनके अमली-जीवन के बीच में पैदा हो गया है।

दुनिया में लोग गांजा, भांग, चरस, शराब, तम्बाकू वग़ैरह इसलिए नहीं पीते कि उनका ज़ायक़ा बढ़िया होता है या उनसे कोई ख़ुशी हासिल होती है, बल्कि इसलिए लोग नशा करते हैं कि वे अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ को सुनना नहीं चाहते। लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमें अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम को कर लेने के बाद शरम न मालूम पड़े। या लोग नशा इसलिए करते हैं कि जिसमें वे ऐसी हालत में हो जायं कि अपनी अन्तरात्मा के विरुद्ध किसी काम के करने में उन्हें कोई हिचक न पैदा हो।

जब आदमी नशे में नहीं रहता तो वह किसी वेश्या के यहां जाने, चोरी करने या किसी को हत्या करने में शरमाता है। पर जो आदमी नशे में रहता है वह इन कामों को करते हुए नहीं शरमाता। इस लिए जो मनुष्य अपनी आत्मा और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध कोई काम करना चाहता है, वह नशा पी कर अपने को बदहोश कर लेता है। मुझे याद है कि एक बार एक बावरची ने उस औरत को मार डाला जिसके यहां वह नौकर था। उसने अदालत के सामने अपने बयान में कहा कि जब मैं छूरा लेकर अपनी मालकिन को मारने के लिए उसके कमरे में जाने लगा, तो मैंने सोचा कि जब तक मैं अपने पूरे होश में हूं तबतक मैं इस काम को नहीं कर सकता। इसलिए मैं लौटा और दो गिलास भर कर शराब पी ली। तभी मैंने उस काम के योग्य अपने को समझा और तभी मैंने यह हत्या की। दुनिया में ९० फी सदी अपराध इसी तरह से किये

जाते हैं। दुनिया में जितनी पतित स्त्रियाँ हैं उनमें से आधी स्त्रि शराब के नशे में ही पतित होती हैं। जो लोग पतित स्त्रियों के घरों जाते हैं उनमें से आधे लोग तभी ऐसा करते हैं जब वे शराब के नशे होते हैं। लोग अच्छी तरह से जानते हैं कि शराब पीने से अन्तरात्मा या विवेक-बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है और तब वे मनमाना—जो चाहें सो—कर सकते हैं। वे इसी मतलब से जान बूझकर शराब पीते हैं।

लोग न सिर्फ अपनी ही अन्तरात्मा की आवाज़ को दबाने के लिए खुद शराब पीते हैं बल्कि जब वे दूसरों से उनकी अन्तरात्मा के विरुद्ध कोई काम कराना चाहते हैं तो उन्हें भी जान बूझकर शराब पिला देते हैं। लड़ाइयों में सिपाही आम तौर पर शराब पिला कर मस्त कर दिये जाते हैं जिससे कि वे खूब अच्छी तरह से लड़ सकें। जब लड़ाई में कोई किला या शहर दुश्मनों के कब्जे में आ जाता है तो दुश्मनों के सिपाही अरक्षित बुड्ढों और बच्चों को मारने से तथा लूटपाट करने से हिचकते हैं पर ज्यों ही उन्हें शराब पिला दी जाती है त्यों ही वे अपने अफसरों की आज्ञा के अनुसार अत्याचार करने लगते हैं। हर कोई यह देख सकता है कि जो लोग चरित्रहीन हैं और जिनका जीवन दुराचारमय है, वे नशों का व्यवहार बहुत अधिक करते हैं। हर एक को मालूम है कि लुटेरे, वेश्यायें और व्यभिचारी मनुष्य बिना नशे के नहीं रह सकते।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि तम्बाकू पीने से बदन में एक तरह की फुर्ती आ जाती है, दिमाग साफ हो जाता है, और उससे आत्मा को कुंठित करनेवाला वह असर भी नहीं पैदा होता जो शराब से होता है। लेकिन अगर आप ध्यान दे कर इस बात को

देखें कि किस हालत में तम्बाकू पीने की इच्छा आपको होती है, तो आपको निश्चय हो जायगा कि तम्बाकू का नशा भी आत्मा को उसी तरह कुंठित बना देता है जिस तरह से कि शराब का नशा बनाता है। ध्यान देने से आपको यह भी मालूम होगा कि लोग तम्बाकू तभी पीते हैं जब उन्हें अपनी आत्माको कुंठित करने की जरूरत पड़ती है। लोग अक्सर यह कहते हैं कि हम चाहे बिना भोजन के रह जायें, लेकिन बिना तम्बाकू के नहीं रह सकते। अगर तम्बाकू का इस्तेमाल सिर्फ दिमाग को साफ करने या बदन में फुर्ती लाने के लिए किया जाता हो तो उसके लिए लो इतने उतावले न होते और न उसे भोजन से ज्यादा जरूरी समझते।

एक आदमी ने अपने मालिक को मारना चाहा। जब वह उसे मारने के लिए आगे बढ़ा तो यकायक उसकी हिम्मत जाती रही। तब उसने एक सिगरेट निकाल कर पिया। सिगरेट का नशा चढ़ते ही उसके बदन में फुर्ती आ गई और फौरन जाकर उसने अपने मालिक का काम खत्म कर दिया। इससे साफ जाहिर है कि उस समय उस आदमी में सिगरेट पीने की इच्छा इसलिए नहीं पैदा हुई कि वह अपना दिमाग साफ करना चाहता था, या अपना चित्त प्रसन्न करना चाहता था, बल्कि वह अपनी उस आत्मा को मूर्छित करना चाहता था जो उसे हत्या करने से रोक रही थी।

जब मैं स्वयं तम्बाकू पिया करता था उस समय की याद मुझे है। मुझे तम्बाकू पीने की खास जरूरत उसी समय पड़ा करती थी, जब मैं किसी चीज को टालना चाहता था या उस पर विचार नहीं करना चाहता था। मैं बिना किसी काम के बैठा हुआ हूँ और जानता हूँ कि मुझे काम में लगना चाहिए, पर काम करने की

इच्छा न होने से तम्बाकू पीते हुये बैठे ही बैठे समय काट देता हूँ। मैंने ५ बजे किसी के यहां जाने का वादा किया है पर बहुत देर हो गई है। मैं जानता हूँ कि मुझे वहां ठीक वक्त पर जाना चाहिए था। पर मैं उसपर विचार नहीं करना चाहता, इसलिए तम्बाकू पी कर उस बात को भुला देता हूँ। मैं जुआं खेल रहा हूँ, उसमें मैं अपने वित्त से अधिक हार गया हूँ — बस उस दुःख को मिटाने के लिए सिगरेट पीने लगता हूं। मैं कोई खराब काम कर बैठता हूँ। मुझे उस काम को स्वीकार कर लेना चाहिए, पर उसके बुरे नतीजे से बचने के लिए दूसरों पर उसका दोष मढ़ता हूं और अपने चित्त को शांति करने के लिए सिगरेट का दो एक कश पी लेता हूं। इसी तरह के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

छोटे छोटे लड़के तम्बाकू पीना कब शुरू करते हैं? आम तौर पर जब उनकी लड़काई का भोलापन जाता रहता है। क्या बात है कि तम्बाकू पीने वालों का नैतिक जीवन और उनका आचरण पहिले से अधिक सुधर जाता है ज्यों ही वे तम्बाकू पीना छोड़ देते हैं? पर ज्यों ही वे दुराचार में पड़ जाते हैं त्यों ही तम्बाकू पीना फिर शुरू कर देते हैं। क्या कारण है कि करीब कुल जुवारी तम्बाकू जरूर पीते हैं? क्या कारण है कि उन स्त्रियों में तम्बाकू पीने की आदत बहुत कम पाई जाती है जो अपना जीवन बड़े नियम और सदाचार के साथ व्यतीत करती हैं? क्या कारण है कि सभी वेश्यायें तम्बाकू का नशा करती हैं? कारण यह है कि तम्बाकू पीने से आत्मा मूर्छित हो जाती है और आत्मा मूर्छित होने से लोग दुराचार और पाप कर्म बिना किसी हिचक के कर सकते हैं।

लोग अपने जीवन को अपनी अंतरात्मा के अनुमति के

अनुसार नहीं बनाते, बल्कि वे अपनी अंतरात्मा को जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार मोड़ लेते हैं। जिस तरह व्यक्तियों के जीवन में यह बात दिखलाई पड़ती है, उसी तरह समाज या जाति के जीवन में भी यह बात दिखलाई पड़ती है। क्योंकि समाज या जाति व्यक्तियों का ही एक समूह है।

लोग नशे के द्वारा अपनी अंतरात्मा को कुंठित क्यों कर देते हैं और उसका नतीजा क्या होता है इसे जानने के लिए हरएक मनुष्य को अपने आत्मिक जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं पर दृष्टि डालनी चाहिए। हर एक मनुष्य के सामने अपने जीवन के हर एक भाग में कुछ नैतिक प्रश्न ऐसे आते हैं जिनका हल करना उस के लिए बहुत जल्दी होता है और जिसके हल होनेपर ही उस के जीवन की कुल भलाई निर्भर रहती है। इन प्रश्नों को हल करने के लिए बहुत ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती ही है। किसी बात पर ध्यान लगाने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है और जहां परिश्रम करना पड़ता है वहां खासकर शुरू में तकलीफ होती है और उसके करने में बहुत कठिनता मालूम पड़ती है। जहाँ काम अखरने लगा कि फिर उसके करने की उसे इच्छा नहीं होती और हम उसे छोड़ देते हैं। शारीरिक कामों के सम्बन्ध में जब यह बात है, तो फिर मानसिक बातों को क्या कहना, जिन में और भी अधिक परिश्रम पडता है। मनुष्य सोचता है कि इस तरह के प्रश्नों को हल करने में परिश्रम करना पड़ता है, अतएव उस परिश्रम से बचने के लिए नशा पी कर वह अपने को बदहोश कर लेता है। अगर अपनी शक्तियों को बदहोश करने के लिए उसके पास कोई जरिया न हो

तो वह उन प्रश्नों को हल करने से बाज नहीं रह सकता जिनको हल करना उसके लिए बहुत ही जरूरी है। लेकिन वह देखता है कि इन प्रश्नों से बचने के लिए एक जरिया उसके हाथ में है और वह उसे काम में लाता है। ज्योंही इस तरह के प्रश्न उसे पीड़ा देने लगते हैं त्योंही वह नशे का इस्तेमाल करके उस पीड़ा से बचने की कोशिश करता है। इस तरह से जीवन के अत्यन्त आवश्यक प्रश्न महीनों, वर्षों या कभी कभी जिन्दगी भर तक बिना हल हुए पड़े रहते हैं।

जिस तरह से कोई मनुष्य गंदे पानी की तह में पड़े क़ीमती मोती को देख कर उसे लेना चाहता है, पर उस गंदे पानी के अन्दर घुसना नहीं चाहता और इसलिए उसे अपनी नजर से दूर करना चाहता है। मिट्टी बैठ जाने से पानी ज्योंही साफ होने लगता है त्योंही वह उसे हिला देता है जिसमें कि मोती दिखलाई न पड़े। इसी तरह से हम लोग जीवन के प्रश्नों को हल करने से बचने के लिए, जब जब वे प्रश्न हमारे सामने आते हैं, तब तब नशा पी कर अपने को बदहोश करते रहते हैं। बहुत से लोग जिन्दगी भर तक इसी तरह अपने को बदहोश करते रहते हैं और हमेशा के लिए अपनी आत्मा को कुंठित कर डालते हैं।

शराब, भांग, तम्बाकू इत्यादि नशों का परिणाम व्यक्तियों पर जो होता है वह तो होता ही है, किन्तु समाज और जाति पर उसका बहुत बुरा असर पड़ता है। आजकल के अधिकतर लोग कोई न कोई नशा, कम हो या ज्यादा, जरूर करते हैं। या तो वे थोड़ी शराब पीते हैं या थोड़ी भांग पीते हैं या थोड़ी तम्बाकू का सेवन करते हैं या सिगरेट इत्यादि पीते हैं। सभ्य से सभ्य और विद्वान

विद्वान लोग भी कोई न कोई नशा जरूर करते हैं। हमारे माज या देश के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और कला-म्बन्धी हर एक विभाग का कार्य और प्रबन्ध इन्हीं सभ्य, शिक्षित र विद्वानों के हाथ में है, जो किसी न किसी नशे के आदी हो रहे । इसलिए वर्त्तमान समय की समाज का हरएक काम प्रायः उन गों के द्वारा हो रहा है जो किसी न किसी नशे के प्रभाव में रहते । आम तौर पर यह ख्याल किया जाता है कि जिस मनुष्य ने गले दिन शराब या और कोई नशा पिया है वह दूसरे दिन काम रने के समय उस नशे के असर में बिल्कुल नहीं रहता। पर यह ल्कुल गलत ख्याल है। जिस मनुष्य ने एक बोतल शराब गले दिन पी है या अफीम का एक अच्छा नशा अगले रोज माया है वह दूसरे दिन कभी गम्भीर और स्वाभाविक हालत में हीं रह सकता। जो आदमी थोड़ी सी शराब या थोड़ी सी तम्बाकू ो पीने का आदी है उसका दिमाग तबतक अपनी स्वाभाविक लत में नहीं आ सकता जब तक कि वह कम से कम एक हफ्ते लिए, शराब और तम्बाकू पीना बिल्कुल न छोड़ दे।

इसलिए जो कुछ हमारे चारों तरफ दुनिया में हो रहा उसमें अधिकतर उन लोगों के द्वारा हो रहा है जो अपनी म्भीर और स्वाभाविक दशा में नहीं रहते। मैं यह पूछता हूं क अगर लोग नशे में न होते अर्थात् वे अपनी स्वाभाविक दशा में ते तो क्या वे उन सब कामों को करते जो वे कर रहे हैं। मैं क उदाहरण आपके सामने रखता हूं। कुल यूरोप के लोग कई र्षों से इस बात में मशगूल हैं कि कोई ऐसा तरीका निकाला ाय जिससे कम से कम समय में अधिक से अधिक आदमी मारे

जा सकें। वे अपने जवानों को, ज्योंही, वे हथियार पकड़ने के क़ाबिल होते हैं, त्योंही दूसरों को क़त्ल करने की शिक्षा देते हैं। हरएक आदमी यह जानता है कि किसी असभ्य या जंगली जाति के हमले से बचने के लिए यह तैयारी नहीं है। सब लोग यह जानते हैं कि अपने को सभ्य और शिक्षित कहने वाली जातियें एक दूसरे को मारने के लिए ही यह तैयारियां करती हैं। सब लोग यह जानते हैं कि इन कामों से संसार में कितना कष्ट, कितनी दुर्दशा, कितना अन्याय और कितना अत्याचार हो रहा है पर तब भी सब लोग सेनाओं, हत्याओं, और युद्धों में शरीक होते हैं। क्या होश में रहने वाले लोग इस तरह का काम कर सकते हैं? नहीं, सिर्फ वही लोग ऐसा कर सकते हैं जो हमेशा किसी न किसी नशे में रहते हैं।

मेरा ख्याल है कि आजकल जितने लोग अपनी आत्मा के विरुद्ध काम करते हुए जिन्दगी बिता रहे हैं उतने पहले कभी नहीं थे। इसका सब से बड़ा कारण यह है कि हमारे समाज के बहुत अधिक लोग शराब और तम्बाकू के आदी हो रहे हैं। शराब और तम्बाकू के आदी होकर वे अपने को नशे में डाले रहते हैं। इस भयानक बुराई से छुटकारा जिस दिन मिलेगा वह दिन मनुष्य जीवन के इतिहास में सोने के अक्षरों से लिखने के योग्य होगा। वह दिन नजदीक आता हुआ मालूम पड़ रहा है। क्योंकि अब लोग इस बुराई को पहिचानने लगे हैं और यह समझने लगे हैं कि इन नशीली चीजों से कितनी भयानक हानियां हो रही हैं। जब इस भाव का प्रचार अधिकतर होगा तभी लोग अपनी आत्मा की आवाज़ को अच्छी तरह से सुनने लगेंगे और तभी वे अपने जीवन को अपनी आत्मा के संकेतों के अनुसार नियमित करेंगे।

परिशिष्ट २

२

सुख, सिद्धि, और समृद्धि के नियम

(१) अगर आप विवाहित हैं तो याद रखिए कि पत्नी आप की साथिन, मित्र और सहकारिणी है। विषय तृप्ति का एक साधन नहीं!

(२) आत्म-संयम ही मनुष्य के जीवन का नियम है। अतः संभोग उसी हालत में उचित कहा जा सकेगा जब दोनों ही के अन्दर उसकी इच्छा पैदा हो। और वह भी तब, जब कि वह उन नियमों के अनुसार किया गया हो, जिन्हें कि पति-पत्नी दोनों ने भली प्रकार समझ कर बनाया हो!

(३) अगर आप अविवाहित हैं तो आपका अपने प्रति, समाज के प्रति और अपनी भावी जीवन-संगिनी के प्रति यह कर्त्तव्य है कि आप अपने को—अपने चरित्र को—पवित्र बनाये रक्खें। अगर आपके अन्दर सचाई और वफादारी की ऐसी भावना पैदा हो गई हो, तो यह भावना एक दुर्भेद्य कवच बन कर अनेक प्रलोभनों से आपकी रक्षा कर सकेगी।

(४) हमारे हृदय के अन्दर छिपी हुई उस परमात्म-शक्ति का हमें सदा स्मरण रखना चाहिए। चाहे हम उसे कभी देख न सकते हों, परन्तु हम अपनी अन्तरात्मा के अन्दर सदा यह अनुभव करते रहते हैं कि वह हमारे प्रत्येक बुरे विचार को भली-

भांति देख रही है। यदि आप उस शक्ति का ध्यान करते रहे तो आप देखेंगे कि वह शक्ति हमेशा आपकी सहायता के लिए तैयार रहती है।

(५) संयमी-जीवन के नियम, विलासी जीवन के नियमों से अवश्य ही भिन्न होंगे। इस लिए उचित है कि आपका मिलने जुलने वाला समाज अच्छा हो, आप सात्विक साहित्य पढ़ें, आपके विनोदस्थल अच्छे वातावरण से परिपूर्ण हों और खान-पान में आप संयत हों।

आपको हमेशा सत्-पुरुषों और सच्चरित्र लोगों की ही संगति करनी चाहिए।

आपको दृढ़ता पूर्वक उन पुस्तकों, उपन्यासों और मासिक-पत्रों का पढ़ना छोड़ देना चाहिए जिनके पढ़ने से आपकी कुवासनाओं को उत्तेजना मिले। आप हमेशा उन्हीं पुस्तकों को पढ़िए जिन से आपके मनुष्यत्व की रक्षा तथा पुष्टि हो। आप को किसी एक अच्छी पुस्तक को अपना आधार और मार्ग-प्रदर्शक बना लेना चाहिए।

सिनेमा और नाटकों से दूर ही रहना चाहिए, मनोविनोद तो वह है जिससे हमारे चरित्र का पतन न होकर, उसके द्वारा वह एक अच्छे सांचे में ढल जाता हो। अतः आपको उन्हीं भजन-मंडलियों में जाना चाहिए, जिनके भजनों का भाव और संगीत की ध्वनि आत्मा को ऊपर उठाती हो।

आपको भोजन स्वाद-तृप्ति के लिए नहीं, बल्कि क्षुधा-तृप्ति के लिए करना चाहिए। विलासी पुरुष खाने के लिए जीता है किन्तु संयमी पुरुष जीवित रहने के लिए खाता है। अतः आपको सब

तरह के उत्तेजक मसाले, शराब आदि नशीले पदार्थों से, जिन से कि आदमी के अन्दर उत्तेजना पैदा होती है, परहेज करना चाहिए। और मादक-द्रव्य आदि से भी बिल्कुल बचना चाहिए जिन से मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव पड़ता है कि भले बुरे के पहचान-ने की शक्ति नष्ट हो जाती है। आपको अपने भोजन की मात्रा और समय भी निश्चित और नियमित कर लेना चाहिए। जब आपको ऐसा मालूम पड़े कि आप विषय वासनाओं के वशीभूत होते जा रहे हैं तो पृथ्वी पर सर को टेक कर भगवान के दरबार में सहायता के लिए पुकारिए। मेरे लिए तो ऐसे समय पर रामनाम ने अव्यर्थ दवा का काम दिया है। इसके अलावा बाहरी उपचार की आवश्यकता हो तो "कटि स्नान" (Hip, Bash) मुफीद होगा इसकी विधि इस प्रकार है।

ठंढे पानी से भरे हुए टब में, पैरों को तथा कमर से ऊपरी हिस्से को इस प्रकार रक्खे कि वे भीगने न पावें। कमर से नीचे का हिस्सा ही पानी में रहे। इस प्रकार पानी में बैठने से थोड़े समय में आपको यह अनुभव होने लगेगा कि आपके विकार शान्त हो गये हैं। अगर आप कमजोर हैं तब तो आपको पानी में कुछ मिनिट ही बैठना चाहिए जिससे कि कहीं सर्दी न हो जाय।

(७) प्रति दिन तड़के उठकर खुली हवा में, खूब तेजी के साथ घूमा कीजिये। रात को खाना खाने के बाद, सोने से पूर्व, टहलिए भी।

(८) "जल्दी सोना और जल्दी उठना मनुष्य को स्वस्थ और बुद्धिमान बनाता है" यह एक अच्छी कहावत है। रात के नौ बजे सो जाना और सुबह चार बजे उठने का नियम बड़ा

अच्छा है। खाली पेट सोना हितकर है। इस लिए आपका शाम का भोजन, सायंकाल के ६ बजे के बाद नहीं होना चाहिए।

(९) याद रखिए कि मनुष्य ईश्वर का प्रतिनिधि है। उस का काम है कि वह प्राणी मात्र की सेवा करे और उसके द्वारा परमात्मा के गौरव तथा प्रेम की झलक संसार को दिखावे। अतः सेवा को ही अपने जीवन का परम सुख बना लीजिए, फिर आपको जीवन में किसी दूसरे आनन्द-साधन की आवश्यकता न रहेगी।

(Self-restraint vs.
Self-indulgence)

महात्मा गांधी

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

(स्थापना सन् १९२५ ई०; मूलधन ४५०००)

उद्देश्य—सस्ते से सस्ते मूल्य में ऐसे धार्मिक, नैतिक, समाज सुधार सम्बन्धी और राजनैतिक साहित्य को प्रकाशित करना जो देश को स्वराज्य के लिए तैय्यार बनाने में सहायक हो, नवयुवकों में नवजीवन का संचार करे, स्त्रीस्वातंत्र्य और अछूतोद्धार आन्दोलन को बल मिले।

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी विड़ला (सभापति) सेठ जमनालालजी बजाज आदि सात सज्जन।

मंडल से—राष्ट्र-निर्माणमाला और राष्ट्र-जागृतिमाला ये दो मालाएँ प्रकाशित होती हैं। पहले इनका नाम सस्तीमाला और प्रकीर्णमाला था।

राष्ट्र-निर्माणमाला (सस्तीमाला) में प्रौढ़ और सुशिक्षित लोगों के लिए गंभीर साहित्य की पुस्तकें निकलती हैं।

राष्ट्र-जागृतिमाला (प्रकीर्णमाला) में समाज सुधार, ग्राम-संगठन, अछूतोद्धार और राजनैतिक जागृति उत्पन्न करनेवाली पुस्तकें निकलती हैं।

स्थाई ग्राहक होने के नियम

(१) उपर्युक्त प्रत्येक माला में वर्ष भर में कम से कम सोलह सौ पृष्ठों की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। (२) प्रत्येक माला की पुस्तकों का मूल्य डाक व्यय सहित ४) वार्षिक है। अर्थात् दोनों मालाओं का ८) वार्षिक। (३) स्थाई ग्राहक बनने के लिए केवल एक बार ॥) प्रत्येक माला की प्रवेश फ़ीस ली जाती है। अर्थात् दोनों मालाओं का एक रुपिया। (४) किसी माला का स्थायी ग्राहक बन जाने पर उसी माला की पिछले वर्षों में प्रकाशित सभी या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति ग्राहकों को लागत मूल्य पर मिल सकती है। (५) माला का वर्ष जनवरी मास से शुरू होता है। (६) जिस वर्ष से जो ग्राहक बनते हैं उस वर्ष की सभी पुस्तकें उन्हें लेनी होती हैं। यदि उस वर्ष की कुछ पुस्तकें उन्होंने पहले से ही ले रखी हों तो उनका नाम व मूल्य कार्य्यालय में लिख भेजना चाहिए। उस वर्ष की शेष पुस्तकों के लिए कितना रुपिया भेजना चाहिये, यह कार्य्यालय से सूचना मिल जायगी।

स्वराज्य-संग्राम

(महात्मा गांधीके लेखोंका अनुवाद।)

प्रकाशक—

'विश्वमित्र' कार्यालय,

नं० १३, नारायणप्रसाद बाबू लेन, बड़ाबाजार, कलकत्ता।

प्रथमवार २०००

जून १९२१

मूल्य ॥) आना

Printed at the Vishwamitra Press, 13, Narain Prasad Babu Lane, Calcutta.

स्वराज्य संग्राम ।

खिलाफत ।

१—मैं क्यों आन्दोलनमें पड़ा ।

दक्षिण अफ्रिकाके एक माननीय मित्रने, जो इस समय इङ्गलैण्डमें रहते हैं, मुझे एक पत्र लिखा है जिसका कुछ अंश मैं यहां देता हूं :—

"निस्सन्देह आपको स्मरण होगा कि आप मुझे दक्षिण अफ्रिकामें उस समय मिले थे जब पादरी जे० जे० डोक आपकी वहांकी लड़ाईमें आपको सहायता दे रहे थे और पीछे मैं जब इङ्गलैण्ड लौटा था तब उस देशमें आपके साधुभावका मेरे हृदयपर भारी प्रभाव हुआ था। युद्धके पहले महीनोंतक मैंने अनेक स्थलोंपर आपकी ओरसे भाषण और वार्त्तालाप किये तथा लेख लिखे थे जिसके लिये मुझे खेद नहीं है। युद्धसे लौटनेके पश्चात् मैंने पत्रोंमें देखा है कि, आप और अधिक लड़ाका भाव ग्रहण कर रहे हैं......मैं 'टाइम्स' में एक रिपोर्ट देखता हूं कि आप हिन्दुओं और मुसलमानोंके ऐक्यका अनुमोदन करते और उस काममें

सहायता दे रहे हैं जिससे इङ्गलैण्ड और मित्रराष्ट्रोंको तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करने या तुर्क सरकारको कुस्तुन्तुनियासे निकाल बाहर करनेके मामलेमें परेशानी हो। मुझे आपकी न्यायबुद्धि और परोपकारशील स्वभावका पता है इसलिये मैं समझता हूं कि, इस ओर आपके लिये जो काम किये हैं उनके कारण मुझे यह पूछनेका अधिकार है कि, क्या यह रिपोर्ट सत्य है। मैं विश्वास नहीं कर सकता कि, आपने भूलसे ऐसे आन्दोलनमें सहायता दी है, जो तुर्क सरकारको निर्दय और अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचारिताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्व देनेवाला है। कारण यह कि पूर्वमें यदि इन हितोंको किसीने पददलित किया है, तो निश्चय ही यह देश तुर्की ही है। सीरिया और अर्मेनियाकी अवस्थाओंका मुझे प्रत्यक्ष ज्ञान है और मैं यही कल्पना कर सकता हूं कि यदि 'टाइम्स'में प्रकाशित रिपोर्ट सत्य है तो आपने अपनी नैतिक जिम्मेवारियोंको एकदम बाहर फेंक वर्तमान कालकी एक अराजकताका साथ दिया है। जो हो, जबतक मैं यह न सुन लूं कि यह आपका भाव नहीं है तबतक मैं अपने हृदयमें कोई खास विचार नहीं धारण कर सकता। कदाचित् इसका उत्तर देनेकी मेरे ऊपर आप कृपा करेंगे।"

मैं लेखकको उत्तर भेज चुका हूं। परन्तु सम्भव है कि इस अवतरणमें प्रकट किये हुए विचार मेरे अन्य कितने ही अंग्रेज मित्रोंके भी हों और क्योंकि जहांतक मुझसे हो सके मैं मित्रता या सम्मान खोना नहीं चाहता हूं इसलिये खिलाफत प्रश्नके सम्ब-

भमें मैं अपनी स्थिति जहांतक मुझसे हो सकता है वहांतक स्पष्ट कर देनेका प्रयत्न करूंगा। पत्रसे प्रकट होता है कि दायित्वशून्य पत्रसम्पादकताके कारण सार्वजनिक कार्यकर्ताओंको कितने संकटमें पड़ना होता है। 'टाइम्स'की जिस रिपोर्टका उल्लेख मेरे मित्रने किया है, वह मैंने नहीं पढ़ी है। परन्तु यह स्पष्ट है कि, उससे मेरे मित्रको सन्देह हो गया है कि मैं 'वर्तमान अराजकताओंके साथ हो गया हूं और ये सोचते हैं कि, मैंने अपनी 'नैतिक जिम्मेवारियोंको एक ओर फेंक दिया है।'

परन्तु सच तो यह है कि मेरी नैतिक जिम्मेवारियोंहीने मुझे खिलाफतका प्रश्न हाथमें लेने और मुसलमानोंका पूरा साथ देनेको बाध्य किया है। यह पूर्णतः सत्य है कि मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐक्य होनेमें सहायता दे रहा हूं, परन्तु इसलिये कदापि नहीं कि, "तुर्की साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करनेके मामलेमें इङ्गलैण्ड और मित्रराष्ट्रोंको परेशानी हो।" गवर्नमेण्टों या अन्य किसीको परेशान करना मेरे सिद्धान्तके विरुद्ध बात है। तो भी इसका यह अर्थ नहीं कि मेरे किसी कामके परिणामस्वरूप परेशानी न हो। परन्तु परेशान करनेका दोषी मैं अपनेको न समझूंगा यदि मैं पापीको उसके पापकर्ममें सहायता देनेसे इनकार करता हूं। खिलाफत-प्रश्नके सम्बन्धमें मैं प्रतिज्ञा भङ्ग करनेवालोंका साथ देनेसे इनकार करता हूं। मि० लायड जार्जने जो गम्भीर प्रतिज्ञा की थी प्रायः वही भारतीय मुसलमानोंका पक्ष है और जब धार्मिक आज्ञाओंसे भी उसकी पुष्टि होती है; तब वह

पक्ष अकाट्य हो जाता है। इसके सिवा यह कहना ठीक नहीं कि मैंने "वर्तमान कालकी एक अराजकताका" पक्ष ले रखा है, या मैंने भूलसे ऐसे आन्दोलनका अनुमोदन किया है जो तुर्की सरकारकी निर्दय और अन्याय्य स्वेच्छाचारिताको मानव जातिके हितोंसे अधिक महत्व देनेवाला है। तुर्की सरकारको 'अन्यायपूर्ण स्वेच्छाचारिताकी जो बात कही जाती है मुसलमानोंकी मांगमें कोई ऐसी बात नहीं है जिसमें उसे बनाये रखनेका आग्रह हो। इसके विरुद्ध मुसलमानोंने यह सिद्धान्त ग्रहण कर रखा है कि उस सरकारसे अल्पसंख्यक गैर-मुसलिम जातियोंकी रक्षाके सम्बन्धमें पूरी गारण्टी ले ली जाय। मैं नहीं जानता कि सीरिया और अर्मेनियाकी अवस्था कहांतक 'अराजकता'की समझी जा सकती है या उसके लिये तुर्क सरकार कहांतक जिम्मेवार है। मुझे बड़ा सन्देह है कि इन भागोंकी रिपोर्टें बहुत अत्युक्तिपूर्ण हैं और युरोपीय शक्तियां ही कई अंशोंतक उस कु-शासनकी जिम्मेवार हैं जो अर्मेनिया और सीरियामें है। परन्तु तुर्की या अन्य किसी अराजकताका समर्थन करनेमें मेरा कुछ भी अनुराग नहीं है। मित्रराष्ट्र तुर्की शासनका अन्त करने या तुर्की साम्राज्यको अङ्गभङ्ग करने अथवा उसे निर्बल करनेके सिवा अन्य उपायोंसे यह अराजकता सहज ही रोक सकते हैं। मित्रराष्ट्रोंको किसी नयी अवस्थाका उपाय नहीं करना पड़ रहा है। यदि तुर्कीका बंटवारा करना था तो युद्धारम्भमें ही स्पष्ट बात कह देनी चाहिये थी। तब प्रतिज्ञा भङ्ग करनेका कोई प्रश्न ही न उठता।

परन्तु वर्तमान अवस्थामें तो किसी भारतीय मुसलमानके हृदयमें ब्रिटिश मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओंका कुछ भी मूल्य नहीं है। मेरी रायमें तुर्कोंके विरुद्ध जो चिल्लाहट मच रही है, यह इसलामके विरुद्ध ईसाई मतकी चिल्लाहट है और चिल्लाहट मचानेमें इङ्गलैंड नेता है। हालमें मि० मुहम्मदअलीका आया हुआ तार इस धारणाको दृढ़ करता है, क्योंकि वे कहते हैं कि फ्रेंच जनता और सरकारसे हमारे डेपुटेशनको बड़ी सहायता मिल रही है यद्यपि इङ्गलैंडमें सहायता नहीं प्राप्त हुई थी। इस तरह यदि यह सत्य है और मेरी धारणा है कि यह सत्य है कि मुसलमानोंका पक्ष न्यायका है और उसका समर्थन धार्मिक आज्ञाओंसे होता है, तो हिन्दुओंके लिये अपनी पूरी शक्तिभर उनकी सहायता न करना कापुरुषतापूर्वक भाईका नाता तोड़ना होगा और फिर उन्हें अपने देशवासी मुसलमानोंसे आदर पानेका कुछ भी अधिकार न रह जायेगा। इसलिये सार्वजनिक सेवा करनेवाला होनेके कारण यदि मैं भारतीय मुसलमानोंको उनकी इस लड़ाईमें मदद न दूं जो उन्होंने खिलाफतको अपने धार्मिक विश्वासोंके अनुसार बनाये रखनेके लिये छेड़ रखी है, तो मैं उस पक्षके अयोग्य ठहरूंगा जो मैंने ग्रहण कर रखा है। मेरा विश्वास है कि उन्हें सहायता देनेमें मैं साम्राज्यकी सेवा कर रहा हूं, क्योंकि अपने देशवासी मुसलमानोंको उनके विचारोंको व्यवस्थित रूपसे प्रकट करनेमें सहायता देनेसे यह सम्भव हो जाता है कि आन्दोलन पूर्ण, व्यवस्थायुक्त और सफल भी होगा।

२—तुर्की सन्धि।

तुर्की सन्धिकी शर्तें १० वीं मईको प्रकाशित हो जायेंगी। कहा जाता है कि उनमें डार्डेनलीजको सार्वराष्ट्रीय करने गैली-पोलीपर मित्रराष्ट्रोंका अधिकार होने, कुस्तुन्तुनियामें मित्रसेनाएं बनाये रखने और तुर्कोंकी आर्थिक व्यवस्थापर नियन्त्रण रखनेको एक कमीशन नियुक्त करनेकी व्यवस्था है। सान रीमो कान-फरेन्सने मेसोपोटामिया (ईराक) और पैलेस्टिन (फिलिस्तीन) का शासन-प्रबन्ध ब्रिटेनको और सीरियाका फ्रान्सको सौंपा है। स्मिरनाके सम्बन्धकी प्राप्त सूचनाओंसे मालूम होता है कि, उसपर तुर्की प्राधान्य इस तरहसे प्रकट किया जायगा कि वहांकी जनताको यूनानकी पार्लमेण्टके लिये प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार न होगा, परन्तु पांच वर्षके पश्चात् स्मिरनाकी पार्ल-मेण्टको यूनानमें मिलनेके पक्षमें वोट देनेका अधिकार होगा और ऐसी अवस्थामें स्मिरनापरसे तुर्कोंका प्राधान्य हट जायेगा। चट्टलजाकी सीमाओंके भीतरकी भूमिपर ही तुर्कोंका प्राधान्य रहेगा। अमीर फिजूलकी स्थितिके सम्बन्धमें इसके सिवा और कोई खबर नहीं है कि ब्रिटेन और फ्रान्सके मैंडेट उनके सैनिक पदको असैनिक पदके रूपमें बदल देते हैं।

× × × × ×

हमने ऊपर तुर्की सन्धिकी शर्तें दी हैं जो रूटरके तारोंमें प्रकट की गयी हैं। ये सब खबरें अपूर्ण हैं और सभी समान रूपसे सप्रमाण नहीं हैं। किन्तु यदि ये शर्तें सच हैं, तो ये

मुसलमानोंकी मांगोंके विरुद्ध हैं। तुर्की साम्राज्य चटलजाकी सीमाओंतक ही परिमित हैं। इसका अर्थ यह है कि सुप्रीम कौंसिलके तीन बड़े राज्योंने थ्रेसको तुर्की राज्यसे अलग कर दिया है। यह स्पष्ट रूपसे इन तीन बड़े राज्योंमेंसे एककी अर्थात् ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीकी की हुई प्रतिज्ञाके विपरीत है। चटलजा सीमाओंके भीतर मित्रराष्ट्रोंके अधीन होकर रहना सुलतानके लिये अपमानजनक तथा कुरानकी आज्ञाओंके विरुद्ध है। यह अभीतक नहीं मालूम हुआ है कि सुप्रीम कौंसिलने एशियाई रूमको उपजाऊ और समृद्धिपूर्ण भूमिकी क्या व्यवस्था की है। यदि इस सम्बन्धमें हालमें प्रकट किये हुए मि० लायड जार्जके विचार मित्रराष्ट्रोंने स्वीकार कर लिये हैं—और यह बहुत सम्भव है—तो सब मित्रराष्ट्रोंके नियन्त्रणसे कमकी आशा नहीं हो सकती। स्मिरनाके विषयमें किया हुआ निर्णय किसीको सन्तुष्ट नहीं कर सकता यद्यपि ऐसा जान पड़ता है कि मित्रराष्ट्रोंने अपने प्रबन्धके द्वारा सम्बन्ध रखनेवाले सभी पक्षोंको प्रसन्न करनेका चतुरतापूर्ण प्रयत्न किया है। मि० लायड जार्जने खिलाफत डेपुटेशनको जो जवाब दिया है उसमें निष्पक्ष कमेटी-द्वारा सावधानतापूर्वक जांचकी बात कहते हुए कहा है, कि "जनताका बहुत ही बड़ा भाग निस्सन्देह तुर्कोंके शासनसे यूनानका शासन पसन्द करता है, ऐसा मैं समझता हूं।" परन्तु उनके इस निर्णयके अनुसार काम होना पांच वर्षके लिये स्थगित होता है।

× × × × ×

जब हम मैंडेटके प्रश्नको लेते हैं तो मित्रराष्ट्रोंके विचार और अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। अरब लोग स्वतन्त्रताका दावा करते हैं, यह तुर्क साम्राज्य बनाये रखनेके मार्गमें कठिनाई बतायी गयी है। इसका समर्थन स्वभाग्यनिर्णयके नामसे किया गया और ट्रांसलिवेनिया तथा अन्य प्रदेशोंका दृष्टान्त दिया गया है। जब अन्तिम घड़ी आयी तब मित्रराष्ट्रोंने लूटका माल आपसमें बांट लेनेका साहस किया है। ब्रिटेनको मेसोपोटामिया और फिलस्तीनका मैंडेट (शासनप्रबन्ध) सौंपा गया है और फ्रान्सको सीरियाका दिया गया है। हालमें अरबके प्रतिनिधियोंने जो पत्र प्रकाशित किया है उसमें मुक्त किये हुए अरब प्रदेशोंके सम्बन्धमें किये हुए सुप्रीम कौंसिलके निर्णयसे निराशा प्रकट की गयी है और यह निर्णय स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्तके प्रतिकूल बताया गया है।

× × × × ×

इस तरह तुर्की सन्धिके विषयमें जो थोड़ीसी खबरें आयी हैं वे सब प्रकारसे असन्तोष पैदा करनेवाली हैं। मुसलमानोंको मित्रराष्ट्रोंसे अधिक रूसकी प्रतिष्ठा करनेके लिये काफी कारण मिल चुका है। रूसने खीवा और बुखाराकी स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली है। जैसा अफगानिस्तानके अमीर महोदयने अपने भाषणमें कहा है, मुसलमान संसार रूसका कृतज्ञ होगा यद्यपि चारों ओर अफवाह है कि वहां अराजकता और अव्यवस्था है। इसके विरुद्ध कुल मुसलमान संसार अन्य यूरोपीय राष्ट्रोंकी

कारर्वाईसे क्रुद्ध होगा जो एक दूसरेसे मिलकर स्वभाग्य-निर्णयके नामपर और किसी अंशतक सभ्यताके हितके बहाने तुर्कीको सताना और उसका नामनिशान मिटाना चाहते हैं।

× × × × ×

तुर्की सन्धिकी शर्तें प्रधान मन्त्रीकी प्रतिज्ञा और स्वभाग्यनिर्णयके सिद्धान्तके विरुद्ध पाप ही नहीं हैं, बल्कि वे यह भी प्रकट करती हैं कि मित्रराष्ट्र कुरानकी आज्ञाओंकी अविचारपूर्ण उपेक्षा करते हैं। शर्तोंसे पता चलता है कि खिलाफतके सम्बन्धमें मि० लायड जार्जका जो गलत विचार है, उसे ही कौंसिलने स्वीकार किया है। मि० लायड जार्जकी तरह सान रीमोमें अन्य राजनीतिज्ञोंने भीखिलाफतकी तुलना पोपसे की है और कुरानमें जो आध्यात्मिक शक्तिके साथ ही सांसारिक शक्ति जोड़ रखी गयी है उसे भुला दिया है। ये मार्गभ्रष्ट राजनीतिज्ञ इतने अहङ्कारसे भरे हुए थे कि इन्होंने डेपुटेशनसे खिलाफतके सम्बन्धमें सच्ची बातें जाननेसे इनकार कर दिया। यदि उस विषयमें मि० मुहम्मद अलीकी बात सुनी होती तो ये अपनी गलती सुधार सकते थे। एसेक्स हालकी सभामें भाषण करते हुए मि० मुहम्मद अलीने खिलाफत और पोपके बीचका अन्तर बताया और स्पष्ट शब्दोंमें बता दिया कि खिलाफत-का क्या अर्थ है। उन्होंने कहा कि, "इसलाम राष्ट्रीय नहीं राष्ट्रीयसे ऊपर है। इसलामकी सहानुभूतिका आधार जीवनके सम्बन्धमें सर्व प्रकारकी दृष्टि और सब प्रकारकी सभ्यता है।...

इसके दो केन्द्र हैं। वैयक्तिक केन्द्र अरवका द्वीप है। खली
इसलाम धर्मके अनुयायियोंके प्रधान नायक हैं और उन
आज्ञाओंका पालन सभी मुसलमानोंको तबतक और केवल त
तक करना चाहिये, जबतक वे ईश्वरकी आज्ञाओं तथा नबी
परम्पराके प्रतिकूल न हों। परन्तु क्योंकि आध्यात्मिक औ
सांसारिक वस्तुओंमें कोई ऐसा भेद नहीं है जिससे वे प
दूसरेसे बिल्कुल ही पृथक् ठहरें इसलिये खलीफा पोपसे अधि
श्रेष्ठ हैं और वे पोपकी तरह नहीं कहे जा सकते। परन्तु
पोपसे कम भी हैं, क्योंकि वे निर्भ्रान्त नहीं हैं। यदि वे इस
लामके विरुद्ध हठात् आचरण करें, तो हम उन्हें पदच्युत क
सकते हैं। हम अनेक बार उन्हें पदच्युत कर भी चुके हैं
परन्तु जबतक वे केवल वही आज्ञा करते हैं जो इसलाम चाह
है तबतक हम उनका समर्थन अवश्य करेंगे। हमारे धर्म
रक्षक वे ही हैं और उनके सिवा और कोई नहीं है।"

ये कुछ शब्द सान रीमोंमें एकत्र लोगोंके हृदयमें जड़ जमाय
हुई भ्रान्तिको दूर कर सकते थे यदि वे ठीक ठीक निपटारेक
हृदयसे इच्छा करते होते। परन्तु मि० मुहम्मद अलीके डे
शनकी बात सन्धि-सभाने नहीं सुनी। उनसे कहा गया ि
सन्धिसभा इस प्रश्नपर भारतके सरकारी प्रतिनिधियोंकी बा
पहले ही सुन चुकी है। परन्तु खिलाफतके सम्बन्धमें मित्र
राष्ट्रोंके अब जो भ्रमपूर्ण विचार हैं, वे ही यह प्रकट करते हैं ि
इस सरकारी-प्रतिनिधि मण्डलके कार्योंका क्या प्रभाव हुअ

है। इन भ्रमपूर्ण विचारोंका परिणाम वर्तमान निपटारा है और यह अन्यायपूर्ण निपटारा संसारमें अशान्ति पैदा करेगा। वे जो करते हैं उसे नहीं जानते।

३— तुर्की संधिकी शर्तें।

इस समय सबसे मुख्य प्रश्न खिलाफतका है जो अन्य शब्दोंमें तुर्की सन्धिकी शर्तोंके नामसे विख्यात है। वायसराय महोदयने इतनी देर करके भी जो संयुक्त डेपुटेशनसे भेंट की है इसके लिये वे हमारे धन्यवादके पात्र हैं खासकर ऐसे समय डेपुटेशनसे मिलनेके कारण जब कि वे भिन्न भिन्न प्रदेशोंके शासकोंसे मिलनेकी तैयारीमें लग रहे थे। जिस शिष्टाचारसे उन्होंने डेपुटेशनसे भेंट की तथा जिस भद्रोचित शब्दोंमें उन्होंने उत्तर दिया उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना चाहिये। परन्तु इस विकट समयमें केवल शिष्टाचार ही काफी नहीं है यद्यपि शिष्टाचार सभी समय बहुमूल्य होता है और इस समय जितना बहुमूल्य है उतना और कभी नहीं। 'मीठें शब्द चुकन्दरको मक्खनयुक्त नहीं बना सकते' यह एक कहावत है जो इस समयके लिये जितनी उपयुक्त है उतनी और किसी समयके लिये न रही होगी। शिष्टाचारकी आड़में तुर्कीको सजा देनेका दृढ़ निश्चय था। तुर्कीको सजा देना एक ऐसी बात है जिसे मुसलमान एक क्षणभरके लिये भी नहीं सह सकते। युद्धका जो परिणाम हुआ है उसके जिम्मेवार मुसलमान सैनिक भी उसी

मध्य राष्ट्रोंके साथ मिल गया था, तब वे ब्रिटिश मन्त्रियोंके वेचारमात्र प्रकट करते हैं। इसलिये हम मुसलिम प्रत्युत्तर लिखनेवालोंके साथ आशा करते हैं कि यदि कोई भूल की गयी ई। तो ब्रिटिश मन्त्री उसे सुधारेंगे और ऐसा निपटारा करेंगे जो मुसलमानोंके भावके अनुकूल होगा। उनका भाव क्या मांग करता है? खिलाफतकी रक्षा हो और साथ ही तुर्क राज्यके भीतर रहनेवाली गैर-मुसलिम जातियोंकी रक्षाकी गारण्टी ली जाय तथा अरब और पवित्र स्थानोंपर खलीफाका नियन्त्रण रहे साथ ही यदि अरब लोग चाहें तो अरबोंके स्वराज्यकी गारण्टी-के लिये आवश्यक प्रबन्ध किया जाय। इससे अधिक न्याय्यतासे दावा प्रकट करना असम्भव है। यह ऐसा दावा है जो न्याय, ब्रिटिश मन्त्रियोंकी घोषणाओं और हिन्दुओं तथा मुसलमानोंके संयुक्त विचारोंसे अनुमोदित है। ऐसे दावेको नामंजूर करना या तोड़ना भारी पागलपनेका काम होगा।

४—अरबके ऊपर प्राधान्य।

"जैसा मैंने आपको अपने पिछले पत्रमें बताया है, मैं समझता हूं कि मि० गान्धीने खिलाफतके मामलेमें भारी गलती की है। भारतीय मुसलमानोंका दावा इस कथनके आधारपर है कि, इसलाम धर्म अरबपर तुर्कोंका शासन आवश्यक ठहराता है, परन्तु जब स्वयं अरब ही इस मामलेमें उनके विरुद्ध है तब यह सोचना असम्भव है कि भारतीय मुसलमानोंका मत इसलामके

लिये अत्यन्त आवश्यक है। जो भी हो यदि अरब इसलामका प्रतिनिधित्व नहीं करते तो फिर कौन करता है? यह तो ठीक वैसा ही है जैसा जर्मन रोमन कैथलिकोंका रोमन कैथलिकोंके नामपर मांग करना होगा जब कि रोम और इटालियन उसके विरुद्ध मांग करते हैं। परन्तु यदि भारतीय मुसलमानोंका धर्म यह आवश्यक भी ठहराता हो कि अरबोंके ऊपर उनकी इच्छाके विरुद्ध भी तुर्क शासन होना चाहिये, तो भी आजकल कोई उसे धार्मिक मांग नहीं मान सकता जो एक जातिका दूसरी जातिपर लगातार अत्याचार करना आवश्यक ठहराती है। जब युद्धके प्रारम्भमें भारतीय मुसलमानोंको विश्वास दिलाया गया था कि उनके धर्मका सम्मान किया जायगा तब उसका यह अर्थ कदापि नहीं था कि एक सांसारिक राज्यका जिसने स्वभाग्यनिर्णयका सिद्धान्त तोड़ा है, समर्थन किया जायगा। अब हम एक ओर खड़े हो तुर्कोंको अरबोंपर फिर विजय प्राप्त करते नहीं देख सकते (क्योंकि अरब निश्चय ही तुर्कोंसे युद्ध करेंगे)। और यदि ऐसा करते हैं तो उन अरबोंके साथ भारी विश्वासघात करेंगे जिन्हें हम वचन दे चुके हैं। यह सच नहीं है कि केवल यूरोपियनोंके कहनेसे अरब तुर्कोंके दुश्मन हो रहे हैं। इसमें सन्देह नहीं कि युद्धके समय हमने अरबोंकी तुर्कोंसे शत्रुतासे लाभ उठाया, क्योंकि हमें एक नये मित्र मिलते थे, परन्तु यह शत्रुता युद्धके बहुत पहलेसे वर्त्तमान थी। सुलतानकी जो मुसलमान प्रजा तुर्क नहीं है वह तुर्क शासनसे छुटकारा पाना

चाहती थी। यह भारतीय मुसलमान ही हैं जिन्हें उस शासनका कुछ अनुभव नहीं है और इसीसे वे वह शासन अन्योंपर जबर्दस्ती लादना चाहते हैं। सच तो यह है कि सीरिया या अरबमें फिर तुर्क शासन स्थापित करनेका विचार सब प्रकारकी सम्भावनाओंसे इतना परे है कि उसपर विचार करना पवित्र रोमन साम्राज्यकी पुनः स्थापनाका विचार करनेके समान जान पड़ता है। मैं कल्पना भी नहीं कर सकता कि किस प्रकारकी घटनावलीसे यह सम्भव हो सकता है। निश्चय ही भारतीय मुसलमान स्वयं अरबमें जाकर सुलतानके लिये अरबोंपर विजय नहीं प्राप्त कर सकते। भारतमें चाहे जितना भी संकट उपस्थित हो उससे इङ्गलैण्ड अरबमें पुनः तुर्क शासन स्थापित करनेको नहीं तैयार हो सकता। इस मामलेमें भारतीय मुसलमानोंको अंग्रेज साम्यवादियोंके नहीं, बल्कि उदारदली तथा परोपकारशील और भारी अंग्रेजोंके मतके विरुद्ध खड़ा होना पड़ेगा जो चाहते हैं कि स्वभाग्य निर्णय बढ़कर भारतमें भी पहुंच जाय। यदि यह भी मान लिया जाय कि भारतीय मुसलमान भारतमें इतना प्रचण्ड आन्दोलन खड़ा कर सकते हैं जिससे भारतका ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध विच्छेद हो जाय, तो भी वे अपने उद्देश्यकी सिद्धिके निकट न पहुंचेंगे। कारण यह कि आज अंग्रेजोंकी संसार सम्बन्धी नीतिपर उनका बहुत कुछ प्रभाव है। यद्यपि तुर्कीकी सन्धिके सम्बन्धमें उनका प्रभाव इतना काफी नहीं पड़ा कि वह दूसरे भारी पलड़ेसे भारी ठहरता, तो भी इसने बहुत

कुछ काम किया है। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्यसे सम्बन्ध न रहनेपर भारतीय मुसलमानोंका भारतके बाहर कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा। संसारकी राजनीतिमें उनकी गिनती चीनके मुसलमानोंसे अधिक न होगी। मैं समझता हूं कि यह बहुत सम्भव है कि भारतीय मुसलमानोंका प्रभाव कमसे कम इतना तो अवश्य काम कर सकता है कि सुल्तानको कुस्तुन्तुनियामें बनाये रख सके। परन्तु वैसा करनेसे उन्हें कुछ लाभ होगा, इसमें मुझे सन्देह ही है। कारण यह कि एशियाई रूमतक ही सीमाबद्ध तुर्कोंके लिये कुस्तुन्तुनिया बड़े असुभीतेकी राजधानी होगी। मैं समझता हूं कि जो असुभीता होगा उसके मुकाबलेमें पुराने तुर्क साम्राज्यका आभास बनाये रखनेका काल्पनिक सन्तोष कुछ भी न होगा। परन्तु यदि भारतीय मुसलमान चाहते हैं कि सुल्तान कुस्तुन्तुनियामें बने रहें तो मैं समझता हूं कि भारतमें वायसरायने जो सरकारी तौरपर विश्वास दिलाये हैं वे ही अब हमें बाध्य करते हैं कि हम सुलतानके वहां रहनेके लिये जोर दें और मैं समझता हूं कि अमेरिकाके विरोध करनेपर भी वे वहां बने रहेंगे।"

यह एक अंग्रेजके भारतके अपने एक मित्रके पास भेजे हुए पत्रका अवतरण है और वे अंग्रेज ग्रेट ब्रिटेनमें एक अच्छे पदपर हैं। यह एक आदर्श पत्र है जो गम्भीर, सत्य और ऐसी ललित भाषामें है कि जहांपर आपके विरुद्ध कथन करता है वहां यह अपने लालित्यसे ही आपकी प्रतिष्ठाका पात्र है। परन्तु ठीक यही

भाव है, जिसने अपर्याप्त या झूठी सूचनाके आधारपर होनेके कारण ब्रिटेनके भीतर कितने ही कामोंको चौपट कर डाला है। वाहरी दिखावट, पक्षपात, अनृतता और प्रायः बेईमानी जो आधुनिक पत्रसम्पादकतामें घुस गयी है, वह निरन्तर उन ईमानदार आदमियोंको मार्गभ्रष्ट कर देती है जो न्याय होनेके सिवा और कुछ नहीं देखना चाहते। फिर स्वार्थियोंके दल भी हैं जिनका काम ही सदा बुरे या भले उपायोंसे अपना मतलब गांठना होता है। ईमानदार अंग्रेज जो न्यायके पक्षमें मत देना चाहता है वह परस्परविरोधी मतोंके चक्करमें फंस और तोड़-मरोड़कर प्रकट की हुई घटनाओंके कारण प्रायः अन्याय करनेका साधन बन जाता है।

जिस पत्रका उल्लेख ऊपर किया गया है उसके लेखकने काल्पनिक बातोंके आधारपर विश्वास करा देनेवाली दलील पेश की है। उसने सफलतापूर्वक दिखा दिया है कि, मुसलमानोंका पक्ष जिस रूपमें उसके सामने उपस्थित किया गया है वह दूषित है। भारतमें जहां खिलाफतके सम्बन्धमें तोड़मरोड़कर बातें उपस्थित करना इतना सहज नहीं है वहां अंग्रेज मित्र भारतीय मुसलमानोंके दावेको पूर्ण न्याययुक्त स्वीकार करते हैं। परन्तु वे अपनी लाचारी प्रकट करते और कहते हैं कि भारत सरकार तथा मि० मांटेगूने मुसलमानोंके लिये वे सब बातें करनेमें कसर नहीं रखी जो मनुष्यके लिये सम्भव हैं। अब यदि निर्णय इसलामके विरुद्ध होता है तो भारतीय

मुसलमानोंको उसके आगे सिर झुका लेना चाहिये। यह अजीब हालत केवल वर्त्तमान झमेलेमें ही सम्भव है जब सभी जिम्मेवार लोग पक्षपातमें डूबे हुए हैं।

आइये तनिक लेखकके कल्पित पक्षकी परीक्षा तो करें। वे कहते हैं कि भारतीय मुसलमान अरबमें तुर्कोंका शासन चाहते हैं यद्यपि स्वयं अरब लोग उसके विरोधी हैं। यदि अरब तुर्कोंका शासन नहीं चाहते तो लेखककी दलील है कि किसी झूठी धार्मिक कल्पनाद्वारा अरबोंके स्वभाग्यनिर्णयमें बाधा न पड़नी चाहिये जब कि भारत स्वयं उस स्वभाग्यनिर्णयकी स्थिति चाह रहा है। सच बात तो यह है कि मुसलमानोंने यह कभी नहीं कहा कि अरबोंके विरुद्ध अरबमें तुर्की शासन हो, यह बात मुसलमानोंके पक्षका कुछ भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं। यही क्यों, उन्होंने कहा है कि अरबोंके स्वराज्यका विरोध करनेका उनका कुछ भी विचार नहीं है। वे यही कहते हैं कि अरब तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे रहे जो अरबोंके लिये पूर्ण स्वराज्यकी गारण्टी करेगा। वे इसलामके पवित्र स्थान खलीफाके नियन्त्रणमें चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे उससे अधिक कुछ नहीं चाहते जिसकी गारण्टी मि० लायड जार्जने की थी और जिस बलपर मुसलमान सैनिकोंने मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे अपना खून बहाया था। इसलिये उपर्युक्त अवतरणकी सारी दलीलें रद्द हो जाती हैं क्योंकि वे जिस बातके आधारपर हैं वह कभी थी ही नहीं। मैं इस प्रश्नमें अपने तनमनसे लग गया हूं, क्योंकि ब्रिटिश प्रति-

शाप', शुद्ध न्याय और धार्मिक भाव तीनों एकत्र हैं। मैं कल्पना कर सकता हूं कि सम्भव है कि शुद्ध न्यायके विरुद्ध धर्मोन्मत्त और अन्ध धार्मिक भाव वर्त्तमान हों। उस दशामें मैं भावोंका विरोध करूंगा और शुद्ध सत्यके लिये लड़ूंगा। न मैं उन प्रतिज्ञाओंकी पूर्त्तिके लिये आग्रह करूंगा जो अन्यायपूर्ण पक्षकी सहायताके लिये की गयी हैं जैसा कि इंगलैण्डने गुप्त सन्धियोंके विषयमें किया है। वहां प्रतिकार न केवल नियमानुसार बल्कि उस राष्ट्रके लिये अवश्यकर्तव्य हो जाता है जिसे अपनी धार्मिकताका अभिमान है। मेरे लिये अङ्गरेज मित्रकी इस कल्पित स्थितिकी परीक्षा करनी अनावश्यक है कि यदि भारत स्वतन्त्र देश होता तो उसकी क्या अवस्था होती। यह अनावश्यक है क्योंकि भारतीय मुसलमान और भारत दोनों ही ऐसे पक्षके लिये लड़ रहे हैं जो न्याययुक्त है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। इस काममें वे ब्रिटिश जनताकी हार्दिक सहायता चाहते हैं। मैं तो यहांतक कहूंगा कि यह ऐसा कार्य है जिसमें केवल सहानुभूति ही काफी न होगी। यह ऐसा कार्य है जिसमें ऐसी दृढ़ सहायता आवश्यक है जो वास्तविक न्याय करा सके।

४—अन्य प्रश्नोंका उत्तर।

मेरे पास ऐसे पत्रोंकी भरमार है जिनमें कोई तो आलोचनात्मक हैं, किसीमें प्राइवेट तौरपर नसीहत की गयी है और कुछ गुमनाम हैं जिनमें मुझे बताया गया है कि ठीक ठीक मुझे क्या करना चाहिये। कई तो इसीसे व्यग्र हैं कि मैं तात्कालिक और

मुसलमानोंको उसके आगे सिर झुका लेना चाहिये। यह अजीब हालत केवल वर्त्तमान झमेलेमें ही सम्भव है जब सभी जिम्मेवार लोग पक्षपातमें डूबे हुए हैं।

आइये तनिक लेखकके कल्पित पक्षकी परीक्षा तो करें। वे कहते हैं कि भारतीय मुसलमान अरबमें तुर्कोंका शासन चाहते हैं यद्यपि स्वयं अरब लोग उसके विरोधी हैं। यदि अरब तुर्कोंका शासन नहीं चाहते तो लेखककी दलील है कि किसी झूठी धार्मिक कल्पनाद्वारा अरबोंके स्वभाग्यनिर्णयमें बाधा न पड़नी चाहिये जब कि भारत स्वयं उस स्वभाग्यनिर्णयकी भिति चाह रहा है। सच बात तो यह है कि मुसलमानोंने यह कभी नहीं कहा कि अरबोंके विरुद्ध अरबमें तुर्की शासन हो, यह बात मुसलमानोंके पक्षका कुछ भी ज्ञान रखनेवाले जानते हैं। यही क्यों, उन्होंने कहा है कि अरबोंके स्वराज्यका विरोध करनेका उनका कुछ भी विचार नहीं है। वे यही कहते हैं कि अरब तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे रहे जो अरबोंके लिये पूर्ण स्वराज्यकी गारण्टी करेगा। वे इसलामके पवित्र स्थान खलीफाके नियन्त्रणमें चाहते हैं। दूसरे शब्दोंमें वे उससे अधिक कुछ नहीं चाहते जिसकी गारण्टी मि० लायड जार्जने की थी और जिस बलपर मुसल्मान सैनिकोंने मित्रराष्ट्रोंकी ओरसे अपना खून बहाया था। इसलिये उपर्युक्त अवतरणकी सारी दलीलें रद्द हो जाती हैं क्योंकि वे जिस बातके आधारपर हैं वह कभी थी ही नहीं। मैं इस प्रश्नमें अपने तनमनसे लग गया हूं, क्योंकि ब्रिटिश प्रति-

जाय, शुद्ध न्याय और धार्मिक भाव तीनों एकत्र हैं। मैं कल्पना कर सकता हूं कि सम्भव है कि शुद्ध न्यायके विरुद्ध धर्मोन्मत्त और अन्ध धार्मिक भाव वर्त्तमान हों। उस दशामें मैं भावोंका विरोध करूंगा और शुद्ध सत्यके लिये लड़ूंगा। न मैं उन प्रतिज्ञाओंकी पूर्त्तिके लिये आग्रह करूंगा जो अन्यायपूर्ण पक्षकी सहायताके लिये की गयी हैं जैसा कि इंगलैण्डने गुप्त सन्धियोंके विषयमें किया है। वहां प्रतिकार न केवल नियमानुसार बल्कि उस राष्ट्रके लिये अवश्यकर्तव्य हो जाता है जिसे अपनी धार्मिकताका अभिमान है। मेरे लिये अङ्गरेज मित्रकी इस कल्पित स्थितिकी परीक्षा करनी अनावश्यक है कि यदि भारत स्वतन्त्र देश होता तो उसकी क्या अवस्था होती। यह अनावश्यक है क्योंकि भारतीय मुसलमान और भारत दोनों ही ऐसे पक्षके लिये लड़ रहे हैं जो न्याययुक्त है, यह स्वीकार करना पड़ेगा। इस काममें वे ब्रिटिश जनताकी हार्दिक सहायता चाहते हैं। मैं तो यहांतक कहूंगा कि यह ऐसा कार्य है जिसमें केवल सहानुभूति ही काफी न होगी। यह ऐसा कार्य है जिसमें ऐसी दृढ़ सहायता आवश्यक है जो वास्तविक न्याय करा सके।

४—अन्य प्रश्नोंका उत्तर।

मेरे पास ऐसे पत्रोंकी भरमार है जिनमें कोई तो आलोचनात्मक हैं, किसीमें प्राइवेट तौरपर नसीहत की गयी है और कई गुमनाम हैं जिनमें मुझे बताया गया है कि ठीक ठीक मुझे क्या करना चाहिये। कई तो इसीसे व्यग्र हैं कि मैं तात्कालिक और

विस्तृत असहयोगकी राय नहीं देता। और लोग कहते हैं कि मैं जानबूझ कर देशको प्रचण्ड तूफानमें झोंककर देशको कितनी हानि पहुंचा रहा हूं। सभी आलोचनाओंपर विचार करना मेरे लिये कठिन है, परन्तु मैं कुछ आक्षेपोंको संक्षेपमें यता अपनी योग्यताके अनुसार उनका उत्तर दूंगा। ये उन आक्षेपोंके अतिरिक्त हैं जिनका उत्तर मैं दे चुका हूं :—

(१) तुर्कोंका दावा अनीतिपूर्ण या अन्यायपूर्ण है। फिर सत्य और न्यायसे प्रेम रखनेवाला होता हुआ भी मैं क्योंकर उसका समर्थन करता हूं?

(२) यदि सिद्धान्त रूपसे दावा ठीक भी हो तो भी तुर्क अत्यन्त अयोग्य, निर्बल और निर्दयी हैं। वे किसी प्रकारकी भी सहायताके पात्र नहीं हैं।

(३) तुर्कोंके लिये जिन बातोंका दावा किया जाता है उन सबका यह पात्र भी हो, तो भी मैं भारतको सार्वराष्ट्रीय झगड़ेमें क्यों डालता हूं?

(४) भारतीय मुसलमानोंका इस मामलेमें पड़ना कर्त्तव्य नहीं है। यदि उनका कोई राजनीतिक मनसूबा है तो उन्होंने प्रयत्न कर लिया और विफलमनोरथ हो गये। अब उन्हें चुप हो बैठ रहना चाहिये। यदि यह उनके लिये धार्मिक मामला है, तो जिस ढङ्गसे यह उपस्थित किया जाता है उससे हिन्दुओंपर प्रभाव नहीं पड़ सकता। किसी भी अवस्थामें हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ उनके ईसाइयोंसे होनेवाले झगड़ेमें नहीं देना चाहिये।

(५) मुझे किसी दशामें असहयोगका समर्थन नहीं करना चाहिये जिसका अन्तिम अर्थ बलवेके सिवा और कुछ नहीं है, चाहे वह बलवा कितना ही शांतिपूर्ण क्यों न हो।

(६) इसके सिवा गत वर्षके अनुभवसे मुझे मालूम हो जाना चाहिये कि देशमें उपद्रवकी जो शक्तियां गुप्तरूपसे विद्यमान् हैं उन्हें काबूमें रखना किसी एक मनुष्यकी शक्तिके बाहर है।

(७) असहयोग व्यर्थ है, क्योंकि ठीक उत्सुकतापूर्वक लोग कभी उसके अनुसार काम न करेंगे। पीछे ऐसी प्रतिक्रिया पैदा हो सकती है जो हमारी अबकी असहाय अवस्थासे भी अधिक बुरी होगी।

(८) असहयोगसे अन्य सब कार्य यहांतक कि सुधारोंके अनुसार काम होना भी रुक जायगा और इस तरह उन्नति रूपी घड़ीकी सुईको यह पीछे हटा देगा।

(९) मेरा उद्देश्य चाहे कितना ही शुद्ध क्यों न हो; पर मुसलमानोंका बदला लेनेका है यह स्पष्ट है।

अब जिस क्रमसे उपर्युक्त आक्षेप प्रकट किये गये हैं उसी क्रमसे मैं उनका उत्तर दूंगा।

(१) मेरी रायमें तुर्कीका दावा अनीति और अन्यायका नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि यह बिलकुल ही न्याययुक्त है और नहीं यदि तुर्की उनको अपने पास रखना चाहता है जो उसके हैं। फिर मुसलमानोंके घोषणापत्रमें निश्चित रूपसे

घोषणा कर दी गयी है कि गैर-मुसलिम और गैर-तुर्की जातियोंकी रक्षाके लिये जिन गारण्टियोंकी आवश्यकता हो वे ले ली जाय जिससे ईसाई और अरब जातियोंको तुर्कोंकी छत्रछायाके नीचे स्वराज्य मिले।

(२) मैं विश्वास नहीं करता कि तुर्क निर्बल, अयोग्य और निर्दयी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि वे अव्यवस्थित हैं और उनके अच्छे जेनरल नहीं हे। उन्हें अपनेसे अधिक संख्याके शत्रुओंसे लड़ना पड़ा था। निर्बलता, अयोग्यता और निर्दयताकी दलील उन लोगोंके सम्बन्धमें प्रायः पेश की जाया करती है, जिनसे अधिकार छीन लेनेका विचार किया जाता है। हत्याओंकी जो बात कही जाती है उनके सम्बन्धमें जांच करनेके लिये कमीशनकी नियुक्तिकी मांग की गयी, पर वह कभी मंजूर नहीं की गयी। किसी भी दशामें अत्याचार न हो, इसका पूर्ण प्रबन्ध कर लेना चाहिये।

(३) मैं कह ही चुका हूं कि यदि भारतीय मुसलमानोंसे मेरा अनुराग न होता तो तुर्कोंकी भलाईके सम्बन्धमें मेरा अनुराग उससे अधिक न होता जितना आस्ट्रियनों और पोलोंके सम्बन्धमें है। पर मैं एक भारतीय हूं इसलिये मेरा परम कर्त्तव्य है कि मैं अपने अन्य भारतीय भाइयोंके कष्टों और परीक्षाओंमें हिस्सा बंटाऊं। यदि मैं मुसलमानोंको अपना भाई समझता हूं, तो मेरा कर्त्तव्य है कि सङ्कटकी घड़ीमें मैं उनको अपनी शक्तिभर सहायता दूं यदि उनका पक्ष मुझे न्यायका जंचे।

(४) चौथेमें इस बातकी चर्चा है कि किस अंशतक हिन्दुओंको मुसलमानोंका साथ देना चाहिये। इसलिये यह राय और अनुभवका विषय है। यह उचित है कि न्यायके कार्यमें अपने मुसलमान भाईके लिये जहांतक सम्भव हो कष्ट सहा जाय। इसलिये मैं उसके साथ पूरा रास्ता तबतक चलूंगा जबतक वह अपने उद्देश्यके समान ही उसके लिये प्रतिष्ठित साधन भी काममें लायेगा। मैं मुसलमानोंके भावकी व्यवस्था नहीं कर सकता। मैं उनका यह कथन स्वीकार करूंगा कि उनके लिये खिलाफत इस अर्थमें धार्मिक प्रश्न है कि उसके लिये जान देकर भी लक्ष्यस्थानपर पहुंचना उनका अवश्यकर्त्तव्य है।

(५) मैं असहयोगको बलवा नहीं समझता, क्योंकि यह निरुपद्रव है। व्यापक अर्थमें तो किसी गवर्नमेण्टका सब प्रकारका विरोध बलवेके भीतर आ जाता है। उस अर्थमें न्याययुक्त कार्यके लिये बलवा कर्त्तव्य है और उतना अधिक विरोध हो सकता है जितना अन्याय किया जाता या, जितना उसका अनुभव होता है।

(६) गत वर्षके मेरे अनुभवने मुझे दिखा दिया है कि यद्यपि भारतके किसी किसी भागमें लोग पथभ्रष्ट हो गये, किन्तु देश बिल्कुल ही नियन्त्रणमें है और सत्याग्रहका प्रभाव उसके लिये बहुत ही हितकर हुआ है। जहां उपद्रव हुआ भी वहां उसके प्रत्यक्ष हेतु स्थानिक कारण हुए हैं। तो भी मैं स्वीकार

करता हूं कि लोगोंने जो मारकाट की और कुछ भागोंमें निस्सन्देह जो उच्छृङ्खलता दिखायी उसका निरोध होना चाहिये था। मैंने उस समय जो गलत अन्दाज किया था वह काफी तौरपर स्वीकार कर चुका हूं। परन्तु उस समय जितनी भी दुःखपूर्ण अनुभव मैंने प्राप्त किया, उससे मेरा सत्याग्रहसे विश्वास तनिक भी नहीं विचलित हुआ। पहले जो गलतियां हो चुकी हैं उनसे बचनेके लिये इस बार काफी पूर्वोपाय किया जा रहा है। परन्तु मैं स्पष्ट मार्गसे विचलित होनेसे अवश्य इनकार करूंगा; क्योंकि इससे उपद्रवकी सम्भावना है यद्यपि उसका बिल्कुल ही इरादा नहीं है और उसे रोकनेके लिये असाधारण पूर्वोपाय किये जा रहे हैं। साथ ही मैं अपनी अवस्था स्पष्ट कर देना चाहता हूं। अधिकारियोंका भय किसी सत्याग्रहीको स्वकर्त्तव्य-पालन करनेसे नहीं रोक सकता। आवश्यकता पड़नेपर मैं दस लाख आदमियोंका जीवन खतरेमें डालनेको तैयार हूं यदि वे लोग निर्दोष और निरपराध हों और अपनी इच्छासे कष्ट सह रहे हों। सत्याग्रहकी लड़ाईमें लोगोंकी गलतीकी परवाह होती है। दृढ़ और शक्तिसम्पन्न लोगोंसे गलतियां यहांतक कि पागलपन भी हो सकता है। विजयका समय तभी आ जाता है जब शक्तिसम्पन्नके क्रोधके बदले क्रोध नहीं किया जाता और स्वेच्छासे चुपचाप उस क्रोधका सहन कर लिया जाता है, किन्तु अन्याय करनेवाले अधिकारीकी इच्छाके आगे सिर नहीं झुकाया जाता। इसलिये प्रत्येक अंग्रेज और सरकारी अफसरको

जीवन अपने प्यारे लोगोंके समान पवित्र मानना ही सफलता-की कुंजी है। लगभग ४० वर्षकी अपनी समझमें मुझे जितने आश्चर्यजनक अनुभव प्राप्त हुए हैं उनसे मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि जीवनके समान मूल्यवान् दान और कुछ नहीं है। मैं दावेके साथ कहता हूं कि जिस क्षण अंग्रेज जान जायेंगे कि यद्यपि वे भारतमें अत्यन्त न्यून संख्यामें हैं तो भी उनका जीवन सुरक्षित है—इसलिये नहीं कि उनके पास नाश करनेके अतुलनीय शस्त्रास्त्र हैं, बल्कि इसलिये कि भारतीय उन लोगोंकी भी जानें नहीं लेना चाहते जो बिलकुल ही अन्याय करते हैं—उसी क्षण भारतके सम्बन्धमें अंग्रेजोंके स्वभावमें परिवर्तन हो जायगा और वही क्षण होगा कि भारतमें जितने नाशक शस्त्र मिल सकते हैं उनमें मुर्चा लगना शुरू हो जायगा। मै जानता हूं कि ऐसा आशा दूरका स्वप्न है। इसकी मुझे कुछ परवाह नहीं हो सकती। मेरे लिये इतना ही बस है कि प्रकाशको देखूं और उसके अनुसार काम करूं और यह काफीसे भी ज्यादा है यदि आगे बढ़नेमें मुझे साथी मिल जायें। अंग्रेज मित्रोंसे मेरी प्राइवेटमें जो बातें हुई हैं उनमें मैंने दावा किया है कि मेरे लगातार अहिंसाके सिद्धान्तका प्रचार करने और सफलतापूर्वक उसकी क्रियात्मक उपयोगिता दिखा सकनेके कारण ही उपद्रवकी वे शक्तियां पूरे नियन्त्रणमें रही हैं जो खिलाफत आन्दोलनके कारण निस्सन्देह विद्यमान हैं।

(७) धार्मिक दृष्टिसे सातवां आक्षेप तो विचारणीय भी

६— मि० कैंडलरकी खुली चिट्ठी।

इस मुख्य प्रश्नके सम्बन्धमें मि० कैंडलरने एक पत्र मेरे पास भेजा है जो समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है। मैं मि० कैंडलरकी अवस्था समझता हूं जैसा मैं चाहता हूं कि वे तथा अन्य अंग्रेज मेरी तथा मेरे समान अनुभव करनेवाले अन्य सैकड़ों हिन्दुओंकी अवस्था समझें। मि० कैण्डलरके पत्रमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि सन्धिकी शर्तोंसे मि० लायड जार्जकी प्रतिज्ञाएं किसी प्रकार नहीं टूटती हैं। मैं उनसे इस बातमें बिलकुल ही सहमत हूं कि मुसलमानोंके दावेको पुष्ट करनेके लिये मि० लायड जार्जके शब्दोंको उनके प्रकरणसे अलग न करना चाहिये। वायसरायका हालका जो सन्देश निकला है उसमें मि० लायड जार्जके शब्द इस प्रकार उद्धृत किये गये हैं— "न तो हम आस्ट्रिया-हंगरीको वर्बाद करने या तुर्कीको उसकी राजधानी या एशियाई रूम और थ्रेसकी उपजाऊ और बहुमूल्य भूमिसे वञ्चित करनेके लिये लड़ रहे हैं जहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है।" मि० कैण्डलर 'जहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है', इसका अर्थ इस प्रकार लेते हैं कि, 'यदि वहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका हो' परन्तु मैं इसका साधारण ही अर्थ लगाता हूं। अर्थात् प्रधान मन्त्री १९१८ ई० में जानते थे कि जिन प्रदेशोंकी उन्होंने चर्चा की है वहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है। यदि यही अर्थ है तो मैं दावेसे कहूंगा कि, प्रतिज्ञा

स्पष्ट रूपसे तोड़ी गयी हैं, क्योंकि एशियाई रूम और थ्रेसकी उपजाऊ और बहुमूल्य भूमिका कुछ भी अंश तुर्कोंके लिये नहीं छोड़ा गया है। सुलतानको कुस्तुन्तुनियामें बनाये रखनेके सम्बन्धमें मैं अपने विचार प्रकट ही कर चुका हूं। यह कहना कि सन्धिकी शर्त्तोंसे तुर्की साम्राज्य अभङ्ग बना हुआ है मनुष्यकी बुद्धिका अपमान करना है। मि० कैंडलरके लिये मैं मि० लायड जार्जके भाषणका एक वाक्य और उद्धृत करता हूं और वह यह है :—"जहां तुर्क जातिके निवासके देशमें तुर्क साम्राज्यके बना रखने और कुस्तुन्तुनियाको उसकी राजधानी बना रखनेमें हमें आपत्ति नहीं है, वहां भूमध्य सागर और काला सागरके बीचका जलमार्ग सार्वराष्ट्रीय होना चाहिये और हमारी समझसे आर्मेनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलस्तीनकी पृथक् राष्ट्रीयता स्वीकार करना योग्य है।"

क्या इसका अर्थ यह है कि तुर्की प्रभाव एकदम हटा दिया जाय, तुर्कोंका आधिपत्य दूर कर दिया जाय और मैंडेटके रूपमें यूरोपियन ईसाइयोंका प्रभाव स्थापित किया जाय? अरब, आर्मेनिया, मेसोपोटामिया, सीरिया और फिलस्तीनके मुसलमानोंसे राय ली गयी है या जो नया प्रबन्ध होरहा है यह मित्रराष्ट्र न्याय से नहीं, बल्कि अपने पशुबलके अभिमानसे स्वेच्छासे उनके ऊपर लाद रहे हैं। मैं अरबोंके स्वतन्त्रताके भावको पुष्टि सभी प्रकारके उचित उपायोंसे करूंगा। परन्तु यह सोच मेरा हृदय काँप उठता है कि जिन शक्तियोंको उनका शासन-प्रबन्ध सौंपा

एजेण्ट अपने पक्षको सर्वमान्य बनानेके लिये किस प्रकार पानीकी तरह रुपया बहा रहे हैं और कहते हैं कि, "घोर अन्याय और चालबाजीकी भूठका यह मेल ब्रिटिश राज्यके लिये तुरन्त सङ्कट उपस्थित कर सकता है।" अन्तमें वे कहते हैं कि "वह सरकार और जनता जिसकी नीतिका और वैदेशिक नोतिका आधार सत्य बातें नहीं, बल्कि स्वमत प्रचार है स्वतः निन्दनीय है।"

मैंने ऊपर जो अवतरण दिया है वह यह दिखानेके लिये है कि वर्त्तमान ब्रिटिश नीति अज्ञानताके प्रचारसे प्रभावित है। १७ वीं शताब्दीमें जिस तुर्कीका एशिया, अफ्रिका और यूरोपको २० लाख वर्गमील भूमिपर प्राधान्य था वह 'लण्डन क्रानिकल' के कथनानुसार सन्धिकी शर्तोंके कारण केवल एक हजारसे कुछ ही अधिक वर्गमील भूमिका मालिक रह गया है। उक्त पत्र कहता है कि, "अब कुल यूरोपियन तुर्की सरलतासे लैंड्स एण्ड और टामारके बीच रखा जा सकता है और इसके क्षेत्रफलसे अधिक एक कार्नवालका ही क्षेत्रफल है। यदि तुर्कीने जर्मनीसे मित्रता न की होती तो निश्चय था कि उसके पास पूर्वी बालकनका कमसे कम ६० हजार वर्गमील भूमि रहती।" मैं नहीं जानता कि साधारणतः लोग क्रानिकलकेसे विचार रखते हैं। तुर्कीको सजा देनेके कारण इतनी हानि पहुंचानी है या न्याय यही चाहता है? यदि तुर्की जर्मनीसे न मिला होता क्या तब भी अर्मेनिया, अरब, मेसापोटामिया और फिलस्तीनके सम्बन्धमें राष्ट्रीयताका सिद्धान्त काममें लाया जाता? मैं उन

लोगोंको याद दिलाना चाहता हूं जो मि० कैंडलरकी तरह यह समझते हैं कि मि० लायड जार्जने यह समझकर प्रतिज्ञा नहीं की थी कि इससे रंगरूट मिलते रहेंगे। अपने वक्तव्यके पक्षमें मि० लायड जार्जने कहा था:—

"भारतमें वक्तव्यका यह प्रभाव हुआ कि उसी क्षणसे रङ्गरूट अधिक संख्यामें भर्ती होने लगे। वे सब तो नहीं, पर उनमेंसे बहुतसे मुसलमान थे। अब हमसे कहा जाता है कि तुर्कोंको साथ मिलानेके लिये वह बात कही गयी थी, पर उसने नामंजूर किया इसलिये हम पूर्ण स्वतन्त्र हैं। यह बात नहीं हैं। यह बात प्रायः भुला दी जाती है कि हम संसारमें सबसे बड़ी मुसलमान शक्ति हैं और ब्रिटिश साम्राज्यकी जनताका एक चतुर्थांश मुसलमान है। मुसलमानोंसे अधिक राजभक्त तथा संकटकालमें साम्राज्यका उनसे बढ़कर समर्थक और कोई नहीं रहा है।" हमने गम्भीरतापूर्ण प्रतिज्ञा की और उन्होंने उसे स्वीकार किया। वे यह सोच व्यग्र हो गये हैं कि हम उनका पालन नहीं करेंगे।"

उस प्रतिज्ञाका कौन और किस प्रकार अर्थ करेगा? स्वयं भारत सरकारने किस प्रकार अर्थ किया? खलीफाका इसलामके पवित्र स्थानोंपर नियन्त्रण हो, इस दावेका उसने सोत्साह समर्थन किया या नहीं? क्या भारत सरकारने कहा कि प्रतिज्ञाके अनुसार कुल जजीरातुल अरब खलीफाके प्रभावक्षेत्रसे निकालकर मित्रराष्ट्रोंको मैंडेटरी पावर्स (शासन प्रबन्धक) की हैसियतसे सौंपा जा सकता है? यदि सब शर्तें ऐसी हैं जैसी होनी

चाहिये तो भारत सरकार क्यों भारतीय मुसलमानोंके साथ सहानुभूति रखती है? इतनी बात तो प्रतिज्ञाके सम्बन्धकी हुई। कहीं कोई मेरे इस कथनसे यह न समझ ले कि मैं मि० लायड जार्जकी घोषणाको सर्वांशमें ठीक मानता हूं। मैंने उनके लिये 'प्रायः' विशेषणका प्रयोग जानबूझ कर किया है जो महत्वका है।

मालूम होता है कि मि० केंडलरका कथन है कि मेरा लक्ष्य खिलाफतके सम्बन्धमें न्याय प्राप्त करनेके सिवा और कुछ भी है। यदि ऐसा है, तो उनकी समझ ठीक है। न्याय प्राप्त करना एक आवश्यक बात है, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु मुझे मालूम हो जाय कि इस सम्बन्धमें मैंने जिसे न्याय समझ रखा है वह ठीक नहीं है, तो तुरन्त अपना पग पीछे हटानेका साहस हम करेंगे। परन्तु भारतीय मुसलमानोंको उनके इतिहासके सङ्कटकालमें सहायता देनेके द्वारा मैं उनकी मित्रता प्राप्त करना चाहता हूं। इतना ही नहीं, यदि मुसलमानोंको मैं अपने साथ चला सकूं तो आशा करता हूं कि मैं ग्रेट ब्रूटेनको नीचेकी ओर जानेवाले रास्तेसे रोक सकता हूं जिसपर प्रधानमन्त्री मेरी समझसे उसे ले जाते जान पड़ते हैं। मुझे यह भी आशा है कि मैं भारत और साम्राज्यको दिखा सकता हूं कि यदि आत्मत्यागकी थोड़ी भी योग्यता हो तो अंग्रेज और भारतीयोंमें मनोमालिन्य पैदा किये या बढ़ाये बिना अत्यन्त शान्तिपूर्ण और शुद्ध उपायोंसे न्याय प्राप्त किया जा सकता है। कारण यह कि मेरे ढङ्गोंका अस्थायी प्रभाव चाहे जो भी हो मैं भली भांति समझता

हैं कि एकमात्र वे ही स्थायी मनोमालिन्यसे बचे हुए हैं। घृणा, औचित्य या असत्यका रङ्ग उनपर नहीं चढ़ा है।

७— प्रतिज्ञाका पालन।

'टाइम्स आफ इण्डिया'में करेंट टापिक्सके लेखकने मेरे उस वक्तव्यका प्रतिवाद करनेकी चेष्टा करते हुए मि० आस्क्विथकी १९१४ की १० वीं नवम्बरकी गिल्डहालवाली वक्तृताका उल्लेख किया है जो मेरे खिलाफतवाले लेखमें मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओंके सम्बन्धमें है। वह लेख लिखनेके समय मि० आस्क्विथकी वक्तृताका मुझे ध्यान था। मुझे खेद है कि उन्होंने कभी वैसी वक्तृता दी थी। कारण यह कि मेरी तुच्छ रायमें वह विचारकी गड़बड़ पैदा करती है। क्या वे तुर्क जनताको तुर्क सरकारसे पृथक् समझ सकते थे? यूरोप और एशियामें तुर्कोंके साम्राज्यका अन्तिम समयका अर्थ यदि तुर्क जनताकी स्वतन्त्रता और शासक जाति होनेका अन्तिम समय नहीं तो क्या है? फिर क्या यह इतिहाससे सिद्ध है कि "तुर्की शासन सदैव नाशक सिद्ध हुआ है जिसने पृथ्वीके कितने ही सर्वोत्तम प्रदेश बर्बाद कर दिये?" उसके बाद कही हुई उनकी इस बातका क्या अर्थ है कि "उनके (मुसलमानोंके) धर्मके विरुद्ध धार्मिक युद्ध छेड़ना हमारे विचारसे जितनी दूर है उतनी और कोई बात नहीं है।" यदि शब्दोंका कोई अर्थ होता है, तो मि० आस्क्विथके भाषणका यही अर्थ हो सकता है कि भारतीय मुसलमानोंके भावका विचारपूर्वक सम्मान

किया जायगा। यदि यही उनके भाषणका अर्थ है, तो अपने पक्षकी पुष्टिके लिये बिना अन्य किसी बातका आश्रय लिये ही मैं दावेसे कहूंगा कि, यदि सान रीमों कान्फरेन्सके प्रस्तावोंके अनुसार काम हुआ, तो मि० आस्क्वियथने जो विश्वास दिलाये हैं वे भी निरर्थक सिद्ध होंगे। परन्तु मैं जो बातें कहता हूं उन्हें मि० आस्क्वियथके उत्तराधिकारीके दो वर्ष बादकी वक्तृताके आधारपर कहता हूं जब कि १९१४ से अधिक भयङ्कर अवस्था उपस्थित थी और जब १९१४की अपेक्षा भारतीयोंकी सहायताकी बहुत अधिक आवश्यकता थी। उनकी प्रतिज्ञा जबतक पूरी नहीं की जाती तबतक बारबार दुहरायी जायगी। उन्होंने कहा था कि, "न हम इसलिये लड़ रहे हैं कि तुर्कोंको उसकी राजधानी या एशियाई रूम और थ्रेसकी उस बहुमूल्य और उपजाऊ भूमिसे वञ्चित कर दें, जहांकी जनताका बहुत ही बड़ा भाग तुर्क जातिका है।" "हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है यदि तुर्क साम्राज्य तुर्क जातियोंके निवासकी भूमिपर बना रहे और उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनिया रहे।" यदि और नहीं तो इस प्रतिज्ञाकी अक्षरशः पूर्ति की जाय, तो झगड़ेके लिये कोई भी बात न रह जाये। जिस अंशतक मि० आस्क्वियथकी घोषणा भारतीय मुसलमानोंके दावेके विरुद्ध समझी जा सकती है उसका निराकरण पीछेकी अधिक विचारपूर्ण मि० लायड जार्जकी घोषणासे हो जाता है जो इसलिये और अधिक अभङ्गनीय हो गयी है कि जिस विचारसे यह की गयी

थी वह पूरा हो गया है अर्थात् वीर मुसलमान सैनिकोंने सेनामें भर्त्ती हो उसी स्थानपर युद्ध किया जिसका उक्त प्रतिज्ञाके विरुद्ध बंटवारा किया जा रहा है। परन्तु 'करेण्ट टापिक'का लेखक कहता है कि मि० लायड जार्ज अब अपनी प्रतिज्ञा पालन करनेके उपायमें हैं। मैं आशा करता हूं कि उसका कथन ठीक है। परन्तु जो कुछ हो चुका है उससे ऐसी आशा करनेका कुछभी कारण नहीं दिखता। कारण यह कि खलीफाको उनकी राजधानीमें कैदी या नजरबन्द बनाकर रखना केवल प्रतिज्ञा पालन करनेका ढोंग ही नहीं, बल्कि कटेपर नमक छिड़कना है। तुर्क जातिके निवासको भूमिपर तुर्क साम्राज्य और उसकी राजधानी कुस्तुन्तुनियामें रखनी है या नहीं? यदि रखनी है तो उसे भारतीय मुसलमानोंके सामने प्रकाश रूपसे उपस्थित कर देना चाहिये। और यदि साम्राज्यका अङ्गभङ्ग करना है, तो धूर्त्तताका परदा उठा दिया जाय जिससे भारतको यथातथ्य बातें मालूम हो जायं। इसलिये खिलाफत आन्दोलनमें सम्मिलित होना एक ऐसे आन्दोलनमें शामिल होना है जो एक ब्रिटिश मन्त्रीको प्रतिज्ञा अभंग बनाये रखनेके लिये हो रहा है। निश्चय ही ऐसा आन्दोलन उससे कहीं अधिक स्वार्थत्याग करनेके योग्य है जितना त्याग असहयोगके कारण करना पड़ेगा।

८—वायसरायसे अपील।

महोदय,

मैं एक ऐसा आदमी हूं जिसपर आपका किसी अंशतक

विश्वास है और जो ब्रिटिश साम्राज्यका शुभचिन्तक होनेका दावा करता है। इसलिये आपके प्रति और आपके द्वारा महाराजके मन्त्रियोंके प्रति मैं यह बताना अपना कर्त्तव्य समझता हूं कि खिलाफतके प्रश्नसे मेरा क्या सम्बन्ध है और उसके विषयमें मैं क्या करता हूं। युद्धके बिलकुल ही प्रारम्भमें यहांतक कि जब मैं लण्डनमें भारतीय वालण्टियर ऐम्बुलेन्स कोरका संगठन कर रहा था तभी खिलाफतके सम्बन्धमें मेरा अनुराग शुरू हुआ था। मैंने देखा कि जिस समय तुर्कोंने जर्मनीके साथ मिलकर युद्धमें पड़नेका निश्चय किया था, उस समय लण्डनमें जो अल्पसंख्यक मुसलमान थे उनका हृदय कितना हिल गया था। जब मैं १९१५ की जनवरीमें भारत आया तब वही चिन्ता मुझे उन मुसलमानोंमें देख पड़ी जिनसे मैं मिला। जब गुप्त सन्धियोंकी खबर उन्हें मिली तब वह चिन्ता और भी गहरी हो गयी। ब्रिटिश इरादोंके सम्बन्धमें उनके हृदयमें अविश्वास भर गया और वे बड़े ही निराश हुए। उस समय भी मैंने अपने मुसलमान भाइयोंको राय दी थी कि निराश मत होओ, बल्कि अपने भय और आशाओंको व्यवस्थित ढङ्गसे प्रकट करो। यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि भारतके कुल मुसलमानोंने पिछले पांच वर्षोंमें अद्भुत निरोधके साथ बर्त्ताव किया है और नेताओंने जातिके उपद्रवी भागको पूरे तौरपर काबूमें रखा है। सन्धिकी शर्त्तों और आपके उनका समर्थन करनेसे भारतीय मुसलमान इतने कम्पायमान हुए हैं जिससे छूटना कठिन होगा। शर्त्तें मंत्रि-

योंकी प्रतिज्ञाएं तोड़तीं और मुसलमानोंके भावकी बिल्कुल ही उपेक्षा करती हैं। मैं समझता हूं कि मैं एक ऐसा कट्टर हिन्दू हूं जो अपने मुसलमान देशवासियोंका अत्यन्त घनिष्ट मित्र बनकर रहना चाहता हूं। इसलिये यदि मैं उनके परीक्षाकालमें उनका साथ नहीं देता तो मैं भारतका अयोग्य लड़का ठहरूंगा। मेरी तुच्छ रायमें उनका पक्ष न्याय्य है। वे कहते हैं कि यदि मुसलमानोंके भावका सम्मान करना है, तो तुर्कोंको सजा हर्गिज न देनी चाहिये। मुसलमान सैनिकोंने स्वयम् अपने खलीफाको सजा देने या उनके प्रदेशोंसे वञ्चित करनेको युद्ध किया था। इन पांच वर्षोंके भीतर मुसलमानोंका भाव एक समान बना रहा है।

मैं जिस साम्राज्यका भक्त हूं उसके प्रति मेरा कर्त्तव्य उस निर्दय चोटका प्रतिकार करनेको कहता है जो मुसलमानोंके भावको पहुंचायी गयी है। जहांतक मुझे पता है कुल मुसलमानों और हिन्दुओंका ब्रिटिश न्याय और प्रतिष्ठासे बिल्कुल ही विश्वास उठ गया है। हंटर कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्ट, उसपर आपके खरीते और मि० मांटेगूके उत्तरने उस अविश्वासको और भी दृढ़ कर दिया है। ऐसी अवस्थामें मुझ जैसे आदमीके लिये दो ही मार्ग रह गये हैं। या तो हताश होनेके कारण मैं ब्रिटिश शासनसे सब प्रकारका अपना सम्बन्ध तोड़ लूं या यदि अब भी वर्त्तमान सभी शासनपद्धतियोंकी अपेक्षा ब्रिटिश शासनपद्धतिकी स्वाभाविक उत्कृष्टतामें विश्वास बना हुआ है, तो ऐसा उपाय काममें

लाऊं जो किये हुए अन्याय दूर करेगा और फिर विश्वास पैदा करेगा। ऐसी उत्कृष्टतासे मेरा विश्वास नहीं उठा है और मैं इस बातसे निराश नहीं हुआ हूं कि यदि हम सहिष्णुताकी आवश्यक योग्यता दिखायें तो किसी न किसी प्रकार न्याय किया जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि उस शासनपद्धतिके बारेमें मेरा विचार है कि यह केवल उन्हींको सहायता देती है जो स्वयम् अपनी सहायता करनेको तैयार हैं। यह निर्बलकी रक्षा करती है, ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। यह मजबूतोंको अपनी शक्ति बनाये रखने और उसे बढ़ानेके लिये पूरा सुभीता देती है। इसके भीतर निर्बलको भारी संकट होता है। इस तरह मैंने जो सलाह दी है कि यदि सन्धिकी शर्त्तोंमें मन्त्रियोंकी प्रतिज्ञाओं और मुसलमानोंके भावके अनुसार सुधार न हो, तो मुसलमान आपकी सरकारको सहायता देना बन्द कर दें और हिन्दूभीउनका साथ दें इसका कारण यही है कि मेरा ब्रिटिश शासनपद्धतिमें विश्वास है। मुसलमानोंके लिये उस घोर अन्यायके प्रति विरोध-भाव दर्शानेके लिये तीन राह खुले हुए हैं जो करनेमें महाराजके मन्त्रियोंने भाग अवश्य लिया है यदि वे प्रधान अन्याय करनेवाले नहीं हैं:—(१) मारकाटका आश्रय लेना (२) देश छोड़कर सबका बाहर चले जाना और (३) गवर्नमेण्टको सहयोग देना बन्दकर अन्यायका पक्ष न लेना।

आपको अवश्य पता होगा कि एक समय था जब अत्यन्त साहसी यद्यपि विचारशून्य मुसलमान मारकाटका पक्ष करते

थे और 'हिजरत' करनेकी पुकार अब भी बनी हुई है। मैं दावा कर सकता हूं कि शान्तिपूर्वक समझानेसे मैंने मारकाटके पक्षपातियोंको उनके रास्तोंसे अलग कर दिया है। मैं स्वीकार करता हूं कि नैतिक कारण बताकर नहीं, बल्कि कार्य-सिद्धिका कारण पेशकर मैंने उन्हें मारकाटके रास्तेसे अलग करनेका प्रयत्न किया था। परिणाम कमसे कम इस समयके लिये यह हुआ है कि मारकाट रुक गयी है। हिजरतवालोंका काम एकदम नहीं बन्द हुआ है तो भी उसकी रोक हो गयी है। मेरा विश्वास है कि किसी प्रकारके दमनसे मारकाटका होना नहीं रुक सकता था यदि लोगोंके सामने एक प्रकारका अपने आप करनेको काम न रखा जाता जिसमें बहुत त्याग करनेको है और सफलता भी निश्चित है यदि जनताका बहुत बड़ा भाग ऐसा काम अङ्गीकार कर ले। इस प्रकारके कामका वैध और प्रतिष्ठित मार्ग एक असहयोग ही था। कारण यह कि प्रजाका यह अधिकार अनादि कालसे स्वीकार किया गया है कि, जो शासक बुरा शासन करता है उसे सहायता करनेसे वह इनकार कर दे। साथ ही मैं स्वीकार करता हूं कि जनसाधारणद्वारा असहयोगका प्रयोग होनेसे भारी सङ्कटोंकी सम्भावना है। भारतके मुसलमानोंके सामने जैसा विकट समय उपस्थित है इसमें किसी ऐसे कार्यसे इच्छित परिवर्त्तन नहीं हो सकता जो भारी सङ्कटोंसे पूर्ण नहीं है। इस समय थोड़े सङ्कटोंमें न पड़नेका फल यदि वास्तवमें कानून और शान्तिका नाश न होगा,

तो इससे भी बहुत बड़े सङ्कटोंका कारण अवश्य होगा। परन्तु असहयोगसे बचनेका एक मार्ग है। मुसलमानोंने जो प्रार्थना-पत्र दिया है उसमें आपसे प्रार्थना की गयी है कि जिस तरह आपके पहलेके वायसरायने दक्षिण अफ्रिकाके सङ्कटके समय नेतृत्व किया था, वैसे ही आप स्वयम् इस आन्दोलनका नेतृत्व करें। परन्तु यदि आप ऐसा करना नहीं चाहते और असहयोग अत्यन्त आवश्यक हो जाता है, तो मुझे आशा है कि आप इस बातका श्रेय तो मुझे तथा जिन्होंने मेरी सलाह मानी है उन्हें देंगे ही, कि हम लोग अपना परम कर्त्तव्य समझकर ही ऐसा काम कर रहे हैं।

लेबूरनम रोड,
ग्राम देवी, बम्बई।
२२ जून १६१० ई०

आपका—
मोहनदास कर्मचन्द,
गांधी।

६—प्रधानमंत्रीका उत्तर।

अङ्गरेजी डाकसे खिलाफत डेपुटेशनके उत्तरमें दी हुई प्रधान-मंत्रीकी वक्तृताकी पूरी और सरकारी रिपोर्ट हमें मिली है। वायसरायने यहां डेपुटेशनको जो जवाब दिया है इससे प्रधान मन्त्रीकी वक्तृता अधिक निश्चित और इसी लिये अधिक निराश करनेवाली है। उन्होंने जिन उच्च सिद्धान्तोंके आधारपर दो वर्ष पहले अपनी प्रतिज्ञा की थी उन्हींसे वे अब बिलकुल अनुचित

परिणाम निकालते हैं। वे कहते हैं कि तुर्कीकी हार हुई है इसलिये उसे जुर्मानेकी रकम जरूर चुकानी होगी। तुर्कीको सजा देनेका यह दृढ़ निश्चय एक ऐसे आदमीके लिये शोभा नहीं देता जिसके पहलेके अधिकारीने मुसलमान सैनिकोंको सन्तुष्ट करनेके लिये प्रतिज्ञा की थी कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टका विचार तुर्कोंकी जमीन दबानेका नहीं है और तुर्की कमेटीके कुकर्मोंके लिये सुलतानको सजा देनेका यह कभी विचार न करेगी। मि० लायड जार्जने अपना विचार प्रकट किया है कि तुर्कोंकी जनताका अधिकांश वास्तवमें ब्रिटेनसे नहीं लड़ना चाहता था और तुर्कोंके शासकोंने तुर्कोंको पथभ्रष्ट किया था। ऐसा दृढ़ विश्वास होने और मि० आस्क्विथके ऐसी प्रतिज्ञा करनेपर भी मि० लायड जार्ज तुर्कोंको न्यायके नामपर सजा देने जा रहे हैं। वे स्वभाग्यनिर्णय सिद्धान्तकी व्याख्या करते और तुर्कोंको एक एक करके उसके प्रदेशोंसे वञ्चित करनेकी स्कीमको न्यायपूर्ण बताते हैं। अपनी स्कीमकी न्याय्यता प्रतिपादित करते हुए वे थ्रेसको भी नहीं छोड़ते हैं जो पाठकोंको अत्यन्त आश्चर्यचकित करनेवाली बात है, क्योंकि इसी थ्रेसके बारेमें उन्होंने अपनी प्रतिज्ञामें कहा है कि इसके बहुत अधिक भागमें तुर्क जातिके लोग हैं। अब वे हमसे कहते हैं कि तुर्की और यूनानी दोनों ही मनुष्य-गणनाओंसे प्रकट होता है कि थ्रेसकी जनताका बहुत कम भाग मुसलमान है। मि० याकूबहुसेनने मद्रास खिलाफत कानफरेन्सके अपने भाषणमें इस कथनको असत्य बताया है। प्रधान-

मन्त्री अन्योंके साथ ही स्मिरनाका उदाहरण पेश करते हैं और कहते हैं कि एक बहुत ही पक्षपातरहित कमेटीसे हमने वहांकी जांच करायी तो, पता चला है कि गैर-तुर्क जातिवालोंकी संख्या तुर्कोंकी अपेक्षा वहां अधिक है। जबतक यह असत्य न सिद्ध किया जाय कि हजारों मुसलमान मार डाले गये और हजारों अपने घरोंसे मारकर भगा दिये गये हैं, तबतक एक पक्षकी कमेटीकी पक्षपातरहित जांचपर कौन विश्वास करेगा? आश्चर्यकी बात तो यह है कि मि० लायड जार्ज स्मिरनाके सम्बन्धमें सच्ची रिपोर्ट मिलनेके लिये जांच करनेको एक खास कमेटीकी नियुक्ति चाहते हैं जब कि अर्मेनियाकी हत्याओंकी जांचके लिये मि० मुहम्मदअलीके पक्षपातरहित कमीशन नियुक्त करनेके प्रस्तावको वे नहीं स्वीकार करना चाहते! सन्देहपूर्ण तथा इकतर्फी बातों और अङ्कोंसे वे यहांतक परिणाम निकालते हैं कि तुर्क सरकार अपनी प्रजाकी रक्षा करनेके अयोग्य है। वे यह भी राय देते हैं कि सभ्यताके हितके लिये एशियाई रूमपर शासन करनेमें विदेशी हस्तक्षेपकी आवश्यकता है। इस बातसे वे सुलतानकी स्वतन्त्रताकी जड़ काटते हैं। निरीक्षणका अधिकार लेनेका यह प्रस्ताव स्पष्टतः अन्य शत्रुराज्योंके साथ किये हुए बर्त्तावसे भिन्न है।

सुलतानके राज्याधिकारको कम करना इस बातका प्रमाण है कि, मुसलमानोंका खिलाफतके सम्बन्धमें जो विचार है, प्रधानमन्त्री उसकी उपेक्षा करते हैं। जब वे इस तरह अविचारपूर्वक

खिलाफतके प्रश्नका प्रवन्ध करते हैं तब तुर्की प्रश्नके सम्वन्धमें प्रधानमन्त्रीका अन्याय और भी अधिक भयङ्कर हो जाता है। ऐसे भी अवसर उपस्थित हो चुके हैं जब अङ्गरेजोंने अपने सुभीते या लाभके लिये मुसलमानोंका खलीफाकी अध्यात्मिक शक्तिके साथ सांसारिक शक्ति मिली हुई होनेका विचार काममें लाया था। अब बड़े राजनीतिज्ञ दोनों शक्तियोंके एक साथ होनेको बातको विवादग्रस्त बात बताते हैं। इससे ग्रेटब्रिटेनकी ख्याति बढ़ेगी या घटेगी? जिन लोगोंने अङ्गरेजोंकी ईमानदारीमें पूरा विश्वास रखकर तुर्कीसे युद्ध किया था क्या वे यह सहन कर सकते हैं? केवल प्रकट की हुई कृतज्ञता मुसलमानोंके जख्मी हृदयोंको शान्त नहीं कर सकती। दो मैंडेट (शासन) उपस्थित हैं, एक तो कुछ तुर्की प्रदेशोंका शासन है जिससे कुल संसारमें गड़बड़ होना निश्चित है और दूसरा मुसलमानोंके हृदयपर शासन जमाना है जिससे ब्रिटेनकी प्रतिज्ञाका पालन होगा। अब यह इङ्गलैण्डका काम है कि इन दो शासनोंमेंसे एकको पसन्द करे। प्रधानमन्त्रीने जो पसन्द किया है वह बुद्धिमत्ताशून्य है। यह संकीर्ण विचार ब्रिटिश कूटनीतिज्ञताके हालके स्वभावका परिचय देता है।

१०—मुसलमानोंकी प्रार्थना।

मुसलमानोंके सामने जो युद्ध है उसके लिये वे धीरे धीरे परन्तु निश्चयके साथ तैयार हो रहे हैं। उन्हें अपनेसे भारी शक्तियोंका सामना करना है, परंतु वें इतनी विषम नहीं हैं जितनी

उनके मचीके विरुद्ध थीं। उन्होंने कितनी अधिक बार अपना जीवन सङ्कटमें नहीं डाला था? परन्तु परमात्मामें उनका विश्वास अटल था। वे निश्चिन्त हृदयसे आगे बढ़ते थे, क्योंकि वे सत्य बात कहते थे जिससे परमात्मा उनके पक्षमें था। नबी-का जितना विश्वास परमात्मामें था यदि उनके अनुयायियोंमें उसका आधा भी हो और इनमें उनसे आधा भी त्याग हो, तो विषमता तुरन्त समानतामें परिणत हो जायगी और थोड़ी ही देरमें वह तुर्कोंको बर्बाद करनेवालोंके विरुद्ध हो जायेगी। मित्रराष्ट्रोंकी अपहारबुद्धि अभीसे उनके विरुद्ध प्रभाव पैदा करने लगी है। फ्रांसको अपना काम कठिन जान पड़ता है। यूनानने बुरी तरहसे जो प्राप्त किया है उसे वह हजम नहीं कर सकता। इङ्गलैण्डको मेसोपोटामिया लोहेका चना मालूम हो रहा है। मोसलका तेल उस आगके लिये आहुतिका काम कर सकता है जो उसने अविचारपूर्वक जलाया है और उसकी अंगुलियां जला सकता है। समाचारपत्र कहते हैं कि अरब अपने बीच भारतीय सैनिकोंका रहना नहीं पसन्द कर सकते हैं। इससे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं होता। वे बहादुर और उग्र जाति-के हैं। वे नहीं समझते कि भारतीय सैनिक क्यों मेसोपोटामिया-में रहें। असहयोगका चाहे जो परिणाम हो, मैं चाहता हूं कि मेसोपोटामियाके सैनिक या मुल्की किसी भी विभागके लिये एक भी भारतीय भर्ती न हो। हमें अपने लिये सोचना सीखना चाहिये और किसी नौकरीमें भर्ती होनेसे पहले यह देखना चाहिये

कि कहीं किसी नौकरीमें भर्त्ती होनेसे हम अन्यायके साधन तो नहीं बनते। खिलाफतके प्रश्न और इस अमूर्त्त न्यायकी बातके सिवाभी तो अंग्रेजोंका मेसोपोटामियापर अधिकार रखनेका कोई अधिकार नहीं है। हमारी राजभक्ति इसमें नहीं है कि साम्राज्य सरकारको हम उस काममें मदद दें जो स्पष्ट शब्दोंमें दिनदहाड़े चोरी करनेका हैं। इसलिये यदि हम मेसोपोटामियामें सैनिक या असैनिक नौकरी ढूंढ़ते हैं, तो वह रोजीके लिये करते हैं। यह देखना हमारा कर्त्तव्य है कि जड़ सदोष नहीं है। यह देख मुझे आश्चर्य होता है कि इतने अधिक आदमी असहयोगका नाम सुनकर ही पीछे हट रहे हैं। असहयोगके समान शुद्ध, हानि-रहित और साथ ही प्रभावपूर्ण साधन और कोई नहीं है। न्याया-नुसार इसे चलानेसे बुरे परिणाम नहीं पैदा होने चाहिये। जितने ही लोग त्यागकी योग्यता दिखायेंगे उतनी ही इसकी जड़ नीचे जायेगी।

मुख्य बात असहयोगके लिये वायुमण्डल तैयार करना है। प्रत्येक समझदार प्रजाजनको निश्चय ही यह कहनेका अधिकार और कर्त्तव्य है कि "हम तुम्हारे अन्यायमें तुम्हें सहयोग नहीं देंगे।" यदि हम एकदम गुलाम, असहाय और आत्मविश्वास-शून्य न होते तो निश्चय ही हम इस शुद्ध अस्त्रको ग्रहणकर इससे प्रभावपूर्ण काम लेते। अत्यन्त स्वेच्छाचारी सरकार भी शासि-तोंकी मर्जीके बिना नहीं रह सकती और वह मर्जी स्वेच्छाचारी उससे प्रायः जबर्दस्ती प्राप्त किया करता है। ज्योंही प्रजा स्वे-

च्छाचारीको शक्तिसे डरना छोड़ देती है, त्यों त्यों उसकी शक्ति जाती रहती है। परन्तु वृटिश सरकार कभी कहीं भी पूर्णरूपसे पशुबलके आधारपर नहीं है। यह शासितोंकी सदिच्छा प्राप्त करनेके लिये सच्चे दिलसे प्रयत्न करती है। पर शासितोंसे जबर्दस्ती उनकी मर्जी प्राप्त करनेके लिये अविचारपूर्ण साधन काममें लानेसे नहीं हिचकती। 'सचाई सर्वोत्तम नीति है' इस विचारके बाहर यह नहीं गयी है। यह अपनी इच्छा तुमसे स्वीकार करानेके लिये तुम्हें पदवियां, पदक और नौकरियां देती और अपनी उत्कृष्ट आर्थिक योग्यतासे अपने नौकरोंके धनी होनेके लिये मार्ग खोलती और जब इन सबसे काम नहीं चलता तब अन्तमें पशुबल काममें लाती है। ऐसा ही सर माइकल ओडायरने किया था और निश्चय ही ऐसा प्रत्येक ब्रिटिश शासक आवश्यकता समझनेपर करेगा। तब यदि हम लोभी न बनें और पदवियों, पदकों और उन अवैतनिक पदोंके लिये न दौड़ें जिनसे देशका कुछ हित नहीं होता, तो आधी लड़ाई जीती जा चुकी। मेरे परामर्शदाता सदैव मुझसे कहते हैं कि यदि तुर्की सन्धिकी शर्त्तें बदली भी गयीं, तो असहयोग उसका कारण न होगा। मैं उनसे कहता हूं कि शर्त्तें बदलवानेके सिवा असहयोगका और भी उच्च उद्देश्य है। यदि मैं शर्त्तें नहीं बदलवा सकता तो कमसे कम इतना तो अवश्य करूंगा कि ऐसी सरकारको मदद देना बन्द कर दूंगा, जो बलापहार करनेमें भाग लेती है। यदि मैं असहयोगको उसकी अन्तिम श्रेणीतक पहुंचानेमें सफल हुआ, तो मैं सरकारको भारत और बलापहरण—इन दोमेंसे एक चुन

लेनेको बाध्य कर दूंगा।' मेरा विश्वास इङ्गलैण्डमें इतना अधिक है कि मैं जानता हूं कि उस समय इङ्गलैण्ड अपने वर्त्तमान खिन्न मन्त्रियोंको निकाल बाहरकर अन्योंको नियुक्त करेगा जो जागृत भारतसे रायकर शर्त्तोंको रद्दीकी टोकरीमें डाल ऐसी शर्त्तें तैयार करेंगे जो उसके तथा तुर्कोंके लिये सम्माननीय और भारतके लिये स्वीकार करने योग्य होंगी। परन्तु मैं अपने समालोचकोंको यह कहते हुए सुनता हूं कि भारतमें ऐसा सुन्दर उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये इच्छाशक्ति और त्यागकी योग्यता नहीं है। उनका कथन किसी अंशतक ठीक है। भारतमें ये गुण नहीं हैं क्योंकि हममें नहीं हैं। क्या हम इनका विस्तारकर राष्ट्रकी नसोंमें इन गुणोंको न भरेंगे? क्या ऐसा प्रयत्न करने योग्य नहीं है? इतना महान् उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये क्या कोई त्याग अति अधिक है?

११—मुसलमानोंके सूचनापत्रकी आलोचना।

खिलाफतके सम्बन्धमें वायसरायके पास जो निवेदनपत्र तथा उसी विषयमें मेरा जो पत्र भेजा गया है, इन दोनोंकी ऐंग्लो-इण्डियन पत्रोंने बड़ी कड़ी आलोचना की है। 'दी टाइम्स आफ इण्डिया'ने जो साधारणतः निष्पक्ष भाव ग्रहण करता है मुसलमानोंके सूचनापत्रमें कही हुई कई बातोंपर कड़ा आक्षेप किया है और मैंने जो राय दी है कि यदि सन्धिकी शर्त्तें न सुधारी जायं तो वायसरायको इस्तीफा दे देना चाहिये, इसपर उसने

अपने लेखके एक पैरेमें विरुद्ध आलोचना की है। जो यह कहा गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यको तुर्कीके साथ एक शत्रु के समान वर्त्ताव न करना चाहिये, 'टाइम्स आफ इण्डिया'ने इसपर आपत्ति की है। पत्रपर दस्तखत करनेवालोंने मेरी समझसे इसका सर्वोत्तम हेतु उपस्थित किया है। वे कहते हैं कि, "हम प्रतिष्ठा-पूर्वक निवेदन करते हैं कि तुर्कीके साथ वर्त्ताव करनेमें ब्रिटिश सरकारको भारतीय मुसलमानोंके भावकी वहांतक प्रतिष्ठा करनी ही चाहिये जहांतक वह न तो न्यायरहित हो और न अनुचित।" यदि सात करोड़ मुसलमान साम्राज्यमें हिस्सेदार है, तो मेरा कहना है कि उनकी इच्छाको ही तुर्कोंको सजा देनेसे अलग रहनेके लिये काफी समझना चाहिये। तुर्कोंने युद्धकालमें क्या किया, यह कहना अप्रासङ्गिक है। उसने जो कुछ किया उनके लिये वह कष्ट उठा चुका है। 'टाइम्स' पूछता है कि किस बातमें तुर्कीके साथ अन्य शक्तियोंसे बुरा वर्त्ताव किया गया है। मैं समझता था कि यह स्वयंसिद्ध बात है। जिस तरह तुर्कीके साथ वर्त्ताव किया गया है उस तरह न तो जर्मनीके साथ किया गया है और न आस्ट्रिया और हङ्गरीके साथ। कुल साम्राज्य घटाकर सुलतानकी विडम्बना करनेके लिये राजधानीके एक भागपर उनका अधिकार बना रखा गया है और वह भी ऐसी शर्त्तोंके साथ किया गया है जो इतनी अपमानजनक हैं कि सम्भवतः कोई भी आत्माभिमानी मनुष्य उन्हें नहीं स्वीकार कर सकता, शासन करनेवाले एक बादशाहके स्वीकार करनेकी तो बात ही क्या?

'टाइम्स'ने इस बातपर बहुत जोर दिया है कि निवेदनपत्रमें तुर्कीके मित्रराष्ट्रोंके पक्षमें न मिलनेके कारणपर विचार नहीं किया गया है। यह कोई गूढ़ बात नहीं है। रूस एक मित्रराष्ट्र था, यही बात तुर्कीका मित्रराष्ट्रोंसे मिलना रोकनेवाली थी। युद्धके समय रूसको अपने दर्वाजेपर टक्कर मारते देख तुर्कीके लिये मित्रराष्ट्रोंके साथ मिलना साधारण बात नहीं थी। परन्तु स्वयं ब्रिटेनपर भी सन्देह करनेका तुर्कीके लिये कारण था। वह जानता था कि बलगेरियन युद्धके समय इङ्गलैंडने उसके साथ मित्रोचित व्यवहार नहीं किया। तो भी तुर्कीका जर्मनी आदिसे मिलना बुरा हुआ। भारतीय मुसलमान जागृत और उसे मदद देनेको तैयार थे। ऐसी दशामें उसके राजनीतिज्ञोंको विश्वास रखना था कि यदि मित्रराष्ट्रोंसे मिलेंगे तो तुर्कीको ब्रिटेन हानि न पहुंचने देगा। तुर्कीने बुरा निश्चय किया जिसके लिये उसे सजा मिली। अब उसे अपमानित करना भारतीय मुसलमानोंके भावको उपेक्षा करना है। ब्रिटेनका एसा न करके भारतके जागृत मुसलमानोंको राजभक्त बनाये रखना चाहिये। 'टाइम्स'का यह कहना कि सन्धिकी शर्तें पूर्णरूपसे स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके अनुसार हैं, अपने पाठकोंकी आंखमें धूल झोंकनेके समान है। क्या यह स्वभाग्यनिर्णयका सिद्धान्त है जिसके कारण एड्रियानोपल और थ्रेस तुर्कीसे अलगकर यूनानको दे दिये गये हैं? स्वभाग्यनिर्णयके किस सिद्धान्तके अनुसार स्मिरना यूनानको सौंपा गया है? यूनानको अधीनता-

में जानेके सम्बन्धमें क्या थ्रेस और स्मिरनाके निवासियोंसे पूछा गया है? मैं यह विश्वास नहीं करता कि अरबोंके सम्बन्धमें जो व्यवस्था की गयी है उसे अरब लोग पसन्द करते हैं। हिजाजके राजा कौन है और अमीर फिजूल कौन है? क्या अरबोंने इन राजाओं और मुखियोंको चुना है? क्या अरब पसन्द करते हैं कि मैंडेट (शासन प्रबन्ध) इङ्गलैण्ड ग्रहण करे? जिस समय सब बातें पूरी हो जायेंगी उस समय स्वभाग्यनिर्णयका नाम भी लोगोंको चुभेगा। अब भी ऐसे लक्षणोंकी कमी नहीं है कि अरबों, और थ्रेसवासियों तथा स्मिरनाके निवासियोंके भाग्यका जो निपटारा किया गया है उसके वे लोग विरुद्ध हैं। सम्भव है कि वे तुर्क शासन न पसन्द करते हों, किन्तु वर्त्तमान प्रबन्ध वे और भी कम पसन्द करते हैं। वे अपनी ओरसे तुर्कोंके साथ प्रतिष्ठापूर्ण शर्तें कर सकते थे, परन्तु स्वभाग्यनिर्णय करनेवाले ये लोग अब मित्रराष्ट्रोंकी 'अद्वितीय शक्ति' अर्थात् ब्रिटिश सेनाओंके अधीन रखे जायेंगे। ब्रिटेनके लिये तुर्की साम्राज्यको अभङ्ग बनाये रखने और सुशासनके लिये काफी गारण्टी करानेके लिये सीधा रास्ता खुला हुआ था। परन्तु उसके प्रधानमन्त्रीने गुप्त सन्धियों, माया और दम्भपूर्ण छलका टेढ़ा रास्ता पकड़ा।

अब भी बाहर निकलनेका एक मार्ग है। वह (ब्रिटेन) भारतको वास्तविक हिस्सेदार समझे। वह मुसलमानोंके सच्चे प्रतिनिधियोंको बुलावे उन्हें अरब तथा तुर्की साम्राज्यके अन्य भागोंमें जाने दे और वह ऐसी स्कीम तैयार करे जो मुसलमानोंके न्याय-

पूर्ण भावके अनुकूल हो और जिससे उस साम्राज्यकी जातियोंको वास्तविक स्वभाग्यनिर्णय प्राप्त हो। यदि कनाडा, आस्ट्रेलिया या दक्षिण अफ्रिकाको सन्तुष्ट करनेका प्रश्न होता, तो मि० लायड जार्जको उनकी उपेक्षा करनेका साहस न होता। उन्हें साम्राज्यसे अलग हो जानेकी शक्ति प्राप्त है। भारतको वह शक्ति नहीं प्राप्त है। यदि उसके भावोंकी कुछ परवाह नहीं की जाती, तो उन्हे भारतको फिर हिस्सेदार कहकर उसका अपमान न करना चाहिये। मैं 'टाइम्स आफ इण्डिया'से कहता हूं कि वह अपनी बातपर पुनः विचार करे और एक ऐसे प्रतिष्ठित आन्दोलनमें सम्मिलित हो जिसमें उच्च आत्मावाली जाति न्यायके सिवा और कुछ नहीं चाहती है। मैं सम्मानपूर्वक फिर भी कहता हूं कि यदि मन्त्री लोग भारतके पुत्रोंके पवित्र भावोंकी प्रतिष्ठा नहीं करते, तो लार्ड चेम्सफोर्डको कमसे कम पदत्याग कर देना चाहिये। 'टाइम्स' शासनपद्धतिकी दुहाई देकर कहता है कि इसके भीतर वायसरायको महाराजके मन्त्रियोंके निर्णयोंके विरुद्ध काम करनेका मार्ग नहीं है। निश्चय ही वायसरायके लिये ऐसा मार्ग नहीं है कि पदपर बने रहकर मन्त्रियोंके निर्णयोंका विरोध करे। परन्तु पद्धतिसे किसी वायसरायको पूरा अधिकार प्राप्त है कि वह अपने पदसे इस्तीफा दे दे जब उसे ऐसे निर्णयके अनुसार काम करना पड़े जो सन्धिकी शर्तोंकी तरह अनीतिपूर्ण या इनकी तरह ऐसे हैं जो उन लोगोंके हृदयको हिला देनेवाले हैं जिनके मामलेका शासनप्रबन्ध वह वर्तमानमें कर रहा है।

१२—मुसलमानोंका निश्चय।

इलाहाबादकी खिलाफत सभाने फिरसे असहयोगका सिद्धान्त सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया है और कार्यक्रम निश्चित करने तथा उसको कार्यमें परिणत करनेके लिये एक कार्यकारिणी कमेटी नियुक्त की है। उस सभाके पहले हिन्दुओं और मुसलमानोंकी एक सम्मिलित बैठक हुई थी जिसमें अपने विचार प्रकट करनेके लिये हिन्दू नेता बुलाये गये थे। उसमें मिसेज बेसेण्ट, माननीय मालवीयजी, डा० सप्रू, पं० मोतीलाल नेहरू, मि० चिन्तामणि तथा अन्य लोग सम्मिलित हुए थे। खिलाफत कमेटीने सब तरहके विचारोंके हिन्दुओंको उनके विचार जाननेके लिये बुलाकर बड़ी बुद्धिमानीका काम किया। मिसेज बेसेण्ट और डा० सप्रूने उपस्थित मुसलमानोंको असहयोगकी नीतिसे विरत करनेके लिये बड़ा जोर लगाया। अन्य हिन्दू वक्ताओंने ऐसे व्याख्यान दिये जिसमें उन्होंने किसी पक्ष विशेषसे अपनेको बद्ध नहीं किया। जहां अन्य हिन्दू वक्ताओंने सिद्धान्त रूपसे असहयोगके सिद्धान्तका समर्थन किया वहां कार्यमें अनेक कठिनाइयां उन्हें दिखाई दीं। उन्होंने यह भी भय प्रकट किया कि यदि मुसलमानोंने भारतपर चढ़ाई करनेवाले अफगानोंका स्वागत किया, तो पेचोली अवस्था पैदा हो जायेगी। मुसलमान वक्ताओंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दोंमें पूर्ण रूपसे विश्वास दिलाया कि कोई भी आक्रमणकारी जो भारत जीतनेके

लिये आक्रमण करेगा उससे मुसलमान बच्चा बच्चा युद्ध करेगा। परंतु उन्होंने उतने ही स्पष्ट शब्दोंमें यह भी कहा कि बाहरसे यदि इसलामके गौरव और न्यायकी रक्षाके लिये कोई आक्रमण होगा, तब यदि वास्तविक सहायता न दी जायेगी तो भी उसके साथ उनकी पूरी सहानुभूति होगी। हिन्दुओंकी सावधानताको समझना और न्यायानुकूल बताना अत्यन्त सहज है। मुसलमानोंके पक्षका प्रतिवाद करना कठिन है। मेरी रायमें तो भारतको अङ्गरेज़ों और इसलामकी सेनाओंका युद्धक्षेत्र होनेसे रोकनेका सर्वोत्तम उपाय हिन्दुओंके लिये यह है कि वे असहयोगको तुरन्त पूर्ण रूपसे सफल बनावें और मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है कि यदि मुसलमान अपने प्रकट किये हुए विचारपर दृढ़ रहे और आत्मनिरोध और त्याग करनेमें समर्थ हुए, तो हिन्दू अपना कर्त्तव्य पूरा करेंगे और असहयोगकी लड़ाईमें उनका साथ देंगे। इसी तरह मुझे यह भी निश्चय मालूम होता है कि, हिन्दू ब्रिटिश सरकार तथा उसके मित्रराष्ट्रों और अफगानिस्तानके बीच युद्ध करानेमें मुसलमानोंको मदद न देंगे। ब्रिटिश सेना इतनी सुसंगठित है कि, भारतीय सीमापर सफलतापूर्वक कोई आक्रमण होना असम्भव है। इसलिये मुसलमानोंके सामने इसलामकी प्रतिष्ठाके लिये प्रभावपूर्ण लड़ाईका एकमात्र मार्ग यही है कि सच्चे दिलसे असहयोग करें। यदि जनताके बड़े भागने इसे अङ्गीकार किया तो यह पूर्णरूपसे प्रभावपूर्ण ही न होगा, बल्कि इससे व्यक्तियोंको अपने अन्तःकरणके आदेशानुसार

काम करनेका पूरा अवसर मिलेगा।" यदि मैं किसी व्यक्ति या व्यक्तिसमूहका किया हुआ अन्याय नहीं सह सकता और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे उस व्यक्ति या व्यक्तिसमूहको टि करनेका कारण होता हूं, तो मुझे इसके लिये अपने रचनेवाले सामने अवश्य जवाब देना पड़ेगा। परन्तु ऊपर कहे हुए ढङ्ग यदि मैं अन्यायका समर्थन करना बन्द कर देता हूं, तो मेरे लि अपने उस नैतिक नियमके अनुसार जो कुछ करना सम्भव थ मैं कर चुका जो अन्यायकारीको भी चोट पहुंचानेसे इनका करता है। इसलिये इतनी बड़ी शक्तिको काममें लानेमें न तो जल्दी होनी चाहिये और न आवेश दिखाना चाहिये। असहयोग स्वेच्छाका उद्योग होना चाहिये। इस तरह सारी बातें स्वयम मुसलमानोंपर ही निर्भर करती हैं। यदि वे अपनी मदद स्वय करेंगे, तो हिन्दुओंकी सहायता प्राप्त होगी और यद्यपि गवर्न-मेण्ट बड़ी शक्तिसम्पन्न है, पर उसे इस अनिवार्य शक्तिके सामने झुकना पड़ेगा। पूरे राष्ट्रके रक्तरहित विरोधका सम्भवतः कोई गवर्नमेण्ट प्रतिकार नहीं कर सकती।

१३—मि० ऐंड्रूजकी कठिनाई।

मि० ऐंड्रूजने जिनका भारतप्रेम केवल उनके इङ्गलैण्ड-प्रेमके समान है और जिनके जीवनका मुख्य कार्य, भारतके द्वारा परमात्मा या मानव जातिकी सेवा करना है, 'बाम्बेक्रानिकल'में

खिलाफत आन्दोलनके सम्बन्धमें मार्केके लेख लिखे हैं। उन्होंने इङ्गलैण्ड, फ्रांस या इटाली किसीको नहीं छोड़ा है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार तुर्कोंके साथ अत्यन्त अन्यायपूर्वक बर्त्ताव किया गया है और किस तरह प्रधानमन्त्रीकी प्रतिज्ञा तोड़ी गयी है। अपने अन्तिम लेखमें उन्होंने मि० मुहम्मद-अलीके सुलतानको भेजे हुए पत्रपर विचार किया है और वे इस परिणामपर पहुंचे हैं कि मि० मुहम्मदअलीने अपने वक्तव्यमें जो दावा किया है वह उस दावेके विपरीत है जो हालमें वायसरायके पास भेजे हुए खिलाफत कमेटीके निवेदनपत्रमें प्रकट किया गया है जिसका वे पूर्णरूपसे अनुमोदन करते हैं। मैंने इस प्रश्नपर मि० ऐंड्रूजके साथ इतनी पूर्णतासे विचार किया है जितना सम्भव था। उन्होंने मुझसे कहा कि आप सर्वसाधारणके सामने अपना पक्ष और भी अधिक पूर्णताके साथ प्रकट करिये। विचार करनेका उनका एकमात्र उद्देश्य ऐसे पक्षको दृढ़ बनाने-का है जिसे वे वास्तवमें न्याय्य मानते हैं और जिससे यूरोपके अत्यन्त उत्तम विचारवाले इसका समर्थन करें और मित्रराष्ट्र खासकर इङ्गलैण्ड और नहीं तो लज्जाके कारण ही शर्त्तें सुधा-रनेको लाचार हो जाय। मैं मि० ऐंड्रूजकी बातका प्रसन्नता-पूर्वक उत्तर देता हूं। पहले ही मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि मैं ऐसा धार्मिक सिद्धान्त अस्वीकार करता हूं जो विवेक-से प्रमाणित नहीं है और जो सदाचारके विरुद्ध है। मैं अनु-चित धर्मभाव सहन कर सकता हूं यदि वह अनीतिपूर्ण न हो।

मेरी धारणा है कि खिलाफतका दावा न्याययुक्त और उचित है इसलिये यह बहुत अधिक जोरदार है, क्योंकि इसके पीछे मुसलमान संसारका धार्मिक भाव है। मेरी रायमें मि० मुहम्मद-अलीका वक्तव्य आपत्तिशून्य है। इसमें सन्देह नहीं कि यह राजनीतिक भाषामें है। परन्तु मैं भाषाके लिये झगड़नेको तैयार नहीं हूं जबतक वह सारगर्भ है।

मि० ऐंड्रूज समझते हैं कि मि० मुहम्मदअलीकी भाषासे पता चलता है कि वे अर्मेनियनोंके विरुद्ध अर्मेनियाकी और अरबोंके विरुद्ध अरबकी स्वतन्त्रताका विरोध करेंगे। मैं उसका ऐसा अर्थ नहीं समझता। वे, कुल मुसलमान और इसलिये हिन्दू लोग इङ्गलैंएड तथा अन्य राष्ट्रोंके उस निर्लज्जतापूर्ण प्रयत्नका विरोध करते हैं जो वे स्वभाग्यनिर्णयकी आड़में तुर्कोंको अङ्गभङ्ग और शक्तिहीन करनेके लिये कर रहे हैं। यदि मैं इसलामके विचार ठीक तौरपर समझता हूं, तो ये विचार प्रजातन्त्रके सिद्धान्तोंकेसे हैं। इसलिये यदि अर्मेनिया और अरब तुर्कोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें अवश्य मिलनी चाहिये। अरबके सम्बन्धमें अरबकी पूरी स्वतन्त्रताका अर्थ खिलाफत अरबके किसी मुखियाके अधिकारमें होना है। अरब लोग कुल मुसलमानोंकी रायके विरुद्ध जबतक वे मुसलमान हैं तबतक अरबपर अधिकार नहीं रख सकते। पवित्र स्थानोंका संरक्षक होना खलीफाके लिये आवश्यक है इसलिये इन स्थानोंके मार्गोंपर भी उसका अधिकार होना चाहिये। उसे

इतना योग्य होना चाहिये कि वह कुल संसारके विरुद्ध उनकी रक्षा कर सके। यदि कोई अरब मुखिया खड़ा हो जो तुर्कोंके सुलतानसे अधिक अच्छी तरह उक्त कार्य करनेमें समर्थ हो, तो मुझे कुछ भी सन्देह नहीं कि वह खलीफा माना जायेगा। सच बात तो यह है कि न तो मुसलमान और न हिन्दू ही अङ्गरेज मन्त्रियोंकी बातोंपर विश्वास करते हैं। उन्हें विश्वास नहीं कि अरब या अर्मेनियन पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं। वे स्वराज्य चाहते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। उस दावेके सम्बन्धमें किसीको आपत्ति नहीं है। परन्तु यह पता ठीक ठीक किसीने नहीं लगाया है कि अरब और अर्मेनियन तुर्कोंसे सब प्रकार यहांतक कि नाममात्रका भी सम्बन्ध तोड़ना चाहते हैं।

प्रश्न हमारे बुद्धिमत्तापूर्वक विचारोंसे हल नहीं होगा, बल्कि इसे हल करनेका मार्ग यह है कि बिल्कुल ही स्वतन्त्र विचारोंके मुसलमानों और हिन्दुओं तथा स्वतन्त्र विचारोंके यूरोपियनोंका एक संयुक्त कमीशन अर्मेनियनों और अरबोंको वास्तविक इच्छाकी जांच करनेके लिये नियुक्त किया जाय और फिर ऐसा प्रबन्ध किया जाय जिससे जातीयता और इसलाम दोनोंके दावोंका ठीक और सन्तोषजनक उपाय हो जाय। यह सभी जानते हैं कि स्मिरना और थ्रेस तथा एड्रियानोपिल बेईमानीसे तुर्कोंसे छीन लिये गये हैं और सीरिया तथा मेसोपोटामियामें अविचारके साथ मैंडेट स्थापित किये गये और हजाजमें अङ्गरेजोंका नियुक्त किया हुआ एक आदमी रखा गया है जो

ब्रिटिश तोपोंके नीचे है। यह अवस्था असह्य और अन्यायपूर्ण है। इसलिये अर्मेनिया और अरबके प्रश्नोंके सिवा जिस बेईमानी और दम्भने सन्धिकी शर्त्तें अपवित्र कर रखी हैं, उन्हें शीघ्र ही दूर कर देना चाहिये। यदि वहांकी जनताकी इच्छाका निश्चयपूर्वक पता लगाया जा सके, तो अर्मेनिया और अरबको उस स्वतन्त्रताका प्रश्न न्यायपूर्वक निपट सकता है जिससे कोई इनकार नहीं करता और जिसकी कार्यरूपमें सहज ही गारण्टी की जा सकती है।

१४—खिलाफत आन्दोलन।

मेरे एक मित्रने जो मेरे व्याख्यान सुनते रहे हैं एक बार मुझसे पूछा कि क्या मैं इण्डियन पेनल कोड (ताजीरात हिन्द) की राजद्रोहवाली दफाके भीतर नहीं आता। यद्यपि इसपर मैंने पूर्णरूपसे विचार नहीं किया था तो भी मैंने उनसे कहा कि बहुत सम्भव है कि मैं आता हूं और यदि मुझपर इस दफाका अभियोग लगाया जाय, तो मैं अपनेको निर्दोष नहीं कह सकता। कारण यह कि मैं यह बात स्वीकार करूंगा कि वर्त्तमान सरकारके लिये मैं 'प्रेम'का किसी प्रकारका दावा नहीं कर सकता। मेरे व्याख्यान ऐसा 'अप्रेम' फैलानेके विचारसे होते हैं जिससे लोग ऐसी सरकारको सहयोग या सहायता देना शर्मकी बात समझ जो विश्वास, प्रतिष्ठा या सहायताका सब प्रकारका स्वत्व खो चुकी है। मैं ब्रिटिश सरकार और भारत सरकारमें कुछ भेद

नहीं बताता। खिलाफतके सम्बन्धमें भारत सरकारने ब्रिटिश सरकारकी लादी हुई नीति स्वीकार की है। पञ्जाबके मामलेमें ब्रिटिश सरकारने भारत सरकारकी शुरू की हुई एक वीर जातिके लोगोंको पुंसत्वहीन और भयभीत करनेकी नीतिका समर्थन किया है। ब्रिटिश मन्त्रियोंने अपनी की हुई प्रतिज्ञाएं तोड़ीं और जान बूझकर भारतके सात करोड़ मुसलमानोंके भावोंपर आघात किया है। पञ्जाब सरकारके मदोन्मत्त अफसरोंने निरपराध पुरुषों और स्त्रियोंका अपमान किया है। उनके अन्याय दूर नहीं किये गये हैं। इसके विरुद्ध जिन अफसरोंने इतनी निर्दयतासे लोगोंका असभ्यतापूर्वक अपमान किया वे सरकारी पदोंपर अभीतक बने हुए हैं।

गत वर्ष जब मैंने अपनी शक्तिभर उत्सुकतापूर्वक गवर्नमेण्टको सहयोग देने और राजकीय घोषणामें प्रकट की हुई इच्छाओंको पूरा करनेके लिये जोर दिया था, तब वैसा इसलिये किया था, क्योंकि मैं सच्चे दिलसे विश्वास करता था कि नया युग प्रारम्भ होनेको है और डर, अविश्वास तथा परिणामस्वरुप भयसंचारके पुराने भावका स्थान प्रतिष्ठा, विश्वास और सदिच्छाका नया भाव लेनेको है। मैंने सच्चे दिलसे विश्वास किया था कि मुसलमानोंके भावकी शान्ति की जायेगी और जिन अफसरोंने पञ्जाबमें मार्शल लाके शासनकालमें बुरे बर्त्ताव किये हैं, वे कमसे कम बर्खास्त किये जायेंगे और अन्य प्रकारसे जनताको अनुभव करा दिया जायेगा कि जो सरकार लोगोंकी ज्यादतियोंके लिये

उन्हें सजा देनेको सदा तेज (और ठीक ही) देखी जाती है वह अपने एजेण्टोंको उनके कुकर्मोंके लिये सजा देनेसे न चूकेगी। परन्तु यह देख मुझे निराशा हुई है कि साम्राज्यके वर्तमान प्रतिनिधि बेईमान और विचारशून्य हो गये हैं। भारतीय जनताकी इच्छाओंके लिये उनके हृदयमें वास्तविक सम्मान नहीं है और वे भारतीय प्रतिष्ठाको कुछ भी नहीं समझते। मैं और अधिक समयतक ऐसी सरकारके लिये प्रेम नहीं रख सकता जिसके आजकलके जैसे इतने बुरे नौकर हैं। मेरे लिये यह अपमानजनक है कि मैं स्वतन्त्र रहकर होते हुए अन्यायको देखता रहूं। मि० मांटेगूने वास्तवमें मुझे जो धमकी दी है कि यदि मैं सरकारका अस्तित्व संकटमें डालनेको जिद पकड़े रहूंगा तो मेरी स्वतन्त्रता छीन ली जायेगी, यह ठीक ही है। कारण यह कि यदि मेरा कार्य सफल हुआ तो निश्चय ही उसका यही परिणाम होना है। मुझे खेद है तो केवल यह कि जिस प्रकार मि० मांटेगू मेरी पहलेकी सेवाओंको स्वीकार करते हैं इसी प्रकार वे यह नहीं सोच सकते कि सरकारमें कोई बड़ी असाधारण बुराई होगी तब तो मुझ जैसा शुभचिन्तक उससे और अधिक प्रेम नहीं कर सका। मुझे इसलिये सजाकी धमकी देनेसे कि जिससे अन्याय सदाके लिये बना रहे यह कहीं सहज था कि मुसलमानों और पंजाबके साथ न्याय करनेके लिये आग्रह किया जाता। वास्तवमें मुझे पूर्ण आशा है कि यह पता चल जायेगा कि एक अन्यायी सरकारके प्रति अप्रेम फैलानेमें जो

मैंने साम्राज्यकी उनसे अधिक सेवाएं की हैं जिनके करनेका श्रेय मुझे दिया जा चुका है।

इस समय उन लोगोंका कर्त्तव्य स्पष्ट है जो मेरे कार्यको पसन्द करते हैं। यदि भारत सरकार मेरी स्वतन्त्रताका हरण कर लेना अपना कर्त्तव्य समझे, तो वे किसी भी हालतमें क्रुद्ध न हों। एक नागरिकको ऐसे प्रतिबन्धका प्रतिकार करनेका कुछ भी अधिकार नहीं है जो उस राज्यके कानूनोंके अनुसार लगाया जाता है जिसकी वह प्रजा है। उससे सहानुभूति रखने-वालोंको तो और भी इसका अधिकार नहीं है। मेरे विषयमें सहानुभूतिका कोई प्रश्न नहीं हो सकता। कारण यह कि मैं जानबूझकर सरकारका विरोध यहांतक कर रहा हूं कि उसका अस्तित्व ही खतरेमें डालनेके प्रयत्नमें हूं। इसलिये मेरे सहा-यकोंके लिये वह प्रसन्नताकी घड़ी होगी जब मैं जेलमें बन्द कर दिया जाऊं। उसका अर्थ सफलताका प्रारम्भ होगा यदि समर्थक लोग केवल मेरी ग्रहण की हुई नीतिको जारी रखें। यदि सरकार मुझे पकड़ेगी तो उस असहयोगकी वृद्धि रोकनेके लिये पकड़ेगी जिसका मैं उपदेश करता हूं। इससे यह परि-णाम निकलता है कि यदि मेरी गिरफ्तारीके बाद भी असहयोग अशिथिल उत्साहसे जारी रहेगा, तो सरकार या तो औरोंको भी जेल भेजेगी या सहयोग प्राप्त करनेके लिये जनताकी इच्छा पूरी करेगी। जनता चाहे अत्यन्त उत्तेजित किये जानेपर ही मारकाट मचाये, पर मारकाटके परिणामस्वरूप संकट उपस्थित

होगा। इसलिये आन्दोलनके समयमें चाहे मैं पकड़ा जाऊं या दूसरा कोई, सफलताकी पहली शर्त्त यह है कि उसके विरुद्ध क्रोध न प्रकट किया जाये। हम ऐसा नहीं कर सकते कि एक ओर तो गवर्नमेण्टका अस्तित्व खतरेमें डालें और दूसरी ओर उससे लड़ें जब वह अपनेको संकटमें डालनेवालोंको सजा देकर अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न करे।

१५—हिजरत और उसका अर्थ।

भारत एक महाद्वीप है। इसके हजारों समझदार जानते हैं कि इसके लाखों नासमझ लोग क्या करते और सोचते हैं। सरकार और शिक्षित भारतीयोंकी समझ हो सकती है कि खिलाफत आन्दोलन जानेवाली वस्तु है। करोड़ों मुसलमान इसके विरुद्ध समझते हैं। मुसलमान देश छोड़कर भागे जा रहे हैं। समाचारपत्रोंके प्रमुख स्थानोंपर खबर छपी रहती है कि एक ट्रेनमें जिसमें एक बैरिस्टर थे,६० स्त्रियों ४० बच्चों सहित कुल३६५ जन अफगानिस्तानके लिये रवाना हुए हैं। रास्तेमें करतल-ध्वनिद्वारा उनका स्वागत किया जाता है। उनको नकदी, खानेकी चीजें तथा अन्य वस्तुएं भेंट की गयीं और रास्तेमें और भी महाजरीन उनके साथ हो लिये। शौकतअलीका धर्मोन्मत्तताका व्याख्यान लोगोंको अपने घर छोड़ अज्ञात स्थानमें जानेको तैयार नहीं कर सकता। उनके भीतर अवश्य स्थायी

धर्मविश्वास होगा कि उनके लिये एक ऐसे राज्यको छोड़ फकीरीका जीवन बिताना शाही ठाठबाटके जीवनसे अच्छा है जो उनके धार्मिक भावका कुछ आदर नहीं करता। शक्तिके अभिमानके सिवा और कोई वस्तु भारत सरकारकी आंखें इस दृश्यसे अंधी नहीं कर सकती। परन्तु आन्दोलनका दूसरा पहलू भी है। और भी बातें हैं जो १६२० ई० की १० वीं जुलाईके निम्नाङ्कित सरकारी कम्यूनिकमें कही गयी हैं :—

"महाजरीनके सम्बन्धमें ८ वींको पेशावर और जमरूदके बीच कच्चागढ़ी स्टेशनपर एक शोचनीय घटना हो गयी है। अभीतक ये बातें मालूम हुई हैं। एक ट्रेनसे जो महाजरीन जमरूद जा रहे थे उनमेंसे दोको ब्रिटिश सैनिक पुलिसने बिना टिकट यात्रा करते हुए पकड़ा। इसलामिया कालेज स्टेशनपर कलह हुई, पर ट्रेन कच्चागढ़ीके लिये रवाना हुई। इन महाजरीनको ट्रेनसे उतारनेका प्रयत्न किया गया, इसपर कोई ४० महाजरीनने सैनिक पुलिसपर हमला किया और जिस ब्रिटिश अफसरने हस्तक्षेप किया वह एक कुदालसे बुरी तरह घायल किया गया। इसपर कच्चागढ़ीके भारतीय सैनिकोंके एक दस्तेने ब्रिटिश अफसरपर हत्याकारी चोट करनेके कारण महाजरीनपर दो तीन फैरें कीं। एक महाजरीन मारा गया और एक घायल हुआ तथा तीन गिरफ्तार किये गये। सेना और पुलिसके लोग जख्मी हुए। महाजरीनकी लाश पेशावर भेजी गयी और ६ वींको सबेरे दफनायी गयी। इस घटनासे पेशावर शहरमें बड़ी हलचल

मच गयी है और खिलाफत हिजरत कमेटी लोगोंको आपेसे बाहर होनेसे रोक रही है। ह वींको सवेरे दूकानें बन्द कर दी गयीं। पूरी जांच की जा रही है।"

पेशावरसे जमरूद कुछ ही मीलोंपर है। सेनाका स्पष्ट कर्त्तव्य यह था कि कुछ आने पैसेके लिये वह विना टिकट सफर करनेवाले महाजरीनको उतारनेका प्रयत्न न करती। परन्तु उसने तो वास्तवमें जबर्दस्तीसे काम लिया। फिर तो यह निश्चित ही था कि अन्य लोग भी बीचमें पड़ेंगे। झगड़ा हुआ और एक अंगरेज अफसरपर कुदालसे हमला किया गया जिसके फलस्वरूप फैर की गयी और एक महाजरीनकी जान गयी। क्या इस दुर्घटनासे अंग्रेजोंका रोब बढ़ गया? जब धर्मसे प्रेरित हो लोग देश छोड़े जा रहे हैं, तब सरकारने सीमापर दक्ष अफसर क्यों नहीं नियत किये हैं? सेनाकी करतूत एक एकको जबानसे भारत तथा चारों ओरके मुसलमान जगत्में फैल जायेगी। इस तरह फैलनेमें इसमें सन्देह नहीं कि जानतः और अजानतः इसके सम्बन्धमें अत्युक्ति की जायेगी जिससे वर्त्तमान मनोमालिन्य और भी गहरा हो जायेगा। कम्यूनिकमें कहा गया है कि सरकार और भी अधिक जांच कर रही है। हमें आशा करनी चाहिये कि वह पूरी होगी और ऐसा प्रबन्ध किया जायेगा जिससे फिर ऐसा काम न हो जो सेनाका अविचारपूर्ण काम जान पड़ता है। क्या मैं उन लोगोंका ध्यान आकृष्ट कर सकता हूं जो असहयोगका विरोध कर रहे हैं कि जबतक उन्हें कोई

दूसरा उपाय हाथ नहीं लगता वे या तो असहयोग आन्दोलनमें सम्मिलित हों या ऐसी भीतरी असङ्गठित गड़बड़से सामना करनेको तैयार हों जिसके प्रभावका कोई अनुमान नहीं कर सकता और जिसका बढ़ना रोकना या व्यवस्थित करना असम्भव होगा ?

पञ्जाबके अन्याय।

१—राजनीतिक फ्रीमैसनरी।

फ्रीमैसनरी एक गुप्त समाज है जिसमें हमारे कुछ सर्वोत्तम मस्तिष्कके लोग भी सम्मिलित हैं। इसका कारण मानवजातिके प्रति उसकी सेवासे भी अधिक उसके गुप्त और कड़े नियम हैं। इसी प्रकार भारतके अफसरोंकी श्रेणीके आचरणका भी कुछ गुप्त नियम जान पड़ता है जिसके सामने ब्रिटिश जातिके रत्न भी साष्टाङ्ग गिर जाते और ऐसे अन्यायके साधन बनते हैं जिसे वैय-क्तिक रूपसे करनेके लिये वे लज्जित होंगे। हण्टर कमेटीके बहु-पक्षकी रिपोर्ट, भारत सरकारका खरीता और भारतसचिवका उसका उत्तर अन्य किसी प्रकारसे समझना किसीके लिये सम्भव नहीं है। यद्यपि एक श्रेणीके पत्रोंने कमेटीके मेम्बरोंके सम्बन्धमें घोर विरोध किया था, तो भी यह कहा जा सकता है कि साधा-रणतः जनता उसका विश्वास करनेको तैयार थी खासकर इसलिये कि उसमें तीन भारतीय मेम्बर ऐसे थे जिन्हें बहुत कुछ स्वतन्त्र कहा जा सकता है। इस विश्वासको सबसे भारी धक्का हण्टर कमेटीने यह दिया कि उसने कांग्रेस कमेटीकी यह साधा-रण मांग भी स्वीकार करनेसे इनकार कर दिया कि जेलमें भेजे हुए पञ्जाबी नेता उसके सामने अपने वकीलोंको बातें बतानेके

लिये हाजिर होने पायें। किसी आदमीके हृदयमें यदि कोई सन्देह बाकी रह गया था तो उसे कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्टने निकालकर बाहर कर दिया है। परिणामसे कांग्रेस कमेटीके भावकी युक्तियुक्तता प्रमाणित हो गयी है। इसके एकत्र किये हुए प्रमाण वह बात सिद्ध करते हैं जिससे लार्ड हण्टरकी कमेटीने जानबूझकर इनकार किया था। अल्प पक्षकी रिपोर्ट उस उपजाऊ स्थलके समान है जो मरुभूमिमें होता है। भारी विरुद्ध पक्षके होते हुए भी भारतीय मेम्बरोंने जो कर्त्तव्य पालन किया है उसके लिये वे देशवासियोंकी बधाईके पात्र हैं। क्या ही अच्छा होता कि उन्होंने सत्याग्रहके सभ्यतापूर्वक कानून तोड़नेके सम्बन्धमें इस परिवर्त्तित ढङ्गसे भी बहुमतका समर्थन करनेसे इनकार किया होता। १९१९ ई० की ३० वीं मार्चको दिल्लीकी भीड़ने उद्धत भाव दिखाया था उससे एक महान् आध्यात्मिक आन्दोलनकी निन्दा नहीं की जा सकती जिसके सम्बन्धमें यह स्वीकार किया गया और स्पष्ट भी हो गया है कि वह उपद्रवी भीड़वालोंकी उपद्रवकी प्रवृत्तियोंको रोकने और अपराधपूर्ण अनियमताके स्थानपर उस शासनकी आज्ञाओंको सभ्यतापूर्वक भङ्ग करनेके लिये है जो प्रतिष्ठाका सब अधिकार खो चुकी है। ३० वीं मार्चको तो सभ्यतापूर्वक कानून तोड़नेका प्रारम्भ भी नहीं किया गया था। संसारभरमें प्रायः जितने बड़े सार्वजनिक विरोधप्रदर्शन हुए हैं उनके साथ कुछ न कुछ अनियमता प्रायः सर्वत्र देखनेमें आयी है। जिस तरह सत्याग्रहके समय ३० वीं मार्च

और ६ ठी अप्रैलका विरोधप्रदर्शन हुआ वह अन्य किसी समयमें भी हुआ ही होता। मेरी धारणा है कि यदि नम्रता और व्यवस्थितताका इतना भाव न पैदा हुआ होता, तो दिल्लीमें आशा भङ्ग करदेने जो उपद्रव हुआ उससे बहुत अधिक भयंकर उपद्रव ही गया होता। लोगोंने असाधारण तेजीसे सत्याग्रहका सिद्धान्त स्वीकार किया था। इसीने देशके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक उपद्रव मचनेमें रुकावट पड़ी थी। लोगोंके ऊपर सत्याग्रहने जो अधिकार जमा रखा है—हो सकता है कि यह उनकी इच्छाके विरुद्ध ही हो—वही अशान्ति और उपद्रवकी शक्तियोंको रोके हुए है। परन्तु सत्याग्रहपर अन्यायपूर्ण जो आक्रमण होते हैं उनके विरुद्ध सफाई पेशकर मैं पाठकोंका अधिक समय नहीं लेना चाहता। यदि इसने भारतमें अपना पैर जमा लिया है, तो यह हण्टर कमेटीके अल्पपक्ष द्वारा किसी अंशतक समर्थित बहुपक्षके किये हुए आक्रमणोंसे बहुत अधिक भयंकर आक्रमण होनेपर भी जीवित रहेगा। यदि इसी बातमें हण्टर कमेटीके बहुपक्षकी रिपोर्ट सदोष होती और अन्य सभी बातोंमें ठीक होती, तो इसकी प्रशंसा होनेके सिवा और कुछ न होता। आखिर राजनीतिक क्षेत्रमें सत्याग्रह तो एक नया परीक्षण ही है। इसलिये लोगोंकी किसी अव्यवस्थाका शीघ्रतामें इसे कारण बता देना क्षम्य होता।

रिपोर्ट और खरीतोंकी जो सर्वत्र निन्दा की गयी है वह बहुत अधिक दुःखपूर्ण विवरणोंके आधारपर है। जरा देखिये तो कि

अफसरोंके प्रत्येक अमानुषिक कार्यका—सिवा उन कार्योंके जिन्हें उनके करनेवालोंने धृष्टतापूर्वक स्वीकार किया था इसलिये जिसकी निन्दा किये बिना नहीं बचाव हो सकता था—पक्ष करनेका किस प्रकार परिश्रम किया हुआ स्पष्ट दिख रहा है। जरा देखिये तो कि जेनरल डायरके स्वीकार करनेपर भी उसका पक्ष ठीक सिद्ध करनेके लिये कितना प्रयत्न किया गया है। देखिये तो सही कि सर माइकेल ओडायरकी किस प्रकार व्यर्थ प्रशंसा की गयी है यद्यपि यह उसीका भाव था जिससे प्रेरित होकर उसके अधीन निम्न अफसरोंने अपराधके प्रत्येक कार्य किये थे। देखिये तो सही कि किस तरह जानबूझकर अप्रेलकी घटनाओंके पहलेके उसके कार्योंकी जांच करनेसे अस्वीकृति प्रकट की गयी। उसके कार्य खुले तौरपर हुए थे जिनपर न्यायकी दृष्टिसे विचार करना कमेटीका कर्त्तव्य था। अफसरोंकी कही हुई सारी बातें मान लेनेके स्थानमें कमेटीका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वह दङ्गेके वास्तविक कारण जाननेके लिये कष्ट उठाती। उसे घटनाओंकी भीतरी बातोंको ढूंढ़ना चाहिये था। सरकारी कागजपत्रोंकी कड़ी तहके पोछे धैर्यपूर्वक जानेके स्थानमें कमेटीने केवल सरकारी गवाही सुनकर ही अपनी उद्योगशून्यताका परिचय दिया। मेरी तुच्छ रायमें रिपोर्ट और खरीतोंमें सरकारी अनियमताओंको क्षमा करनेका प्रयत्न किया गया है। जेनरल डायरकी नरहत्या तथा पेटके बल चलनेके हुक्मकी जिस प्रकार सावधानी रखते हुए येमनकी निन्दा की गयी है, उससे पाठकोंकी निराशा

और भी गहरी हो जाती है जब वे बहुत पतली सरकारी फलई चढ़ाई हुई रिपोर्टके पन्नेके बाद पन्ने पढ़ते हैं। किन्तु रिपोर्टकी सविस्तर परीक्षा करनेकी मुझे बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं जान पड़ती जिसकी निन्दा माडरेट और एक्सट्रीमिस्ट सभी विचारोंके राष्ट्रीय पत्रोंने की है। विचार करनेकी बात है तो यही कि अफसरोंके पापका समर्थन करनेके लिये जो गुप्त षड्यन्त्र है वह क्योंकर तोड़ा जाय। राष्ट्र इतना भारी अपमान नहीं सह सकता यदि इसे अपनी आत्मप्रतिष्ठाकी रक्षा करनी और साम्राज्यका साम्भीदार बनना है। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटीने एक स्पेशल कांग्रेस करनेका विचार अन्य बातोंके सिवा इस रिपोर्टसे पैदा होनेवाली अवस्थापर [illegible] लिये

उसकी आत्मापर बुरा प्रभाव न पड़ता हो। परन्तु प्रत्येक राष्ट्र और व्यक्तिको अधिकार है और यह उसका कर्तव्य है कि असह्य अन्यायके विरुद्ध सिर उठावे। हथियार लेकर लड़ने होनेमें मेरा विश्वास नहीं है। वह ऐसी दवा है जो उस रोगसे भी बुरी है जिसका इलाज करना है। वह बदला लेनेके भाव, अधैर्य और क्रोधका चिन्ह है। हिंसात्मक उपाय अन्तमें लाभ नहीं पहुंचा सकते। देखिये जर्मनीके साथ मित्रराष्ट्र हथियार बांधकर खड़े हुए तो उसका प्रभाव क्या हुआ। क्या वे भी जर्मनीकी तरह ही नहीं बन गये जिनकी वे हमारे सामने इतनी निन्दा करते थे ?

हमारे पास एक अच्छा उपाय है। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें निरोध और धैर्य से काम लेनेकी आवश्यकता होती है जो हिंसात्मक उपाय काममें लानेमें आवश्यक नहीं होते। परन्तु इसके लिये इच्छाशक्तिकी दृढ़ता आवश्यक होती है। यह उपाय यही है कि अन्यायका साथ देनेसे इनकार करें। कोई अत्याचारी अपने उद्देश्यमें अत्याचारपीड़ितको साथ लिये बिना सफल नहीं हुआ है। हो सकता है जैसा प्रायः होता है कि वहपशुबलसे उसे अपने साथ ले। अधिकांश मनुष्य अत्याचारीकी इच्छाके आगे सिर झुकाना पसन्द करते हैं और उसका विरोधकर उसके परिणामस्वरूप होनेवाले कष्ट सहनेको तैयार नहीं होते। इसीसे अत्याचारी अपने कार्यके लिये भयसंचार किया करता है। परन्तु इतिहासमें हमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें भय

संचारकको अपनी इच्छाके अनुसार काम करानेके लिये भय
संचारसे सफलता नहीं प्राप्त हुई है। अब भारतके सामने अपना
रास्ता चुन लेनेका समय है। यदि पञ्जाब गवर्नमेंटके कार्य असह्य
अन्याय हैं और यदि लार्ड हण्टरकी कमेटीकी रिपोर्ट और उसके
सम्बन्धके दो खरीते उससे भी बढ़कर अन्याय हैं क्योंकि उनमें
उन अन्यायोंको बुरी तरहसे क्षमा किया गया है, तो यह स्पष्ट
है कि हमें इस सरकारी उद्दण्डताके आगे सिर झुकानेसे इनकार
करना चाहिये। आवश्यक हो तो सब प्रकारसे पार्लमेंटसे प्रार्थना
करिये, परन्तु यदि पार्लमेण्ट हमको निराश करती है और हम
अपनेको एक राष्ट्र कहनेके योग्य हैं, तो हमें सरकारको मदद
देनेसे इनकारकर उससे सहयोग लौटा लेना चाहिये।

२—पंजाबियोंका कर्त्तव्य।

इलाहाबादके 'लीडर'ने मि० बोसवर्थ स्मिथके सम्बन्धके पत्र-
व्यवहारको प्रकाशितकर प्रशंसनीय कार्य किया है। मि०
स्मिथ मार्शल लाका एक अफसर था जिसके लगातार बुरे-बर्ताव
करनेकी सबसे अधिक शिकायतें हैं। पत्रव्यवहारसे पता चलता
है कि मि० बोसवर्थ स्मिथको जहां बर्खास्त करना चाहिये था
वहां उसकी तरक्की की गयी है। मार्शल लाके कुछ समय पहले
उसका पद घटाया गया था। 'लीडर'का संवाददाता कहता है
कि, अब वह फिर डिपटी कमिश्नरके दूसरे ग्रेडमें नियुक्त किया
गया है जहांसे वह गिराया गया था और अब उसे जाब्ता फौजदारी

दारीकी धारा ३० का भी अधिकार दिया गया है। उसके आनेके समयसे अम्बाला छावनीकी गरीब जनता भय और अत्याचारके नीचे बसती है। संवाददाताका यह भी कहना है कि मैं इन दो शब्दोंका व्यवहार जानबूझकर इसलिये कर रहा हूं जिससे मेरा जो भाव है वह प्रकट हो जाय। भय और अत्याचारका अर्थ समझानेके लिये मैं इस पत्रसे कुछ वाक्य यहां देता हूं :—" प्राइवेट नालिशोंमें वह कभी फर्यादीका बयान नहीं लेता। अदालत उठ जानेपर वह बयान रीडर लेता और दूसरे दिन उसपर मजिस्ट्रेटसे सही कराता है। ऐसी अर्जियोंपर जो रिपोर्ट आती है वह चाहे फर्यादीके पक्षमें हो या विरुद्ध, उसे मजिस्ट्रेट कभी नहीं पढ़ता और दर्खास्तें बिना उचित जांचके ही खारिज कर दी जाती हैं। यह प्राइवेट नालिशोंकी गति होती है। अब पुलिसके चलानी मामलोंकी सुनिये। जिन अभियुक्तोंपर मामला चलता रहता है और जो पुलिसकी हिरासतमें होते हैं उनसे बातचीत करनेकी आज्ञा उनके वकीलोंको नहीं दी जाती। सरकारी वकीलोंसे जिरह करनेकी आज्ञा उन्हें नहीं दी जाती।...... सरकारी गवाहोंसे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनसे उत्तर स्पष्ट रहता है।......इस तरह सरकारी पक्षकी सब बातें पुलिसके मुंहसे कहा ली जाती हैं। अभियुक्त पक्षके गवाह यद्यपि बुलाये जाते हैं, किन्तु अभियुक्तोंके वकीलको उनसे प्रश्न पूछनेकी आज्ञा नहीं दी जाती।......यदि अभियुक्त अपनी रक्षाके लिये कोई बात कहनेका साहस करे तो वह चुप करा दिया जाता है।......

छावनीका कोई भी नौकर छावनीके किसी भी नागरिकको एक कागजके टुकड़ेपर उसका नाम लिखकर दूसरे दिन अदालतमें हाजिर होनेको कह सकता है। यही सम्मन है।......ऐसा हुक्म पाकर यदि कोई अदालतमें नहीं हाजिर होता, तो उसके विरुद्ध गिरफ्तारीके लिये फौजदारीका वारण्ट निकाला जाता है।" पत्रोंमें ऐसी बहुतसी बातें उद्धृत करने योग्य हैं, किन्तु लेखकका अर्थ स्पष्ट करनेके लिये मैंने काफी वाक्य दे दिये हैं। आइये जरा इस अफसरके मार्शल लाके समयके कारनामोंकी ओर ध्यान दें। यही अफसर था जिसने दलके दल आदमियोंपर दिखावटी मामला चला सजाएं दी थीं। गवाहोंने बयान किया है कि वह लोगोंको इकट्ठा कर लेता, उनसे झूठी गवाही देनेको कहता, स्त्रियोंके घूंघट उठाता, उन्हें मक्खियां, कुत्तियां और गधी कहता और उनके ऊपर थूकता था। उसीने शेखूपुराके निरपराध वकीलोंको अवर्णनीय कष्ट दिये थे। मि० एंड्रूजने स्वयम् इस अफसरके विरुद्ध की हुई शिकायतोंकी जांच की थी और वे इस परिणामको पहुंचे हैं कि मि० स्मिथसे अधिक बुरा वर्त्ताव और किसी अफसरने नहीं किया था। उसने शेखूपुराके लोगोंको एकत्र किया, उनका अनेक प्रकारसे अपमान किया और उन्हें 'सुअर लोग' और 'गन्दी मक्खी' कहा था। हण्टर कमीशनके सामने उसने जो गवाही दी है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि सत्यकी उसे बिल्कुल परवाह नहीं और यदि संवाददाताकी बातें सच हैं तो यही अफसर है जिसको तरक्की की गयी है।

किन्तु प्रश्न तो यह है कि वह सरकारी नौकरीमें है ही क्यों और उसपर निरपराध स्त्रियों और पुरुषोंको गाली देने और मारनेके लिये मामला क्यों नहीं चलाया गया ?

मैं देखता हूं कि लोगोंकी इच्छा जेनरल डायर और सर माइकेल ओडायरपर मामला चलानेकी हो रही है। मैं यहां इस बातपर विचार नहीं करता हूं कि ऐसा सम्भव है कि नहीं। मुझे यह देख दुःख हुआ कि मि० शास्त्रियर भी जे० डायरपर मामला चलानेके पक्षमें हैं। यदि अङ्गरेज लोग अपनी खुशीसे वैसा करें तो मैं ऐसे मामलोंसे प्रसन्न होऊंगा और समझूंगा कि वे जालयानावाला बागके अत्याचारको नापसन्द करते हैं। किन्तु वास्तवमें इन लोगोंको सजा दिलानेके व्यर्थ प्रयत्नमें मेरी इच्छा एक पाई भी खर्च करनेकी नहीं है। प्रायः सभी अङ्गरेज पत्रोंने मानव जातिके विरुद्ध अपराध किये हुए इन अपराधियोंके पापोंपर परदा डालनेका षड्यन्त्र कर रखा है। प्राइवेट या सरकारी तौरपर उनपर जो मामला चलानेकी चिल्लाहट मचायी जा रही है उसमें शामिल होकर मैं उन्हें वीर पुरुष नहीं बनाना चाहता। यदि मैं भारतको अपने मतमें ला उन अफसरोंको बिल्कुल बर्खास्त कर देनेके लिये हठ करनेको तैयार कर सकूं, तो मुझे सन्तोष हो जायेगा। परन्तु सर ओडायर और जेनरल डायरके बर्खास्त करनेसे अधिक आवश्यक है कि कर्नल ओब्रायन और मि० बोसवर्थस्मिथ, राय श्रीराम तथा कांग्रेस-सब कमेटीकी रिपोर्टमें प्रकट किये हुए अन्य अफसरोंपर मामला

न भी चलाया जाय तो वे प्रकट रूपसे बर्खास्त कर दिये जायं। जेनरल डायर तो बुरा है ही; किन्तु मि० स्मिथको मैं उससे बहुत ही अधिक बुरा और उसके अपराधोंको जालयानवाला बागको नरहत्यासे बहुत ही अधिक भयङ्कर समझता हूं। जेनरल डायरने सच्चे दिलसे विश्वास किया था कि लोगोंको गोलियोंका शिकार बना भयभीत करना सैनिक कर्त्तव्य है। किन्तु मि० स्मिथने जानबूझकर निर्दयता, असभ्यता और नीचता प्रकट की। यदि उसके विरुद्ध गवाहियोंमें कही हुई सब बातें सच हैं, तो उसमें मनुष्यताका लेश भी नहीं है। जेनरल डायरकी भांति उसमें अपने कियेकी पुष्टि करनेका साहस नहीं और जब उससे प्रश्न किये गये तब उसने इधर उधरकी बातें कहीं। यह अफसर ऐसे लोगोंके ऊपर नियुक्त किया गया है जिन्होंने इसके साथ कुछ बुराई नहीं की है और उसे वर्त्तमानमें शासनको कलंकित करनेका अवसर दिया गया है।

पञ्जाब क्या कर रहा है? क्या यह पञ्जाबियोंका स्पष्ट कर्त्तव्य नहीं है कि जबतक वे मि० स्मिथ तथा उस जैसे अन्य अफसरोंको बर्खास्त न करा लें तबतक आरामसे न बैठें? पञ्जाबके नेता व्यर्थ ही छोड़े गये यदि वे अपनी प्राप्त स्वतन्त्रताको मेसर्स बोसवर्थ ऐण्ड कम्पनीसे शासनको शुद्ध करनेके काममें न लायें। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि वे दृढ़ प्रतिज्ञ हो आन्दोलन शुरू कर देंगे, तो देखेंगे कि कुल भारत उनके साथ है। मैं यह राय देनेका साहस करता हूं कि जे० डायरको फांसीपर भेजनेके

योग्य होनेका सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम उससे सरल और अधिक आवश्यक यह काम करें कि उन अफसरोंका उपद्रव रोकें जो अवतक जारी है जिनके विरुद्ध प्रचुर परिमाणमें प्रमाण संग्रह करनेमें उन्होंने सहायता दी है ।

३—जेनरल डायर।

आर्मी कौंसिलने निश्चय किया कि जेनरल डायर समझकी भूलका अपराधी है इसलिये उसे कोई सरकारी नौकरी न मिले। मि० मांटेगूने जेनरल डायरके आचरणको जी खोल करके निन्दा की है। किन्तु यह सोचे विना फिर भी मुझसे नहीं रहा जाता कि जेनरल डायर किसी प्रकारसे सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। उसकी निर्दयता स्पष्ट है। उसने आर्मी कौंसिलके सामने जो अद्भुत बयान दिया है उसकी एक एक पंक्तिसे उसको अधम तथा सैनिकोंके अयोग्य कापुरुषता प्रकट हो रही है। उसने निरस्त्र पुरुषों और लड़कोंकी भीड़को जिसमें बहुत करके छुट्टी मनानेवाले लोग थे, 'बागी सेना' कहा है। वह अपनेको पञ्जाब-का परित्राता समझता है, क्योंकि वह घेरेके भीतर बन्द किये हुए आदमियोंको खरहोंकी तरह मार डालनेमें समर्थ हुआ। उसके कार्यमें कुछ वीरता नहीं थी, क्योंकि उसने अपनेको किसी खतरेमें नहीं डाला। उसने विना सूचना दिये ही फैर की और किसीने उसका कुछ विरोध नहीं किया। यह 'समझकी भूल'

नहीं है। यह काल्पनिक सङ्कटके कारण समम
जड़ हो जाना है। यह अपराधपूर्ण अयोग्यता
हृदयशून्यताका प्रमाण है। परन्तु जो क्रोध जे० डाय
प्रकट किया गया है, मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह ठीक निशाने
नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि नरहत्या भयंकर और निरप
व्यक्तियोंका वध शोचनीय है। परन्तु पीछे जो धीरे
लोगोंको शारीरिक कष्ट पहुंचाये गये, उनका अपमान किया ग
और वे बधिया किये गये, वह अधिक बुरा और हृदयको पीड़ि
करनेवाला है और उसके करनेवाले लोग जे० डायरकी आ
यानवाला बागकी नरहत्याकी अपेक्षा अधिक निन्दाके पात्र
जे० डायरने तो केवल कुछ आदमियोंको ही शारीरिक कष्ट दि
किन्तु उन लोगोंने तो राष्ट्रकी आत्माका ही वध करनेका प्रय
किया। कर्नल फ्रैंक जानसनकी चर्चा कौन करता है जो सब
बुरा अपराधी था? उसने निरपराध लाहोरको भयभीत क
डाला और अपने दयारहित हुक्मोंसे सब मार्शल लाके अफसर
के सामने आदर्श रख दिया। परन्तु कर्नल जानसनसे
मेरा कोई वास्ता नहीं है। पंजाब तथा भारतके लोगोंका पहल
कर्त्तव्य यह है कि वे कर्नल ओब्रायन, मि० बॉसवर्थ स्मिथ
राय श्री राम और मि० मलिक लोगोंको सरकारी नौकरीसे
निकलवायें। वे अभीतक नौकरीपर बहाल रखे गये हैं। उनका
अपराध भी जे० डायरके समान ही सिद्ध हो चुका है। यदि हम
जेनरल डायरकी निन्दा करके ही सन्तोष कर लेंगे और पंजाबके

शासनको शुद्ध करनेके स्पष्ट कर्त्तव्यकी उपेक्षा करेंगे; तो अपने कर्तव्यसे पतित होंगे। यह कार्य सभाओंमें आलंकारिक भाषण करने या प्रस्ताव पास करनेमात्रसे न पूरा होगा। यदि हमें सफलता प्राप्त करनी है तो अफसरोंके हृदयपर यह अंकित करा देना है कि वे अपनेको जनताके मालिक नहीं बल्कि उसके प्रबन्धक और नौकर समझें, और यह भी समझें कि यदि वे बुरा बर्त्ताव करेंगे और जो कार्य उन्हें दिया गया है उसके अयोग्य सिद्ध होंगे, तो अपने पदपर नहीं बने रह सकते, तो हमें खूब डटकर काम करना पड़ेगा।

४—पंजाबकी सजाएं

कांग्रेस पञ्जाब सब-कमेटीके नियुक्त किये हुए कमिश्नरोंने अपनी रिपोर्टमें वायसरायपर यह अभियोग लगाया है कि उनमें कल्पनाशक्तिका अपराधमूलक अभाव है। पांचमें दो फांसीकी सजाएं बदलनेसे इनकार करना उक्त अभियोगका सुन्दर दृष्टान्त है। प्रिवी कौंसिलका उनकी अपील अस्वीकार करना उससे अधिक उच्च अपराध नहीं सिद्ध करता जितना मार्शल ला न्यायालयके सामनेका मामला रद्द करनेसे उनकी निर्दोषिता सिद्ध हो सकती थी। इसके सिवा जिस प्रकार पञ्जाब सरकारने घोषणाका अर्थ लगाया है उससे तो ये मामले स्पष्ट राजकीय घोषणाके भीतर आ जाते हैं। अमृतसरमें जो

हत्याएं हुई' उनका कारण हत्या करनेवालों और आहतवालोंका कोई निजू झगड़ा नहीं था। अपराध यद्यपि भयङ्कर था, किन्तु था वह बिल्कुल राजनीतिक और उत्तेजनाके समय किया गया। हत्या और अग्निकाण्डके लिये काफीसे अधिक बदला चुका लिया गया है। ऐसी अवस्थामें साधारण विवेक मृत्युदण्डकी सजाएं घटानेको कहता है। जनताकी धारणा है कि सजा पाये हुए लोग निरपराध हैं और उनके ऊपर न्यायपूर्वक मामला नहीं चलाया गया है। उन्हें फांसी देनेमें इतनी अधिक देर की गयी है कि इस समय उन्हें फांसीपर लटकानेसे भारतीय समाज बुरी तरहसे हिल जायेगा। कोई कल्पना शक्तिवाला वायसराय होता तो वह तुरन्त ही फांसीके बदलनेकी घोषणा कर देता, परन्तु लार्ड चेम्सफोर्ड नहीं। उनकी समझ ऐसी जान पड़ती है कि न्यायकी मांग पूरी न होगी यदि कमसे कम सजा पाये हुए कुछ लोग फांसीपर न चढ़ाये जायं। उनके लिये लोकमतका कुछ मूल्य नहीं है। फिर भी आशा करेंगे कि या तो वायसराय या मि० मांटेगू फांसीकी सजाएं बदल देंगे। किन्तु यदि सरकार भयङ्कर भूल करेगी और फांसी दिला देगी, तब यदि उससे लोग क्रुद्ध या दुखी होंगे तो वे भी वैसी ही भूल करेंगे। राष्ट्रोंकी सभाओंमें प्रभावपूर्ण मत प्रकट करने योग्य राष्ट्र बननेके पहले हमें केवल एक हजार निरपराध पुरुषों और स्त्रियोंकी ही हत्या नहीं बल्कि ऐसे कई हजारकी हत्याको समभावसे विचार करनेको तैयार होना पड़ेगा। तब हम संसारमें ऐसा पद प्राप्त

करेंगे जिससे बढ़कर और किसी राष्ट्रका पद न होगा। इस-लिये हम आशा करते हैं कि जिनका इन बातोंसे सम्बन्ध है वे साहसको हाथसे न जाने देंगे और फांसीको जीवनकी साधारण घटनाकी तरह समझेंगे।

हत्याएं हुईं उनका कारण हत्या करनेवालों और आहतवालोंका कोई निजू झगड़ा नहीं था। अपराध यद्यपि भयङ्कर था, किन्तु था वह बिल्कुल राजनीतिक और उत्तेजनाके समय किया गया। हत्या और अग्निकाण्डके लिये काफीसे अधिक बदला चुका लिया गया है। ऐसी अवस्थामें साधारण विवेक मृत्युदण्डकी सजाएं घटानेको कहता है। जनताकी धारणा है कि सजा पाये हुए लोग निरपराध हैं और उनके ऊपर न्यायपूर्वक मामला नहीं चलाया गया है। उन्हें फांसी देनेमें इतनी अधिक देर की गयी है कि इस समय उन्हें फांसीपर लटकानेसे भारतीय समाज बुरी तरहसे हिल जायेगा। कोई कल्पना शक्तिवाला वायसराय होता तो वह तुरन्त ही फांसीके बदलनेकी घोषणा कर देता, परन्तु लार्ड चेम्सफोर्ड नहीं। उनकी समझ ऐसी जान पड़ती है कि न्यायकी मांग पूरी न होगी यदि कमसे कम सजा पाये हुए कुछ लोग फांसीपर न चढ़ाये जायं। उनके लिये लोकमतका कुछ मूल्य नहीं है। फिर भी आशा करेंगे कि या तो वायसराय या मि० मांटेगू फांसीकी सजाएं बदल देंगे। किन्तु यदि सरकार भयङ्कर भूल करेगी और फांसी दिला देगी, तब यदि उससे लोग क्रुद्ध या दुखी होंगे तो वे भी वैसी ही भूल करेंगे राष्ट्रोंकी सभाओंमें प्रभावपूर्ण मत प्रकट करने योग्य राष्ट्र बननेके पहले हमें केवल एक हजार निरपराध पुरुषों और स्त्रियोंकी ही हत्या नहीं बल्कि ऐसे कई हजारको हत्याको समभावसे विचार करनेको तैयार होना पड़ेगा। तब हम संसारमें ऐसा पद प्राप्त

करेंगे जिससे बढ़कर और किसी राष्ट्रका पद न होगा। इस-
लिये हम आशा करते हैं कि जिनका इन बातोंसे सम्बन्ध है वे
साहसको हाथसे न जाने देंगे और फांसीको जीवनकी साधारण
घटनाकी तरह समझेंगे।

धृष्टतापूर्वक कहता है कि लार्ड मिलनरके मिशनने मिश्रवासियोंकी बातें तभी सुनीं जब वे मिश्रकी कौंसिलका बायकाट उठानेको तैयार हुए थे। मेरे लिये तो स्वराज्यमें हमें शिक्षा पानेकी एकमात्र आवश्यकता यही है कि हम कुल संसारके विरुद्ध अपनी रक्षा करनेके योग्य हों और अपना प्राकृतिक जीवन पूर्ण स्वतंत्रतासे बिता सकें चाहे वह दोषोंसे पूर्ण क्यों न हो। सुराज्य स्वराज्य नहीं है। अफगानोंके ऊपर अच्छा शासन नहीं है, पर वह स्वराज्य है। मैं उन्हें सिहाता (ईर्षा करता) हूं। जापानियोंने खूनकी नदियां बहाकर स्वराज्य करनेकी विद्या सीखी। यदि आज हममें ऐसी शक्ति होती कि उनसे उत्कृष्ट पशुबलद्वारा अंग्रेजोंको देशसे निकाल भगा सकते, तो हम उनसे उत्कृष्ट समझे जाते। फिर चाहे हमें कौंसिलमें वादविवाद करने या शासनके पदोंका काम चलानेका अनुभव भी न होता तो भी हम स्वराज्य करनेके योग्य माने जाते। कारण यह कि एकमात्र पशुबलकी ही परीक्षा अभीतक पश्चिमको मान्य हुई है। जर्मन इसलिये नहीं हराये गये कि अवश्य ही उनका पक्ष अधर्मका था, बल्कि इसलिये कि मित्रराष्ट्र पशुबलमें उनसे बढ़े चढ़े निकले। इसलिये अन्तमें भारतको या तो युद्धविद्या अवश्य सीखनी पड़ेगी जो अंग्रेज उसे सिखायेंगे नहीं, या उसे असहयोगके द्वारा अपने ढंगसे व्यवस्था और त्यागके मार्गपर चलना होगा। यह जितने अपमानकी उतने ही आश्चर्यकी बात है कि एक लाखसे भी कम गोरे ३१॥ करोड़ भारतीयोंपर शासन कर सकें। इसमें सन्देह नहीं कि वे कुछ तो शक्तिद्वार

शासन करते हैं, परन्तु उससे अधिक वे हजारों प्रकारसे हमारा सहयोग प्राप्त करने तथा ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है त्यों त्यों हमें अधिकाधिक अपने आश्रित बनानेके द्वारा हमपर शासन करते हैं। हमें वास्तविक स्वतंत्रता या शक्ति सुधरी हुई कौंसिलों, अधिक अदालतों और गवर्नरोंका ही समझनेकी भूल न करनी चाहिये। बधिया करनेके ये और भी अधिक चतुरतापूर्ण ढंग हैं। अंग्रेज केवल पशुबलसे हमपर शासन नहीं कर सकते। इसलिये वे भारतपर अपना अधिकार बनाये रखनेके लिये सब प्रकारके योग्य और अयोग्य उपाय काममें लाते हैं। वे अपनी साम्राज्यलोलुपताकी पूर्त्तिके लिये भारतके अरबों और करोड़ों रुपये तथा भारतका जनबल चाहते हैं। यदि हम उन्हें अपना धनजन देनेसे इनकार कर दें तो हम अपना उद्देश्य अर्थात् स्वराज्य, समानता और मनुष्यत्व प्राप्त कर लेंगे।

वायसरायकी कौंसिलके अन्तमें जो दृश्य घटित हुए उनसे हमारे अपमानका प्याला भर गया। मि० शास्त्री पंजाबवाला अपना प्रस्ताव नहीं पेश कर सके। जालियानवाला बागके आहत भारतीयोंके लिये १२५०) दिये गये और उपद्रवी भीड़के शिकार हुए अंग्रेजोंके लिये लाखों मिले। जो अफसर उन लोगोंके विरुद्ध अपराध करनेके दोषी थे जिनके वे नौकर हैं उनकी वचनसे निन्दा की गयी और कौंसिलके मेम्बर सन्तुष्ट हो गये। यदि भारत शक्तिसम्पन्न होता तो वह कटेपर इस तरह नमक न छिड़कने देता। मैं अंग्रेजोंको दोष नहीं देता। यदि हमारी भी

संख्या उनकी तरह कम होती तो कदाचित् हमने भी वे ही ढंग काममें लाये होते जो वे ला रहे हैं। भय संचार करना और धोखा देना मजबूतोंका नहीं, कमजोरोंका शस्त्र है। अंग्रेज संख्यामें कमजोर हैं। और हम अधिक संख्यामें होनेपर भी कमजोर हैं। फल यह हो रहा है कि एक दूसरेको नीचेको खींच रहा है। यह साधारण अनुभव है कि भारतमें रहनेके बाद अंग्रेजोंका सौजन्य कम हो जाता है और अंग्रेजोंके संसर्गसे भारतके साहस और मनुष्यत्वकी हानि होती है। कमजोर बननेका यह कार्य न तो हम दो राष्ट्रोंहीके लिये अच्छा है और न संसारके लिये ही। परन्तु यदि हम भारतीय अपनी खबर लें तो बाकी दुनियां अपनी खबर कर लेगी। इसलिये संसारकी उन्नति करनेके लिये हमें अपने ही घरको सुव्यवस्था करनी चाहिये।

इस समय हथियारोंकी शिक्षाका कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं एक पग और आगे बढ़ता तथा विश्वास करता हूं कि भारतका संसारके लिये एक और भी अच्छा मिशन है। यह दिखाना उसकी शक्तिके भीतर है कि, वह एकमात्र स्वार्थत्याग अर्थात् आत्मशुद्धि द्वारा अपना भाग्य सिद्ध कर सकता है। यह केवल असहयोगसे ही हो सकता है। असहयोग तभी सम्भव है जब जिन लोगोंने सहयोग देना प्रारम्भ किया था वे सहयोग लौटाना शुरू कर दें। यदि हम सरकार द्वारा नियन्त्रित स्कूलों, सरकारी अदालतों और व्यवस्था सभाओं (कौंसिलों) की मायासे अपनेको स्वतन्त्रकर अपनी शिक्षाका नियन्त्रण, अपने झगड़ोंका

निपटारा और उनकी व्यवस्थाकी उपेक्षा कर सकें तो हम स्वराज्य करनेको तैयार हैं और केवल तभी हम सरकारी सैनिक तथा असैनिक नौकरोंसे नौकरी छोड़ने और करदाताओंसे कर चुकाना बन्द करनेके लिये तैयार होंगे। क्या यह ऐसा अशक्य सिद्धान्त है कि हम आशा न करें कि माता पिता अपने लड़कोंको स्कूलों और कालेजोंसे निकाल अपने स्कूल कालेज खोलें या वकीलोंसे उनकी वकालत छोड़ अपना कुल समय आवश्यकता होनेसे निर्वाह खर्च लेकर राष्ट्रसेवामें लगानेके लिये न कहें या कौंसिलोंके उम्मेदवारोंसे न कहें कि कौंसिलोंमें न जाओ क्योंकि वहां जानेसे उस कानूनी यन्त्रको क्रियात्मक या अक्रियात्मक रूपसे सहायता देनी पड़ती है जिसके द्वारा सब नियन्त्रण काममें लाया जाता है। असहयोग आन्दोलन इस प्रयत्नके सिवा और कुछ नहीं है कि अंग्रेजोंका पशुबल उन सब आवरणोंसे अलग कर दिया जाय जिनसे वह ढंका हुआ है और दिखा दिया जाय कि केवल पशुबल क्षणभरके लिये भी भारतको अधिकारमें नहीं रख सकता। किन्तु मैं स्पष्ट रूपसे स्वीकार करता हूं कि जबतक मेरी प्रकट की हुई तीनों शर्त्तें नहीं पूरी होंगी तबतक स्वराज्य न होगा। ऐसा नहीं हो सकता कि एक ओर तो हम कालेजोंसे अपनी डिग्रियां लेते रहें, ऐसे मामलोंके लिये अपने मुवक्किलोंसे हजारों रुपये ऐंठते रहें जो पांच मिनटमें खतम किये जा सकते हैं तथा कौंसिलोंमें राष्ट्रका समय नष्ट करनेमें प्रसन्नता प्राप्त करते रहें तो भी राष्ट्रीय आत्मगौरव प्राप्त करनेकी

आशा करें। अन्तिम किन्तु महत्वमें अन्योंसे किसी प्रकार जो कम नहीं है मायाके उस भागपर अभीतक विचार नहीं किया गया। वह स्वदेशी है। यदि हमने स्वदेशी न छोड़ा होता तो इस गिरी हुई अवस्थामें न होते। यदि हमें आर्थिक दासत्वसे छुटकारा पाना है तो हमें अपने कपड़े आप तैयार करने होंगे और इस समय केवल हाथसे सूत कातकर और हाथसे ही बुन कर करने होंगे। इन सबके लिये व्यवस्था, आत्मत्याग, अहङ्कारत्याग, सङ्गठनकी योग्यता, विश्वास और साहस चाहिये। यदि हम गिनतीमें आनेवाली श्रेणियोंमें ये बातें एक वर्षमें दिखा सकें और लोकमत बना लें तो निश्चय ही हम एक वर्षके भीतर स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे यदि हमसे कहा जाता है कि हम जो नेतृत्व करते हैं ऐसे लोगोंमें भी ये गुण नहीं हैं, तो निश्चय ही भारतमें कभी स्वराज्य न होगा और फिर हमें अंग्रेजोंके कामोंके लिये उन्हें दोष देनेका कोई अधिकार न होगा। हमारा छुटकारा और उसका समय एकमात्र हमारे ही ऊपर अवलम्बित है।

२—ब्रिटिश शासन एक पाप है

"क्या मि० गान्धीको किसी शर्त या सन्देहके बिना यह शर्त है कि भारतमें ब्रिटिश शासन बिल्कुल ही बुरा है और भारतवासियोंको इसे ऐसा ही समझनेकी शिक्षा देना है? उनका यह अवश्य मत होगा कि यह इतना बुरा है कि इससे लाभकी अपेक्षा

हानियां ही बहुत हैं, क्योंकि केवल उसी अवस्थामें अन्तःकरण या ईसा मसीहके न्यायालयके सामने यह न्यायोचित ठहराया जा सकता है। " इस प्रश्नका उत्तर मैं जोरदार 'हां' में देता हूं। जबतक मेरा विश्वास था कि ब्रिटिश साम्राज्यका कुल व्यवसाय ठीक है तबतक मुझे उसपर आशा थी यद्यपि ऐसी बातें होती थीं जिन्हें मैं क्षणिक् पथभ्रष्टताके कारण हुई समझता था। मैंने वैसा किया, इसके लिये मुझे दुःख नहीं है। परन्तु अब जब मेरी आंखें खुल गयी हैं तब मेरे लिये यह पाप होगा यदि मैं इस साम्राज्यका साथ दूं जबतक यह अपना दूषित स्वभाव त्याग शुद्ध न हो जाय। यह मैं खेदके साथ लिख रहा हूं और मुझे यह पता चल जानेसे हर्ष होगा कि मैं भूल करता था और मेरा वर्तमान भाव सुधार-विरोधी है। लगातार धनका दोहन, पंजाबको बधिया करना और मुसलमानोंके भावके साथ धोखा करना मेरी तुच्छ रायमें भारतकी तिगुनी लूट है। इस लिये 'ब्रिटिश शान्तिके सुखोंको' मैं एक कंटक समझता हूं। यदि ब्रिटेनने शस्त्रबलसे हमारे ऊपर शान्तिका टोकरा न लादा होता, तो कमसे कम यह तो होता कि हम भी अन्य राष्ट्रोंकी तरह वीर पुरुष और स्त्री बने रहते और इस तरह अपनेको बिल्कुल ही असहाय न समझते। हमारी जो अधोगति हुई है इसके बदलेमें सड़कों और रेलवेका 'सुख' मिला है जिसे कोई भी आत्मगौरवी राष्ट्र नहीं स्वीकार कर सकता। शिक्षाका जो 'सुख' मिला है वह हमारे स्वतंत्रताकी ओर उन्नति करनेमें सबसे बड़ी रुकावट सिद्ध हो रहा है।

२—भारत क्यों खोया गया?

(महात्मा गांधीकी 'इण्डियन होमरूल' या भारतीय स्वराज्यमें पाठक और सम्पादककी बातचीत)

पाठक—आप सभ्यताके सम्बन्धमें मेरे विचार करनेके लिये काफी कह चुके हैं। मैं नहीं जानता कि यूरोपके राष्ट्रोंसे मुझे क्या ग्रहण करना चाहिये और किससे बचना चाहिये, किन्तु एक प्रश्न मेरे मुहंसे तुरन्त निकला पड़ता है। यदि सभ्यता रोग है और यदि इसने इङ्गलैंडपर आक्रमण किया है, तो वह क्योंकर भारतको ले सका और क्योंकर वह इसे अधिकारमें बनाये रख सका है?

सम्पादक—आपके प्रश्नका उत्तर देना कठिन नहीं है। थोड़ी ही देरमें हम स्वराज्यके वास्तविक स्वरूपकी जांच कर सकेंगे, क्योंकि मुझे पता है कि अभी मुझे उस प्रश्नका उत्तर देना है। किन्तु मैं पहले आपका पहला प्रश्न ही लूंगा। अंग्रेजोंने भारत नहीं लिया है, हमने उन्हें इसे दिया है। वे अपनी शक्तिके कारण नहीं, बल्कि भारतमें इस लिये हैं, क्योंकि हम उन्हें रखते हैं। अब देखना है कि क्या ये बातें सत्य सिद्ध की जा सकती हैं। अंग्रेज पहले पहल व्यापारके लिये हमारे देशमें आये थे। कम्पनी बहादुरको याद करिये। उसे बहादुर किसने बनाया था? उस समय उसका राज्य स्थापित करनेका तनिक भी विचार नहीं था। कम्पनीके अफसरोंकी मदद किसने की थी? उनकी चांदी देख

किसका मन ललचाया था ? किसने उनके माल खरीदे थे ? इतिहास साक्षी है कि ये सब काम हमने किये थे। तुरन्त धनी बननेके विचारसे हमने खुले हाथों कम्पनीके अफसरोंका स्वागत किया था। हमने उन्हें मदद दी। यदि मेरी भांग खानेकी लत पड़ी है और भांग वेचनेवाला मेरे हाथ भांग बेचता है, तो क्या मैं उसे दोष दूंगा या स्वयं अपनेको ? बेंचनेवालेको दोष देकर क्या हम अपनी लत छोड़ सकेंगे ? यदि एक खुदरा फरोश खदेड़ा जाता है, तो क्या दूसरा उसका स्थान न ग्रहण कर लेगा ? भारतके सच्चे सेवकको प्रश्नकी जड़में पहुंचना होगा। यदि परिमाणसे अधिक खा जानेसे मुझे अजीर्ण हो गया है, तो निश्चय-ही मैं पानीको दोष दे उससे नहीं बच सकता। वही सच्चा वैद्य है जो रोगके कारणका अनुसंधान करता है। यदि आप भारतके रोगके लिये वैद्य होनेका दम भरते हैं, तो आपको उसके वास्तविक कारणका पता लगाना होगा।

पाठक——आपका कहना ठीक है। अब मैं समझता हूँ कि अपनी बातें मेरे हृदयमें अंकित करनेके लिये मेरे साथ आपको बहुत विवाद करना न पड़ेगा। मैं आपके और विचारोंको जाननेके लिये उत्सुक हूं। अब हम एक अत्यन्त मनोरंजक चर्चा छेड़े हुए हैं। इस लिये मैं आपके प्रकट किये हुए विचारोंको समझनेकी चेष्टा करूंगा और जहां सन्देह होगा वहां मैं टोक दूंगा।

३—भारत क्यों खोया गया?

(महात्मा गांधीकी 'इण्डियन होमरूल' या भारतीय स्वराज्यमें पाठक और सम्पादककी बातचीत)

पाठक—आप सभ्यताके सम्बन्धमें मेरे विचार करनेके लिये काफी कह चुके हैं। मैं नहीं जानता कि यूरोपके राष्ट्रोंसे मुझे क्या ग्रहण करना चाहिये और किससे बचना चाहिये, किन्तु एक प्रश्न मेरे मुहंसे तुरन्त निकला पड़ता है। यदि सभ्यता रोग है और यदि इसने इङ्गलैंडपर आक्रमण किया है, तो वह क्योंकर भारतको ले सका और क्योंकर वह इसे अधिकारमें बनाये रख सका है?

सम्पादक—आपके प्रश्नका उत्तर देना कठिन नहीं है। थोड़ी ही देरमें हम स्वराज्यके वास्तविक स्वरूपकी जांच कर सकेंगे, क्योंकि मुझे पता है कि अभी मुझे उस प्रश्नका उत्तर देना है। किन्तु मैं पहले आपका पहला प्रश्न ही लूंगा। अंग्रेजोंने भारत नहीं लिया है, हमने उन्हें इसे दिया है। वे अपनी शक्तिके कारण नहीं, बल्कि भारतमें इस लिये हैं, क्योंकि हम उन्हें रखते हैं। अब देखना है कि क्या ये बातें सत्य सिद्ध की जा सकती हैं। अंग्रेज पहले पहल व्यापारके लिये हमारे देशमें आये थे। कम्पनी बहादुरकी याद करिये। उसे बहादुर किसने बनाया था? उस समय उसका राज्य स्थापित करनेका तनिक भी विचार नहीं था। कम्पनीके अफसरोंकी मदद किसने की थी? उनकी चांदी देख

किसका मन ललचाया था? किसने उनके माल खरीदे थे? इतिहास साक्षी है कि ये सब काम हमने किये थे। तुरन्त धनी बननेके विचारसे हमने खुले हाथों कम्पनीके अफसरोंका स्वागत किया था। हमने उन्हें मदद दी। यदि मेरी भांग खानेकी लत पड़ी है और भांग बेचनेवाला मेरे हाथ भांग बेचता है, तो क्या मैं उसे दोष दूंगा या स्वयं अपनेको? बेचनेवालेको दोष देकर क्या हम अपनी लत छोड़ सकेंगे? यदि एक खुदरा फरोश खदेड़ा जाता है, तो क्या दूसरा उसका स्थान न ग्रहण कर लेगा? भारतके सच्चे सेवकको प्रश्नकी जड़में पहुंचना होगा। यदि परिमाणसे अधिक खा जानेसे मुझे अजीर्ण हो गया है, तो निश्चय-ही मैं पानीको दोष दे उससे नहीं बच सकता। वही सच्चा वैद्य है जो रोगके कारणका अनुसंधान करता है। यदि आप भारतके रोगके लिये वैद्य होनेका दम भरते हैं, तो आपको उसके वास्तविक कारणका पता लगाना होगा।

पाठक——आपका कहना ठीक है। अब मैं समझता हूं कि अपनी बातें मेरे हृदयमें अंकित करनेके लिये मेरे साथ आपको बहुत विवाद करना न पड़ेगा। मैं आपके और विचारोंको जाननेके लिये उत्सुक हूं। अब हम एक अत्यन्त मनोरंजक चर्चा छेड़े हुए हैं। इस लिये मैं आपके प्रकट किये हुए विचारोंको समझनेकी चेष्टा करूंगा और जहां सन्देह होगा वहां मैं टोक दूंगा।

सम्पादक——आपका उत्साह होनेपर भी मुझे भय है कि आगे चलकर हममें मतभेद पैदा होगा। तो भी मैं तभी बहस करूंगा जब आप मुझे रोकेंगे। हम देख चुके हैं कि अंग्रेज ब्यापारी भारतमें पांव इसी लिये जमा सके थे, क्योंकि हमने उन्हें उत्साहित किया था। जब हमारे राजा लोग आपसमें लड़ते थे तब वे कम्पनी बहादुरकी मदद ढूंढ़ते थे। वह कम्पनी व्यापार और युद्ध दोनोंमें निपुण थी। सदाचारका प्रश्न उसके मार्गमें तनिक भी बाधक नहीं था। उसका उद्देश्य अपना व्यापार बढ़ाना और धन कमाना था। उसने हमारी सहायता स्वीकार की और मालगुदामोंकी संख्या बढ़ायी। उनकी रक्षाके लिये उसने एक सेना रखी जिससे हम भी काम लेते थे। इस लिये हमने उस समय जो काम किया उसके लिये अंग्रेजोंको दोष देना क्या व्यर्थ नहीं है? हिन्दुओं और मुसलमानोंमें गहरी लड़ाई थी। इसने भी कम्पनीको अवसर दिया और इस तरह हमने ऐसी परिस्थिति बना दी थी जिसने कम्पनीका भारतपर अधिकार जमा दिया। इस लिये भारत खो गया, यह कहनेकी अपेक्षा यह कहना अधिक सत्य है कि हमने अंग्रेजोंको भारत दिया था।

पाठक——क्या कृपाकर मुझे आप बतावेंगे कि अब वे क्योंकर भारतको अपने अधीन बनाये रखनेमें समर्थ हैं?

सम्पादक——जिन कारणोंसे उन्हें भारत मिला है उन्हींके बलसे वे अब इसे अपने हाथमें बनाये रखनेमें भी समर्थ हैं।

कुछ अंग्रेज कहते हैं कि उन्होंने तलवारसे भारतको लिया और अब उसपर अधिकार बना रखा है। ये दोनों ही कथन असत्य हैं। केवल हम ही उन्हें रखते हैं। कहते हैं कि नैपोलियन अंग्रेजोंको बनियोंकी जाति कहा करता था। यह कथन ठीक है। उनके अधिकारमें जो भी भूमि है उसे वे अपने व्यापारके लिये अधिकारमें रखे हुए हैं। उनकी जलसेना और सेना उसकी रक्षा करनेके विचारसे हैं। जब ट्रांसवालमें ऐसे प्रलोभन नहीं रहे तब स्वर्गीय मि० ग्लैडस्टनको मालूम हुआ कि उसपर अधिकार रखना अंग्रेजोंके लिये ठीक नहीं है। जब वह लाभका प्रश्न हुआ तब उसके विरोधके कारण युद्ध छिड़ा। मि० चेम्बरलेनको शीघ्र ही मालूम हुआ कि इङ्गलैण्डकी छत्रछाया ट्रांसवालके ऊपर थी। कहते हैं कि किसीने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूजरसे पूछा था कि चद्रमामें सोना है कि नहीं। उन्होंने जवाब दिया था कि, उसमें सोना होनेकी बहुत कम सम्भावना है क्योंकि यदि सोना होता, तो अंग्रेजोंने उसे अपने राज्यमें मिला लिया होता। अंग्रेज टकेको ही अपना परमेश्वर समझते हैं, यह याद रखनेसे बहुतसे प्रश्न हल हो सकते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हम अपने अधम स्वार्थके लिये अंग्रेजोंको भारतमें रखते हैं। हम उनका व्यापार पसन्द करते हैं और वे अपनी चालाकियोंसे हमें प्रसन्नकर जो चाहते हैं हमसे ले लेते हैं। इसके लिये उन्हें दोष देना उनकी शक्तिको स्थायी बनाना है। उनकी जड़को हम आपसमें लड़कर और मजबूत बनाते हैं। यदि आप

ऊपरकी बातें स्वीकार करते हैं, तो यह सिद्ध हो जाता है कि अंग्रेज व्यापारके लिये भारतमें आये थे। वे यहां उसी उद्देश्यसे रहते और हम उन्हें बने रहनेमें सहायता देते हैं। उनके हथियार और गोलाबारूद सब बिलकुल ही निकम्मे हैं। इस सम्बन्धमें मैं आपको स्मरण दिलाता हूं कि जापानमें जो झण्डा फहरा रहा है वह जापानी नहीं, बल्कि अंग्रेजी झंडा है। अंग्रेजोंने अपने व्यापारके लिये जापानसे सन्धि कर रखी है। आप देखेंगे कि यदि वे प्रबन्ध कर सकेंगे, तो उस देशमें उनका व्यापार बहुत बढ़ेगा। वे कुल संसारको अपने मालके लिये बाजारके रूपमें कर देना चाहते हैं। यह सच है कि वे वैसा कर नहीं सकते, किन्तु इसके लिये दोषी वे न होंगे। वे लक्ष्यपर पहुंचनेके लिये कोई उपाय बाकी न रखेंगे।

श्री

तारीख ३० नवम्बर सन् १६०४ श्रीजैनश्वेतांबर कान्फरेंसके तीसरे अधिवेशनपर बड़ौदेमें माननीय पंडित बालगंगाधर तिलकने मराठी भाषा में एक व्याख्यान दिया था उसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार है।

'जैनधर्मकी प्राचीनता'

जैनधर्म प्राचीन होनेका दावा रखता है। मैं यद्यपि जैन नहीं हूँ, परन्तु मैंने जैनधर्म के इतिहास तथा प्राचीन ग्रंथों का अवलोकन किया है, और जैनधर्मी मित्रों के संसर्गसे बहुत कुछ परिचय भी पाया है, इसलिये इन दो आधारों से आज जैनधर्म के विषय में कुछ कहने की इच्छा करता हूँ। व्याख्यान किस भाषा में दिया जावे यह विषम प्रश्न है। परन्तु मैं अंग्रेजी की अपेक्षा:मराठी में देना अच्छा समझता हूँ, क्योंकि मराठी भाषा श्रोताओं का अधिक भाग समझ सकेगा ऐसा जान पड़ता है। मैं जैनधर्म के विरुद्ध बोलने के लिये खड़ा नहीं हुआ हूँ परन्तु उसके अनुकूल थोड़े से शब्द कहना चाहता हूँ। जैनधर्म विशेष कर ब्राह्मणधर्म के साथ अत्यंत निकट सम्बन्ध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन और परस्पर सम्बन्ध रखने वाले हैं। जैन हिन्दू ही हैं, हिन्दूओं से बाहिर नहीं हैं, वे हिन्दूओं से पृथक् नहीं गिने जा सकते। अनेक महाशय जैनियों को हिन्दूधर्म से पृथक् करते हैं और हिन्दूधर्म से जैनधर्म को निराला समझते हैं परन्तु यथार्थ में यदि देखा जावे तो वह हिन्दूधर्म ही है, जैन समुदाय हिन्दू कौम में ही है। जिस हिन्दू धर्म में अन्य अनेक

धर्मों की गणना होती है, उसी हिन्दूधर्म में जैनधर्म की भी
गणना है। कितनेकोंने भेद बतलाया है परन्तु यह भेद यथा
नहीं है। जैनधर्म और ब्राह्मणधर्म हिन्दूधर्म ही हैं। ग्रंथ
तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनध
अनादि है। यह विषय निर्विवाद तथा मतभेद रहित है
सुतरां इस विषयमें इतिहासके दृढ सबूत हैं। और निश्च
खिस्तो सनसे ५२६ वर्ष पहिलेका तो जैनधर्म सिद्ध है ही
हिन्दूधर्म के परिचयी जानते हैं कि शकवालों के शक चल र
हैं, मुसलमानों का शक, खिस्तियों का शक, विक्रम शक शालि
वाहन शक, इसी प्रकार जैनधर्म में महावीर स्वामी का श
चलता है, जिसे चलते हुए २४०० वर्ष हो चुके हैं। शक चला
की कल्पना जैनी भाइयों ने ही उठाई थी। वीर शक के पहिल
युधिष्टर का शक चलता था ऐसा कहा जाता है। परन्तु उस
कल्पना का वर्तमान समय से कुछ सम्बन्ध नहीं है। यद्यपि
जैनधर्म प्राचीनता में पहिले नंबर नहीं है तथापि प्रचलित धर्म
में जो प्राचीन धर्म है उन में यह प्राचीन है। जैनधर्म की
प्रभावना महावीर स्वामी के समय में हुई थी। महावीर स्वामी
जैनधर्म को पुनः प्रकाश में लाये, इस बातको आज २४०० व
व्यतीत हो चुके। उसी समय से जैनधर्म अस्खलित रीति से
चल रहा है, इसी प्रकार ब्राह्मणधर्म अथवा हिन्दूधर्म प्राचीन
हैं। वर्तमान में जो हिन्दू हैं वे एक समय चार वर्णों में विभक्त
थे। उनमें के ही जैनी हैं। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ये चार वर
थे। इन्हीं चार वर्णों में से जैनियों का समुदाय उत्पन्न हुआ है
इस कारण से दोनों धर्म की समानता आजतक व्यक्त हो रही
है। इन दोनों धर्मों की एकता प्रगट रीति पर जानी जासकती
है। और पृथक्ता की भ्रांति का निवारण अभ्यास से हो सकता

है। क्योंकि अब इस भ्रांति के टिकने योग्य स्थान नहीं है। गौतम बुद्ध महावीर स्वामी का शिष्य था, ऐसा पुस्तकों से विदित होता है। जिस से स्पष्ट जाना जाता है कि बौद्धधर्म की स्थापना के प्रथम जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था, यह बात विश्वास करने योग्य है। गौतम और बौद्ध के इतिहास में २० वर्ष का अन्तर है। चौबीस तीर्थंकरों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थंकर थे। इस से भी जैनधर्म की प्राचीनता जानी जाती है बौद्धधर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। बौद्धधर्म के तत्व जैनधर्म के तत्वों के अनुकरण हैं।

"ब्राह्मणधर्मपर जैनधर्म की छाप"

महाशयो! यहा पर मुझे एक आवश्यक बात प्रगट करना है। वह यह है कि अनुमान ५०० ६०० वर्ष पहिले जैनधर्म और ब्राह्मणधर्म इन दो धर्मों का तत्व संबंधी झगड़ा मच रहा था। मतभेद तथा विचारांतरों के कारण जैसे मौके निरंतर आया करते हैं वैसा वह भी एक मौका था। एक जीतता है और दूसरा हारता है इस में मतभेद होता है परन्तु विशेष अन्तर गिनने योग्य नहीं होता। श्रीमान् महाराज गायकवाड़ पहले दिन कान्फरेन्स में जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार "अहिंसा परमो धर्मः" इस उदार सिद्धान्त ने ब्राह्मणधर्म पर चिरस्मरणीय छाप (मोहर) मारी है। यज्ञ यागादिकों में पशुओं का वध होकर जो "यज्ञार्थ पशु हिंसा" आजकल नहीं होती है, जैनधर्म ने यही एक बड़ीभारी छाप ब्राह्मणधर्म पर मारी है। पूर्वकाल में यज्ञ के लिये असंख्य पशु-हिंसा होती थी।

धर्म
और
हत्या
T.K. Mitra

छात्रहितकारी पुस्तकमाला नं० १२
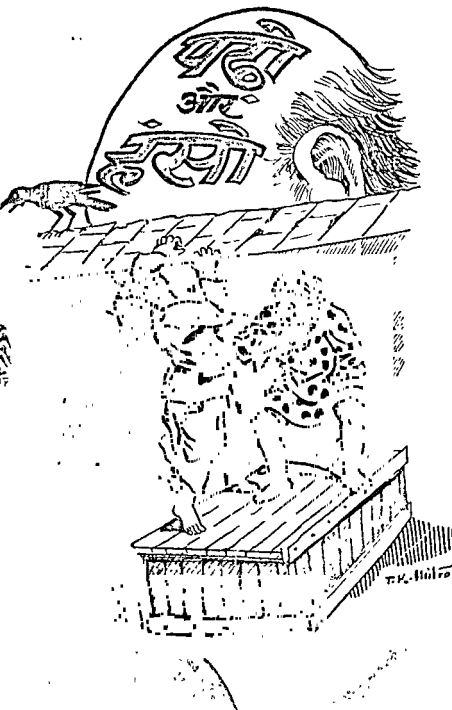
पढ़ो और हँसो

(मनोरञ्जक विनोद कथाओं का संग्रह)

संग्रहकर्त्ता

अध्यापक ज़हूरबख़्श

(हिन्दी-कोविद)

प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग।

द्वितीय संस्करण
२०००

१९२९

मूल्य ॥)

प्रकाशक—
केदारनाथ गुप्त
मैनेजिंग प्रोप्राइटर
छात्रहितकारी पुस्तकमाला
दारागंज, प्रयाग।
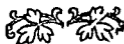
मुद्रक—
काव्यतीर्थ पं० विश्वंभरनाथ वाजपेयी,
ओंकार प्रेस, प्रयाग।

दो शब्द

'प्रथम संस्करण से'

विनोद मनुष्य-जीवन के लिये अतीव आवश्यक वस्तु है; विना इसके जीवन में शुष्कता और उदासी का प्राबल्य हो जाता है, और यह एक भयङ्कर बीमारी है। इस बीमारी से साहित्य की रक्षा करने के लिये सरस-हृदय साहित्य-सेवी समय-समय पर प्रयत्न करते ही रहते हैं। बिना हास्य-रस की सामग्री के किसी भी भाषा का साहित्य-भाण्डार सूना सा ही रहता है। हम यह कहने का साहस तो नहीं कर सकते हैं, कि हमारी मातृ-भाषा हिन्दी में हास्य-रस के ग्रन्थ हैं ही नहीं, पर यह अवश्य कह सकते हैं, कि इस ओर अभी काफ़ी प्रयत्न नहीं हुआ, और इसी से हास्य-रस की सामग्री एक प्रकार से नहीं के बराबर ही है। दस पाँच पुस्तकें हुईं भी, तो क्या इतने से इस विषय में हमारा साहित्य श्री-सम्पन्न नहीं कहा जा सकता। अस्तु।

हास्य-रस के छोटे-छोटे चुटकिले मनुष्य-जीवन में नित्य ही उपयोग में आते हैं। इन्हीं की बदौलत मनुष्य-जीवन सदा से स्थित-हास्य-मय रहा है और रहेगा। देखा गया है, कि कभी-कभी तो एक छोटे से चुटकिले से ही; हास्य-रस की कल-कल प्रवाहिनी प्रवाहित हो उठती है; एक छोटे से चुटकिले से ही सारी उदासी,

सारी थकावट काफूर हो उठती है! मनुष्य थोड़ी देर के लिये प्रातःकाल की नाईं स्फूर्तिवान हो उठता है। कदाचित् इसी कारण से प्रत्येक समाज में और प्रत्येक भाषा के साहित्य में, सदा से चुटकिलों का दौर-दौरा रहा है। जैसे बिना चटनी के भोजन का रंग नहीं जमता, वैसे ही चुटकिलों के बिना साहित्य भी फीका रहता है। इन्हीं सब कारणों से उत्साहित हो, हमने चुटकिलों का यह संग्रह किया है। इस संग्रह में ऐसे ही चुटकिले संग्रहीत किये गये हैं, जिनसे स्थित-हास्य की छटा मुखरित हो सकती है, जिनमें अश्लीलता की गन्ध भी नहीं है और जिन्हें, बालक, बूढ़े और महिलाएँ, सभी निस्संकोच होकर पढ़ सकती हैं। बहुत से चुटकिले तो ऐसे भी हैं; जो मनुष्य-जीवन की बुराइयों पर बारीक चुटकियाँ लेते हैं।

इस संग्रह में हमारे लिखे हुये चुटकिलों के अलावा, बहुसंख्यक चुटकिले ऐसे हैं, जो स्त्री-दर्पण, मनोरमा, शिशु, शारदा-विनोद, गल्प-पत्रिका, हिन्दू-पञ्च, श्रीकृष्ण-सन्देश, कैलाश, विनोद, आदि पत्रिकाओं तथा और बीसों स्थानों से संग्रहीत किये गये हैं। अतः हम इन पत्र-पत्रिकाओं का आभार मानते हुए, इनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। आशा है, विनोद-प्रेमी पाठक यह संग्रह पसंद करेंगे।

सागर
१ मई १९२७ ई०

जहूरबख्श

पढ़ो और हँसो

---

(१)

पिता—(पुत्र से) मुन्नू, तुम रोते क्यों हो ?

मुन्नू— मुझे आज गुरुजी ने बहुत मारा ।

पिता—क्यों ?

मुन्नू—क्योंकि मेरे सिवा, उनके प्रश्न का उत्तर, कोई न दे सका !

पिता—वाह ! फिर भी सज़ा ! अच्छा, वह प्रश्न कैसा था ?

मुन्नू—उन्होंने पूछा था, कि मेज़ के दराज़ में बिल्ली का बच्चा किसने रखा है ?

(२)

रामू—श्यामू ! तुम में तो कुछ भी दम नहीं है; ज़रासी दौड़ में ही तुम्हारी नानी मर गई ।

श्यामू—बिलकुल गलत । मेरी नानी बहुत दिन हुए, बुढ़ापे में दमे की बीमारी से मरी थी, दौड़ में कब मरी ?

(३)

मास्टर—मोहन ! यदि मेज़ पर पाँच लड्डू हों, और—

मोहन—(बीच में ही) घी के बने हुए या तेल के ?

मास्टर—बेवकूफ़ ! सुनो, मेज़ पर पाँच लड्डू हों और उनमें से दो तुम्हारी बहिन खा—

मोहन—(बीच में ही) जी नहीं; आप मेरी बहिन को जानते नहीं; वह सब खा लेगी।

मास्टर—और यदि वह दो ही खावे, तो बाकी कितने रहेंगे?

मोहन—शून्य!

मास्टर—कैसे?

मोहन—बाकी मैं खा लूंगा।

(४)

एक मनुष्य पैर फिसल जाने से कीचड़ में गिर पड़ा। दूसरा हँसकर बोला—वाह! क्या कहना—कीचड़ में खूब गिरे!

वह मनुष्य—अजी नहीं। कीचड़ में क्यों गिरूंगा! मैं तो अपने पैर की चिकनाई आजमा रहा था!

(५)

एक अहीर नदी में घुस कर कुछ ढूंढने लगा और ऊपर की ओर देखकर बोला—या खुदा! अगर मुझे एक रुपया मिल जाय, तो आपके नाम पर दो आने की शीरनी चढ़ाऊँ।

भाग्य की बात; उसे एक रुपया मिल गया, जो कुछ कुछ घिस गया था। फ़क़ीर रुपया लेकर बाज़ार में पहुंचा, उसने बहुत कोशिश की, पर रुपया चौदह आने में ही चला। तब फ़क़ीर ऊपर की ओर देखकर बोला—या खुदा! तू भी एक ही बेईमान निकला, तुझे मेरा इतना भी भरोसा न रहा, जो दो आने पहले ही काट लिए!

(६)

एक चोर को, चोरी के अपराध में ६ महीने की सज़ा दी गई। चोर मजिस्ट्रेट से बोला—हुजूर! यह सज़ा तो मेरे वकील साहब को मिलनी चाहिये।

वकील साहेब आँखें फाड़-फाड़ उसकी ओर देखने लगे।

मजिस्ट्रेट ने बड़े अचरज से, चोर से पूछा—"क्यों ?"

चोर—क्योंकि मैंने जितना रुपया चुराया था, सब का सब मिहनताने के नाम पर वकील साहब हड़प कर गए।

(७)

गुरुजी—माधव ! तुम्हारे पिता कौन ज़ात हैं ?

माधव—कहार।

गुरुजी—तब तो वे रात-दिन घड़े ढोते ढोते मर मिटते होंगे, पर तुम एकदम इस आफ़त से बच गए।

माधव—नहीं गुरुजी, मैं भी कहाँ बचा ! मुझे भी दिनभर पुस्तकें ढोनी पड़ती हैं।

(८)

एक गवैया किसी रईस के यहाँ गाना गाने गया। जब गा चुका, तो रईस से इनाम माँगा। रईस दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए बोला—भाई, मेरा तो यह नियम है, कि दाढ़ी के जितने बाल हाथ में आ जावें उतने ही रुपये इनाम में दे देता हूँ। पर तू ऐसा कमनसीब है कि हाथ में एक भी बाल न आया।

गवैया बोला—हुज़ूर ! ज़रा मेरे हाथ में तो दाढ़ी दीजिये; देखूं, हाथ में बाल आते हैं या नहीं और मेरा नसीब कैसा है।

(९)

शिक्षक—सोहन; कबूतर पर लेख लिख लाए ?

सोहन—नहीं।

शिक्षक—क्यों ?

सोहन—मैं ज्योंही क़लम दावात और काग़ज लेकर कबूतर के पास गया, त्योंही वह फर्र से उड़ गया। अब बताइये, मैं क्या लिखता ?

(१०)

एक अज्ञानी बुड्ढा घोड़े पर सवार हो कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे दो मसखरे आदमी मिल गए। एक ने बुड्ढे से कहा—यह क्या बूढ़े बाबा! तुम्हारे घोड़े की पूँछ कहाँ गई?

बूढ़ा घबड़ाकर, पीछे की ओर हाथ कर घोड़े की पीठ टटोलने लगा। पर उसका हाथ पूँछ पर न पड़ जरा हटकर पड़ा। बस, बेचारा नीचे उतर कर लगा घोड़े की पूँछ देखने।

दोनों मसखरे कहकहा मारकर हँसने लगे।

(११)

किसी कुंजर के लड़के का बताशा पानी के घड़े में गिर कर घुल गया। घड़े में झाँककर, देखने पर, उसने घड़े में अपनी ही परछाईं देखी। समझा कि घड़े में कोई आदमी है। इसी ने मेरा बताशा खा लिया है। लगा बाप को पुकारने कि अब्बा! अब्बा! इस घड़े के आदमी ने मेरा बताशा खा लिया।

कुंजर ने आकर जो घड़े में झाँका, तो अपने दाढ़ी भरे चेहरे की परछाईं देखकर बोला—"वाह मियाँ! लड़कों से भी ऐसी हँसी की जाती है।"

(१२)

एक दिन पण्डितजी ईश्वर के रूप का वर्णन करते-करते बोले—"पृथ्वी पर जितने पहाड़ हैं, वे ईश्वर की हड्डियाँ हैं। जो काला आकाश देखते हो, वह उनका शरीर है और सूर्य-चन्द्रमा उनकी दोनों आखें हैं।"

एक लड़का बात काटकर बोला—पण्डितजी! उस दिन तो आप कहते थे कि भगवान् का शरीर बड़ा सुन्दर है। पर, आज तो वे काने निकले; क्योंकि वे दिन के समय भी एक आँख से देखते हैं, और रात को भी यही हाल है।

(१३)

गुरुजी—(नए विद्यार्थी से) तुम्हारा क्या नाम है ?

विद्यार्थी—भोंदानाथ।

गुरुजी—देखो जी ! जब अपने से, बड़ों से कुछ बात किया करो, तो सदा पहले श्रीमान्, जी या महोदय आदि माननीय शब्द कहा करो। इससे कहनेवाले की नम्रता जान पड़ती है। समझे ! हाँ, बतलाओ तो, तुम्हारा क्या नाम है ?

विद्यार्थी—श्रीमान् भोंदानाथजी।

(१४)

काँच के गिलास के टूटने की आवाज़ सुनकर माँ बोली—क्यों रमेश ! क्या तोड़ डाला ? यहाँ आओ, बताओ कैसे तोड़ा?

रमेश—(पास जाकर और मुँह बनाकर) एक गिलास और दीजिए, तो बताऊँ भी !

(१५)

स्वर्ग कैसे लोगों को मिलता है—यह समझाते-समझाते पण्डितजी ने पूछा—हाँ, क्या अब कोई बता सकता है कि मैं स्वर्ग कैसे पा सकता हूँ ?

एक बालक—मरने पर।

(१६)

किसी गाँव में एक पण्डितजी रहते थे। उनके तीन लड़के थे—मोहन, सोहन और जगमोहन। ये लड़के थे तो सुन्दर, पर बोलते थे तुतला कर। जब ये बड़े हुए, तो पण्डितजी ने इनके विवाह का विचार किया। नाई के आने पर, पिता ने लड़कों को समझा दिया, कि देखो, नाई से बिलकुल बात न करना।

बनाते सोचने लगा—ज़रूर पहले कभी मैंने इनके बाल बनाए हैं। उससे न रहा गया, पूछ ही तो बैठा—हुजूर आपने पहले कभी मुझसे बाल बनवाए हैं ?

वह मनुष्य—हाँ।

नाई—पर मुझे याद नहीं आता !

वह मनुष्य—याद करो, जब मुझे यहाँ छुरा लग गया था, और मैंने तुम्हें कसकर तमाचा लगाया था।

(२४)

एक गवैया किसी रईस के यहाँ गाना सुनाने गया। गाना सुन चुकने पर, रईस ने गवैया को एक चिट्ठी दी और उससे कहा—यह चिट्ठी मेरे खजाञ्ची को दिखला कर इनाम के दस हज़ार रुपये ले लो। दस हज़ार का नाम सुनते ही गवैया फूल कर कुप्पा हो गया। दौड़ा दौड़ा खजाञ्ची के पास गया। पर खजाञ्ची ने उसे एक फूटी कौड़ी भी न दी। गवैया बिगड़कर बोला—अभी तुम्हारे मालिक से तुम्हारी रपट करता हूँ नहीं मेरा रुपया दे दो। खजाञ्ची बोला—सीधे से जाते हो या नहीं।

गवैया उलटे पैरों रईस के पास आया, और उन्हें सब हाल सुनाया। रईस बोले—ठीक तो है लेने देने का क्या काम तुमने गाना सुना कर मुझे खुश किया सो ऊँची रकम का नाम लेकर मैंने भी तुम्हें खुश कर दिया !

गवैया करम ठोंकता हुआ चला गया।

(२५)

मुंशी मेवारामजी खूब शराब पिया करते थे। उनकी स्त्री ने पण्डित जी से प्रार्थना की, कि आप ही उन्हें समझा देखिए, शायद मान जायँ। पण्डित जी ने हामी भर दी।

एक रोज़ मुंशीजी शराब की दूकान में जारहे थे, कि उधर

से पण्डित जी आ निकले। मुंशीजी पर नज़र पड़ते ही पण्डित-जी को मुंशियाइन की बात याद आ गई। सोचा, मुंशीजी को समझाने का यही मौक़ा बहुत बढ़िया है। उन्होंने मुंशीजी को पुकारा, पर मुंशीजी दूकान में चले ही गए। पण्डित जी बाहर खड़े रहे कि इनको बाहर निकलने पर समझाऊँ।

थोड़ी देर बाद मुंशीजी बाहर आए। पण्डितजी ने उनसे कहा—मुंशीजी, मैं आपको पुकारता ही रह गया और आप भीतर चले गए।

मुंशीजी—माफ़ कीजिए पण्डितजी, पाकेट में इतना पैसा न था, कि आपको भी शामिल कर लेता। ख़ैर, फिर कभी देखा जायगा।

बेचारे पण्डितजी सोंठ हो गए।

(२६)

एक आदमी अपने बीमार मित्र को देखने गया और उसका हाल पूछा। बीमार बोला—भाई, बुखार तो दो तीन दिन हुए टूट गया, पर कमर का दर्द जान खाए डालता है।

वह आदमी बड़े प्रेम से बोला—भाई धीरज धरो, ईश्वर ने चाहा तो कमर भी टूट जायगी।

(२७)

मास्टर—कन्हैया, पाँच और दो कितने हुए।

कन्हैया—चुपचाप खड़ा रहा।

मास्टर—देखो, मैं तुम्हें पाँच गोलियाँ अलग और दो गोलियाँ अलग दूँ तो तुम्हारे पास कितनी गोलियाँ हो जायँगी?

कन्हैया—आठ!

मास्टर—कैसे?

कन्हैया—क्योंकि एक गोली मेरे पास पहले से ही है।

(२८)

एक धनवान् पासी ने बहुत से सुअर और मुर्गियाँ पाल रखी थीं; उसने उनकी देख-भाल के लिये एक नौकर रखा। जब नौकर काम पर आया, तब पासी ने उससे पूछा—कहो कल्लू! हमारे यहां तो तुम्हारी अच्छी तरह निभ जायगी न?

नौकर—मालिक, आप इसकी कुछ चिन्ता न कीजिए, पहले भी मुझे बहुत से सुअरों से काम पड़ चुका है।

(२९)

तीन आदमी रेल का पुल देखने गए। पुल देखकर पहला आदमी बोला-भाई, इतना बड़ा पुल कैसे बनाया गया होगा?

दूसरा—वाह! तुम इतना भी नहीं जानते! पहले यह ज़मीन पर बनाया गया था, फिर उठा कर यहाँ डाल दिया गया। अब इस पर रेल चलने लगी। तीसरे (आदमी से) क्यों मैं ठीक कहता हूँ न।

तीसरा—कैसी बेवकूफ़ी की बात करते हो! इसे यहाँ बनाकर यह लम्बा चौड़ा गड्ढा खोदा गया है, जिसमें पीछे से पानी भर आया। बस अब उस पर रेल चलने लगी।

(३०)

मास्टर साहब ने समझाया कि मनुष्य का शरीर मिट्टी से बनाया गया है। एक लड़के ने घर आकर माँ से पूछा—क्या अम्मा हमारा शरीर मिट्टी से बना हुआ है?

माँ—हाँ बेटा! भगवान् ने हम सब को मिट्टी से ही बनाया है।

लड़का—तो माँ, जब हम पानी पीते हैं, तो कीचड़ क्यों [illegible] हो जाते?

(३१)

एक साल पानी न बरसने से बड़ाही अकाल पड़ा। एक किसान उदास बैठा था, कि उसके लड़के से कुछ अपराध बन गया। किसान को जो गुस्सा आया, तो उसने लड़के को कसकर थप्पड़ लगा दिया। लड़का ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। इस पर किसान बोला—अरे कमबख़्त! रोना ही है, तो जा खेत में जाकर रो; जिससे फ़सल को भी कुछ लाभ पहुंचे।

(३२)

एक लड़का मौलवी साहब के पास पढ़ता था। एक दिन लड़के ने सबक़ याद न किया। मौलवी साहब नाराज़ होकर बोले—क्यों बे मुर्ग़ी के बच्चे! तूने सबक़ क्यों याद नहीं किया?

लड़के ने जवाब दिया—मौलवी साहब रोज़ रोज़ बड़े सबेरे बाँग (अज़ान) तो आप देते हैं और मुझे मुर्ग़ी का बच्चा बनाते हैं।

(३३)

वकील साहब नागपुर से एक पिटारी सन्तरे लेकर लौटे। उन्होंने अपने लड़के ओंकार को पाँच सन्तरे दिए और उससे कहा—ये अपने दोस्तों को दे देना।

ओंकार ने सन्तरे गुरुजी की मेज पर रख दिए। गुरुजी ने उससे पूछा ये यहाँ क्यों ले आए।

ओंकार—क्योंकि आपसे बढ़कर मेरा कोई मित्र नहीं है।

(३४)

एक आदमी दूसरे शहर को गया। वहाँ उसकी किसी से जान पहचान थी नहीं, इसलिये उसने होटल में ठहरने का विचार किया। उसने तांगे वाले से पूछा—हमें होटल तक ले जाने का क्या किराया लोगे?

ताँगे वाला—एक रुपया ?

वह आदमी—और हमारे असबाब का क्या किराया होगा ?

ताँगे वाला—आपका असबाब मुफ़ में ले चलूंगा।

वह आदमी—तो बाबा, तुम हमारा असबाब ले चलो, हम पैदल ही चलेंगे।

(३५)

माली—(एक लड़के से जो बाग़ में घुसा हुआ था) तुम यहाँ पेड़ के नीचे क़लमी आम हाथ में लेकर क्या कर रहे थे ?

लड़का—मैं यह सोच रहा था कि किसी तरह पेड़ पर चढ़ जाऊँ और इस आमको जहाँ का तहाँ लगा दूं।

(३६)

एक आदमी ने हलवाई के यहाँ से एक पैसे का दूध लिया दूध में मक्खी निकली। वह आदमी नाराज़ होकर बोला—'क्यों जी यह क्या बात है, जो दूध में मक्खी निकली ?'

हलवाई मुसकरा कर कहने लगा—भैया, नाराज़ न होओ, एक पैसे के दूध में मक्खी न निकलती तो क्या हाथी निकलता ?

(३७)

एक तहसीलदार और एक मीर साहब में बड़ी गहरी दोस्ती थी। एक रोज़ तहसीलदार साहब बोले—'देखता हूँ' कई आदमी किसी ख़ास चीज़ के नाम से बहुत चिढ़ते हैं। करेले, कद्दू खाने की ही चीजें तो हैं पर कई लोग इनका नाम सुनते ही आपे से बाहर हो जाते हैं। भला इनके नाम से चिढ़ने का क्या काम ? मीर साहब ने उत्तर दिया—अच्छा कभी इसका कारण बतला दूंगा।

दूसरे दिन मीर साहब का नौकर तहसीलदार साहब के पास आया और सलाम कर बोला—'हुज़ूर मीर साहब ने थोड़ी सी चटनी मँगाई है।' तहसीलदार साहब ने कहा—"भाई मेरे यहाँ न तो चटनी है, न मुरब्बा, उन्होंने शायद दूसरे के यहां से मँगाई होगी।' दूसरे दिन फिर वही नौकर, उसी समय तहसीलदार साहब के पास आया और बड़ी नम्रता से कहने लगा कि हुज़ूर, मियां ने थोड़ी सी चटनी मँगाई है। तहसीलदार साहब नाराज़ होकर बोले—मेरे यहां चटनी-फटनी नहीं है। तीसरे दिन फिर वही नौकर आया और तहसीलदार साहब से हाथ जोड़कर बोला—'हुज़ूर थोड़ी सी चटनी दे दीजिये, मीर साहब ने मँगाई है।' तहसीलदार साहब गरज कर बोले—'निकल साले! जब देखो, तब चटनी।'

नौकर चला तो गया, पर चौथे दिन फिर उसी समय पर आया और तहसीलदार साहब से विनती करने लगा—सरकार ज़रासी चटनी दे दीजिये, मीर साहब मँगा रहे हैं। आज तहसीलदार साहब मारे गुस्से के आपे से बाहर हो गए और डण्डा लेकर नौकर पर झपटे। नौकर को मीर साहब ने पहले से ही समझा दिया था। नौकर भाग खड़ा हुआ और तहसीलदार साहब भी डण्डा लिए उसके पीछे दौड़ने लगे। यह तमाशा देख बहुत से लड़के भी जमा हो गए। जब उन्हें सब हाल मालूम हुआ तब उन्हें एक खेल मिल गया; लगे सब एक साथ चिल्लाने—'तहसीलदार साहब चटनी!' तहसीलदार साहब बड़े परेशान हुए और बौखलाते-बौखलाते घर लौटे! उस दिन से लड़के उन्हें देखते ही तहसीलदार साहब चटनी कहकर चिढ़ाने लगे।

एक दिन मीर साहब ने तहसीलदार साहब से कहा कि यह क्या हाल है; चटनी तो खाने की चीज़ है, आप उसके नाम से चिढ़ते क्यों हैं! इस पर भी तहसीलदार साहब नाराज़ होगए।

(३८)

साहब—(डांट कर) माली! इन पौधों को किसने खराब किया और ये सब गमले कैसे टूट-फूट गए?

माली—हुज़ूर चौकीदार रात को फाटक बन्द करना भूल गया था। एक गाय ने आकर सब खराब कर दिया।

साहब—गाय क्या चीज़ है?

माली—गाय एक जानवर है, आप जिसका दूध पीते हैं।

साहब—हाम नेई समझने सकटा। हाम उसे देखना मांगता है। किधर है गाय?

माली—(गाय की ओर इशारा करके) हुज़ूर यह देखिये, नीम के पेड़ से बँधी है उसी को गाय कहते हैं।

साहब—(खूब ज़ोर से हँसकर) हुश! काला आदमी! ऐसा क्यों नहीं बोलटा कि बैल का मेम साहब, गाय गाय बकटा है।

(३९)

एक दिन एक आदमी बाल बनवा रहा था। नाई की असावधानी से छुरा उसके गाल में लग गया और खून बहने लगा। उस आदमी ने बिगड़कर नाई से कहा—क्यों बे! यह क्या किया!

नाई—हुज़ूर! आप चिन्ता न करें आपको केवल बालों की बनवाई ही देनी पड़ेगी।

(४०)

एक साधुजी सालिगराम की बहुत पूजा किया करते थे। एक बार वे अपने चेले रामदास को साथ ले काशी की यात्रा करने गए। रास्ते में एक दिन साधु जी की तबियत कुछ खराब हो गई। इसलिए उन्होंने रामदास से कहा कि सालिगराम की पूजा तूही कर डाल। चेला सालिगराम को दही से स्नान करा रहा था, कि गुरुजी ने उसे बुला भेजा। वहां रामदास तो गुरुजी के पास गया, इधर एक कौआ सालिगराम को दही का गोला समझ ले उड़ा।

चेला लौटकर क्या देखता है, कि सालिगराम हैं नहीं। बेचारा बहुत घबराया और उन्हें ढूंढ़ने चला। रास्ते में उसे एक पका जामुन मिल गया। चेले ने समझा बस, यही सालिगराम हैं, वह उसे खुशी खुशी उठा लाया, और पूजा के सामान में रख दिया। दूसरे दिन जब गुरुजी सालिगराम को स्नान कराने लगे, तो जामुन मिथल गया। यह देख गुरुजी ने चेले से कहा—"अरे रमदसवा! यह क्या है! तू ने यह क्या गड़बड़ कर डाली।" रामदास बोला, गुरुजी—पुनि पुनि चन्दन पुनि पुनि पानी। ठाकुर सर गए, हम का जानी॥

(४१)

महाजन—(सिपाही से) क्यों जी! तुम्हारे बाप तो जिन्दा हैं न?

सिपाही—नहीं, उन्हें तो लड़ाई में मरे हुए बहुत दिन हो गए।

महाजन—और तुम्हारे दादा?

सिपाही—वे भी लड़ाई में ही मरे थे।

महाजन—(मुँह बनाकर) तब तो यह नौकरी तुम्हारे वंश को नहीं फलती, किसी रईस की नौकरी क्यों नहीं कर लेते ?

सिपाही कुछ सोचकर—क्यों सेठजी ! आपके बाप तो जिन्दा हैं न ?

महाजन—नहीं, उन्हें मरे कई बरस हो गए।

सिपाही—वे क्या करते-करते मरे ?

महाजन—यही महाजनी करते-करते।

सिपाही—और तुम्हारे दादा।

महाजन—वे भी महाजनी करते-करते ही मरे।

सिपाही—तब तो यह पेशा बहुत बुरा है। जान पड़ता है, इसी में आप भी मरेंगे। छोड़िये इस पेशे को—इससे तो घास खोदना अच्छा।

(४२)

सूरज प्रसाद—मास्टर साहब, फ़ीस ले लीजिए।

मास्टर—लाओ।

सूरज प्रसाद—मगर दो आने कम हैं।

मास्टर—तो कक्षा के किसी विद्यार्थी से ले लो।

सूरज—कोई नहीं देता।

मास्टर—अरे ! तो क्या सभी तुम्हें बेईमान समझते हैं ?

सूरज—जब आपको ही विश्वास नहीं है, तब औरों का क्या कहना ?

(४३)

एक बूढ़े मनुष्य की कमर झुक गई थी। एक दिन वह कुबड़े की भांति लाठी टेकता हुआ कहीं जा रहा था। रास्ते में एक आदमी ने उससे पूछा, कि बाबा, क्या ढूँढ़ रहे हो ?

बूढ़े ने कहा—बेटा, मेरी जवानी खो गई है, उसे ही ढूंढ़ रहा हूँ। वह आदमी बोला—अरे बाबा ! क्यों झूठ बोलते हो ! यह क्यों नहीं कहते, कि कब्र के लिये जगह ढूंढ़ रहा हूँ।

(४४)

माता—देख बेटी, तेरे कैसे बिखरे हुए और मैले बाल हैं ! जा, कङ्घी करले ! जब मैं तेरी उमर की थी, तो दिन में चार बार बालों पर कङ्घी करती थी।

बेटी—इसी से तो तुम्हारे बाल सफ़ेद हो गए। मैं एक बार भी कङ्घी नहीं करती।

(४५)

घनश्याम—(पिता से) पिताजी, आज मुझे गुरुजी ने गुस्से में आकर उल्लू कहा।

पिता—अबे, उल्लू के बच्चे ! ऐसी ज़रा ज़रा सी बातों की शिक़ायत भी की जाती है !

घनश्याम—तो पिताजी, मैं उल्लू का बच्चा हूँ ?

(४६)

एक वकील साहब शाम को कचहरी से लौट रहे थे। रास्ते में उनकी क़लम गिर गई। एक राहगीर क़लम उठाकर उनसे बोला—वकील साहब ! यह आपकी छुरी गिर गई है। वकील साहब चकित होकर उससे कहने लगे कि अबे ! पागल है क्या, क़लम को छुरी बतलाता है। उसने जवाब दिया—जनाब बातें न बनाइए, इसी की बदौलत तो तुमने न जाने आज तक कितने मुक़द्मे वालों के गले काट डाले हैं।

(४७)

एक चतुर आदमी ने अपनी तसवीर खिंचवाकर मित्रों को दिखलाई। उन्होंने कहा—चेहरे पर कुछ बुढ़ापा झलकता

है। चतुर आदमी बोला—यही तो इसमें खूबी है। और यह खूबी मेरी इच्छा से की गई है। अब मुझे दस बरस बाद तसवीर खिंचवाने के लिये कुछ खर्च न करना पड़ेगा।

(४८)

एक आदमी क़ानूनगो का इम्तहान देने के लिये कचहरी पहुंचा। जज साहब ने हँसकर उससे पूछा—अच्छा बतलाओ, तुम्हारे नाना का दामाद तुम्हारा कौन हुआ? वह आदमी कुछ सोचकर बोला, कि हिन्दुस्तान में ऐसा रिश्ता कभी नहीं हुआ।

(४६)

शिवरतन—भाई ललता आज तो खूब बचे!

ललता—क्यों क्यों! क्या हुआ?

शिवरतन—एक रेलगाड़ी मेरे ऊपर से निकल गई।

ललता—तो तुम कैसे बचे?

शिवरतन—मैं पुल के नीचे था।

(५०)

एक मुसलमान ने अपनी लड़की का नाम फ़ज़ीहती रखा था। एक बार फ़ज़ीहती बीमार हुई। बहुत दवा-दारू की गई पर बेचारी मौत के मुख से न बची। माता-पिता हाय मेरी फ़ज़ीहती, हाय मेरी फ़ज़ीहती कह कर रोने-पीटने लगे। तब एक पड़ोसी ने उन्हें समझाकर कहा—भाई, इस तरह रोने से क्या फ़ायदा। धीरज धरो। अगर तुम सही सलामत रहे, तो खुदा की मेहरबानी से अभी तुम्हारे न जाने कितनी फ़ज़ीहतियाँ होंगी।

(५१)

एक आदमी कुछ बहरा था। एक दिन वह बाज़ार से बैंगन लेकर लौट रहा था। रास्ते में उसे एक मित्र मिला। उस बहरे से पूछा—अच्छे तो हो ? बहरे ने उत्तर दिया—बैंगन लाया हूँ। मित्र ने फिर पूछा—बाल बच्चे तो राज़ी-खुशी हैं ? बहरे ने उत्तर दिया—भुरता करके खाऊँगा।

(५२)

एक अफ़ीमची चारपाई से गिर पड़ा। चिल्लाकर नौकर से बोला अरे ! देख तो धम्म से क्या गिरा ? नौकर ने उत्तर दिया। हुज़ूर आप ही चारपाई से नीचे गिरे पड़े हैं। अफ़ीमची बोला—मैं ! हाय रे ! पसलियाँ चूर चूर हो गईं।

(५३)

मेहरबानसिंह ने दरबानसिंह से कहा—मित्र जिन शब्दों के अन्त में वान् शब्द लगा रहता है, वे बहुत बुरे होते हैं, जैसे हाथीवान, गाड़ीवान, दरवान, आदि ! भला इनकी भी कुछ इज्ज़त होती है ? दरवान सिंह ने उत्तर दिया—सच कहते हो मेहरबान।

(५४)

शिक्षक—श्रीराम ! $\frac{1}{20}$ का क्या मतलब ?

श्रीराम—भूल गया !

शिक्षक—अच्छा सुनो। यदि तुम्हारे पास एक सेर हलुआ है और २० लड़के तुमसे मिलने को आते हैं, तो तुम क्या करोगे ?

श्रीराम—(कुछ सोचकर) जब सब चले जायँगे, तो मैं आराम से बैठकर सारा हलुआ खाऊँगा।

(५५)

एक बार कुछ आदमी, एक छोटे से लड़के की होशियारी देख उसकी बड़ी तारीफ़ कर रहे थे। इतने में एक महाशय बोले—परन्तु जो लड़के बचपन में होशियार होते हैं, बड़े होने पर वे पूरे गधे बन जाते हैं, और जो छुटपन में कम बुद्धि वाले होते हैं, आगे चलकर वे बड़े होशियार निकलते हैं। उस लड़के ने उन्हें उत्तर दिया—महाशयजी! आप बिलकुल सच कहते हैं। सुना है, बचपन में आप बहुत ही होशियार थे।

(५६)

एक छोटे लड़के की जूतियाँ खो गईं। उसने सब घर ढूंढ डाला, पर उनका कुछ पता न चला, तब वह अपने पिता की मेज़ पर से एक बड़ी सी किताब उठा कर उसके पन्ने पलटने लगा। यह देख पिता ने उससे पूछा—बेटा, इसमें क्या देख रहे हो?

लड़का—पिताजी, मेरी जूतियाँ खो गई हैं, उन्हें ही ढूंढ रहा हूँ।

बाप—हँसकर बोला—अरे पागल! किताब में कहीं जूतियाँ मिलती हैं!

लड़का—आपही तो कहा करते हैं, कि किताब में सब कुछ है।

(५७)

एक आदमी ज़बर्दस्ती एक फ़क़ीर की पगड़ी छीनकर भाग गया! फ़क़ीर ने उसका पीछा तो किया नहीं, उसने सीधी क़ब्रस्तान की राह पकड़ी और वहीं डेरा डाल दिया। कुछ लोगों ने उससे कहा—शाह साहब! चोर तो दूसरी तरफ़ गया है, आप यहाँ क्या करते हैं? शाह साहब ने जवाब

दिया--आखिर एक दिन वह भी तो यहीं आवेगा, वस समझ लूँगा।

(५८)

एक जुलाहे ने बड़ी कठिनाई से कौड़ी-कौड़ी जोड़कर सोने का एक छल्ला बनवाया। उसे पहनकर वह अपने मित्रों में गया, पर किसी ने छल्ले पर ध्यान न दिया। वेचारा जुलाहा बड़ा दुखी हुआ। एक दिन उसने सोचते सोचते घर में आग लगा दी। लोग यहाँ-वहाँ से आग बुझाने दौड़ पड़े। सभी उससे पूछते थे—भाई, आग किस तरफ से लगी। जुलाहे जी छल्ले वाली अँगुली उठा कर बतलाते थे—उस तरफ से! उसे वार-बार ऐसा करते देख एक साहव कुछ समझ गए। उन्होंने जुलाहे से पूँछा—मियाँ, यह छल्ला कब बनवा डाला! जुलाहा लम्बी साँस लेकर बोला—जनाव, पहले से ही यह पूछ लिया होता, तो घर में आग ही काहे लगती!

(५६)

एक आदमी—क्यों जी, तुम जेल में क्यों आए?

चोर—कुछ न पूछिए साहव! मैंने छींका था—इसलिये!

आदमी—(आश्चर्य से) क्या छींकने के कारण?

चोर—जी हाँ! मैं एक दिन एक अमीर आदमी के घर में घुसा। अन्दर जाते ही मुझे छींक आगई। वस, इसी वात पर वहाँ के नौकरों ने मुझे पकड़ा और यहाँ भिजवा दिया।

(६०)

एक दिन महेश प्रसाद ने सबक़ याद न किया। मास्टर साहव नाराज़ हुए, तो वेचारे के कान खींचने लगे। वह रोता हुआ हेडमास्टर के पास पहुंचा और बोला—पण्डित जी, मुझे सर्टीफ़िकेट दीजिए। अब मैं यहाँ न पढ़ूँगा।

हेडमास्टर—क्यों ?

महेश—पण्डित जी, मास्टर ने मेरे कान खींच खींच कर गधे के कान के बराबर कर दिये। अब आप ही बताइए, गधा क्या खाक पढ़ेगा ?

(६१)

एक बाबू साहब की बीमारी की दशा में, उनके नौकर ने उन्हें दवा के बदले स्याही पिला दी। जब मालूम हुआ, तो डरते डरते बोला—हुजूर कुसूर माफ़ कीजिये। मैंने धोखे से आपको स्याही पिला दी है। बाबू साहब बोले—कुछ हर्ज़ नहीं, जल्दी से थोड़ा सा स्याही-सोख ले आ, मैं उसे निगल लूंगा।

(६२)

एक साहब एक गाँव में पहुँचे। उन्होंने एक ग्रामीण से पूँछा—क्यों भाई, इस गाँव का ठीकेदार (मालगुजार) कौन है ? ग्रामीण था पूरा बना हुआ, बोला—आप किसका ठीका पूछते हैं ? कोई भंग का, कोई गाँजे का, कोई चरस का, कोई अफ़ीम का और कोई शराब का ठीका लिए है।

साहब—मैं यह कुछ नहीं पूछता। इस गाँव का ठाकुर कौन है ?

ग्रामीण—किसको बताऊँ किसी के यहाँ सालिगराम, किसी के यहाँ श्रीकृष्ण, किसी के यहाँ महादेव, इत्यादि सब के यहाँ ठाकुर ही ठाकुर तो हैं, आप किसे पूछते हैं ?

साहब—भाई, मैं इन ठाकुरों को नहीं पूछता, इस गाँव का राजा कौन है ?

ग्रामीण—कुछ न पूछिए साहब; कल ही की तो बात है। एक चमार मर गया। बस, लगी उसकी चमारिन हाय मोरे राजा, हाय मोरे राजा करने! सो यहाँ तो घर घर के राजा हैं; मैं किसे बताऊँ।

साहब परेशान होकर आगे चले गए।

(६३)

सेठजी—देखो पाँड़े जी, मैं तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ, कि तुम अपने माथे पर रामानन्दी तिलक न लगाकर त्रिपुण्ड धारण किया करो। पर तुम मानते ही नहीं। अगर अब भी न मानोगे, तो मैं तुम्हें डिस्मिस कर दूँगा।

पाँड़े जी—अरे सेठ जी महाराज! गङ्गा मैया आपको बनाए रहैं। आप तो हमारे अन्नदाता हैं और हम तो आपकी गऊ हैं गऊ! ऐसे ढिस-ढिसमिस-मिस मुखतें न निकारवे करैं। भला जो हम आपकी आज्ञा न मान हैं, तो का भाड़ थोरइ झौंक हैं। हम तो सदा ही आपकी आज्ञा मानते हैं।

सेठ जी—क्या तुमने मुझे अन्धा समझ रक्खा है? अभी तक तो माथे पर रामानन्दी तिलक लगा है, फिर भी आज्ञा पालन का आप कर रहे हो।

पाँड़े जी—अरे सेठ जी महराज! भगवान् आपको मङ्गल करैं। मैं तो श्री रामानन्दी जी महाराज को भगत हौं सो माथे पै रामानन्द लगावत हौं। और यह पेट आपको भगत है, सो या पेट पै (पेट दिखाकर) तीनों टैम त्रिपुण्ड लगावत हौं।

(६४)

आमों के दिनों में एक लड़का अच्छे अच्छे आम देखकर एक पेड़ पर चढ़ गया। अभी वह दो चार अच्छे से आम

तोड़ने पाया था कि माली ने देख लिया। वह लड़के से कहने लगा—तुमने बिना पूछे आम क्यों तोड़े ? लड़के ने जवाब दिया—वाहरे नेकी के ज़माने ! ये आम गिर पड़े थे, इन्हें मैं डाल में लगाने को चढ़ा था, और तुम ऐसी बातें बताते हो !

(६५)

जब एक छोटे से बच्चे को उसकी माँ ने मारा, तब वह मारे डर के चारपाई के नीचे जा छिपा। थोड़ी देर में उसका बाप आया, और उसे बुलाने के लिये चारपाई के नीचे झाँकने लगा, तो लड़का बोला—दद्दा, क्या तुम्हें भी अम्मा ने मारा है ?

(६६)

वैद्य—देखो भाई, हमने तुम्हारी जाँच करली। तुम्हारी हड्डियों में बुखार समा गया है। अगर परहेज से रहोगे, तो एक बरस में अच्छे हो जाओगे। परहेज़ से चलने को कहो, तो मैं तुम्हारी दवा करूँ।

रोगी—महाराज आप दवा कीजिये। मैं परहेज से रहूँगा।

वैद्य—तो देखो, दूध और साबूदाने के सिवा कुछ मत खाना !

रोगी—हाय अगर दूध ही मिलना होता, तो क्यों यह दशा होती। यहाँ तो पेट भर रोटी भी नहीं मिलती। दूध और साबूदाना कहाँ पाऊँगा ?

(६७)

विद्यार्थी—पादरी साहब ! सलाम ! क्या आप अपनी सोन-हली बाइबिल की एक प्रति और देने की कृपा करेंगे ?

पादरी साहब—सलाम सलाम ! क्यों नहीं बड़ी खुशी और शौक़ के साथ ! बड़े दिन की खुशियाली में बतौर भेंट के

लीजिए! पर यह तो बतलाइए आपने कलवाली प्रति क्या की? क्या अपने मास्टर या किसी मित्र को दे दी? आपने वह पढ़ी तो ज़रूर होगी!

विद्यार्थी—नहीं साहब! पर उसने मुझे बड़ा काम दिया, जिसके लिये मैं आपको बिना धन्यवाद दिए नहीं रह सकता।

पादरी साहब—(खुश होकर) वह कौन सा काम?

विद्यार्थी—साहब, मैंने उसकी सोनहली जिल्द निकाल कर भूगोल की नोटबुक पर लगा ली, जिसकी मुझे बड़ी ज़रूरत थी; और अब मुझे दूसरी जिल्द इतिहास की नोटबुक के लिये दरकार है।

(६८)

एक बार मास्टर ने कक्षा में शुद्ध लेख बोला और जाँचकर यह कहा, कि एक ग़लती को पाँच-पाँच बार लिखो। एक बालक एक ग़लती को एक बार लिख और उसके नीचे चार ऐजन चिन्ह (") लगाकर ले आया और मास्टर साहब को दिखलाने लगा। मास्टर साहब बोले—यह क्या है?

बालक—ग़लती को पाँच बार लिख लाया हूँ।

मा० सा०—मेरे कहने का यह मतलब नहीं है।

बालक—पर इस तरह लिखने का तो वही मतलब है।

(६९)

देवदास—क्यों महाशय, क्या आप सरकस में नौकरी करने लगे?

देवदास—नहीं तो, पर आप ने यह बात पूछी क्यों?

देवदास—कुछ नहीं, सहज ही। उस दिन माँ कहती थीं, कि आपको आपकी स्त्री उँगली पर नचाया करती है।

(७०)

साहूकार तकाज़ा करते-करते हैरान हो गया, पर गड़रिए ने उसके रुपए न चुकाए। तब साहूकार ने और उपाय न देख उस पर नालिश ठोंक दी। अब तो गड़रिया वकील साहब के पास पहुंचा। सब हाल सुनकर वकील साहब ने उससे कहा—मुक़द्दमा तो तुम्हीं जीतोगे; पर मिहनताने में मुझे ५०) देने पड़ेंगे। गड़रिए ने मंजूर कर लिया। तब वकील साहब ने उससे कहा कि जब कचहरी में जज साहब तुमसे कुछ भी पूछें, तब तुम सिवा "भें भें" के कुछ न कहना, समझे!

पेशी का दिन आया। जज साहब ने गड़रिए से पूछा—क्या तुम्हें साहूकार के रुपए देने हैं? गड़रिया बोला—भें भें! जज साहब पूछते पूछते थक गए; पर गड़रिए ने उन्हें "भें भें" के सिवा कुछ भी जवाब न दिया। इस पर वकील साहब ने जज साहब से कहा—महाशय, यह सदा जंगल में भेंड़ें चराया करता है। जान पड़ता है, बेचारा पागल है। साहूकार ने इस पर झूठी नालिश करदी है। जज साहब को बात जँची; उन्होंने मुकदमा ख़ारिज कर दिया।

कचहरी से बाहर निकलते ही वकील साहब ने गड़रिए से रुपए माँगे। गड़रिए ने उत्तर दिया—भें भें! तब तो वकील साहब बहुत ही बिगड़े—बहुत ही खीझे, पर गड़रिया "भें भें" ही करता गया। अन्त में वकील साहब अपना सा मुँह लेकर रह गए। गड़रिया मुसकुराता हुआ चला गया।

(७१)

सेठ जी ने उकता कर एक दिन अपने नौकर से कहा—देखरे मठोला! यदि तू फिर ऐसा करेगा, तो मैं दूसरा नौकर रख लूंगा। समझा!

नौकर—जी हाँ! ज़रूर रखिए! इतना बहुत सा काम मुझ अकेले से हो भी नहीं सकता।

(७२)

लेखक—आपने मेरा लेख इस मासिक पत्रिका में पढ़ा था?

पाठक—जी हाँ! मैंने उसे तीन बार पढ़ा है!

लेखक—(खुश होकर) सच कहिए! आपको उसमें इतना आनन्द आया?

पाठक—नहीं तो! कौन विषय है क्या लिखा है—यही समझने के लिये मैंने उसे तीन बार पढ़ा। अन्त में उकता कर पत्रिका ही एक ओर रख दी।

(७३)

एक क्षय रोगी डाक्टर साहब के पास गया। डाक्टर साहब परीक्षा कर बोले—आपकी बीमारी जल्दी अच्छी हो जायगी। थोड़े दिन मेरी दवा कीजिए।

रोगी प्रसन्न होकर बोला—तब तो क्या कहना! आपको इस बीमारी का अच्छा अनुभव है।

डाक्टर साहब चमककर बोले—अनुभव के क्या मानी? अरे भाई! मुझे ख़ुदही पचीस बरस से यह बीमारी है।

(७४)

किसी मसखरे ने एक अन्धे से पूछा—क्यों सूरदासजी तुमने अपनी आँखें क्यों मीच रखी हैं।

अन्धे ने उत्तर दिया—जिससे तुम जैसे कमीनों का मुंह न देखना पड़े।

(७५)

माधव अपने साहब के पास छुट्टी लेने पहुंचा और उनसे बोला—हुजूर मेरा लड़का चार रोज़ से सख़्त बीमार है। उसकी दवा के......

साहब बीच ही में बोले—हैं ! अभी थोड़ी देर पहले मैंने तुम्हारे लड़के को खेलते देखा था ! वह तो बड़े मज़े में है।

माधव—हुज़ूर आप भूलते हैं। अभी तो मेरा विवाह भी नहीं हुआ। तब आपने मेरे लड़के को कैसे देख लिया ?

(७६)

थानेदार—(अपने डाक्टर मित्र से) अरे भाई ! जब कोई आदमी तुम्हारे पास आया करे, तो उसकी कुछ तो ख़ातिर किया करो !

डाक्टर—लीजिये !

यह कहकर डाक्टर साहब ने कम्पौण्डर से कहा—भाई ज़रा वह बुख़ार वाली दवा तो लाना, थानेदार को दी जायगी।

थानेदार—क्यों ? मैं तो भला चङ्गा हूँ।

डाक्टर—यहाँ तो यही है। और आपकी क्या ख़ातिर करूँ !

कुछ दिन बाद डाक्टर साहब भी थाने में आये। उन्हें देखते ही थानेदार ने कहा—अहा ! आप हैं। (एक सिपाही से) अरे भाई ! ज़रा हथकड़ियाँ तो लाना डाक्टर साहब को पहनाई जायँगी।

डाक्टर—(घबराकर) क्यों क्या मैं चोर हूँ ?

थानेदार—तो आपकी क्या ख़ातिर करूं ? यहाँ तो यही है।

(७७)

सड़क पर एक बाबू साहब बड़े सपाटे से जा रहे थे। इतने में एक भिखारी ने उनसे पूछा—आपका बटुआ तो नहीं गुम गया।

बाबू—(जेब में हाथ डाल कर) नहीं तो !

भिखारी—तो कृपाकर मुझे ही कुछ दान दे दीजिये।

(७८)

नज़ीर—मुनीर, जब मैं पहले यहां था, तब तुम्हारे पास बिल्ली का एक बच्चा था, वह क्या हुआ ?

मुनीर—तुमको अभी तक नहीं मालूम ?

नज़ीर—नहीं तो ! मैंने तो कुछ नहीं सुना। क्या वह मर गया।

मुनीर—नहीं !

नज़ीर— तो क्या जल मरा ?

मुनीर—नहीं !

नज़ीर—तो क्या कोई ले गया ?

मुनीर—नहीं !

नज़ीर—तो फिर हुआ क्या ? बतलाते क्यों नहीं ?

मुनीर—अरे भाई ! बिल्ली का बच्चा, अब बिल्ली बन गया हैं

(७६)

मजिस्ट्रेट—(अपराधी से) आज यह पचीसवीं बार मैं तुम्हें शराबखोरी के अपराध में गिरफ़ार देखता हूँ। मुझे आशा है कि अब मैं तुम्हें कभी ऐसी दशा में न देखूंगा।

अपराधी—तो क्या हुजूर पेंशन पर जा रहे हैं ?

(८०)

नया नौकर—(मालिक से) हजूर ! अभी दो मिनट हुए, एक आदमी आप से मिलने आया था।

मालिक—तो तुमने उससे क्या कह दिया ?

नौकर—मैंने कह दिया कि हजूर मकान पर नहीं हैं ?

मालिक—ऐसा क्यों कह दिया ?

नौकर—हजूर आप तो मकान के भीतर थे, और वह पूछता था कि आप मकान पर हैं ! मैं कैसे कह देता कि आप मकान पर हैं !

(८१)

एक छोटी लड़की की अठन्नी खो गई थी। वह रोते रोते और ढूँढ़ते ढूँढ़ते बेदम हो रही थी। एक दयालु आदमी को उस पर दया आई, और उसने उसे एक अठन्नी दे दी। तब लड़की झल्ला कर बोली—अरे दुष्ट ! तैंने ही अब तक मेरी अठन्नी छिपा रखी थी।

(८२)

शिक्षक—तुम सहारा, अरब और राजपूताने की मरुभूमियों को जानते हो ?

विद्यार्थी—जी हाँ !

शिक्षक—अच्छा बताओ, वे कहाँ हैं !

विद्यार्थी—मैं तो कभी वहाँ गया ही नहीं, फिर कैसे बताऊँ!

(८३)

स्त्री—(घबराई हुई) मन्नू ने अपना टाँग तोड़ लिया !

विद्वान पति—(गम्भीरता से) तुम्हें कितनी बार समझाया, कि टाँग स्त्री लिङ्ग है पर तुम मानती ही नहीं। टाँग तोड़ ली कहा करो !

(८४)

एक बार की बात है एक आदमी की भैंस मर गई थी, बेचारा रो रहा था। इतने में उसके पास एक पड़ोसी आया,

और वह उससे पूछने लगा—भाई क्यों रोते हो? उसने जवाब दिया—अपनी तक़दीर को! एक भैंस थी, उससे घर भर का पालन-पोषण होता था; आज वह मर गई।

पड़ोसी गम्भीर होकर बोला—भाई धीरज धरो! मेरी भी यही दशा है! जान पड़ता है, हमें तुम्हें काला धन फलता नहीं! ओह आज मेरा भी कितना नुक़सान हो गया! उसने पूछा—तुम्हारा क्या नुक़सान हो गया?

पड़ोसी बोला, कुछ न पूछिए साहब दाल पकाने की एक बड़ी ही अच्छी काली हाँडी थी! आज सवेरे वह स्त्री के हाथ से छूट गई और गिरते ही टुकड़े-टुकड़े हो गई! अब दाल काहे में पकेगी!

(८५)

न्यायाधीश-क्यों? इस खूनी को फ़ाँसी देना ठीक होगा न?

पहला जूरी—जी हाँ, हुजूर!

दूसरा जूरी—जी नहीं हुजूर!

तीसरा जूरी—खूनी से ही पूछ लीजिए!

(८६)

एक मनुष्य—भाई! क्या बताऊँ! मेरा गधा खो गया है। बहुत छान-बीन की पर उसका कुछ पता ही नहीं चलता!

दूसरा—भाई! ऐसे गधे का पीछा भी छोड़ो! कहीं ऐसा न हो, कि उसे ढूंढ़ते ढूंढ़ते तुम्हीं खो जाओ, तो बेचारा वह तुम्हें ढूंढ़ता फिरे!

(८७)

गंवार—हजूर, आप क्या करते हैं?

वकील—बहस।

गंवार—इससे क्या मिलता है ?

वकील—रुपए।

गँवार—तो हजूर, मुझे भी सिखा दीजिए, जो कुछ मिलेगा, उसका आधा आप को दूँगा।

(८८)

मोहन—गुरुजी ने कहा है, कि अगर सब सवाल न कर लाए तो मारे मार के सिर फोड़ दूँगा।

सोहन—घबड़ाने का क्या काम ? एक टोप पहन लेना।

(८९)

एक लाला जी की नौकरी छूट गई। उन्होंने अपने रसोइए से कहा—देखो महाराज, मेरी नौकरी छूट गई है। अब थाली में घी कम डालना। रसोइए ने जवाब दिया—जी सरकार!

जब रसोई परोसी गई, तब रसोइए ने लाला जी की थाली में तो थोड़ा घी डाला, पर अपनी थाली में खूब डाला और डटकर भोजन किया। इस पर लाला जी ने उससे पूछा—क्यों मिसरजी, ऐसा क्यों किया ?

मिसरजी ने जवाब दिया—हजूर, मेरी नौकरी तो छूटी नहीं, आप की दया है, तब मैं क्यों कम घी खाऊँ ?

(९०)

नाना—(नाती से) बेटा जब मैं तुम्हारी उमर का था तब कभी झूठ न बोलता था।

नाती—तो नाना जी, फिर आपने कब से झूठ बोलना सीखा ? अभी तक आपने वह खिलौना नहीं ला दिया। रोज़ हाँ कह देते हैं।

(६१)

जज—मैं अभी फैसला सुनाता हूँ। कोई आदमी बीच में न बोले, जो बोलेगा, उसे बाहर निकलवा दूँगा।

अपराधी—तो हुज़ूर मैं बोलता हूँ मुझे बाहर निकलवा दीजिये।

(६२)

लक्ष्मी नाम की एक पाँच बरस की लड़की काग़ज़ पर कुछ लिख रही थी। यह देख उसकी माँ ने पूछा—बेटी यह क्या कर रही है ?

लक्ष्मी—भैया को चिट्ठी लिख रही हूँ।

माँ—तुम तो कुछ पढ़ी ही नहीं, चिट्ठी कैसे लिखोगी ?

लक्ष्मी—तो भैया भी तो नहीं पढ़ सकता।

(६३)

कुछ चोरों ने चोरी की। जब वे माल बाँटने बैठे, तो एक हीरे की अँगूठी पर झगड़ा होने लगा। एक बोला—इसे मैं लूँगा। दूसरा बोला—वाह ! सेंध तो मैंने लगाई थी, अँगूठी मेरी है। तब सलाह यह हुई, कि झगड़ा यों तै न होगा, दो आदमी बाज़ार जावें और यह अँगूठी बेंच आवें। जो धन मिलेगा वह बराबर बराबर बाँट लिया जावेगा।

दो चोर बाज़ार में पहुंचे और सराफ़े में अँगूठी दिखलाने लगे। उन्हें देख एक दलाल ने ताड़ लिया, कि ये चोर हैं चोरी की अँगूठी बेचना चाहते हैं। उसने चोरों से कहा—भाई ज़रा अपनी अँगूठी दिखाओ तो, मैं अच्छी क़ीमत पर बिकवा दूँगा। चोरों ने दलाल को अँगूठी दे दी। तब दलाल उन्हें साथ लेकर ऐसी कुलिया के दरवाज़े पर पहुंचा, जो बाहर से घर के दरवाज़े जैसी दिखाती थी। उसने चोरों से कहा—'आप

लोग यहीं खड़े रहिये मैं अँगूठी सेठजी को दिखाकर अभी आता हूँ।' यह कह कर दलाल कुलिया में घुसा और यह जा वह जा, अपने घर जा पहुंचा।

चोर बड़ी देर तक वहाँ खड़े रहे। जब दलाल न लौटा तब वे उसे पुकारने लगे। पर कुछ उत्तर न मिलते देख, बड़ा साहस कर कुलिया में घुसे। कुलिया में पहुंचते ही उनकी समझ में सब मामला आ गया। तब तो वे अपना सा मुंह ले जहाँ के तहाँ लौट आये। एक चोर ने उनसे पूछा—क्यों भाई, अँगूठी बेच आये।

इन्होंने उत्तर दिया—हाँ भाई, बेंच आये।

उस चोर ने पूछा—किस भाव ?

इन्होंने उत्तर दिया—जिस भाव लाये थे, उसी भाव।

(६४)

ग्राहक—भाई, यह चीज़ है तो बड़ी अच्छी पर किसी बड़े आदमी को दिखाइये।

दूकान दार—वाह जनाब! आप जैसा साढ़े छः फुट लम्बा इतना बड़ा इतना ऊँचा आदमी और कौन होगा!

(६५)

ग्राहक—भाई, यह टोपी मैं दो रुपये में न ले सकूंगा।

दूकानदार—नहीं साहब! ले लीजिये। ऐसी सस्ती टोपी आपको बाज़ार भर में न मिलेगी! यही टोपी मैंने चार-चार रुपये में बेची है! आपके लिये दो रुपये कम कर दिये हैं। इसमें मुझे कुछ नफ़ा नहीं है, एक रुपया का टोटा पड़ता है।

ग्राहक—तभी तो मैं इसे दो रुपये में न लूँगा, क्योंकि मैं

नहीं चाहता कि आप एक बिना जान-पहचान के आदमी के पीछे एक रुपया की घटी खावें।

(६६)

एक जाट बम्बई में पहुंचा! बाल बढ़ गये थे। उसने नाई से पूछा—क्या हमारी हजामत कर सकते हो?

नाई—क्यों नहीं! दूसरों की हजामत करना ही तो मेरा धन्धा है।

जाट—एक हजामत का क्या लेते हो?

नाई—इसकी कुछ न पूछो। जैसा काम, वैसा दाम। एक आने से लेकर आठ आने तक का बनाता हूँ।

जाट—अच्छा तो एक आने वाली बनाओ।

नाई ने बाल छील दिये और कहा—लो बन गई, पैसे लाओ।

जाट—बस! एक आने वाली बन गई! तो अब दो आने वाली बनाओ! यह सुन नाई घबराया!

तब जाट खीसा बजाकर बोला—अबे घबराता क्यों है! अभी तो आठ आने तक वाली बनवाऊँगा।

(६७)

एक गरीब ब्राह्मण ने थोड़ी सी घास ली और उसे चारों ओर से काटपीट कर एक छोटा सा बण्डल बनाया। फिर उसे अच्छे से कपड़े में लपेट कर वह एक धनवान् के यहां पहुंचा। उसने धनवान् से कहा—सेठ जी! मैं बड़ा दुखी आदमी हूँ। मेरे पास हाथ की लिखी हुई यह भागवत है, मैं इसे बेचना चाहता हूँ। सेठ ने पूछा—क्या क़ीमत है? ब्राह्मण बोला—है तो २००) की, पर आप जो दे दें। होते-करते डेढ़ सौ रुपये में सौदा हो गया। तब सेठ ने ब्राह्मण से पूछा—ग्रंथ तो पूरा है

न ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—और तो सब ठीक है पर शायद एक आदि अक्षर कम होगा। सेठ ने रुपये देकर ग्रंथ रख लिया।

कुछ दिन बाद सेठ के यहां एक विद्वान् पण्डित आया। उन्हें दिखलाने के लिये सेठ ने वह बस्ता खोला, तब तो उसके अचरज का ठिकाना न रहा ! उसने घबराकर उसी ब्राह्मण को बुलवाया और उससे पूछा—यह क्या है ? ब्राह्मण बोला—सरकार मैंने तो पहले ही कह दिया था कि एक आदि अक्षर कम है। सेठ ने कहा—एक आदि अक्षर कम है या ग्रंथ का ग्रंथ ? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—सरकार भागवत के आदि का एक अक्षर कम कर देने से जो बचता है वह 'गवत*' तो है देख लीजिये न।

(६८)

एक मास्टर साहब, जिनके एक ही आँख थी, एक दिन पाठशाला में बैठे बैठे इंगलैण्ड का पाठ पढ़ा रहे थे। आप पढ़ाते पढ़ाते बोले—इंगलैण्ड इतना बड़ा शहर है, कि उसे यदि हम पूरा पूरा देखना चाहें; तो पन्द्रह दिन लगेंगे। इसके बाद आपने लड़कों से पूछा—हाँ तो, इंगलैण्ड को पूरा-पूरा कितने दिन में देख सकते हो ?

एक लड़का जो बड़ा चालाक था, चट से बोला—साढ़े सात दिन में !

मास्टर साहब—सो कैसे ?

लड़का—क्योंकि मैं दोनों आंखों से देखूंगा न !

*गवत—घास

(९९)

एक मास्टर साहब, जो बेहद काले थे, एक दिन थोड़ी देर के लिये कक्षा से बाहर चले गये। यहाँ लड़के ऊधम मचाने लगे, एक लड़के के धक्के से दावात जो लुढ़की तो सारी स्याही मास्टर साहब की कुरसी पर जा गिरी।

इतने में मास्टर साहब आये और धम से कुरसी पर जा विराजे। सारी धोती स्याही से तर हो गई। मास्टर साहब नाराज़ होकर पूछने लगे—यह स्याही किसने फैलाई है?

एक लड़का खड़ा होकर बड़े अचरज से बोला—मास्टर साहब क्या यह स्याही है?

मास्टर साहब—(अचरज कर) नहीं तो क्या है।

लड़का—मैंने आप का पसीना समझा था।

(१००)

बीमार—(वैद्य से) महाराज, मेरा हृदय हमेशा धड़का करता है, ज़रा देखिये तो क्या बात है?

वैद्य जी पीठ दबा दबा कर देखने लगे।

बीमार—महाराज, यह क्या करते हैं? आप हृदय देखते हैं या पीठ?

वैद्य—हृदय

बीमार—क्या वह हृदय है? हृदय तो आगे रहता है?

वैद्य—तुम जानते नहीं; पुराने ज़माने में तो ऐसा ही था पर अब नया ज़माना है। अब तो सब लोगों का हृदय पीछे याने पच्छिम की ओर सरक गया है।

(१०१)

एक राजा की रानी गान-विद्या में बड़ी चतुर थी। वह जो

(१०६)

एक मनुष्य—आज मैंने नये जूते मोल लिये हैं।

दूसरा—अच्छा! तो मैं आपको नये जूतों की बधाई देता हूँ।

(१०७)

रात के समय एक बङ्गाली महाशय चश्मा लगाये हुये कहीं जा रहे थे। उन्हीं के पास से एक पत्र-सम्पादक और एक मुंशी जी निकले। मुंशीजी ने सम्पादकजी से पूछा—क्यों जनाब, आपकी और इन बङ्गाली महाशय की मुलाक़ात तो है न! फिर भला आपने इनसे सलाम क्यों नहीं की?

यह सुन सम्पादक जी बोले—आप इसे मेरी भूल समझ सकते हैं, पर मैं इसे अपनी भूल नहीं समझता। मेरे सलाम न करने का कारण यह है, कि मुझे शक था और अब भी है कि ये महाशय चश्मा लगाये रहने पर मुझे किस तरह देख सकेंगे। मुझे न देख सकें—इस बात की उतनी चिन्ता नहीं, विशेष चिन्ता इस बात की है, कि वे मेरी सलाम भी देख सकेंगे या नहीं?

(१०८)

एक बार की बात है, पण्डितजी के यहाँ खीर पकाई गई। पण्डित जी और उनका पुत्र भोजन करने बैठे। पण्डिताइन परोसने लगीं, तो अचानक बेटे की थाली में कुछ अधिक खीर गिर गई। यह देख पंडित जी आग हो उठे, बिगड़ कर पण्डिताइन से बोले—मैं तेरा पति हूँ या यह, जिसे तू अधिक हिस्सा देती है?

यह सुन पुत्र को भी क्रोध आ गया, बाप से बोला—यह मेरी मा है या आपकी जो आपको अधिक हिस्सा दे?

इस बार परिडताइन से चुप न रहा गया, पति से बोली—सोचो तो तुम मेरे बेटे हो या यह।

(१०९)

बाबू साहब हाथ मुंह धो रहे थे। उनकी पत्नी ने उनके पीने के लिये गिलास भर दूध रख दिया। इसके बाद वह दूसरे काम में लग गई। यहाँ उनके छोटे पुत्र ने दूध लुढ़का दिया। इतने में बाबू साहब आये, और ज़मीन पर दूध फैला देख पत्नी से बोले—दूध तो इसने लुढ़का दिया, अब मैं क्या पिऊँ?

पत्नी—कुछ हर्ज नहीं, आप मेरा दूध पी लीजिये।

यह सुन कर छोटा सा बच्चा बोला—बाबू साहब जब आप मेरी माँ का दूध पीने लगेंगे, तो मैं क्या पिया करूँगा?

(११०)

एक लाइब्रेरी में ।) मासिक चन्दा देने वालों को एक बार एक ही पुस्तक ले जाने का अधिकार था। एक महाशय ने, जो ।) चन्दा देते थे, लाइब्रेरी से एक किताब ली। उस पर कुछ धूल लगी थी। आप उसे झाड़ने लगे। यह देख लाइब्रेरियन ने कहा—महाशय, आप यह क्या करते हैं! उन्होंने उत्तर दिया—आप जानते हैं, ।) चन्दा देने वाले केवल एक पुस्तक ले जा सकते हैं, इस लिये यह धूल यहीं छोड़े जाता हूँ।

(१११)

परिडतजी के जूते फट गये थे। आप उन्हें सुधरवाने के लिये बाज़ार जा रहे थे। रास्ते में उनके मित्र मिले और बोले—चमार के पास जाने की ज़रूरत नहीं घर पर ही सुधरवा लीजिये। घर के सामने से बहुत से चमार...... । यह सुन

पण्डित जी बोले—बस बस अधिक कहने की ज़रूरत नहीं है। घर पर ही सुधरवा लीजिये—कहने से काम चल सकता है।

(११२)

रामचरण एक ग़रीब किसान था। एक दिन वह अपनी दलान में बैठा चिलम पी रहा था। इतने में बाबू जोंकसिंह वहाँ आ पहुंचे और रामचरण से बोले—रामचरण आज तुम उदास क्यों हो?

रामचरण—अरे भाई! क्या बताऊँ! वह ज़मीन, जो तुम्हारे सामने पड़ी है उसमें मैंने एक लौकी का झाड़ लगाया था।

जोंक०—अच्छा किया था। मकान के सामने इतनी जगह क्यों ख़ाली पड़ी रहे। दो एक झाड़ लगे रहने से अच्छा दिखता है।

राम०—धीरे धीरे वह झाड़ बढ़ने लगा।

जोंक०—वह तो बढ़ेगा ही। बढ़ेगा क्यों नहीं, तुमने उसे इतने जतन से रखा, इतना खाद-पानी दिया, तब बढ़ेगा क्यों नहीं; अवश्य बढ़ेगा।

राम०—फिर मैंने उसके लिये एक मचान बना दिया। धीरे-धीरे उसमें तीन लौकियाँ लगीं।

जोंक०—ज़रूर लगेंगी। जिस झाड़ की तुमने इतनी सेवा की उसमें तीन लौकियाँ भी न लगेंगी? अवश्य लगेंगी, और अभी तो और भी लगेंगी।

राम०—फिर मैंने एक लौकी घर में पकाने को दी; बाक़ी दो लौकियाँ बाज़ार में बेचने को ले गया।

जोंक०—ज़रूर ले जाना चाहिये। तुम ग़रीब आदमी ठहरे, अगर तीनों लौकियाँ खा डालोगे, और बेचोगे एक भी नहीं;

तो घर का काम कैसे चलेगा ? वाकी दो लौकियाँ ज़रूर वेचनी चाहिये।

राम०—मैं बाज़ार में जाकर वैठा ही था कि म्यूनिसिपलिटी का चपरासी आ पहुंचा और टैक्स में एक लौकी माँगने लगा।

जोंक०—वह तो ज़रूर मांगेगा। सरकारी नौकर ठहरा, उसे टैक्स वसूल करने का अधिकार है, वह तो ज़रूर मांगेगा।

राम०—भाई, हमने लौकी न दी।

जोंक०—बहुत ठीक किया। तुमने इतनी मेहनत से वह भाड़ लगाया, मुश्किल से उसमें तीन लौकियाँ फलीं। अगर तुम उसे एक लौकी दे देते, तो तुम्हारे पास बचता ही क्या ?

राम०—जब मैंने उसे लौकी न देनी चाहा, तब वह मुझ से एक लौकी छीनने लगा।

जोंक०—वह तो छीनेगा ही। वह हुआ टैक्स वसूल करने वाला और तुमने उसे टैक्स न दिया, तब तो वह छुड़ावेगा ही।

राम०—उस लौकी को खीचते खींचते उसमें दाग पड़ गये। अपनी चीज़ ख़राब होती देख मुझे बड़ा क्रोध आया और मैंने उसे दो एक बात सुना दीं।

जोंक०—अच्छा किया। एक तो तुम ग़रीब ठहरे, दूसरे उस बदमाश ने एक लौकी ख़राब कर दी। इतने पर भी तुम उससे कड़ी बातें न करते तो क्या उसके पैर पड़ते ?

राम०—तब तो वह मुझे गालियाँ देने लगा।

जोंक०—ज़रूर गालियाँ देगा। एक तो तुमने उसे टैक्स न दिया, दूसरे उससे कड़ी कड़ी बातें कहीं। वह ज़रूर गालियाँ देगा।

राम०—गालियाँ सुनकर मैं जल उठा। फिर तो मैंने भी उसे जी भर गालियाँ दीं।

जोंक०—बहुत अच्छा किया। एक तो उसने लौकी ख़राब करदी, दूसरे गालियाँ दीं। तब तुम क्यों चुप रहते?

राम०—तब तो उसने मेरा गला पकड़ लिया और मुझे दो-चार लातें और चपतें जमा दीं।

जोंक०—चपत तो वह जमावेगा ही। पहले तो तुमने उसे टैक्स न दिया, दूसरे बेचारे को गालियाँ दीं! तब वह चुप क्यों रहता?

राम०—वह मार-पीट कर एक लौकी ले ही गया।

जोंक०—ले ही जायगा। क्या वह इतनी गड़बड़ करके भी न ले जाता?

राम०—तब तो मैंने दुःखी हो बाक़ी एक लौकी नाली में फेंक दी और फिर घर की राह ली।

जोंक०—बहुत अच्छा किया। जिस लौकी के पीछे दो कौड़ी की इज़्ज़त हुई, उसे फेंक देना ही अच्छा।

राम०—घर आकर मैंने झाड़ उखाड़ डाला और मचान जला दिया।

जोंक०—अच्छा किया। झगड़े की जड़ का नाश कर डालना ही अच्छा।

राम०—पर भाई, उस झाड़ के लिये मेरा जी दुखने लगा।

जोंक०—ज़रूर दुखेगा। जिस झाड़ को इतने जतन से पाला पोसा उसे उखाड़ने से क्या सुख होगा? कभी नहीं।

इतने में चिलम जल चुकी। जोंकसिंह आगे चले गये।

मि० जोंकसिंह जैसे आदमी ही चापलूस कहलाते हैं। यदि

ऐसे आदमियों से कहो—'भाई हम शराब पियेंगे।' तो यह उस की बड़ाई कर कहेंगे ज़रूर पीजिये। यदि कहो—'शराब पीना बुरा है।' तो ये भी कहेंगे; बेशक बुरा है, शराब जैसी वाहियात चीज दूसरी नहीं। ऐसे लोगों से संसार की बड़ी हानि होती है। इस लिये इनसे दूर रहना ही अच्छा।

(११३)

पुत्र—माँ, तुझ से एक बात पूछता हूँ।

माँ—पूछ न बेटा!

पुत्र—जब मैं पैदा नहीं हुआ था, तब तो तूने मुझे कभी देखा ही न था।

माँ—नहीं।

पुत्र—तब फिर पीछे मुझे पहचाना कैसे?

(११४)

बड़ा भाई—(हाथ में छड़ी लेकर) क्योंरे, तुझे मैं क्यों मारता हूँ, जानता है?

छोटा भाई—(रोते रोते) हां, मैं बच्चा हूँ इसलिये। कल रात को पड़ोस का शेख़ जुम्मन जब लाठी लेकर दौड़ा था, तब तो तुम भीतर घुस गये थे।

(११५)

छैः बरस का गौतम एक दिन स्कूल न जा सका। दूसरे दिन उसके आने पर मास्टर साहब ने उससे पूछा—तुम कल क्यों नहीं आये थे।

गौतम ने उत्तर दिया—कल मेरी माँ के लड़का हुआ था, इसलिये नहीं आ सका।

इस पर मास्टर साहब ने उससे कुछ न कहा। दो-तीन

दिन के बाद गौतम फिर स्कूल में न आया। उसने सोच लिया था, कि माँ के लड़का हुआ है यह कह देने से मास्टर साहब नाराज़ नहीं होते। दूसरे दिन जब मास्टर साहब ने गौतम से ग़ैरहाज़िरी का कारण पूछा, तब उसने उत्तर दिया—क्या करूँ गुरुजी, कल फिर अम्मा के लड़का हुआ है।

(११६)

एक वकील साहब ने चोरी के मुक़दमे में ऐसी अच्छी बहस की कि मजिस्ट्रेट ने अपराधी को फ़ौरन छोड़ दिया।

अदालत से बाहर निकलने पर एक आदमी ने अपराधी से पूछा—भाई, अब तो तुम छूट ही गये, पर सच कहना, तुमने चोरी की थी या नहीं?

अपराधी बोला—यार, कुछ न पूछो, वकील साहब की बहस सुनकर अब तो मुझे यही मालूम होता है, कि मैंने चोरी नहीं की थी।

(११७)

जमाई—(जिसने केवल ससुर की जायदाद पाने के लोभ से विवाह किया था) छिः छिः आपकी लड़की ने तो अब हद ही कर दी। परसों उसने मुझे मारने के लिये डण्डा उठाया था।

ससुर—ऐसा! अच्छा, तो अब मैं उसे अच्छी तरह सज़ा दूंगा। तुम उससे कह देना कि अब वह मुझसे, या मेरी जायदाद से एक फूटी कौड़ी भी पाने की आशा न रखे।

(११८)

ग्राहक—तो यह हीरा बिलकुल खरा है?

जौहरी—इसके खरेपन के विषय में, महाशय, मैं अब अधिक कुछ न कहकर आपको विश्वास दिलाता हूँ, कि यह ख़ास हमारे कारखाने का बना हुआ है!

(११६)

पत्नी—(बड़े प्रेम से) सुनिए तो, कल रात को मैंने यह सपना देखा है, कि हम और आप एक दूकान पर गये हैं। उस दूकान में सोने चाँदी के गहने......।

पति—(जो नामी कंजूस था) पर, यह सब बात सपने की ही है न ?

पत्नी—उस दूकान से आपने मेरे लिये एक गहना ख़रीद दिया, तभी मैंने जान लिया कि यह सब सपना है।

(१२०)

मथुरा के दो चौबे, एक सेठ के यहाँ भोजन करने गए। वहाँ उन्होंने इतना भोजन किया, कि पेट तक अफर गए। चलते समय एक ने कहा—भाई, मैं तो झुक कर अपने पैर भी नहीं देख सकता। दूसरा बोला—अरे भाई, अफराके मारे मेरा तो और भी बुरा हाल है, मुझे तो तुम भी नहीं दीख पड़ते, कि कहाँ हो ? इतने में एक तीसरे चौबे जी, जो कहीं से भोजन करके आ रहे थे, इन लोगों के पास आ पहुंचे; और बोले—भाई, आज मैं बेहिसाब भोजन कर गया हूँ, मारे दर्द के मेरा पेट फटा जाता है। क्या करूँ, क्या न करूँ ? दूसरे चौबे जी ने जवाब दिया—थोड़ा सा चूरन फाँक लीजिये न। चौबे जी बोले—अहा ! पेट में थोड़ी साँस होती तो एक लडुआ और नाय खाय ले तो।

(१२१)

एक अन्धा रात में सिर पर घड़ा और हाथ में दिया लिये कहीं जा रहा था। एक आदमी ने उससे पूछा—बाबा सूरदास जी, यह दिया क्यों लिये हो ? सूरदास ने जवाब दिया—जिससे तुम जैसे आँख के अन्धे रास्ता न भूल जाओ ?

X (१२२)

एक दिन एक अमीर आदमी अपने एक मित्र के साथ कहीं घूमने गया। रास्ते में उसने अपने कपड़े उतार कर नौकर को दे दिये। यह देख उसके मित्र ने भी वैसाही किया। तब अमीर ने नौकर से कहा—अब तुझ पर एक गधे का बोझ हो गया। नौकर हाथ-जोड़ कर बोला—नहीं हुजूर; बल्कि दो गधों का।

X (१२३)

राम और श्याम में बड़ी मित्रता थी। एक दिन राम ने श्याम से कहा—मित्र मेरी तुम्हारी बड़ी ही मित्रता है। अब मैं परदेश जाता हूँ सो कृपाकर तुम मुझे अपनी अंगूठी दो, जिससे मुझे हर समय तुम्हारी याद बनी रहे। श्याम ने उत्तर दिया—अँगूठी की क्या ज़रूरत ? जब तुम अपनी खाली उँगली देखोगे, तभी तुम्हें मेरी याद आये बिना न रहेगी, कि श्याम ने अँगूठी न दी थी।

(१२४)

शिक्षक—गोपाल, मानलो कि तुम्हारे बाप ने आठ आने सैकड़ा माहवारी व्याज की दर से १००) कर्ज़ लिये, तो बताओ उन्हें दो बरस में कितना व्याज देना पड़ेगा ?

गोपाल—कुछ नहीं !

शिक्षक—ऐं ! मूर्ख तुझे व्याज निकालना भी नहीं मालूम !

गोपाल—और आपको हमारे पिता के विषय में कुछ नहीं मालूम ! वे क्यों किसी से कर्ज़ लेने जायँगे।

(१२५)

ग्राहक—इस पुरानी साइकिल को न खरीदने के कई कारण हैं। अव्वल तो मेरे पास उतने रुपये नहीं दूसरे......।

दूकानदार—रहने दीजिये यही एक कारण काफ़ी है।

(१२६)

सवेरे का समय था। डाक्टर साहब बड़ी आशा से चारों ओर देख रहे थे, कि कोई शिकार फँसे। इतने में एक आदमी आया और बोला—डाक्टर साहब! आप एक दाँत उखाड़ने की क्या फ़ीस लेते हैं?

डाक्टर सा०—दो रुपये प्रत्येक दाँत के लिये।

वह—ऐं! तो क्या आपका यह काम अच्छी तरह चलता है?

डाक्टर सा०—और नहीं तो क्या! साल भर में छैः हज़ार रुपये वैसे ही पीट लेता हूँ।

वह—तब तो ठीक है। अभी तो मैं जाता हूँ, थोड़ी देर बाद आऊँगा। मैं इनकमटैक्स लगाने वाला इन्स्पेक्टर हूँ।

डाक्टर साहब माथा पकड़कर बैठ गये।

(१२७)

पुत्र—दादा चार में से एक निकल गया, तो कितने बचे?

पिता—मूर्ख। इतना भी नहीं मालूम? तीन!

पुत्र—नहीं दादा, पाँच!

पिता—(चिढ़ कर) सो कैसे?

पुत्र—इस रुमाल के चार कोने हैं, यदि मैं तेज़ कैंची से इसका एक कोना निकाल दूं, तो इसमें पांच कोने हो जायेंगे न?

(१२८)

पाठक—आपके लेख का कुछ अंश तो मुझे बहुत ही पसंद आया।

लेखक—(प्रसन्न होकर) सच? वह कौन सा अंश है?

पाठक—जहां आपने सूरदास जी की कुछ कविता नक़ल की है।

(१२९)

"तुम्हारे सिर के बाल तो बिलकुल सफ़ेद हैं, पर मूँछें काली हैं। इसका क्या कारण है?"

आप नहीं जानते?

"नहीं तो!"

"अरे भाई, सिर के बालों से मूँछें बीस बरस छोटी हैं।"

(१३०)

डिपुटी इन्सपेक्टर—(नक़्शे की ओर इशारा करके) यह किस काम में आता है?

एक लड़का—आपके आने पर मास्टर साहब की छड़ी छिपाने के।

(१३१)

एक मित्र—इस बार यदि आप मुझे पाँच रुपये दे देंगे तो मैं जन्मभर आपका ऋणी बना रहूंगा।

दूसरा मित्र—इसीलिये तो मैं देता नहीं।

(१३२)

एक आदमी—डाक्टर साहब, मेरी स्त्री इस बीमारी से जल्दी आराम हो जायगी न?

डाक्टर साहब—अजी कल आराम होती है। मैंने अभी उससे कह दिया है, कि तुम्हारे विवाह के लिये मैंने एक अच्छी लड़की तलाश रखी है। देखिये अब वह बिना दवा दारू के कल अच्छी न हो जाय, तो मेरा नाम मत लेना।

(१३३)

एक क़ाज़ी जी ने किसी किताब में पढ़ा कि जिस आदमी का सिर छोटा और दाढ़ी बड़ी होती है, वह नम्बर एक का

बेवकूफ़ होता है। काज़ी जी ने फ़ौरन आइना उठाया। देख कर सोचने लगे मेरा सिर छोटा और दाढ़ी बड़ी जान पड़ती है, तो क्या मैं भी बेवकूफ़ हूँ। अच्छा दाढ़ी छोटी कर डालनी चाहिये, फिर कौन साला मुझे बेवकूफ़ कहेगा ?

बस क़ाजी जी साहब लगे कैंची ढूंढ़ने, पर उस समय आपको कैंची न मिली। तब आपने सोचा कुछ हर्ज नहीं, दिया से थोड़ी दाढ़ी जला डालने से भी काम चल सकता है। बस आपने एक हाथ से दाढ़ी पकड़ी और दूसरे से दिया। दाढ़ी फर फर करके जलने लगी। जब आग हाथ के पास पहुंची तब तो काज़ी जी ने घबराकर हाथ हटा लिया और सब दाढ़ी जल गई। काज़ी जी ज़ोर से चिल्ला उठे दरअसल मैं बेवकूफ़ हूँ।

(१३४)

रोगी—डाक्टर साहब, आपने मुझे इस बीमारी से अच्छा किया है, आपके इस उपकार का बदला मैं किस तरह चुकाऊँ ?

डाक्टर—किसी भी तरह से। चेक, मनीआर्डर अथवा नक़द रुपये से जैसा तुम्हारा जी चाहे।

(१३५)

मजिस्ट्रेट—(नाराज़ होकर) इतनी ताक़ीद करने पर भी तू फिर मेरे सामने आया ?

अपराधी—हजूर मेरा कुछ कसूर नहीं। मैंने कई बार सिपाही से कहा कि मुझे मत पकड़ो, साहब नाराज़ होंगे, पर सिपाही ने कुछ ख्याल न किया।

एक काबुली का ऊँट खो गया। काबुली खुश होकर ईश्वर को बार बार धन्यवाद देने लगा। लोगों ने पूछा—यह क्या बात है? नुकसान होने पर तो कोई खुश नहीं होता, न ईश्वर को धन्यवाद ही देता है। काबुली ने जवाब दिया—वाह साहब खुश होने और धन्यवाद देने की बात ही है। यदि कहीं मैं ऊँट पर बैठा होता और उसके साथ ही मैं भी खोजाता तो!

(१३७)

एक साहूकार ने किसी पण्डित से सुना कि सवेरे सूर्योदय के समय कौए की जोड़ी देखने से बड़ा अच्छा फल होता है। साहूकार को यह बात जँच गई। उसने अपने नौकर से कहा—यदि कहीं कौए की जोड़ी बैठी देखो, तो मुझे खबर देना, तुम्हें खूब इनाम दूंगा।

उसी दिन से नौकर कौए की जोड़ी की तलाश में रहने लगा। एक दिन उसने सवेरे ही सवेरे मकान के सामने दो कौए बैठे देखे। बेचारे ने इनाम के लालच से दौड़कर साहूकार को खबर दी। साहूकार झपटकर बाहर आया, तो एकही कौआ देखा। बस, वह नौकर पर बिगड़ उठा। उसने नौकर को पीटने के लिये कोड़ा उठाया। तब तो नौकर ने हाथ जोड़ कर साहूकार से कहा—सरकार दो कौए देखने का यही फल होता है। वे तो मैंने ही देखे थे, कहीं आप देख लिये होते तो न जाने क्या होता।

यह सुन साहूकार को हँसी आ गई। पीछे वह अपनी गलती पर बहुत पछताया।

(१३८)

एक दिन अकबर बादशाह हाथी पर सवार होकर शहर घूमने गये। रास्ते में उन्हें एक शराबी मिला। वह शराब के नशे में चूर हो रहा था, गरजकर बादशाह से बोला—अबे हाथी वाले ? हाथी बेचेगा ? बादशाह ने कुछ न कहा, चुपचाप चले गये।

दूसरे दिन अकबर ने शराबी को दरबार में बुलाया, और उससे पूछा—क्यों भाई, हाथी खरीदोगे ? शराबी डरा तो बहुत पर था चतुर। कुछ सोच समझ कर हाथ जोड़कर बोला—हजूर, हाथी खरीदने वाला सौदागर कूंच कर गया, मैं तो बीच का दलाल था।

बादशाह उसकी इस बात से बहुत खुश हुए, और उन्होंने उसे इनाम दिया।

(१३९)

मास्टर साहब नाराज होकर बोले—अरे ओ नालायक, बदमाश, पाजी, शैतान कहीं का ? मैंने ससुर से कितनी बार कहा, कि साले किसी को गाली न दिया कर पर, हरामजादे, उल्लू के पिल्ले, कमीन कुत्ते पर उसका कुछ असर ही नहीं पड़ता।

(१४०)

वैद्यराज—परन्तु आपको दवा के दाम पहले देने पड़ेंगे।

रोगी—क्यों ?

वैद्यराज—क्योंकि जो हमारी दवा खाते हैं, वे संसार-रोग से एक दम के लिये ऐसे आराम हो जाते हैं, कि उन्हें फिर किसी को मुँह दिखाने में लज्जा मालूम पड़ती है।

वह—नहीं !

मोची—शायद आप चुङ्गी के दारोगा होंगे ?

वह—नहीं !

मोची—तो शायद आप किसी वकील वैरिस्टर के मुंशी होंगे ?

वह—नहीं !

मोची—मालूम होता है, शायद आप अभी देहात से चले आ रहे हैं ?

वह—नहीं !

मोची—तब फिर आप हैं कौन ?

अब उस आदमी ने पूंछ पर से नज़र हटाई और कहा—मैं ! अजी जनाब, मैं एक बड़ा भारी फ़िलास्फ़र (न्याय-वेत्ता) हूँ।

मोची—तो फ़िलास्फ़र साहब, आप इस तरह यहां खड़े खड़े क्या कर रहे हैं ?

फ़िलास्फ़र—मैं बड़ी देर से यह जानने की तलाश में हूँ कि इस खम्भे के उस छोटे से छेद में से पूरा बकरा कैसे भीतर चला गया और यह उसकी पूंछ भीतर न जाकर बाहर ही क्यों अटक रही है ?

(१४६)

एक मास्टर साहब ने, भूगोल, आदि का सार संग्रह प्रकाशित किया था। एक तो स्कूल में पढ़ाना, उस पर से दो चार लड़कों को उनके घर जाकर पढ़ाना, इसके बाद रात-रात भर जाग कर पुस्तकें तैयार करना ! इतना परिश्रम भला आदमी का शरीर कैसे सह सकता है ? मास्टर साहब को बीमारी ने घर दबाया। वे दिन-दिन दुबले होने लगे। एक दिन एक

दुष्ट लड़के ने मास्टर साहब से कह ही दिया—क्या मास्टर साहब, क्या इस बार आप अपना शरीर-सार संग्रह प्रकाशित करने जा रहे हैं।

(१४७)

एक पिता ने अपने पुत्र को सवेरे उठने के लिये बार-बार समझाया। किन्तु लाख कहने पर भी उसने पिता के कहने पर ध्यान न दिया। एक दिन पिता ने इससे कहा—बेटा, सवेरे उठने से बहुत लाभ होता है। देखो, आज रघुवर पाँड़े का लड़का बहुत सवेरे उठा था, जिससे उसे सड़क पर रुपयों की एक थैली मिली।

(१४८)

इस पर लड़के ने जवाब दिया—और जिसकी थैली गिरी थी, वह उससे भी पहिले उठा होगा।

उपदेशक ने कहा—आज बहुत से गधों की मण्डली में मेरा व्याख्यान हुआ।

यह सुन एक साहब बोले—वहाँ पर जैसे ही आपने उनसे हे-भाइयो कहा था, वैसे ही मैं यह बात समझ गया था।

(१४९)

किसी साहूकार ने एक नौकर को इस शर्त पर अपने यहाँ रखा; कि जब तू मुझे खुश कर देगा, तब मैं तेरी तरक्की कर दूंगा। नौकर यह शर्त मंजूर कर काम करने लगा। एक दिन साहूकार का घोड़ा खो गया। साहूकार नौकर को घोड़े के खोजने का हुक्म देकर आप अपने मित्रों के साथ छत पर पतंग उड़ाने चला गया। थोड़ी देर बाद नौकर भी छत पर आ पहुंचा और सब लोगों से बोला—क्यों साहबो! यहाँ कहीं

आपने घोड़ा तो नहीं देखा ? यह सुनकर सब लोग हँस पड़े। तब नौकर ने साहूकार से कहा—हुजूर ने फरमाया था, कि खुश होने पर मेरी तरक्की की जायगी, तो मैंने आज आप को दोस्तों समेत खुश कर दिया। अब मेरी तरक्की होनी चाहिये।

साहूकार ने उसकी तरक्की कर दी।

(१५०)

मृत्यु की भयङ्करता के सम्बन्ध में बहुत देर तक व्याख्यान झाड़ने के बाद चतुर वक्ता महाशय बोले—भगवान् की कैसी अपार दया है, मृत्यु भयङ्कर होने पर भी भगवान् की असीम दया से हम लोगों के जीवन के अन्त में ही आक्रमण करती है। यदि मृत्यु हम लोगों के जीवन के पहिले, आरम्भ में या बीच में होती, तो हम लोगों को कितना कष्ट उठाना पड़ता!

(१५१)

मोहन का नाम जैसा था, वैसा रूप-रंग नहीं था। बेचारे की २५-३० बरस की उमर हो गई थी, पर विवाह न हो सका था। एक दिन कई दिनों के बाद उसका पुराना साथी सोहन आया, उसने बड़ी प्रसन्नता से हाथ मिला कर कहा—मोहन अच्छे तो हो ?

मोहन—(प्रसन्नता से) हाँ, अच्छा तो हूँ, सिर्फ जरा रंग साँवला है। कहिये, कोई शादी की बातचीत लाये हो ?

सोहन—नहीं तो, मैंने एक स्कूल का ठीका लिया था। उसमें और तो सब काम हो गया, सिर्फ डामल पोतने को रह गया है। आजकल लड़ाई के कारण बाहर से डामल आता नहीं। इस लिये लाचार होकर आप से कुछ अर्ज करने आया हूँ।

मोहन—कहिये!

सोहन—अगर आप तकलीफ़ करके मेरे पानी के हौज़ में केवल एक गोता लगा आते, तो काम चल जाता।

(१५२)

एक बूढ़ा—नहीं वकील साहब यह झूठी बात तो हम नहीं कहेंगे! ऊपर देखता हुआ। इसका हम वहां क्या जवाब देंगे

वकील—पागल कहीं का! तुमने जब तक यह मामला चलेगा, तब तक के लिये मुझे वकील कर लिया है न?

बूढ़ा—हां, और सुकराना देने को भी कहा है।

वकील—बस, तो फिर डरने की क्या बात है? हम यमराज की अदालत में भी जवाबदेही कर लेंगे!

बूढ़ा—(धीरे से) अच्छा वकील साहब, पर आपको साथ ही चलना पड़ेगा।

X (१५३)

बादशाह अकबर एक दिन शिकार खेलने गये। वहाँ आप को बहुत जाड़ा लगा। इस लिये आप जल्दी महल में लौट आये और गरम कपड़े ओढ़कर नौकर से बोले—जा, जाड़े से जाकर कह दे कि अब तेरा ज़ोर नहीं रहा।

नौकर बाहर गया और थोड़ी देर बाद लौट कर बादशाह से बोला—हजूर जाड़ा कहता है कि आप से तो मेरा ज़ोर नहीं रहा पर अब नौकरों चाकरों से खूब समझूंगा।

इस बात से बादशाह बहुत खुश हुए और उन्होंने नौकरों को गरम कपड़े बनवा दिये।

(१५४)

एक चौबे जी अपने लड़के को साथ लेकर बगीचे गये। वहां आपने खूब भांग छानी और थोड़ी सी लड़के को भी पिला

दी। जब भंग का नशा चढ़ा तब आप लड़के को कन्धे पर बिठा कर घर की ओर लौटे। रास्ते में आपने हलवाई से मिठाई लेकर खाई। फिर उससे बोले--सेठ जी क्या कहूँ, मेरा लड़का मेरे साथ था, न जाने वह कहाँ खो गया? यह सुन हलवाई ने कहा—महाराज, लड़का तो कन्धे पर बैठा है। आप किसकी चिन्ता करते हैं? इस पर चौबे जी बोले—जजमान जमना मैया आपका भला करे, खूब बताया। मुझे तो आज भंग का जोर अधिक है। इससे भूल गया।

(१५५)

एक मनुष्य एक मैना लिये अपने रास्ते जा रहा था। एक तुतलाकर बोलने वाले ने उससे पूछा—हाँ भाई, तो तु-तु-तु-म्-म्-हा-री-ची-ची-ड़ि-ड़ि-या प्-प्-प्-ढ़ती भी-भी है? उसने जवाब दिया—तुमसे साफ़!

(१५६)

१—महाशय, आप अपने लड़के को वकील क्यों बनाना चाहते हैं? यदि उसे मास्टर बनाते, तो बेहतर होता।

२—भाई, बात तो यह है; कि उसे बचपन से ही झूठ बोलने की बुरी आदत पड़ गई है, इसलिये मैंने उसे वकील बनाना ही ठीक समझा। कहिये बेजा तो नहीं है?

(१५७)

आशावान्—हुज़ूर! मैं मामूली खान्दान का आदमी नहीं हूँ मेरे बाबा बड़े दानी थे। वे मरते समय अपनी कुल मूल्यवान् सम्पत्ति अनाथालय को दान कर गये थे।

अफ़सर—ऐसा! तब तो वे सचमुच बड़े ही उदार दानी और आदरणीय सज्जन थे। भला, मरते समय उनके पास क्या क्या सम्पत्ति थी?

आशावान्—जी हाँ ! मरते समय उनके पास एक लड़का और दो लड़कियाँ थीं।

(१५८)

हाकिम के सामने खड़े हुए एक नवयुवक ने कहा–हुजूर, मुझे सिपाहियों में भरती कर लीजिये। मैं एक बहादुर फौजी सिपाही का बहादुर बेटा हूँ। उस साल मेरे पिता ने जर्मनी की लड़ाई में एक जर्मन कप्तान का पैर काट डाला था।

हाकिम ने घूर कर कहा—पैर ही काट कर क्यों छोड़ दिया ? सिर क्यों नहीं काटा ? नवयुवक घबराकर बोला—हुजूर सिर तो पहले से ही कटा हुआ था।

(१५६)

एक किसान ने किसी शिकारी पर मुक़दमा चलाया कि इसने मेरे खेत में कबूतर मारे हैं। शिकारी का वकील किसान को भुलावे में डालना चाहता था। उसने किसान से पूछा—क्या तुम क़सम खाकर यह कह सकते हो कि कबूतर इसी ने मारे हैं ?

किसान—नहीं, मुझे सिर्फ़ शक है। पहली बात यह है कि मैंने इसके हाथ में बन्दूक देखी। दूसरी यह कि मैंने बन्दूक़ की आवाज़ अपने कानों से सुनी। तीसरी यह, कि उससे कुछ उड़ते हुये कबूतर नीचे गिरे। चौथी यह कि तीन कबूतर शिकारी की जेब में पाए गये। अब आपकी बातें सुनने से मैं समझता हूँ कि शायद कबूतर खुद शिकारी की जेब में जा छिपे होंगे।

(१६०)

एक कंजूस बाज़ार से पंखा ख़रीद कर चला आ रहा था। रास्ते में उसकी भेट एक मित्र से हो गई। उसने कंजूस महाशय से पूछा—क्या पंखा ख़रीद कर ला रहे हो? भला इसे कितने दिन तक चलाओगे? इसका उपयोग किस तरह करोगे?

कंजूस—इस पंखे में २५ पंखिया है। इस लिये यह और नहीं तो २५ बरस तो चलेगा ही। मैं फ़ुजूलखर्ची के समान पूरा पंखा कभी नहीं खोलता। बस, एक पंखी खोलकर हवा कर लिया करता हूँ। जो एक बरस तक चलती है।

मित्र—(अचरज से) इतनी फ़्जूलखर्ची! हमारे यहाँ तो एक पंखा, दो-तीन पीढ़ी तक मजे से चल जाता है!

कंजूस—बेचैन होकर कैसे?

मित्र—मैं पूरा पंखा खोलता हूँ, लेकिन लापरवाही से उसे हिला कर तोड़ नहीं डालता! पंखे को एक लकड़ी में बाँधकर दीवाल में खोंस देता हूँ, जब जरूरत होती है, तब जाकर उसके सामने कूद कूद कर हवा ले लिया करता हूँ।

(१६१)

एक धनवान् महाशय नम्बर एक के भुलक्कड़ थे। एक दिन की बात है, आप रेल में बैठ कर कहीं जा रहे थे। रास्ते में टिकट चेकर ने, जो उन्हें अच्छी तरह जानता था, उनसे टिकट दिखाने को कहा। आप बोले—ढूँढ़ता हूँ। थोड़ी देर में, जब टिकिट नहीं मिला, टिकिट-चेकर यह कहता हुआ दूसरे डिब्बे में चला गया कि लौटती बार देख लूँगा, तब तक ढूँढ रखिये।

थोड़ी देर बाद टिकिट चेकर लौटकर आया। उस समय तक धनी महाशय से टिकिट नहीं मिला था। तब टिकिट-चेकर ने उनसे कहा--महाशय, नहीं मिलता तो रहने दीजिये, कोई हर्ज नहीं। तब आप बोले—वाह! हर्ज क्यों नहीं, मुझे उसमें यह देखना है कि, मैं जा कहां रहा हूं!

(१६२)

एक दिन इन्स्पेक्टर साहब एक देहाती स्कूल का मुलाहिजा करने गये। लड़कों से कई प्रश्न करने के बाद आप बोले-अच्छा, अब तुम लोग मुझसे कोई, ऐसा प्रश्न करो कि जिसका मैं जवाब न दे सकूं। लड़कों ने कई प्रश्न किये, पर इस्पेक्टर साहब ने सब के उत्तर बराबर दे दिये। अन्त में एक छोटे लड़के की बारी आई। उसने यह प्रश्न किया--मान लीजिये, कि आप एक कीचड़ के गड्ढे में पड़े हुये हैं, सिर्फ आपका सिर बाहर है। अब अगर मैं आपके सिर में मारने के लिये दूर से एक ईंट फेकूँ, तो आप उसको देखकर कीचड़ में गोता लगाएँगे या नहीं?

(१६३)

एक सम्पादक जी ने अपने पत्र में शराब की बुराई पर एक लेख लिखा और शराब पीने वालों को खूब फटकारा। भाग्य से वह पत्र एक शराबखाने में पहुंच गया। उसे पढ़कर शराबी लोग बहुत बिगड़े। एक शराबी को तो यहां तक गुस्सा आया, कि वह डण्डा लेकर सम्पादक जी को पीटने चला। उसने सम्पादक जी के दफ़्तर में जाकर उनसे पूछा--सम्पादक जी कहां हैं?

दुबले पतले सम्पादक जी बिगड़ैले शराबी को देखते ही

सिटपिटा गये। पर धीरज धरकर बोले-आप बैठिये, मैं अभी उन्हें बुलाये लाता हूं। इसके बाद सम्पादक जी झपटकर बाहर निकल आये। बाहर आते ही उन्होंने देखा कि एक और शराबी लट्ठ बांधे चला आ रहा है। उसने आते ही सम्पादक जी से पूछा—सम्पादक जी कहां हैं ? सम्पादक जी ने उत्तर दिया-चले जाइये, दफ़्तर में बैठे हुये हैं।

यह सुनते ही वह शराबी झपट कर दफ्तर में पहुंचा। उसने पहले शराबी को सम्पादक समझ उस पर ज़ोर-शोर से हमला किया। और पहले शराबी ने भी इस शराबी को सम्पादक समझ इस पर हमला कर दिया। फिर क्या था, लगे दोनों गुत्थमगुत्था होने। इतने में सम्पादक जी पुलिस को लेकर आ पहुंचे। शराबी गिरफ्तार कर लिये गये। होश आने पर वे आपस में कहने लगे—सच है शराब बुरी चीज़ है, तभी तो हम मित्र मित्र आपस में लड़ पड़े!

(१६४)

एक दावत में एक रानी साहबा के हार के मूल्यवान मोतियों की बड़ी बड़ाई हुई। रानी साहबा ने लोगों के कहने से वह हार मेज़ पर रख दिया। मेज़ जगमगा उठी। इसके बाद सब लोग खाने-पोने में लग गये। थोड़ी देर में रानी साहबा ने देखा, कि हार नदारद है!

सब लोगों में हलचल मच गई। घर के मालिक ने सब से कहा-भाइयों, यह बड़े अफ़सोस और शर्म की बात है, कि इस दावत में कोई चोर भी आ घुसा है। मैं चाहता हूं कि वह हार चुपचाप मेज़ पर रख दिया जाय, जिससे किसी को व्यर्थ ही लज्जित न होना पड़े। आप लोगों में से जिसके पास

वह हार हो, कृपा कर उसे इस चांदी के कटोरे में चुपचाप रख दीजिये। रोशनी दो मिनट तक गुल रहेगी यह कह कर उसने रोशनी बुझा दी।

दो मिनट तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। इसके बाद जब रोशनी की गई, तब सबने बड़े अचरज से देखा, कि वह चांदी वाला कटोरा भी गायब है।

(१६५)

दो मित्र रेल गाड़ी से यात्रा कर रहे थे। कुछ दूर जाकर एक मित्र सो गया। उसे सोया देख दूसरे मित्र ने बड़ी सफ़ाई से उसकी जेब से टिकिट निकाल कर अपनी जेब में रख लिया। जब गाड़ी मुग़लसराय के पास पहुंची, तब सोए हुये मित्र ने जाग कर कहा—यहां टिकिट दिखाना होगा। इस पर दूसरे मित्र ने कहा—हां! तब उसने टिकिट निकालने के लिये जेब में हाथ डाला। पर वहां टिकिट तो था ही नहीं, बेचारा डरकर बोला—बड़ी मुश्किल हुई, टिकिट कहीं खो गया। इस पर दूसरे मित्र ने कहा—खो गया, तो कुछ हरज नहीं! तुम बेंच के नीचे छिप जाओ। मैं दरी बिछाकर और पैर लटका कर तुम्हें छिपा लूंगा। टिकिट चैकर तुम्हें देख ही न सकेगा।

इतने में गाड़ी स्टेशन के पास आ पहुंची। बेचारा झटपट बेंच के नीचे जा छिपा। जब टिकिट चैकर उस डिब्बे में टिकिट देखने आया, तब उस दिल्लगीबाज़ मित्र ने उसके हाथ में दो टिकिट दे दिये। टिकिट चैकर ने उससे कहा देखता हूं, आप अकेले हैं, पर टिकिट दो दे रहे हैं। दूसरा आदमी कहां है?

उसने जवाब दिया—महाशय क्या कहूं! वे मेरे मित्र हैं।

इसी बेंच के नीचे सो रहे हैं। यदि वे इस प्रकार सो न जायँ, तो उनसे रेल-यात्रा हो ही नहीं सकती। बेचारों को बेंच पर बैठते ही सिर फटने लगता है। और तो क्या साहब उन्हें दस्त लगने-लगते हैं, कय होने लगती है! बेचारों को रेल यात्रा क्या—खासी मुसीबत है।

टिकिट चैकर ओफ् कहता हुआ दूसरे डिब्बे में चला गया।

(१६६)

किसी मासिक पत्र के प्रकाशक ने एक कहानी-लेखक को प्रत्येक कहानी के लिये तीस रुपया देने का वचन दिया। वह लेखक उस पत्र में छपने के लिये कहानियां भेजने लगा। उसकी कहानी होती थी छोटी, पर मज़ेदार होती थी। तब प्रकाशक महाशय ने उससे कहा-आगे से आपको प्रति कहानी तीस रुपए न देकर प्रति कालम ५) दिए जावेंगे। लेखक ने प्रकाशक का मतलब समझ कर उन्हें छपाने के लिये नीचे लिखे ढङ्ग से शीघ्रही कालम का कालम भरने लायक वृत्तान्त लिखना शुरू कर दिया—

तुमने उसकी बात सुनी थी?

हां!

सत्य?

सत्य!

कसम खाओ!

कसम खाता हूँ?

अच्छा कहां?

वट-वृक्ष के नीचे?

कब?

आज।
किस समय ?
सन्ध्या को।
तब तो वह जीवित है ?
हाँ।
ठीक है।

इससे प्रकाशक महाशय ने खीझ कर लेखक को लिखा—देखिए अब से आप को कालम के अनुसार नहीं, अक्षरों के हिसाब से रुपये मिला करेंगे। एक हज़ार अक्षरों पर आपको पाँच रुपये के हिसाब से लिखाई दी जावेगी। प्रकाशक महाशय की दूसरी चालाकी की लेखक ने तनिक भी चिन्ता न कर कहानी लिखना शुरू कर दिया। अब उसने कहानी में एक हकलाने वाले आदमी को स्थान दिया। प्रकाशक जी के पास जो कहानी पहुंची, उसमें इस तरह की पंक्तियाँ बहुत ज्यादा लिखी गई थीं:—

आ...आ...आ...आ...आप ब...ब...ब...बड़ी भू...भू...भू...भू...भूल स...स...स...स...सम सम समझ र...र...र...र...रहे हैं! ह...ह.. ह...ह...हम क...क...क...क...कम...भी...भी...इ...इ...इ...इ ..इस प्र...प्र...प्र...प्र...प्रका...कार का क...का...का...का...काम न...न क...क...क...क...कर स...स...स...स...सकते हैं!

प्रकाशक महाशय माथे पर हाथ रखकर बैठ रहे।

(१६७)

मास्टर साहब ने नाराज़ होकर कहा—महेश क्या बोल रहे हो ?

महेश ने नम्रता से उत्तर दिया—हाँ मास्टर साहब—

मास्टर साहब गरजकर बोले—क्या बोलते हो ?

महेश ने इसका कोई उत्तर न दिया। इससे मास्टर साहब और भी बिगड़कर बोले—शीघ्र उत्तर दो, क्या बोलते थे ?

महेश ने सिर खुजलाते हुए उत्तर दिया—इधर आओ। बताता हूँ।

मास्टर साहब झोंके से उठ खड़े हुए, मारे क्रोध के उनका सारा शरीर काँपने लगा। क्लास के सब लड़के डर गये। मास्टर साहब ने गरजकर उससे कहा—अभी क्लास से बाहर निकल जाओ।

महेश ने कहा—क्यों मास्टर साहब ?

मास्टर साहब मेज़ पर हाथ पटककर बोले—इतनी शोखी ! मुझसे कहते हो इधर आओ, बताता हूँ !

महेश ने बड़ी नम्रता से कहा—गुरुजी, आपने पूछा, कि मैं क्या बोलता था, मैंने वही आपको बतलाया। बिहारी ने मुझसे पूछा—यह गधे का चित्र कैसे बनाया ? मैंने कहा—इधर आओ, बताता हूँ।

यह सुन सब लड़के मुस्कुरा उठे। मास्टर साहब नीचा सर कर अपनी कुर्सी पर जा बैठे।

(१६८)

चौबे जी—जजमान आशीर्वाद, कितको पधारिबो भयो ?

यात्री—यहीं जमुना जी के स्नान करने चला आया और अपनी स्त्री को भी साथ लाता था, परन्तु यहाँ किसी से पहचान नहीं थी, इसलिये नहीं लाया।

चौबे—वाह ! जजमान श्री जमुना मैया की जै। परचो परिचय) में कहा काम ! लो, मैं तुम्हारे पण्डा अरु मोरे तुम

जजमान। अब तो घर पै चलिवोऊ चहिये। कोउ हू परकार तें आपको कसट नाहि होउन दे हाँ।

यात्री—तो चलिये। मैं अभी यहाँ दो तीन दिन रहूंगा।

चौबे—हैं हैं जजमान! आपु महिनन रहो, जेई मोरी अभलाखा है। यहि तो आपु ही को घरु है।

यात्री—मुझे दस-बारह दुशाले ला दीजिये और एक सोने का लोटा। दाम मुँह मांगे दूंगा। दान करूंगा।

चौबे—(बहुत प्रसन्न होकर) सबु जे वस्तुए इतहिं मिलि जैहैं। हाँ हाँ श्रो जमुना मैया की जै, दामनु को कहा करनो सबु आपु ही को है।

यात्री ने चौबे जी के यहाँ डटकर भोजन किए और दुशाले तथा लोटे भी अपने पास रख लिये।

यात्री—चौबे जी, इनके दाम बतलाओ।

चौबे—जजमान्! श्री जमुना मैया की जै! अबै इनको कहा करोगे?

चौबे जी जानते ही थे, कि अभी तो ये कई दिन रहेंगे, इकट्ठा लूट लूंगा। ज्योंही चौबे जी सटके त्योंही यात्री सब माल टाल लेकर रफूचक्कर हो गया। जब चौबे जी लौट कर आये तो चौबाइन को साथ लेकर लगे रोने-पीटने। परन्तु नतीजा क्या? जैसा आया, वैसा गया।

(१६६)

एक हज़रत ने यार-दोस्तों के कहने में आकर अपनी मूँछे मुड़वा डालीं। घर आये, तो, बीबी ने कुछ ताने के तौर पर, लेकिन दबी ज़बान से कहा—सुनो जी! जब बाज़ार जाना, तो मेरे लिये एक आइना लेते आना लेकिन हो ज़रा अच्छा!

(७०)

हज़रत जब बाज़ार गये, तो पहले ही एक बिसातखाने की दुकान में घुस गये और बिसाती से कहा—मियाँ, एक अच्छा शीशा दिखलाओ।

बिसाती—लीजिये सरकार!

आपने ज्योंही शीशा हाथ में लेकर सूरत देखी, त्योंही बहुत बिगड़े। कहने लगे कोई दूसरा शीशा दिखलाओ जी! यह कैसा वाहियात दिखाया? जब इसमें मुझको अपनी शक्ल औरत की सी दिखाई देती है, तो क्या ताज्जुब कि मेरी बीबी का इसमें अपनी शक्ल मर्द की सी दिखाई दे।

(१७०)

माता ने कहा—लल्ला! एक अमरूद तुम ले लो और एक मुन्नी को जाकर दे दो! वह दरवाजे पर खेल रही होगी।

लल्ला ने अमरूद ले लिये। वह दौड़ता हुआ मुन्नी के पास गया और बोला—लो मुन्नी! अम्माँ ने तुम्हें यह अमरूद दिया है!

मुन्नी ने अमरूद ले लिया, पर वह खेलने में ऐसी लग गई कि उसे खाने का ध्यान ही न रहा!

जब लल्ला ने अपना अमरूद खा डाला, तो मुन्नी का अमरूद देखकर उसके मुंह में पानी भर आया। उसने मुन्नी की नज़र बचाकर उसका अमरूद खाना भी शुरू कर दिया। मुन्नी ने ज्योंही देखा, त्योंही दौड़ी हुई अम्माँ के पास पहुँची और लल्ला की शिकायत की।

लल्ला बोला—देखो मुन्नी! अभी उस दिन तुम्हारा अमरूद बन्दर छीन ले गया था, तब तुम सिर्फ रोकर चुप हो रही थीं। आज मैंने खा डाला। मुझे भी थोड़ी देर के लिये बन्दर समझ लो और रोकर चुप हो जाओ।

(१७१)

कल्लू—तुमने मुझे घूँसा क्यों मारा ?

नत्थू—और तुमने मुझे चाँटा क्यों मारा ?

कल्लू—मैंने तुम्हें चाँटा नहीं मारा। एक मच्छड़ तुम्हारे गाल पर बैठा था, मैंने उसे ही उड़ाने के लिये हाथ हिलाया था, भूल से लग गया।

नत्थू—और मैंने तुम्हारी पीठ पर घूँसा थोड़े ही मारा है! तुम्हारे मच्छड़ उडाने से प्रसन्न होकर तुमको शाबाशी देता था, परन्तु दुःख है कि हाथ ज़रा ज़ोर से पड़ गया।

(१७२)

राजकुमार—वाह! कैसे अच्छे खरबूजे हैं। कोई इधर उधर है भी नहीं लाओ दो एक खा लूं! (खरबूजा तोड़कर खाता हुआ) कैसा मज़ेदार ख़रबूजा है! कैसा मीठा है! अहा! हा!

खेत वाला—(पीछे से आकर दो चाँटे लगाता हुआ) और यह चाँटे ?

(१७३)

मोहन—दुनिया में तुम्ही बेवकूफ़ हो, कि दूसरा भी है ?

सोहन—(ज़रा सोचकर) हाँ है!

मोहन—कहाँ है ?

सोहन—यहीं!

मोहन—कौन ?

सोहन—जो बेवकूफ़ों जैसी बात कर रहा है।

(१७४)

एक बाबू साहब सोते समय स्वप्न देख रहे थे, कि एक महफिल में नाच हो रहा है, और मैं बैठा देख रहा हूँ।

इतने में नौकर आया और हाथ जोड़कर उनसे बोला—बाबू जी एक साहब आपसे मिलने आए हैं। बाहर खड़े हैं।

बाबू जी—(जागकर उसी धुन में) जाकर कह दे, कि बाबूजी अभी नाच देख रहे हैं, फिर मिलेंगे।

(१७५)

मास्टर साहब—आप कौन हैं ? मदरसे में क्यों आये हैं।

आनेवाला—मैं एक बड़ा कवि हूँ।

मास्टर— कवि हो, तो लड़ाई पर जाओ।

आ०—वहाँ तो बलवान् जाते हैं।

मा०—क्या कहा, क्या तुम बलवा मचाना चाहते हो ?

आ०—अजी नहीं, मैं आप को प्रसन्न करना चाहता हूँ।

मा०—हाँ हां ! तुम बलवा मचाकर मुझे सन्न करना चाहते हो, यही न ?

आ०—अजी अपने सुकाव्य से !

मा०—हैं सुकाय से। यह क्या बला है ? क्या मुझे सुखाना चाहते हो ? लड़को ! उठो इसे मार भगावो, न मालूम यह हम लोगों पर क्या आफत लावेगा !

बेचारा कवि अपना मुँह लिये आश्चर्य करता हुआ भाग गया !

(सम्पादक—शिक्षा विभाग के मालिको ! दौड़ो दौड़ो ! मास्टर साहब की तारीफ के पुल बांध दो, और तरक्की देने के लिये आपके सामने थैली उँडेल दो।)

(१७६)

एक बार की बात है, बहुत से साहित्य-सेवी मित्र जमे बैठे थे। बात चलते चलते एक महाशय बोले, अच्छा भाई, यह तो बताओ, 'किरानी' कौन लिङ्ग है ?

एक महाशय ने जवाब दिया—'स्त्रीलिङ्ग !'

प्रश्नकर्ता—तब इसका पुल्लिङ्ग क्या होगा ?

वही महाशय—'किराजा !'

यह सुन एक पत्र सम्पादक बोले—नहीं साहब ! यह बात नहीं है ! 'किरानी, की खूबियां आप लोगों को क्या मालूम ? 'किरानी' का लिङ्ग ज्ञान सिवाय पत्र सम्पादकों के और किसी को नहीं है ! इस विषय में मैं जो कहता हूँ, वह सोलहों आने सही है सुनिये, 'किरानी' तीनों लिङ्ग है । जब यह अपने मातहतों के पास जाता है, तब पुल्लिङ्ग हो जाता है । जब अपने अफ़सर के सामने जाता है, तब स्त्रीलिङ्ग हो जाता है । और जब अपनी जोरू के सामने जाता है, तब नपुंसक लिङ्ग हो जाता है ।

(१७७)

एक दिन शर्मा जी सिर झुकाये, बांकीपुर से बड़ी तेज़ी से पांव बढ़ाते जा रहे थे । पूछा—शर्मा जी यह क्या मामला है ? इस प्रकार सिर नवाकर कहां तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?

शर्मा जी ने बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—पटना सिटी जा रहा हूँ । भाई, मालूम नहीं, कब कैसा ख्याल रहता है । जिनके घर जा रहा हूँ, उनका दरवाजा बहुत छोटा है । यदि उसमें उसका ख़याल न रहा, तब तो खोपड़ी गञ्जी हुई न ? इसी से पहले से ही सावधानता-पूर्वक जा रहा हूँ !

(१७८)

हमारे एक मित्र के यहाँ जलसा था । जलसे में खाने-पीने का भी प्रबन्ध था । मित्र थे नई रोशनी के बाबू, उनके यहां

इतने में नौकर आया और हाथ जोड़कर उनसे बोला—बाबू जी एक साहब आपसे मिलने आए हैं। बाहर खड़े हैं।

बाबू जी—(जागकर उसी धुन में) जाकर कह दे, कि बाबूजी अभी नाच देख रहे हैं, फिर मिलेंगे।

(१७५)

मास्टर साहब—आप कौन हैं? मदरसे में क्यों आये हैं।

आनेवाला—मैं एक बड़ा कवि हूँ।

मास्टर—कवि हो, तो लड़ाई पर जाओ।

आ०—वहाँ तो बलवान् जाते हैं।

मा०—क्या कहा, क्या तुम बलवा मचाना चाहते हो?

आ०—अजी नहीं, मैं आप को प्रसन्न करना चाहता हूँ।

मा०—हाँ हां! तुम बलवा मचाकर मुझे सन्न करना चाहते हो, यही न?

आ०—अजी अपने सुकाव्य से।

मा०—हैं सुकाव से। यह क्या बला है? क्या मुझे सुखाना चाहते हो? लड़को! उठो इसे मार भगावो, न मालूम यह हम लोगों पर क्या आफ़त लावेगा!

बेचारा कवि अपना मुँह लिये आश्चर्य करता हुआ भाग गया!

(सम्पादक—शिक्षा विभाग के मालिको! दौड़ो दौड़ो! मास्टर साहब की तारीफ़ के पुल बांध दो, और तरक्की देने के लिये आपके सामने थैली उँडेल दो।)

(१७६)

एक बार की बात है, बहुत से साहित्य-सेवी मित्र जमे बैठे थे। बात चलते चलते एक महाशय बोले, अच्छा भाई, यह तो बताओ, 'किरानी' कौन लिङ्ग है?

एक महाशय ने जवाब दिया—'स्त्रीलिङ्ग !'

प्रश्नकर्ता—तब इसका पुल्लिङ्ग क्या होगा ?

वही महाशय—'किराजा !'

यह सुन एक पत्र सम्पादक बोले—नहीं साहब ! यह बात नहीं है ! 'किरानी, की खूबियां आप लोगों को क्या मालूम ? 'किरानी' का लिङ्ग ज्ञान सिवाय पत्र सम्पादकों के और किसी को नहीं है ! इस विषय में मैं जो कहता हूँ, वह सोलहों आने सही है सुनिये, 'किरानी' तीनों लिङ्ग है। जब यह अपने मातहतों के पास जाता है, तब पुल्लिङ्ग हो जाता है। जब अपने अफ़सर के सामने जाता है, तब स्त्रीलिङ्ग हो जाता है। और जब अपनी जोरू के सामने जाता है, तब नपुंसक लिङ्ग हो जाता है।

(१७७)

एक दिन शर्मा जी सिर झुकाये, बांकीपुर से बड़ी तेज़ी से पांव बढ़ाते जा रहे थे। पूछा—शर्मा जी यह क्या मामला है ? इस प्रकार सिर नवाकर कहां तशरीफ़ ले जा रहे हैं ?

शर्मा जी ने बड़ी गम्भीरता से जवाब दिया—पटना सिटी जा रहा हूँ। भाई, मालूम नहीं, कब कैसा ख्याल रहता है। जिनके घर जा रहा हूँ, उनका दरवाजा बहुत छोटा है। यदि उसमें उसका ख़याल न रहा, तब तो खोपड़ी गञ्जी हुई न ? इसी से पहले से ही सावधानता-पूर्वक जा रहा हूँ !

(१७८)

हमारे एक मित्र के यहाँ जलसा था। जलसे में खाने-पीने का भी प्रबन्ध था। मित्र थे नई रोशनी के बाबू, उनके यहां

निमन्त्रित भी वैसे ही लोग हुये थे। उनमें हम दो मनुष्य ब्राह्मण थे, जिनका पूडी पर विशेष प्रेम रहता है। सबकी पत्तलों में दो-दो छोटी-छोटी पुड़ियां परोसी गई, इसके अलावा तरकारी वगैरह। पुड़ियां देखते ही हम तो भन्ना उठे-सिर से पैर तक आग लग गई। रात-दिन दूसरों के यहां खाते-खाते लज्जा ने पिण्ड छोड़ ही दिया था, बस अब क्या, मैंने खाना शुरू किया। मेरा खाना बाबू-दल से नहीं देखा गया। उनमें से एक कह ही उठा-क्यों बाबा जी पेट नहीं भरता है, तो मुँह नहीं दुखता? हम नाराज़ तो पहले से ही थे, ऊपर से यह तानेज़नी! बर्दाश्त हो तो कैसे? हमने भी कह दिया-देखा नहीं जाता, तो आंख भी नहीं फूटती?

(१७९)

मेडिकल कालेज के खैराती अस्पताल में ठण्ढ के समय रोगियों को एक एक कम्बल दिया जाता है। एक समय की बात है, कि एक देहाती बूचड़ कुछ दिन से अपनी दवा कराने के लिये अस्पताल में रहता था। उसे भी कम्बल दिया गया था। रात को सोने के समय वह अपने सिर की ओर कुछ कम्बल बिछाकर और शेष ओढ़कर सो रहा। इस कारण उसके पैर भली भांति नहीं ढँक सके। रातको जब पैरों में ज्यादा सर्दी मालूम पड़ने लगी, तब उसने कहा साले का कम्बल सिर की तरफ ही बड़ा है।

(१८०)

मास्टर साहब—क्योंरे! तूने मुँह क्यों बनाया?

विद्यार्थी—नहीं गुरुजी, आपको देखकर मुँह नहीं बनाया। मैं तो योंही मुँह बना रहा था, कि सामने से आप आ गये।

(१८१)

ग्राहक—भाई सवार, इस घोड़े में मुझे एकही ऐब दिख पड़ता है। यह सवार अपना सिर नीचा किये रहता है; कभी ऊपर नहीं उठाता।

सवार—अजी साहब, आप भूलते हैं यही तो इसकी विशेषता है। यह अभिमानी जानवर है। अपने अभिमान में रहता है। जब आप इसे खरीद लीजियेगा, तब देखियेगा कैसा सिर उठाता है।

(१८२)

फ्राँस देश के प्रसिद्ध बादशाह नैपोलियन बोनापार्ट लोगों को अपनी फौज में भरती करते समय, उनसे क्रम से तीन सवाल किया करते थे—(१) तुम्हारी उमर कितने बरस की है? (२) तुम मेरे राज्य में कितने दिन से रहते हो? और (३) तुम केवल तनख्वाह लोगे, या तनख्वाह और भोजन दोनों?

एक विदेशी बहुत दिनों से फ्रान्स देश में भीख माँगकर अपना गुज़ारा करता था। एक भले आदमी उस पर दयालु होकर बोले—तुम एक खास रंगरूट हो, फिर भीख माँगकर क्यों नाहक दुःख सहते हो? बादशाह की फौज में भरती हो जाओ।

भिखारी ने उसे जवाब दिया—मैं फ्रेंच भाषा तो जानता ही नहीं, बादशाह से बात कैसे करूंगा।

भले आदमी बोले—तुम इसकी चिन्ता न करो। बादशाह तुम से तीन सवाल करेंगे, उनका जवाब तुम इस तरह देना-पहले वे तुम से जो पूछें, उसके जवाब में ३० बरस कहना

उसके बाद वे जो पूछें, उसके जवाब में १० बरस कहना, और अन्त में जो पूछें, उसके जवाब में कहना दोनों।

भिखारी राजी हो गया।

दूसरे दिन वह बादशाह के सामने पहुंचा। परन्तु उसकी बदकिस्मती से बादशाह ने उससे पहले ही पूछा—तुम मेरे राज्य में कितने बरस से रहते हो?

भिखारी फ्रेंच भाषा तो जानता ही न था, चट से बोला—३० बरस से?

बादशाह ने फिर पूछा—तुम्हारी उमर क्या है?

भिखारी—१० बरस!

बादशाह खीझ कर बोले—नहीं जानता, मैं ही पागल हूँ या तुम्हीं पागल हो!

भिखारी को जैसा सिखाया गया था, वैसाही, बड़ी नम्रता से बोला—दोनों।

इस पर नैपोलियन को हँसी आ गई।

नैपोलियन ने भिखारी की जाँच-पड़ताल की तो उन्हें उसका सब हाल मालूम हो गया। तब उन्होंने उसे अपनी फौज में भरती कर लिया।

(१८३)

शर्मा जी महाराज बड़े बुलन्द पण्डित थे। उनका पक्का विश्वास था, कि जब तक मैं हूँ, घर में कोई अनर्थ हो ही नहीं सकता। एक दिन आपने बाहर से आकर देखा, कि परिवार के सभी आदमी रो रहे हैं। पण्डित जी बड़े अचरज में पड़े। फिर रोने का कारण पूछा, तो मालूम हुआ, कि उनका दामाद मर गया है, कन्या विधवा हो गई। पण्डित जी

उदास होकर बोले—ओफ ! यह क्या ? मैं जीता हो हूँ और मेरी कन्या विधवा हो गई !

(१८४)

जज—(कैदी से गम्भीर भाव से) मुझे विश्वास है, कि तुम कचहरी के कटघरे में बार बार आने से लज्जित होते होगे।

कैदी—(शान्तभाव से) हुजूर आपकी अपेक्षा मैं बहुत कम (कचहरी में) आता हूँ।

(१८५)

एक गरीब बालक—(एक स्त्री से) यदि आप कृपा कर मुझे छः आने पैसे देतीं तो मैं अपने माँ-बाप के पास पहुंच जाता।

स्त्री—बच्चे, मैं तुम्हें छः आने दूंगी, पर यह तो बताओ, तुम्हारे माँ-बाप हैं कहाँ ?

बालक—वे तस्वीर में हैं !

(१८६)

मालिक—क्या तुम्हारे पहले मालिक ने तुम्हारी नौकरी पर तुम्हें कोई सार्टीफिकेट दिया है।

उम्मीदवार—दिया तो है पर वह मेरे किसी काम का नहीं।

मालिक—क्यों ? उन्होंने उसमें ऐसी कौन सी बात लिख दी है ?

उमीदवार—उन्होंने लिखा है, कि यह आदमी मेरी कम्पनी के उन चुने हुये अच्छे लोगों में से एक है, जिन्हें मैंने बहुधा निकाल निकाल कर बाहर कर दिया है।

खानसामा ने झुककर सलाम किया और कहा—जनाब ! या मेज़ तो सिर्फ आप लोगों को ललचाने के लिये ही है।

(१६२)

किसी दूकानदार ने एक अखबार में एक क्लर्क की आवश्यकता का विज्ञापन छपवाया। दूसरे दिन सुबह ही उसके दरवाजे पर सैकड़ों उम्मेदवारों की भीड़ लग गई। दूकानदार ने अपने एक दरवान से कह दिया कि मैंने एक आदमी को नौकर रख लिया है। अब किसी को अन्दर न आने देना।

थोड़ी देर में उस दूकानदार का बाप आया और अन्दर जाने लगा। तब दरवान ने उसे रोका। बाप ने उससे पूछा मुझे क्यों रोकता है ?

दरवान—अन्दर जाने का हुक्म नहीं है।

बाप—लेकिन मैं तो तुम्हारे मालिक का बाप हूँ न ?

दरवान मुसकुराकर बोला—जनाब मेरे साथ धोखेबाजी न चलेगी ! अगर सब ऐसाही कहने लगें, तो मैं किस किस को अन्दर जाने दूंगा ?

(१६३)

एक जेन्टिलमैन ने अपने नौकर को दो इकन्नियाँ दीं और उससे कहा—जाओ, बाजार से एक इकन्नी के अमरूद और एक इकन्नी के सन्तरे ले आओ।

नौकर ने सिर झुकाकर इकन्नियाँ ले लीं और बाजार की राहली। घण्टे भर बाद हजरत खाली हाथ हिलाते हुए घर लौटे, जेन्टिलमैन साहब ने चश्मे में छिपी हुई दोनों आँखें ऊपर उठाईं। नौकर ने ताड़ते हुए तपाक से जवाब दिया

हुजूर, क्या करूँ, अक़्ल पर बहुत ज़ोर डाला, पर यही याद नहीं आया कि आप ने कौन सी इकन्नी अमरूदों के लिये और कौन सी सन्तरों के लिये दी थीं।

(१६४)

पत्नी—क्यों जी ! तुम आज बच्चे पर इतने गुस्सा क्यों हो रहे हो ?

पति—यह मेरे प्रश्न का उत्तर क्यों नहीं देता ? मैंने पूछा, तुम किसके बच्चे हो ? कहने लगा अम्माँ के।

पत्नी—फिर इसमें झूठ ही क्या है ? क्या यह मेरा बच्चा नहीं है ?

पति—मगर वह मेरा नाम क्यों नहीं लेता ? क्या मैं उसका बाप नहीं हूँ ?

(१६५)

मकान-मालिक—जनाब, मकान तो किराये के लिये ख़ाली है, मगर आपका शरीफ़ होना उसके लिये बहुत ज़रूरी है।

किरायेदार—यह तो आपको उसी रोज़ मालूम हो जायगा, जब आप किराये माँगने के लिये आवेंगे।

(१६६)

यात्री—(दूसरे यात्री से) भाई, देखो तुम्हारी बड़ी मिहरबानी होगी, यदि तुम मेरा ट्रंक अपने टिकिट के साथ बाहर निकाल दो ?

दूसरा यात्री—(मुसकुराहट के साथ) मगर जनाब, आप कह किससे रहे हैं ? यहाँ तो टिकिट ही नदारद है।

(१६७)

मजिस्ट्रेट—(अपराधी से) तुम्हारा नाम क्या है ? और क्या काम करते हो ?

अपराधी—खूब ! आप तो अभी से भूल गये ! छः मास हुए आपने ही तो अपनी क़लम से बन्दे को छः मास की सख़्त क़ैद की सज़ा दी थी ।

(१६८)

भक्त—काहे हो सूरदास, दूध खेहो ?

सूरदास—दूध कस होत ?

भक्त—सुपेद सुपेद !

सूरदास—सुपेद कस होत ?

भक्त—बगुला अस !

सूरदास—बगुला कस होत ?

भक्त—(अपना हाथ टेढ़ा कर अन्धे के सामने करता और कहता है) अस !

सूरदास—(भक्त के हाथ को टटोलकर) नहीं खाब ! पेट फाट जाई ।

(१६६)

किसी समय नौ कथिक (नाचने गाने वाले) किसी गाँव को जा रहे थे ! रास्ते में एक नाले में तीन चोर मिले । उन्होंने सब कथिकों का माल छीन लिया और उनसे कहा—हमको गाना सुनाओ । ज़बरदस्त का ठेंगा सिर पर, बेचारे कथिकों को गाना पड़ा । उनमें से एक गाने लगा—नौआ नाला ज़ुलम-जोर भई नौआ नाला ज़ुलम जोर । दूसरे ने गाया—नौ कथिक नचावें तीन चोर, नौ कथिक नचावें तीन चोर । तब तीसरे ने गाया—जहँ तबला बाजे धीम धीम, जहँ तबला बाजे धीम धीम । चौथे ने सुनाया—एक एक पर तीन तीन भाई एक एक पर तीन तीन । यह सुनते ही तीन तीन कथिकों ने एक एक चोर को

घर दबाया और अपना सामान ले, उन्हें पुलिस के हवाले कर दिया।

(२००)

एक महाशय तैरना सीखने के लिये तालाब में उतरे। परन्तु भाग्य की बात, आपका पैर रिपट पड़ा और दो-तीन गोता खा गये। बस, बाहर निकल कर बोले—कसम भगवान् की, जब तक तैरना अच्छी तरह न सीख लूंगा, तब तक तालाब में पैर भी न रखूंगा।

(२०१)

एक नटखट लड़का किसी के यहाँ तीन-चार महीने से अधिक नौकरी नहीं करता था। अन्त में उसे एक चीनी-मिट्टी के कारखाने में नौकरी मिल गई। एक दिन उससे चीनी का एक बहुत ही क़ीमती बर्तन टूट गया। मालिक ने उस लड़के से कहा—जब तक बर्तन की क़ीमत पूरी न चुक जायगी, तब तक तुम्हारी आधी तनख़ाह काट ली जाया करेगी।

लड़के ने पूछा—मालिक, बर्तन की क़ीमत कितनी है?

मालिक—कोई ढाई सौ रुपये।

यह सुनते ही लड़का मारे खुशी के उछल पड़ा। तब मालिक ने पूछा—यह क्या बात है?

लड़का—बस, अब क्या है! बहुत दिनों तक के लिये मेरी नौकरी गई।

(२०२)

एक आदमी अपनी बात खूब लम्बी-चौड़ी बढ़ाकर कहा करता था। उसके मित्र उसे भली भाँति जानते थे। एक दिन

कहीं दावत थी। मित्रों ने उसे समझा दिया था, कि देखना, कहीं दावत में भी गप्पें फटकारने न लग जाना। वह बोला— भाइयो, मैं अपनी आदत से बहुत ही परेशान हूँ। यदि आप लोगों को वहां मेरी कुछ गलती दिखलाई पड़े, तो माफ़ करना और मुझे फ़ौरन रोक देना!

जब सब लोग खाने बैठे, तब किसी बगीचे की चर्चा चली। आप झट बोल उठे—हाँ, मैंने भी वह बगीचा देखा है; उसकी लम्बाई दो मील से कम न होगी। इसी बीच में एक दोस्त ने आपको आँख के इशारे से मना किया। तब आप तुरन्त ही सम्हले और बोले—हाँ देखिये; लम्बा तो वह इतना ही है, मगर चौड़ाई उसकी दो इञ्च से अधिक न होगी।

(२०३)

जानकी ने अपने मित्र को एक कार्ड लिखा और अन्त में यह शब्द लिखे—"वहाँ का चिट्ठीरसा बड़ा पाजी है। वह चिट्ठियाँ पढ़ लेता है, इसी लिये अधिक ब्यौरा नहीं लिखता। दूसरे दिन डाकिया मारे ताव के चिट्ठी लेकर जानकी के ही पास पहुंचा और कार्ड उनके हाथ में देकर बोला—आप सरासर झूठ लिखते हैं। मैं कभी किसी का कार्ड नहीं पढ़ता।

(२०४)

एक मास्टर साहब अपनी कक्षा में गणित पढ़ा रहे थे। उन्होंने अपने विद्यार्थी को जोड़ और बाक़ी सिखलाते हुए कहा—जोड़ और बाक़ी के सवाल करते समय दोनों संख्याएँ समान देख लेनी चाहिये। जैसे सोलह मेज़ों में से चार कुर्सियाँ नहीं निकाल सकते और पांच घोड़ों में तीन बकरियाँ

नहीं मिला सकते। इतने में उनकी कक्षा का एक विद्यार्थी बोल उठा—क्या चार भैंसों के थनों में से चार सेर दूध नहीं निकाल सकते हैं?

(२०५)

शिक्षक—तेरे पास तीन आम हैं और तेरे भाई के पास पाँच आम हैं। यदि तू उसके आम ले लेगा, तो जोड़ क्या होगा?

विद्यार्थी—हम दोनों लड़ पड़ेंगे।

(२०६)

लड़का—पिताजी, क्या आपको चश्मा लगाने में छोटी वस्तु भी बड़ी दिखाई देती है?

पिता—हाँ; चश्मा लगाने से केवल यही मतलब है कि छोटी वस्तु बड़ी दिखाई दे।

लड़का—तब, पिताजी, जिस समय आप मुझे कोई चीज़ खाने के लिये दिया करें; उस समय चश्मा निकाल कर अलग रख दिया करें।

(२०७)

हलवाई—अरे भाई, आज का दूध इतना पतला क्यों है?

ग्वाला—कल सब भैंसें पानी में भीग गई थीं।

(२०८)

शिक्षक—क्या तूने कभी सिंह का चमड़ा देखा है?

विद्यार्थी—जी हाँ! परसों सरकस देखने गया, वहीं सिंह के शरीर पर उसका चमड़ा देखा था।

(२०६)

दो आदमी लड़ते-झगड़ते अपने एक मित्र के यहाँ पहुँचे। पूछने पर बोले हम लोगों में इस बात का झगड़ा है; कि आप बड़े मूर्ख हैं या बड़े धूर्त? दोस्त ने दोनों के बीच में खड़े होकर जवाब दिया—मैं समझता हूँ कि मैं दोनों के बीच में हूँ।

(२१०)

किसी गाँव में एक हाथी बिकने आया। एक ग्रामीण, जिसने कभी हाथी देखा न था, उसे कभी सूँड़ की ओर जाकर देखता था और कभी पूँछ की ओर। हाथी वाले ने समझा, कि यह बड़ा पारखी है, ऐसा न हो कि यह कोई ऐब ढूँढ़ निकाले और हाथी न बिक सके। यह सोचकर उसने चुपचाप १००) की थैली निकाली और ग्रामीण के हाथ में दे दी। वह थैली घर रख आया और आकर फिर वैसाही करने लगा। हाथी वाले ने डरकर फिर उसे १००) की थैली दे दी। वह थैली रखकर, लौटा और लगा हाथी के चारों ओर चक्कर काटने। तब तो हाथी वाले ने झुंझला कर उससे कहा—बताओ तो, कौन सा ऐसा ऐब ढूँढ़ रहे हो। ग्रामीण महाशय थे अकल के पूरे, बोले—मैं यह जानना चाहता हूँ कि इसका मुंह किस तरफ़ है?

हाथीवाला समझ गया कि यह निरा बेवकूफ़ है, बोला तुम मेरी दोनों थैलियों को उठा लाओ तो मैं बतला दूँगा। ग्रामीण थैलियाँ उठा लाया। हाथी वाला रुपये पा हाथी पर सवार हो चलते समय उससे बोला—देख, यह जिस ओर चल रहा है, उसी ओर इसका मुंह है?

(२११)

किसी गुस्सैल मालिक के यहाँ एक नौकर था। मालिक के नकुओं पर रुई जलती थी। ज़रा सी बात हुई नहीं, कि आप बिगड़े। जब नौकर से उनका गुस्सा न सहा गया, तब एक दिन उसने उनसे कहा—साहब मेरा हिसाब कर दीजिये। मालिक ने उससे पूछा—तुम मेरी नौकरी क्यों छोड़ते हो? नौकर ने जवाब दिया—सच पूछिये तो मुझसे आपका क्रोध नहीं सहा जाता। यह सुन मालिक बोले—यह कितनी सी बात है! मेरा गुस्सा तो दम भर में चला जाता है। नौकर ने जवाब दिया—सो तो सही है, पर वह दम भर में आ भी तो जाता है।

(२१२)

एक महाशय कोट पतलून डाटे, टाई कालर लगाये, लपझपाता बेंत हाथ में लिये, घूमते-घामते रेलवे स्टेशन पर जा पहुंचे। साथ में आप कुत्ता भी लिये थे। एक स्थान पर खड़े हो सीटी देते टामी टामी कर रहे थे। इतने में वहाँ से स्टेशन मास्टर निकला। आपने उससे पूछा—क्यों बाबू नौ बजकर ४५ मिनट की गाड़ी कब जायगी?

बाबू—(मुसकुराकर) पौने दस बजे!

महाशय—(मुँह बिगाड़कर) वाह साहब! आप लोग हमेशा वक्त बदला करते हैं! ९ बजकर ४५ मिनट वाली गाड़ी अब पौने दस बजे जाने लगी!

बाबू—(हँसकर) इत्तेरे गधे की।

(२१३)

पुलिस के दो सिपाहियों ने एक शराबी को, जो शराब के नशे में चूर हो रहा था, पकड़ा। सवेरे वे उसे मजिस्ट्रेट के

सामने ले गये। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा—तुझे किसने पकड़ा ?

शराबी—सरकार, दो सिपाहियों ने।

मजिस्ट्रेट—किस कारण ?

श०—सरकार ! ये दोनों दारू पीकर मतवाले हो रहे थे, मनचाही गालियाँ बक रहे थे। मैं सामने से आ रहा था। मैंने इनसे कहा—भाई, गालियाँ क्यों बकते हो ? बस इन्होंने मुझे पकड़ लिया। फिर ये मुझे आपके सामने ले आये ! हुजूर, यह पुलिसवालों की करतूत है ! आप इन्हीं से पूछ लीजिये, मेरा कहना सच है न ?

म०—सिपाहियों ने शराब पी थी या तूने ?

श०—सरकार, सिपाहियों ने ! मैं तो शराब छूता भी नहीं !

(२१४)

एक वैद्यराज ने बीमार के नौकर को ताक़ीद की, कि तुम्हारा मालिक बीमार है। बीमारी के कारण वह बहुत कमज़ोर हो गया है और बहुत घबड़ाता है। इसलिये तुम ऐसा किया करो कि जब वह जो कुछ कहे, तब तुम हाँ कह दिया करो। ऐसा करने से उसे कुछ प्रसन्नता रहा करेगी।

वैद्य के कहे अनुसार उस दिन से नौकर, मालिक के कुछ कहने पर नौकर 'हाँ सरकार' कह दिया करता था।

एक दिन मालिक उकताकर बोला—बीमारी क्या आई सभी मुझसे दूर दूर रहते हैं अब तो मैं मर जाता, तो बहुत अच्छा होता।

नियम के अनुसार नौकर बोला—सत्य वचन महाराज !

(२१५)

एक स्थान पर बहुत से आदमी बैठे हुए भूकम्प पर बातें कर रहे थे। एक आदमी ने दूसरे से कहा—जिस समय भूकम्प हुआ, उस समय तुम बहुत घबरा गये थे! क्यों भला?

उसने जवाब दिया—घबराना किसे कहते हैं? मैं तो एक सा थर थर काँप रहा था और ज़मीन तो और भी अधिक कांप रही थी।

(२१६)

दिल्लगीबाज—राव साहब घर में हो क्या?

नौकर—नहीं महाराज!

दि०—मैंने तो उन्हें अभी घर में जाते देखा है, और तू कहता है नहीं।

नौ०—उन्होंने भी तो आपको देख लिया है महाराज!

(२१७)

एक डाक्टर साहब ने एक रोगी बालक से पूछा—तुम्हें नींद तो अच्छी तरह आती है न?

बालक—खूब! कुम्भकर्ण से भी ज्यादा!

डा०—अच्छा भूख?

बा०—जो खाऊँ सो भसम!

डा०—पानी कैसा पीते हो?

बा०—हण्डा के हण्डा!

डा०—अच्छा, तुम अपनी जीभ तो दिखाओ।

बा०—माफ़ कीजिये! आज सबेरे मैंने जीभ निकाली थी, उस पर बाबा ने मेरे कान खींचे और कहा, अब कभी जीभ

निकाली, तो तुम्हारे मास्टर को लिख कर तुझे खूब सज़ा दिलवाऊँगा । इतने पर भी जीभ निकालूँगा तो आप क्या सहायता करेंगे ?

(२१८)

एक देहाती आदमी ने शहर में सड़कों पर पानी छिड़कने वाली एक गाड़ी देखी। कुछ देर तक तो वह चुप रहा, फिर एक जेण्टिलमैन से बोला—देखिये साहब ! आप लोग गाँव वालों को बेवकूफ़ कहा करते हैं, पर जरा शहर वालों की अक्ल तो देखिये, इसमें इतने छेद हैं कि घर पहुँचते पहुँचते एक बूँद भी पानी न रहेगा।

(२१९)

जज—मैं तुम्हें दो बरस की सज़ा देता हूँ। क्या तुम कुछ कहना चाहते हो ?

क़ैदी—जी हाँ ! आप मेरे घर वालों से कह दीजिए, आज मैं खाना खाने नहीं आऊँगा।

(२२०)

मास्टर—रणजीतसिंह कब रहता था ?

लड़का—मुझे मालूम नहीं।

मास्टर—क्यों ?

लड़का—अपने पैदा होने के पहले की बातें पूछो, तो कैसे बताऊँ ?

(२२१)

मास्टर साहब गणित सिखा रहे थे। मोंटू मास्टर साहब की बातें न सुनकर, एक कोने में, बिल में घुसते हुये चूहे को देख रहा था । चूहे का पूरा शरीर बिल के अन्दर चला गया

था, पर पूंछ बाकी थी। इतने में मास्टर साहब ने पूछा—समझ गया भोंदू ?

भोंदू 'गया भोंदू' सुनकर बोला—जी नहीं पूंछ बाक़ी है।

(२२२)

पिता—क्यों राम! तू पहले तो अच्छे नम्बर पाता था, अब शून्य पाता है, यह क्या बात है ?

पुत्र—इसमें मास्टर साहब की ही ग़लती है। जो लड़का पहले मेरे पास बैठता था, अब मास्टर साहब उसे दूसरी जगह बिठाने लगे हैं।

(२२३)

चोर—यह काम पूरा होने में कितनी देर लगेगी ?

वकील—मुझे दो घण्टे, तुम्हें दो बरस!

(२२४)

एक—क्या आपको यह शहर अच्छा लगता है!

दूसरा—अजी नहीं नरक समान!

पहला—अच्छा, तो आप नरक भी देख आए हैं!

(२२५)

राम का पिता राम पर बिगड़ कर बोला—क्या गधे जैसा काम करते हो ?

राम ने जवाब दिया—आप मेरे पिता हैं, आप सब कुछ कह सकते हैं।

(२२६)

राम—राजेन्द्र तुम चोरी करना तो खूब जानते हो, मुझे भी सिखा दो।

राजेन्द्र—पहले मेरी फ़ीस तो लाओ।

(२२७)

जज—अब की बार तो मैं तुम्हारा क़सूर माफ़ करता। मगर फिर कभी ऐसा मत करना।

अपराधी—अच्छा, विचार करूँगा।

(२२८)

एक भले आदमी ने एक दुष्ट लड़के से कहा—क्या तुम जैसा भी कोई शैतान है?

दुष्ट लड़का—केवल आप!

(२२९)

नया पोस्टमैन—पं० हर किशनलाल का यही मकान है?

हरकिशनलाल—हाँ यही है। कहिये क्या है?

पो०—एक पारसल और दो बैरंग चिट्ठियाँ!

हर किशनलाल—(चिट्ठियों को उलट-पुलटकर) सुनिये महाशय! पारसल तो मेरा ही है, पर इन बैरंग चिट्ठियों का पाने वाला हर किशन लाल कोई दूसरा ही होगा।

(२३०)

सास—(पड़ौसिन से) जीजी! यही हमारी छोटी लड़की को व्याहे हैं, बड़े सीधे हैं। खाने बैठते हैं तो मानों फूल सूंघकर उठ आते हैं।

दामाद—(सास से) माता जी, आपने सुनने में भूल की होगी। मैं तो खाते समय परोसने वाले को चुनौती देता हूँ। फूल सूंघकर उठ आने वाला कोई दूसरा ही होगा।

(२३१)

किसान—मैं लगातार कई दिनों से अपने खेत से, तुम्हारे

ईख तोड़ ले जाने की बात सुनता था; आज पकड़ पाया है। बच्चू ! आज तुमको बताऊँगा !

चोर—(रोकर) मालिक, मैं तो आज ही आया हूँ और कभी नहीं आया।

किसान—(एक चपत जमाकर) और कल कौन तोड़ ले गया था ससुरे ?

चोर—वह कोई दूसरा ही होगा !

(२३२)

बाबू साहब—(हलवाई से) भैया मोतीलाल ! उस दिन वह ड़े मेरे नौकर ने शायद तुम्हारी ही दूकान से खरीदे थे। बड़े अच्छे थे। खूब खोया पड़ा था और महकते भी अच्छे थे।

हलवाई—हाँ, मेरी ही दूकान से ले गया था।

बाबू साहब—परन्तु आज तो तुमने जो बर्फियां उसके हाथ भेजी थीं, वे एक तो कई दिन की बासी मालूम होती थीं दूसरे चींटों और बरों ने उन्हें खोखला कर डाला था।

हलवाई—हुजूर ! तो क्या दुनिया में एक मेरी ही दूकान है ! और वह मेरे दूकान पर ही आया होगा, पर तौलने वाला कोई दूसरा ही होगा !

(२३३)

माता—मेरे मुन्ना ! मैंने सुना है, कि आज तुमने रामू के बाग से चुरा चुरा कर खूब अमरूद खाए हैं !

मुन्ना—हाँ अम्माँ ! कुछ तो अमरूद कच्चे थे; पर जो पके थे, वे बड़े मीठे थे।

माता—और सुना है, तुम पीटे भी गये थे ?

मुन्ना—नहीं अम्माँ, मैं तो भाग आया था। पिटने वाला कोई दूसरा ही होगा !

(२३४)

बाप—(बड़े बेटे को दिखाकर) यही मेरा बड़ा पुत्र विशाल-दत्त है, जिसके साथ आप लोग सम्बन्ध करना चाहते हैं।

सम्बन्धी—हाँ! लड़का तो बड़ा सुघर है। कुछ पढ़ा भी है ?

बाप—यह पढ़ने में बड़ा तेज़ है, पाठशाला के गुरुजी एक दिन इसकी बड़ी प्रशंसा करते थे ?

छोटा लड़का—परन्तु दद्दा ! पण्डित जी कहते थे कि विशाल बड़ा चोर है ! और इसी बात पर उन्होंने इसे पीटा भी खूब था।

बाप—चल पगले ! वह विशाल कोई दूसरा ही होगा !

(२३५)

यात्री—(पण्डों से) मैं तुम्हारे यहाँ न ठहरूँगा। तुमने उस बार धोखा देकर मेरे सब रुपए हड़प लिए थे, हीरादास महाराज !

पण्डा—मेरा नाम तो मीरादास है ! आप यह क्या कह रहे हैं !

यात्री—तुम्हारी सूरत, शक्ल, रंग, रूप सब उसी हीरादास का सा है।

पण्डा—वह मेरे साथ जोड़वाँ पैदा हुआ था। मैं उसका भाई हूँ, इसी लिये यह बात है !

यात्री—पर, मैंने सुना है, कि उसका भाई उससे भी ठग है।

पण्डा—तो क्या हम दो ही भाई हैं? जिस ठग के विषय में आपने सुना है, वह कोई दूसरा ही होगा!

(२३६)

रामू—सुनो श्यामू! आज तो मेरी तक़दीर खुल गई।

श्यामू-सो कैसे?

रामू—अच्छा सुनो! मैंने एक नौकरी के लिये दरख़ास्त दी थी। उसके लिये एक और भी उम्मेदवार था। पर भाग्य से सफलता मुझे ही प्राप्त हुई।

श्यामू—आपको बधाई है! अब सुनो, दूसरा दरख्वास्त देने वाला मैं ही था।

रामू—शोक! मैं जानता तो उसके लिये दरख़ास्त ही न देता। मैंने तो समझा था, कि दरख्वास्त देने वाला कोई दूसरा ही होगा।

(२३७)

भानू—सुनो रज्जू! आज मैंने रात को खूब पीटा।

रज्जू—और भानू! मैंने भी खूब पीटा!

भानू—किसको?

रज्जू—तुम तो बताओ!

भानू—मैं आज रात को घर से निकल कर दरवाज़े पर आ रहा था। बरामदे में अँधेरा था, कोई चीज़ मुझसे छू गई। मैं पहले तो बहुत डरा; पर हिम्मत बाँध कर दो-चार चपतें जमाईं; मगर उसी समय तीन-चार चपतें मेरे भी पड़ गईं।

रज्जू—अरे! भानू तुम थे? उस समय तो मैं ही दरवाज़े से घर की ओर जा रहा था। जब मेरे दो-तीन चपतें पड़ीं,

तब मैंने भी तीन-चार जमा दीं। हत्तेरे की! मैं तो समझा था, कि कोई दूसरा ही होगा।

(२३४)

सोहन—तुमने गुरूजी से शिकायत कर मुझे नाहक ही पिटवाया!

मोहन—तो तुम मेरी किताब छिपाकर घर क्यों ले गये थे?

सोहन—तुम्हें अपना मित्र जानकर!

मोहन—इसे मैं क्या जानूं, मुझे मालूम होता कि किताब तुमने छिपाई है, तो मैं गुरूजी से कभी न कहता। मैंने तो समझा था, कि चोर कोई दूसरा ही होगा।

(२३६)

एक जवान आदमी ने किसी बूढ़े से कहा—बाबा, मैं तो समझता था, कि तुम्हारी अक्ल उतनी ही बड़ी होगी, जितनी तुम्हारी दाढ़ी है।

यह सुन बूढ़े बाबा बोले—अगर यही बात है, तो मुझे कहना पड़ेगा, कि तुम में अक्ल नाम को भी नहीं है, क्योंकि तुम्हारी दाढ़ी एक दम सफाचट है।

(२४०)

किसी सेठ ने एक आदमी को नौकर रखा था। नौकर भी एक ही था, हमेशा अक्ल के पीछे लट्ठ लिये फिरता था। एक दिन सेठानी ने उससे कहा—जा दूकान पर तो जा कहना घर में नमक नहीं है। नौकर दूकान पर पहुंचा। उस समय सेठ जी के पास दो-चार भले आदमी भी बैठे हुए थे पर नौकर ने एकदम चिल्लाकर सेठ जी से कहा—साहब, घर में नमक

की एक डली भी नहीं है। सेठ जी इस बात से बहुत शरमाए। जब वे भले आदमी चले गए, तब सेठ जी ने उससे कहा-अबे नालायक! ऐसी बात भी चार आदमियों के सामने कही जाती है? ऐसी बात तो कान में कहनी चाहिये। नौकर बोला-सरकार, आगे से ऐसा ही करूँगा।

एक दिन सेठ जी के घर में आग लग गई। सेठानी ने नौकर से कहा—जलदी दौड़ कर दूकान पर जा सेठ जी से कहना, घर में आग लग गई है। नौकर दौड़ा दौड़ा दूकान पर गया। उस समय भी सेठ जी के पास कुछ आदमी बैठे थे नौकर एक ओर खड़ा रहा। जब सब लोग चले गए, तब उसने धीरे से सेठ जी के कान में कहा—आप के घर में आग लग गई है, जल्दी चलिए। सेठ जी अपने सिर पर हाथ मार कर बोले—हत्तेरे गधे की! सब नाश कर दिया।

(२४१)

एक मौलवी साहब ने सपने में देखा कि शैतान उनके सामने खड़ा है। आप बिगड़कर उससे बोले—अरे बेईमान! तूही तमाम आदमियों को बहकाता है! और उन्हें धोखा देने के लिये तूने इतनी दाढ़ी बढ़ा रखी है! इतना कहकर आपने लपककर उसकी दाढ़ी पकड़ ली और लगे उसके गालों पर तड़ातड़ चपतें जमाने! चपतों की आवाज़ होते ही मौलवी साहब की नींद टूट गई तो क्या देखते हैं। आप अपनी ही दाढ़ी पकड़े हुये अपने गालों पर चपतें जमा रहे हैं।

(२४२)

एक बड़े नैयायिक महाशय किसी तेली के यहाँ तेल लेने गये। वहाँ उन्होंने कोल्हू के बैल के गले में घण्टी बँधी देखी।

जब तैल ले चुके, तो तेली से पूछा कि बैल के गले में घण्टी क्यों बाँध रखी है ?

तेली—जब मैं कोई दूसरा काम करने लगता हूँ, तो इस की घण्टी की आवाज़ से मुझे मालूम होता रहता है, कि यह चल रहा है, या नहीं !

नैयायिक—यदि यह खड़े खड़े ही सिर हिलाने लगे तो?

तेली—रहने दीजिये महाशय, मेरे बैल ने न्याय-शास्त्र नहीं पढ़ा है, न वह नैयायिक ही है।

(२४३)

नैयायिक महाशय तेल लेकर चले। रास्ते में आप लगे यह सोचने कि तेल कटोरे पर है, या तेल पर कटोरा! सोचते सोचते आप परेशान हो उठे, पर सवाल हल न हो सका। तब आपने एक राहगीर से पूछा—क्यों भाई, क्या तुम बता सकते हो कि कटोरा तेल पर है, या कटोरे पर तेल?

राहगीर—हाथ कङ्गन को क्या आरसी, कटोरे को उलट पुलट कर परीक्षा कर देखिये न!

नैयायिक महाशय की जाँच में यह बात आ गई! ज्योंही आपने कटोरा औंधाया, त्योंही सारा तैल ज़मीन में जा गिरा तब आप अफ़सोस करते हुए घर पहुंचे।

(२४४)

एक कंजूस को उसका एक मित्र किसी सभा में ले गया। वहाँ दान पुन्य की बड़ी बड़ाई हुई, इस मतलब से, कि वह कंजूसी छोड़ दे। सभा से लौटते समय कंजूस ने अपने मित्र से कहा—भाई, आज की बातों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। उनकी बातें सुनकर मुझे दान पुण्य ऐसे अच्छे मालूम हुये, कि मेरे मन में आता है कि कल से ही मैं भी दान माँगने लगूं।

(२४५)

एक समय तीन कोरियों ने आपस में सलाह की, कि पञ्चायत करना सीखना चाहिये। सलाह कर के तीनों पञ्चायत करना सीखने के विचार से एक गाँव में पहुंचे। गाँव के बाहर कुएँ पर कुछ स्त्रियां पानी भर रहीं थीं। कोरी भी पानी पीने के विचार से कुएँ पर पहुंचे। इतने में एक स्त्री बोली सुने सब की, कहे कौन-कौन की! यह सुन दूसरी बोली—न दस मन रुई न पाँच मन रेशम॥ इस पर तीसरे ने कहा—बहिन सच्ची बात तो यह है, कि अपनी जाँघ उघारिये आपहि मरिये लाज।

ये कहावतें सुन कोरी आपस में बोले—पञ्चायत में इन्हीं बातों की तो ज़रूरत पड़ती है। यदि हम लोग एक-एक बात याद कर रखें, तो फिर क्या कहना, हम से अच्छी पञ्चायत कोई कर ही न सके। बस, वे लोग कहावतें रटते हुए लौट पड़े। रास्ते में उन्हें एक सिपाही मिला। वह चोरी का पता लगाने निकला था। किसी गाँव में सूत और रेशम की चोरी हो गई थी। जो कोरी न दस मन रुई, न पाँच मन रेशम' कहता जाता था, सिपाही को उसी पर शक हुआ। उसने कोरी को पकड़ लिया, और बाकी दो को गवाह बनाया।

अब सिपाही उन तीनों को लेकर हाकिम के सामने पहुंचा। उसने हाकिम से कहा—हुजूर इस कोरी ने ही चोरी की है, और इसने इन दोनों के सामने यह बात कबूल भी की है। तब हाकिम ने उन लोगों से पूछा—सच बात क्या है? कोरी तो थे पञ्चायत में मगन। सिपाही ने जिसे चोर बनाया था वह चट से बोला—हुजूर, न दस मन रुई, न पाँच मन रेशम। पहले ने कहा—सुने सब की कहै कौन कौन की?

ऐसे आदमी की परीक्षा तो करनी चाहिये। बस उसने मनहू
को बुलाया, और रात को उसे अपने ही महल में सुलाया
बड़े तड़के उठकर राजा ने उसका मुंह देखा।

भाग्य की बात उस दिन इतना काम आया, कि राजा
भोजन करने के लिए समय ही न मिला। राजा ने सोच
बेशक यह आदमी मनहूस है, इसे तो मरवा डालना ही बेह
है। बस उसने बेचारे को फांसी की सजा दे दी।

तब मनहूस ने हाथ जोड़ कर राजा से विनती की, कि
महाराज, इसमें मेरा क्या कुसूर है ? सवेरे मेरा मुंह देखने
आपको तो भोजन ही नसीब नहीं हुआ और मैंने आप
मुँह देखा है, सो अब मेरे प्राण तक जा रहे हैं।

यह सुन राजा ने फौरन मनहूस को छोड़ दिया।

(२५१)

एक विद्यार्थी से, जो हमेशा देर करके आता था, गुरु ज
ने नाराज होकर कहा—क्यों जी यह क्या बात है, कि तुम रोज
देर करके सब से पीछे आते हो, और सबसे पहले च
जाते हो !

विद्यार्थी बोला—गुरु जी तो क्या आप चाहते हैं, कि
दिन में दोबार देर किया करूं ?

(२५२)

एक छोटा लड़का रेत में खेल रहा था। एक पुजारी ज
उधर से निकले। उन्होंने बालक से पूछा—क्या कर रहे हो ?

बालक—मन्दिर बना रहा हूँ।

पुजारी—तो एक पुजारी की भी जरूरत होगी।

बालक—पर मेरे पास पुजारी बनाने के लिये काफी मिट्टी
नहीं है।

(२५३)

भचकू पण्डित की आदत थी कि वे पढ़ाते समय वाक्य के अन्त में कुछ शब्द छोड़ देते थे और विद्यार्थी उसे पूरा कर देते थे।

एक दिन पण्डित जी पढ़ाने लगे—

"उनके आँख होते हुए भी वे नहीं—"

"देखते थे।" बालकों ने कहा।

"उनके कान होते हुए भी वे नहीं—"

"सुनते थे।" बालक बोले।

"उनके नाक होते हुए भी वे नहीं—"

"पोंछते थे!" बालक चिल्ला कर बोले और हँस पड़े!

पण्डित जी मेज़ पर हाथ पटक चिल्लाकर बोले—यह क्या बकते हो? कहो नहीं सूंघते थे।"

(२५४)

एक देहाती रेलगाड़ी में बैठा कहीं जा रहा था। गाड़ी में बड़ी भीड़ थी। किसी स्टेशन पर एक बाबू जी उसी गाड़ी में और चढ़े। कहीं बैठने की जगह न देखकर आप उस देहाती से बोले—मैं आपको ज़रा तकलीफ़ देना चाहता हूँ।

देहाती ने जवाब दिया—क्या कहा—मुझे तकलीफ़ देना चाहते हो? अच्छा है, दो मुझे तकलीफ़ मैं भी कुछ कमज़ोर नहीं हूं! बिना नाक काटे न रहूँगा, तुमने समझा किसे है?

(२५५)

पिता—आज तुमने स्कूल में क्या पढ़ा?

पुत्र—वही, जो कल पढ़ा था।

पिता—कल क्या पढ़ा था?

पुत्र—विना किताव देखे कैसे वतला सकता हूँ

पिता—किताव में क्या यह भी लिखा है ?

पुत्र—लिखा न होता, तो पढ़ता कहाँ से ?

(२५६)

किसी आदमी के घर में आग लगी थी। पास पड़ोस के सभी लोग बुझाने में लगे हुए थे। इतने में वहाँ एक बाबू साहब आ पहुंचे और एक आदमी से पूछने लगे—क्यों जी, क्या आग लगी है ?

उस आदमी ने जवाब दिया—जी नहीं पानी लगा हुआ है।

(२५७)

अम्माँ—लल्लू, आज तू स्कूल क्यों नहीं गया ?

लल्लू—तुम्हीं तो कहती थीं, कि मेरे चले जाने पर तुम मुझे याद किया करती हो ?

(२५८)

एक भले आदमी रेलवे स्टेशन पर टहल रहे थे। इतने में एक भिखारी आया और उनसे बोला—सिरकार का बेटा बड़ा हो ?

'सिरकार' बिगड़ कर बोले—कमीने कहता क्या है। लड़का बढ़ जायगा तो रेलवाले उसके टिकिट के पूरे दाम लेंगे न ? अभी तो आधे दामों में काम चल जाता है।

(२५९)

गुरु जी—तुम्हारी किताब कहाँ है ?

विद्यार्थी—घर में।

गु०—घर में क्या अण्डे देती है ?

वि०—जी हाँ मालूम तो ऐसा ही होता है; क्योंकि आज उस पर मैंने अण्डे रखे हुये भी देखे हैं।

(२६०)

पिता—देखो जी, इम्तिहान करीब है, दिन-रात पढ़ा करो।

पुत्र—रात को तो मैं सोता हूँ!

पिता—जागा करो।

पुत्र—कल तो आप कहते थे, कि रात में सिर्फ़ उल्लू ही जागा करते हैं!

पिता—तुम गधे हो?

पुत्र—और आप गधे के बाप!

(२६१)

एक घमण्डी डाक्टर साहब, किसी राजा साहब के यहाँ दवा करते थे। एक दिन रोग पर बात-चीत होते-होते डाक्टर साहब झुँझला कर बोले—मेरी तो यही राय है। डाक्टर साहब का ताव देखकर राजा साहब को भी क्रोध आया। उन्होंने दरवाज़े की ओर उँगली करके डाक्टर साहब से कहा—और मैं समझता हूं, कि अब आपकी वह राह ठीक होगी।

(२६२)

एक सितारची किसी ख़ांसाहब के पास पहुंचा और बोला, हुजूर मेहरबानी कर मेरा सितार सुन लीजिये। ख़ाँ साहब गाना-बजाना कुछ जानते न थे, आपने केवल कुछ गतों के नाम भर सुन रखे थे; बोले—तुम्हें झँझोटी की गत आती है?

सितारची—जी हाँ।

ख़ाँ साहब—तुम्हें अलैया, सरपड़दा, भैरवी और टोड़ी की गतें आती हैं?

सितारची—जी हुज़ूर!

खाँ साहब—तब सब इकट्ठी एकदम से बजाओ। मुझे जल्दी है।

यह सुन सितारची झुँझलाकर बोला—कभी और भी गाना सुना था, और चला गया।

(२६३)

एक पण्डित जी संस्कृत के बड़े शौकीन थे! हिन्दी से आपको बड़ी घृणा थी। आप अपने शिष्य पोंगादास जी से सदा कहा करते थे—भाई देख! हिन्दी से मेरा जी घबराने लगता है, मेरे सामने जब बोला कर तब संस्कृत में ही बोला कर।

एक दिन पण्डित जी किसी गाँव को जा रहे थे। साथ में पोंगादास जी भी थे, रास्ते में रात हो गई—चारों ओर गहरा अँधेरा छा गया। अचानक पण्डितजी के घोड़े का पैर फिसला, वह पण्डित जी समेत कुएँ में जा गिरा। यह देख पोंगादास जी ने चिल्लाना शुरू किया—हरन्ते-हरन्ते, तुरी सहित गुरु जी कूप में परन्ते।

चेले को चिल्लाते चिल्लाते बहुत देर हो गई, पर सहायता के लिये कोई न आया। तब गुरु जी भीतर ही से बिगड़ कर बोले—अरे गधे अब तो संस्कृत छोड़, यहाँ तेरी संस्कृत समझने वाला कौन है? पोंगादास जी ने जवाब दिया—कोई समझे, चाहे न समझे, मैं तो संस्कृत ही बोलूँगा! हिन्दी क्यों बोलूं, उससे आप घृणा करते हैं, अब मैं भी करने लगा हूँ।

(२६४)

एक अफ़ीमची की रेवड़ी अन्धेरी रात में गिर गई। वह एक धेले का तेल ले, चिराग़ जला लगा ढूँढने। लोगों ने

कहा—तुम बड़े बेवकूफ़ हो, जो दो कौड़ी की रेवड़ी के लिये धेले का तेल खर्च कर रहे हो !

अफीमची ने जवाब दिया—भाई, धेले पैसे की कोई बात नहीं, मैं तो उसे इस लिये ढूंढ़ रहा हूँ, कि कहीं वह किसी वे अफ़ीम वाले के पास न पहुंच जाय। नहीं तो वह उसे फड़र-कड़र खा जायगा। मैं तो उसे धीरे धीरे कुतर कुतर कर खाता।

(२६५)

एक शायर (कवि) किसी गाँव में पहुंचे। सुना, कि यहाँ का मालगुजार शैर सुनने का बड़ा शौकीन है। आप उससे मिलने पहुंचे। उसने पूछा—आप कौन हैं? आप ने जवाब दिया शायर। मालगुजार साहब बोले—भाई, शायर किस चिड़िया का नाम है? जो लोग मालगुजार के पास बैठे हुए थे, उनमें से एक ने उससे कहा—साहब, शायर वैतली (तुकड़) को कहते हैं। तब तो मालगुज़ार साहब बहुत खुश हुये और शायर से बोले—हमारे यहाँ के वैतालियों से सवाल-जवाब करोगे? शायर ने कहा—ज़रूर।

मालगुज़ार साहब के वैताली आये।

उनमें से एक बोला—बोला भला, चौबोला भला !

दूसरे ने कहा—कुएं में लटकता डोल भला !

शायर साहब समझ गये, कि ये सब निरे काठ के उल्लू हैं, यहाँ बैठना खुद उल्लू बनना है। आपने कहा—तुम सब पर 'लाहौल विला' और अपना रास्ता लिया?

(२६६)

एक ठठोल, एक छत्तीसा (नाई) और एक गञ्जे सिर वाला; तीनों एक साथ परदेश को निकले। रास्ता भूल कर

वे किसी जङ्गल में जा निकले और रात होने के कारण किसी झाड़ के नीचे ठहर गये। अब सब ने सलाह की, कि एक एक आदमी बारी बारी से जागता रहे! पहली बारी छत्तीसे की पड़ी, जिसने दिल्लगी में, सोते हुये ठठोल की हजामत बना डाली। फिर उसने ठठोल को जगाया, और उससे कहा—उठो, अब तुम्हारी बारी है। ठठोल उठा और ज्योंही उसने सिर पर हाथ फेरा, त्योंही चिल्लाकर बोला—अरे छत्तीसे! तूने बड़ी गलती की, जो मुझे जगाने के बदले गञ्जे को जगा दिया।

(२६७)

एक आदमी सैकड़ों आदमियों का कर्जदार हो गया। उसके दोस्तों ने उसे बहुत समझाया, कि ऐसा करना ठीक नहीं! कर्ज बहुत बुरी बला है। इससे आदमी की बड़ी बे इज्ज़ती होती है। और सब से बुरी बात तो यह है, कि कर्ज़दार को मारे फिकर के खाई रोटी नहीं पचती, न रात को चैन से नींद ही आती है। कर्ज़दार हमेशा बेचैन रहता है। ये सब बातें सुन कर्ज़दार ने जवाब दिया—आप लोग ठीक कहते हैं। लेकिन सब तरह की फिकर तो उसे होती है, जो बेवकूफ कर्ज लेकर उसे चुकाने का इरादा रखता है।

(२६८)

एक वाहियात नकल करने पर, भांड़ों पर अकबर बादशाह बहुत नाराज़ हो गये। उन्होंने भांड़ों को हुक्म दिया—तुम लोग एक हफ्ते के अन्दर हमारे राज्य से बाहर निकल जाओ। अगर इसके बाद तुम फिर हमारे मुल्क में दिखाई दिये, तो जान से मार डाले जाओगे।

बेचारे भांड़ मारे डर के कई महीने तक घर में छिपे रहे। एक दिन उन्होंने सुना; कि आज बादशाह की सवारी निकलने

वाली है। जिस रास्ते से सवारी निकलने वाली थी भाँड़ लोग उस रास्ते के एक ताड़ के वृक्ष पर जा चढ़े। जब बादशाह की सवारी पास पहुंची, तब भाँड़ों ने ढोल बजाना शुरू कर दिया। बादशाह ने पूछा—ये लोग कौन हैं? लोगों ने जवाब दिया—हुजूर, ये वही भाँड़ हैं, जिन्हें आपने देश निकालने की सज़ा दी थी।

बादशाह ने भाँड़ों की तरफ देखकर कहा—अरे! तुम अभी तक हमारे देश में बने ही हो?

भाँड़ों ने जवाब दिया—खुदा, हुजूर को सलामत रखे! हम चारों तरफ घूम आये, जहाँ गये, आपका राज्य पाया। इससे अब ज़मीन छोड़ आसमान को जाते हैं। आज यह पहली मञ्जिल है।

भाँड़ों की ये बातें सुन, बादशाह ने खुश होकर उनका क़ुसूर माफ़ कर दिया।

(२६६)

रास्ते में दो आदमी जा रहे थे। सामने से एक फ़क़ीर आ रहा था। उसने इन्हें सलाम किया। तब पहला आदमी बोला यह फ़क़ीर मेरे यहाँ भीख माँगने आया करता है। इसने मुझे ही सलाम किया है। यह सुन दूसरा बोला—नहीं जी, यह तुम्हें क्यों सलाम करेगा। कल ही की तो बात है, मैंने इसे एक कपड़ा दान दिया। इस लिये इसने मुझे ही सलाम किया है। ये दोनों इसी तरह की बातें कर करके आपस में झगड़ने लगे। आख़िर में दोनों में यह सलाह हुई, कि चलो, उसी से चलकर क्यों न पूछ लें, अभी झगड़ा तै हो जाता है। जब इन लोगों ने उस फ़क़ीर से पूछा कि शाह साहब, आपने सलाम किसको

किया ? तब शाह साहब ने जवाब दिया—तुम दोनों में जो ज्यादा बेवकूफ है, उसी को। यह सुनकर दोनों चुप हो रहे।

(२७०)

एक आदमी धोबी से बोला—तुम बड़ी बुरी तरह कपड़े धोते हो! यहाँ तक कि फाड़ कर एक-एक के दो-दो कर लाते हो।

धोबी ने जवाब दिया—लेकिन हुजूर, एक-एक कपड़े के दो-दो कर लाने पर भी धुलाई तो एक की ही लेता हूँ।

(२७१)

मालिक ने क्रोध में भर कर नौकर से कहा—क्या तुम यह समझते हो कि मैं बेवकूफ हूँ ?

नौकर ने जवाब दिया—नहीं हुजूर मैं कैसे कहूँ ? मैं तो कल ही आया हूँ।

(२७२)

एक आदमी गरीबों की सहायता के लिये चन्दा जमा कर रहा था। चलते चलते वह एक सेठ की दूकान पर पहुंचा और उसने सेठजी से चन्दा माँगा।

सेठ जी ने जवाब दिया—मैं ग़रीब आदमी, भला क्या चन्दा दूँ ?

उसने कहा—अच्छा तो आप ही इससे कुछ ले लीजिये क्योंकि यह ग़रीबों के लिये ही तो है।

(२७३)

पिता—तुम्हारे दर्जे में सब से सुस्त कौन है ?

पुत्र—सुस्त क्या ?

पिता—याने जब सब लड़के पढ़ते हों, तब वह चुप चाप बैठ रहता हो।

पुत्र—मास्टर साहब।

(२७४)

पुलिस के सिपाही ने, सड़क पर पड़े हुये शराब के नशे में चूर एक आदमी से कहा—तू घर क्यों नहीं जाता ?

शराबी—सारा शहर मेरे चारों ओर घूम रहा है, जैसे ही मेरा घर आगया, मैं उसमें घुस जाऊँगा ।

(२७५)

बूढ़े बाबा—मैंने तुमसे कई सवाल किये, लेकिन तुमने किसी का उत्तर ठीक ठीक नहीं दिया । अच्छा, अब तुम्हीं मुझसे कोई सवाल करो ।

बच्चा—और यदि तुमभी ठीक जवाब न दे सके तो ?

बूढ़े बाबा—तो मैं तुम्हें एक खिलौना दूंगा ।

बच्चा—अच्छा, मेरा यही सवाल है कि आज मेरा जन्म-दिन है, इसकी खुशी में मुझे कौन सा खिलौना दोगे ?

बाबा चुप हो रहे ।

(२७६)

माता कहीं जाने के लिये तैयार हुई, लड़का बोला—मैं भी चलूंगा ।

माँ—तुम थक जाओगे ।

लड़का—कभी नहीं थक सकता ।

माँ—अच्छा चलो ।

थोड़ी दूर जाने पर लड़का थक गया । माँ ने कहा—क्यों थक गये न ?

लड़का—थका तो नहीं हूँ, लेकिन यदि तुम अपनी पोटली में मेरी टाँगे भी बाँध लेतीं, तो अच्छा था ।

लड़के के इस भोले उत्तर से माँ ने उसका मुख चूम लिया और उसे गोद में ले लिया ।

(२७७)

बच्चा—जो लड़के जितने ही काले होते हैं, वे उतने ही सुखी भी रहते हैं ।

माँ—क्यों ?

बच्चा—क्योंकि उनसे कोई नहीं कह सकता कि तुम्हारे हाथ मैले हैं ।

(२७८)

पिता—हरी ! क्या तुम खुश न होओगे, जब तुम भी मेरी तरह बड़े हो जाओगे ।

हरी—नहीं पिता जी ।

पिता—क्यों !

हरी—क्योंकि तब नाटक घर में आजकल की तरह आधे टिकिट में कैसे जा सकूंगा ?

(२७९)

एक तीन बरस के लड़के ने अपनी माँ से कहा लड्डू दे !

माँ—नहीं है ।

लड़के ने माँ के पैर से लिपटते हुये कहा— न दे दी, तो धुली से तेली नात तात लूँदा ?

माँ—तो मैं साँस कैसे लूँगी ?

लड़का—मेली नात से ।

(२८०)

एक दिन किसी कञ्जूस का दोस्त उसके यहाँ आया । बहुत देर तक बात चीत होती रही । इतने में भोजन करने का समय हो गया कंजूस अपने दोस्त से पाखाने जाने का बहाना करके

भोजन करने चला गया। जब भोजन करके आया तब उसके मुँह में कुछ जूठन लगी देख दोस्त असली बात समझ गया, उसने मुसकुरा कर दोस्त से कहा—कुसूर माफ हो, आपके मुँह में पाखाना लग गया है, धो डालिये।

(२८१)

एक जुलाहा मक्के को गया। जब वहाँ से लौटा, तो लगा शेखी की बातें मारने। एक दिन बोला—मैंने एक बार ५० अरबों को भगाया! दोस्तों ने कहा—आपने किया तो बेशक बड़ी बहादुरी का काम पर यह तो बताइये, उन्हें आप ने भगाया कैसे था? आप बोले—एक मरतबा की बात है, ५० अरब आ रहे थे, उन्हें देखते ही मैं भाग खड़ा हुआ! फिर क्या था, वे भी मेरे पीछे-पीछे भागने लगे।

(२८२)

माँ—बेटा मुरली, देखो तुम रात में घर से बाहर न निकला करो क्योंकि भूत-प्रेत का डर रहता है।

मुरली—अच्छा माँ!

दूसरे दिन रात को माँ ने मुरली से कहा—बेटा जाओ तो, बाज़ार से दो पैसे का निमक ले आओ।

मुरली—मैं रात में घर से बाहर नहीं निकलता।

माँ—क्यों?

मुरली—कल तुम्हीं ने तो कहा था, कि रात में भूत-प्रेत का डर रहता है।

(२८३)

माँ—मुन्ना, तो तेरी बोली बड़ी मीठी है।

मुन्ना—मैं रोज़ शक्कर खाया करता हूँ न?

(२८४)

भिखारी—सेठ जी, भिक्षा मिल जावे।

सेठ—अभी कोई आदमी नहीं है।

भिखारी—श्रीमान्, थोड़ी देर के लिये आप ही आदमी बन जाइये।

(२८५)

एक समय एक अन्धे लाला जी को कचहरी में गवाही देने जाना पड़ा। एक लड़का उनकी लाठी पकड़कर उन्हें अदालत में ले गया। मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा—तुम्हारा नाम क्या है? लालाजी ने जवाब दिया—घासीराम!

मजिस्ट्रेट साहब थे, ज़रा दिल्लगीबाज़, लालाजी का नाम सुन हँसकर बोले—वाह जी लाला घासीराम! लाला के लाला और ईंधन के ईंधन!

लाला जी ने यह सुन लड़के के सिर पर चपत जमा कर कहा—क्यों बे यहाँ कहाँ भांड़ों की मजलिस में आया? हाकिम की अदालत में ले चल!

मारे शरम के मजिस्ट्रेट साहब का माथा नीचा हो गया।

(२८६)

एक फकीर किसी काज़ी के घर गया और उसने उनसे भीख मांगी। काज़ी ने जवाब दिया—भाई यह काज़ी का घर है, यहां तो खाने को क्या मांगता है! कसम खा और चला जा।

तब तो बेचारा फ़कीर—'तो साहब, आप दिन रात कसम ही खाया करते होंगे,' कहता हुआ आगे चला गया।

(२८७)

झब्बू चमार के तेरह लड़के थे। एक दिन वह शहर से अपने गांव को जा रहा था। वह लड़कों समेत स्टेशन पर

आया और टिकिट कटा गाड़ी की राह देखने लगा। गाड़ी के आते ही बाप बेटे इधर-उधर फिरने लगे। इतने में पुलिस के एक सिपाही ने झब्बू को टोका और उससे पूछा—क्यों! यह क्या गोलमाल है?

झब्बू—कुछ तो नहीं।

सिपाही—फिर इतनी भीड़-भाड़ क्यों?

(२८८)

रामलाल को क्षयी रोग था। डाक्टर ने उसके घर वालों से कह दिया था, कि जिन बर्तनों में रामलाल खावे-पीवे, उनको खौलते हुए पानी में डाल कर धो लिया करो। एक दिन रामलाल की मां बर्तनों को एक कढ़ाई में डालकर, गरम पानी में धो रही थी। उतने में रामलाल का छोटा भाई श्यामू वहां आया और मां से कहने लगा—तुम ये बर्तन कढ़ाई में डालकर क्यों औटा रही हो?

मां—इससे बीमारी के कीड़े मर जाते हैं।

श्यामू—भला बर्तन में कीड़े कहां से आये?

मां—ये कीड़े तुम्हारे भाई रामू के बुखार में हैं!

श्यामू—तब मां, भैया को कढ़ाई में डाल कर क्यों नहीं औटा डालती!

(२८६)

एक दिन अकबर बादशाह रात के समय प्रजा का भेद लेते हुए अहीरों के मोहल्ले में जा निकले। एक अहीर के घर में कुछ बातें होती सुन आप उसके द्वार पर खड़े हो गये। उस समय अहीरिन अपने पति से कह रही थी तुम तो फ़ारसी पढ़े हो, कोई सरकारी ... क्यों नहीं कर लेते?

जवाब दिया कि—फ़ारसी पढ़ने ही से क्या होता है ! बादशाह तो मेरी जाति के नहीं हैं !

बादशाह उस समय तो चुपचाप चले आये, पर उन्होंने दूसरे दिन अहीर को बुलाकर उसे अपने ऊँटखाने का मुंशी बना दिया। कुछ दिन बाद एक दिन बादशाह घूमते हुए, ऊंट खाने के सामने से निकले। अहीर अपने काम में लगा हुआ था। एकाएक बादशाह ने रोककर पूछा—तुम कौन हो?

अहीर घबराकर बोल उठा—मैं मुंशी खाने का ऊंट हूँ।

(२६०)

एक मास्टर साहब बड़े चालाक थे। जो कोई उन्हें नौकर रखता था, उसके यहाँ वे काम तो कुछ करते नहीं थे, परन्तु तनख़्वाह उन्तीसवें दिन ही मांगने लगते थे। एक लाला साहब ने भी उनका हाल सुना और उन्हें अपने लड़के को पढ़ाने के लिये नौकर रख लिया। लोगों ने लाला जी से कहा, कि यह मास्टर बड़ा चलता पुर्जा है। लाला जी बोले रहने दो! मैं भी कायस्थ-बच्चा हूँ! कभी जनाब को पैसा छकाऊं कि वे भी याद करेंगे! दस दिन बाद मास्टर साहब ने लाला जी को एक कविता सुनाई। लाला जी सुनकर बोले—वाह! क्या कहना आपने तो बहुत बढ़िया कविता लिखी है! अच्छा, आपको इस कविता पर सौ रुपये इनाम दिये जायंगे! मास्टर साहब फूल कर कुप्पा हो गये।

बस, दूसरे दिन से ही मास्टर साहब ने नौकरी छोड़ दी और लगे इनाम का तकाजा करने। लाला जी ने चार छः दिन तो टाल-मटोल की। अन्त में आप एक दिन मास्टर साहब से बोले—आप किस बात का इनाम मांगते हैं?

मास्टर—हमने आपको एक कविता सुनाकर खुश किया था।

लाला—(हँस कर) ठीक! आपने मुझे कविता सुनाकर खुश किया था, तो मैंने भी इनाम का नाम लेकर आपको खुश किया था, इसमें लेने देने की क्या बात?

बेचारे मास्टर साहब अपना सा मुँह लेकर चले गये।

(२६१)

लतीफ़न जब मरने लगी, तब उसने अपने मियाँ से कहा-तुम मुझे नैनीताल में दफ़न न करना, मैं यहाँ आराम से न सो सकूंगी। मुझे मुरादाबाद में दफ़न करना। क्यों करोगे? बोलो?

मौलवी अल्लाह बख्श नम्बर एक के कञ्जूस थे। सिर खुजलाते हुए बोले—खैर देखा जायगा। जब यहाँ आराम से न सो सकोगी, तब खुदवा कर ज़रूर मुरादाबाद ले जाऊँगा।

(२६२)

एक-मैं आज तक कभी झूठ नहीं बोला।

दूसरा—तो क्यों इसीलिये आज झूठ बोल रहे हो?

(२६३)

एक देहाती—(पोस्ट मास्टर से) बाबू जी मेरी कोई चिट्ठी हो, तो दीजिये!

पोस्ट मास्टर—तुम्हारा नाम क्या है?

देहाती—नाम तो चिट्ठी पर ही लिखा होगा।

(२६४)

मोहन—क्यों रामू! जब तुमने अपने बाप के रुपये चुराये थे, तब उन्होंने कुछ कहा नहीं?

रामू—नहीं, क्योंकि मेरी सगाई आने वाली थी।

(२६५)

माँ—मैंने आज सपने में एक बड़ा सुन्दर खिलौना देखा
बेटा—मुझे क्यों नहीं जगाया ?
माँ—तुम मचल जाते तो ?

(२६६)

पिता ने पूछा—बेटा यह किताब तुमने कहाँ तक पढ़ी है
लड़का—जहाँ तक मैली है।

(२६७)

महमूद—अहमद, तुम्हें याद होगा, कि तुमको मेरे प
रुपये देने हैं।

अहमद—जी हाँ ! मुझे खूब याद है और मैं मरते दम त
न भूलूंगा।

(२६८)

एक कवि को किसी राजा ने खुश होकर एक घोड़ा इना
में दिया। घोड़ा दुर्बल था, भाग्य की बात, वह रात को
चल बसा। दूसरे दिन राजा ने कवि से पूछा—घोड़ा कैसा है

कवि जी ने जवाब दिया—कुछ न पूछिये, महाराज, ऐस
तेज़ जानवर तो मैंने देखा ही नहीं। रात ही रात में इ
दुनियाँ से दूसरी दुनियाँ में जा पहुंचा।

(२६९)

भिखारी—बाबू ! मुझे एक पैसा दो ! ईश्वर तुम्हें बहुत देगा

बाबू—क्यों ! तुम्हारा कर्ज़ वही अदा करता है ?

भिखारी—जी हाँ ! तभी तो उसके नाम पर माँगता हूँ !

इति

छात्र हितकारी पुस्तकमाला की अनुपम पुस्तकें

१—ईश्वरीय बोध

परमहंस स्वामी रामकृष्णजी के उपदेश भारत में ही नहीं, तमाम संसार में प्रसिद्ध हैं। उन्हीं के उपदेशों का यह संग्रह है। श्रीरामकृष्ण जी ने ऐसे मनोरञ्जक और सरल, सब की समझमें आने लायक बातों में प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान कराया है कि कुछ कहते नहीं बनता। व्यावहारिक बातों द्वारा भगवान का बोध करा देना स्वामी रामकृष्ण जी का ही कार्य था। सचमुच मनुष्य ऐसी पुस्तक पढ़ कर अपने को बहुत उच्च बना लेता है। परिवर्द्धित संस्करण का मूल्य सिर्फ ।॥)।

२—सफलता की कुञ्जी

अमेरिका, जापान आदि देशों में वेदान्त का डंका पीटने वाले तथा भारतमाता का मुख उज्ज्वल करने वाले स्वामी रामतीर्थ को सभी जानते हैं। यह पुस्तक उन्हीं स्वामी जी के Secret of Success नामक अपूर्व लेख का अनुवाद है पुस्तक क्या है जीवन से निराश और विमुख पुरुषों के लिये संजीवनी और नवयुवकों के लिये संसार में प्रवेश करने की वास्तविक कुञ्जी है। मूल्य ।)

३—मनुष्य जीवन की उपयोगिता

मनुष्य जीवन किस प्रकार सुखमय बनाया जा सकता है। इसकी उत्तम से उत्तम रीति आप जानना चाहते हैं तो एक बार इसे पढ़ जाइये। कितने सरल उपायों से पूर्ण सुखमय जीवन हो जाता है, यह आपको इसी पुस्तक से मालूम होगा। यह मूल पुस्तक तिब्बत के प्राचीन पुस्तकालय में थी, आज दिन यूरप की प्रत्येक भाषा में इसके हजारों संस्करण हो चुके हैं डेढ़ सौ पेज की पुस्तक का मूल्य ॥=)।

४—भारत के दशरत्न

यह जीवनियों का संग्रह है। इसमें भीष्मपितामह, श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज, महाराणा प्रतापसिंह, समर्थगुरु [illegible] स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और [illegible] जीवनचरित्र बड़ी खूबी के साथ लिखे गये हैं।

५—ब्रह्मचर्य ही जीवन है

को पढ़ कर सच्चरित्र पुरुष तो सदैव के लिये वीर्य नाश से बचता ही है। किन्तु पापात्मा भी निःसंशय पुण्यात्मा बन जाता है। व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जाता है। दुर्बल भी सिंह तथा दुरात्मा भी साधु हो जाता है। जो पुरुष अपने को औषधियों का दास बना कर भी जीवन लाभ नहीं कर सका है, उसे इस पुस्तक में बताये सरल नियमों का पालन कर अनन्त जीवन प्राप्त करना चाहिये। कोई भी ऐसा गृहस्थ या भारतपुत्र न होना चाहिये जिसके पास ऐसी उपयोगी पुस्तक की एक प्रति न हो। थोड़े ही समय में इसके पाँच संस्करण हो चुके हैं। मूल्य ॥।)

६—वीर राजपूत

यह उपन्यास एक ऐतिहासिक घटना को लेकर बड़े मनोरञ्जक ढंग से लिखा गया है यदि राजपूताने के वीर राजपूतों के सच्चे पराक्रम और शूरवीरता की एक अपूर्व झलक आप को देखनी है, यदि आप यह जानना चाहते हैं कि एक सच्चा सदाचारी वीर पुरुष कैसे अपने उच्च जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है तो उपन्यास को एक बार अवश्य पढ़ जाइये। मूल्य १)

७—हम सौ वर्ष कैसे जीवें

भारतवर्ष में औषधालयों औषधियों की कमी नहीं फिर भी यहाँ के मनुष्यों की आयु अन्य देशों की अपेक्षा सबसे कम क्यों है ? औषधियों का विशेष प्रचार न होते हुये भी हमारे पूर्वजों की आयु सैकड़ों वर्ष की कैसे होती थी ? एक मात्र कारण यही है कि हमारे नित्य के खाने पीने, उठने बैठने के व्यवहारों में वर्तने योग्य कुछ ऐसे नियम हैं जिन्हें हम भूल गये हैं **"हम सौ वर्ष कैसे जीवें ?"** को पढ़ कर उसके अनुसार चलने से मनुष्य सुखों का भोग करता हुआ १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। हिन्दी में इस विषय की आज तक कोई भी ऐसी पुस्तक प्राकाशित नहीं हुई मूल्य ।।।)

८—महात्मा टाल्स्ट्राय की वैज्ञानिक कहानियाँ

विज्ञान की शिक्षा देने वाली तथा अत्यन्त मनोरञ्जक पुस्तक। मूल्य ।।)

९—वीरों की सच्ची कहानियाँ

यदि आपको अपने प्राचीन भारत के गौरव का ध्यान है, ए
आप वीर और बहादुर बनना चाहते हैं, तो इसे पढ़िये। इ
अपने पुरुषाओं की सच्ची वीरता पूर्ण यश गाथायें पढ़ कर आप
हृदय फड़क उठेगा, नसों में वीर रस प्रवाहित होने लगेगा पुरुषा
के गौरव का रक्त उबलने लगेगा। स्कूल में बालकों को इति
पढ़ाने में अपने पुरुषाओं की वीरतापूर्ण घटनाएँ नहीं पढ़ाई जा
विदेशी पुरुषों की प्रशंसा के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं। आवश्य
है देश का कोई बालक ऐसे समय इस पुस्तक को पढ़ने
चूके। मूल्य केवल ।॥)

१०—आहुतियाँ

यह एक बिलकुल नये प्रकार की नयी पुस्तक है। देश
धर्म पर बलिदान होने वाले वीर किस प्रकार हँसते हँसते मृत्यु
आवाहन करते हैं! उनकी आत्मायें क्यों इतनी प्रबल हो जा
वे मर कर भी कैसे जीवन का पाठ पढ़ाते हैं! इत्यादि दिल
काने वाली कहानियाँ पढ़नी हो तो "आहुतियाँ" आज ही
लीजिये। मूल्य केवल ।॥)

११—जगमगाते हीरे

प्रत्येक आर्य सन्तान के पढ़ने लायक यह एक ही नई पुस
है यदि रहस्यमयी, मनोरञ्जक, दिल में गुद गुदी पैदा करने वा
महापुरुषों की जीवन घटनाएँ पढ़नी हैं। यदि छोटी छोटी अ
से ही महापुरुष बनने की जरा भी अभिलाषा दिल में है तो ए
वार अवश्य इस सचित्र पुस्तक को आप खुद पढ़िये और अप
बच्चों को पढ़ाइये। मूल्य केवल १)